Economics of Growth and Develpoment

DECO501

LOVELY
PROFESSIONAL
UNIVERSITY

LOVELY PROFESSIONAL UNIVERSITY

वृद्धि और विकास के अर्थशास्त्र

ECONOMICS OF GROWTH AND DEVELOPMENT

Copyright © 2012
All rights reserved with publishers

Produced & Printed by
USI PUBLICATIONS
2/31, Nehru Enclave, Kalkaji Extn.,
New Delhi-110019
for
Lovely Professional University
Phagwara

पाठ्यक्रम (SYLLABUS)
वृद्धि और विकास के अर्थशास्त्र
(Economics of Growth and Development)

उद्देश्य: इस पाठ्यक्रम का उद्देश्य छात्रों को आर्थक विकास से संबंधित समस्याओं से परिचित कराना है। विशेषत: हम विकासशील राष्ट्रों की विशेषताओं तथा आर्थिक वृद्धि के वैकल्पिक सिद्धांतों के विषय में चर्चा करेंगे। विद्यार्थी विकासशील राष्ट्रों के समक्ष प्रस्तुत प्रमुख घरेलू समस्याओं जैसे मानवीय पूँजी का निम्न स्तर, नगरीकरण, ग्रामीण रूपान्तरण तथा उनके समाधान हेतु विभिन्न नीतियों को परख सकेंगे।

Objectives:

The purpose of this course is to introduce students to issues and problems related to economic development. Specifically, we will discuss the characteristics of developing nations as well as alternative theories of economic growth. Student will examine some of the dominant domestic problems faced by developing countries, such as, low levels of human capital, urbanization, rural transformation as el as different policies to resolve them.

Sr. No.	Description
1	Economics of Growth and Development: Meaning, Measurement, Difference and Comparisons. Sources of Economic Growth. Human Development Index and PQLI
2	Economic Growth Models-I: Harrod-Domar Growth Model, Neo-Classical Growth Models
3	Economic Growth Models-II: Growth and Distribution, Total Factor Productivity and Growth Accounting, Technological Change and Progress
4	Economic Growth Models – III : Model of Optimal Economic Growth, Multi-Sector Models of Growth,
5	Endogenous Growth Models, Stochastic Growth Models- Business Cycle Theory
6	Social and Institutional Aspects of Development: Difference between Development and Underdevelopment, Measurement and Indicators of Development, Population and Development, Economic Development and Institutions
7	Approaches to Development : Vicious Circle of Poverty and Unlimited Supply of Labor, Lewis Model, Ranis and Fei Model, Big Push Theory of Growth
8	Balanced Growth and Unbalanced Growth, Critical Minimum Efforts Thesis, Low - Level Equilibrium Trap
9	Dualism and Dependency Theory, Theories of Development: Classical Theories of Development, Schumpeter Model of Growth
10	Theories of Underdevelopment, Development Strategies: Allocation of Resources, Cost-Benefit Analysis, Role of planning

विषय-सूची

इकाई (Units)	(CONTENTS)	पृष्ठ संख्या (Page No.)
1.	वृद्धि और विकास का अर्थशास्त्र: अर्थ, माप, अंतर एवं तुलना (Economics of Growth and Development: Meaning, Measurement, Difference and Comparisons)	1
2.	आर्थिक वृद्धि के स्रोत (Sources of Economic Growth)	12
3.	मानव विकास सूचकांक एवं पी.क्यू.एल.आई. (Human Development Index & PQLI)	18
4.	आर्थिक वृद्धि मॉडल-1 हैरोड डोमर वृद्धि मॉडल (Economic Growth Models – I Harrod - Domar Growth Model)	25
5.	वृद्धि का नव-क्लासिकी मॉडल (Neo-Classical Growth Models)	39
6.	आर्थिक वृद्धि मॉडल- II : वृद्धि एवं वितरण (Economic Growth Model – II: Growth and Distribution)	48
7.	कुल कारक उत्पादकता तथा परिवर्धन लेखा (Total Factor Productivity and Growth Accounting)	58
8.	तकनीकी परिवर्तन तथा प्रगति (Technical Change and Progress)	66
9.	इष्टतम आर्थिक वृद्धि के मॉडल (Models of Optimal Economic Growth)	73
10.	वृद्धि के बहुक्षेत्रीय मॉडल (Multi-Sector Models of Growth)	79
11.	अंतर्जात वृद्धि मॉडल (Endogenous Growth Models)	85
12.	प्रसंभाव्य वृद्धि मॉडल (Stochastic Growth Models)	89
13.	विकास की सामाजिक एवं संस्थानिक अपेक्षाएँ: विकास एवं अल्पविकास में अंतर (Social and Institutional Aspects of Development: Difference between Development and Underdevelopment)	92
14.	आर्थिक विकास के मापक एवं सूचक (Measurement and Indicators of Development)	109

15.	जनसंख्या एवं आर्थिक विकास (Population and Economic Development)	121
16.	संस्थाएँ और आर्थिक विकास (Economic Development and Institutions)	141
17.	विकास के आयाम : गरीबी का दुष्चक्र एवं श्रम की असीमित पूर्ति (Approaches to Development: Vicious Circle of Poverty and Unlimited Supply of Labour)	145
18.	लुइस मॉडल (Lewis model)	154
19.	रेनिस एवं फाई मॉडल (Ranis and Fei Model)	164
20.	वृद्धि के बड़े धक्के का सिद्धांत (Big Push Theory of Growth)	172
21.	सन्तुलित विकास और असन्तुलित विकास (Balance Growth and Unbalance Growth)	183
22.	न्यूनतम आवश्यक प्रयत्न का सिद्धांत (Critical Minimum Efforts Thesis)	198
23.	निम्न स्तरीय सन्तुलन अवरोध (पाश) (Low-Level Equilibrium Trap)	211
24.	द्वैतवाद एवं निर्भरता का सिद्धांत (Dualism & Dependency Theory)	219
25.	विकास के सिद्धांत: विकास का क्लासिकी सिद्धांत (Theories of Development: Classical Theories of Development)	236
26.	शूम्पीटर का वृद्धि मॉडल (Schumpeter Model of Growth)	241
27.	अल्पविकास के सिद्धांत (Theories of Underdevelopment)	251
28.	विकास कूटनीति: संसाधनों का आबंटन (Development Strategies: Allocation of Resources)	261
29.	लागत-लाभ विश्लेषण (Cost-Benefit Analysis)	269
30.	भारत में नियोजन की भूमिका (Role of Planning)	282

नोट

इकाई-1: वृद्धि और विकास के अर्थशास्त्रः अर्थ, माप, अंतर एवं तुलना (Economic of Growth and Development: Meaning, Measurement, Difference and Comparisons)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objective)

प्रस्तावना (Introuction)

1.1 आर्थिक वृद्धि एवं विकास (Economic Growth and Development)

1.2 आर्थिक वृद्धि एवं विकास की विशेषताएँ (Characteristics of Economic Growth and Development)

1.3 वृद्धि और विकासः तुलना और अन्तर (Growth and Development: Comparisons and Difference)

1.4 आर्थिक वृद्धि एवं विकास की माप (Measurement of Economic Growth and Development)

1.5 सारांश (Summary)

1.6 शब्दकोश (Keywords)

1.7 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1.8 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- आर्थिक वृद्धि एवं विकास तथा इनकी विशेषताओं को जानने में।
- आर्थिक वृद्धि एवं विकास के तुलनात्मक अध्ययन तथा उसके अन्तर को समझने में।
- आर्थिक वृद्धि एवं विकास के माप की व्याख्या करने में।

प्रस्तावना (Introduction)

आज के इस प्रगतिशील आधुनिक युग की सबसे महत्त्वपूर्ण समस्या आर्थिक विकास की समस्या है जो वर्तमान शताब्दी का केन्द्र बिन्दु माना जा चुका है। इस शताब्दी के उत्तरार्द्ध में अर्थशास्त्रियों ने अर्द्धविकसित देशों के आर्थिक विकास में अधिक रुचि लेना शुरू किया। इसका मुख्य कारण था विकसित व सम्पन्न राष्ट्र इस बात को अनुभव करने लगे थे कि **किसी एक स्थान की दरिद्रता अन्य स्थान की सम्पन्नता के लिए खतरा है। मायर एवं बाल्डविन** (Meier and Baldwin) का भी यह मानना है कि **''राष्ट्रों की निर्धनता का अध्ययन राष्ट्रों के धन के अध्ययन से भी अधिक महत्वपूर्ण है।''** आज यह बात सर्वमान्य है कि सम्पन्नता का अस्तित्व निर्धनता के निवारण पर ही निर्भर करता है अन्यथा निर्धनता सम्पन्नता को जीने नहीं देगी। स्पष्टतः अर्द्धविकसित देशों की विशाल दरिद्रता को दूर करने में धनी राष्ट्रों की रुचि किसी मानव हितवादी उद्देश्य को लेकर नहीं जागृत हुई है।

आज का विश्व मुख्यतः अमीर एवं गरीब राष्ट्रों के बीच बँट चुका है। एक तरफ विकसित अथवा अमीर राष्ट्र, जैसे–संयुक्त राज्य अमेरिका, जापान, कनाडा, आस्ट्रेलिया आदि समृद्ध राष्ट्र हैं तो दूसरी तरफ, अर्द्ध-विकसित या निर्धन राष्ट्रों की श्रृंखला में मध्य पूर्व अफ्रीका, लैटिन अमेरिका और दक्षिण-पूर्वी एशिया के वे देश आते हैं जिनके

नोट

निवासियों को न्यूनतम आवश्यकताएँ ही पूरी नहीं होती। इसे ही **पॉल डैमनी** ने **उत्तर एवं दक्षिण** (North and South) समस्या कहा है।

1.1 आर्थिक वृद्धि एवं विकास (Economic Growth and Development)

विभिन्न अर्थशास्त्रियों ने आर्थिक विकास और आर्थिक वृद्धि शब्दों के अर्थ को अलग ढंग से प्रयुक्त किया है। प्राय: अर्थशास्त्री आर्थिक विकास शब्द का प्रयोग अल्पविकसित देशों के लिए और आर्थिक वृद्धि शब्द का प्रयोग विकसित देशों के लिए करते हैं।

हिक्स की परिभाषा–हिक्स की परिभाषा से दोनों शब्दों का अन्तर स्पष्ट किया जा सकता है। उसके अनुसार, ''अल्पविकसित देशों की समस्याएँ उपयोग में न लाए गए साधनों के विकास से संबंध रखती हैं, भले ही उनके उपयोग भली-भांति ज्ञात हों, जबकि उन्नत देशों की समस्याएँ वृद्धि से संबंधित रहती हैं जिनके बहुत सारे साधन पहले से ज्ञात और किसी सीमा तक विकसित होते हैं।''

परिभाषा से स्पष्ट है कि 'विकास' शब्द का संबंध पिछड़े हुए देशों से है जहाँ पर साधनों का पूर्ण उपयोग नहीं हुआ और उनके विकास की संभावना है। जबकि 'वृद्धि' शब्द का प्रयोग आर्थिक दृष्टिकोण से विकसित देशों से है।

मैडिसन की परिभाषा–मैडिसन की परिभाषा द्वारा किया गया भेद सबसे सरल है। उसके शब्दों में, ''आय स्तरों को ऊँचा करना सामान्यतया अमीर देशों में आर्थिक वृद्धि कहलाता है जबकि गरीब देशों में यह आर्थिक विकास कहलाता है।''

कभी-कभी अल्पविकसित के पर्याय के रूप में पिछड़े अथवा गरीब शब्द का भी प्रयोग किया जाता है। 'गरीब' शब्द का प्रयोग प्रति व्यक्ति आय के नीचे स्तर से है। परन्तु मैडिसन की परिभाषा दोनों प्रकार की अर्थव्यवस्थाओं में आय स्तरों को बढ़ाने वाली अंतर्निहित शक्तियों को स्पष्ट नहीं करती है।

शूम्पीटर की परिभाषा–वास्तव में, 'विकास' और 'वृद्धि' शब्दों को अर्थव्यवस्था के प्रकार से कोई संबंध नहीं है। दोनों में भेद परिवर्तन की प्रकृति और कारणों से हैं शूम्पीटर दोनों शब्दों में भेद को स्पष्ट करते हुए कहता है कि विकास स्थिर अवस्था में एक निरंतर और स्वत:प्रेरित परिवर्तन है जो पहले से वर्तमान संतुलन अवस्था को हमेशा के लिए परिवर्तित और विस्थापित करता है, जबकि वृद्धि दीर्घकाल में होने वाला क्रमिक तथा सतत् परिवर्तन है जो बचतों और जनसंख्या की दर में धीरे-धीरे वृद्धि द्वारा आता है। शूम्पीटर की इस परिभाषा को अधिकतर अर्थशास्त्रियों ने स्वीकृत किया और सुधारा है।

किंडलबर्गर और हैरिक की परिभाषा–किंडलबर्गर और हैरिक के अनुसार आर्थिक विश्लेषण में कभी-कभी 'वृद्धि' और 'विकास' को पर्यायवाची के रूप में प्रयुक्त किया जाता है। अक्सर ऐसा प्रयोग मान्य है लेकिन जहाँ दोनों धारणाएं प्रयुक्त की जाती हैं वहां विशेषतया अलग अर्थ लिया जाता है। स्पष्ट और अस्पष्ट रूप से सामान्य तौर से इनका प्रयोग इस प्रकार से है। ''आर्थिक वृद्धि का मतलब अधिक उत्पादन है जबकि आर्थिक विकास का अर्थ है अधिक उत्पादन तथा तकनीकी और संस्थानिक व्यवस्थाओं में परिवर्तन जिनके द्वारा यह उत्पादित और वितरित होता है।''

निष्कर्ष (Conclusion)–अत: आर्थिक वृद्धि का संबंध देश की प्रति व्यक्ति आय या उत्पादन में एक मात्रात्मक निरंतर वृद्धि से है जो कि उसकी श्रम शक्ति, उपभोग, पूंजी और व्यापार की मात्रा में प्रसार के साथ होती है। दूसरी ओर, आर्थिक विकास एक विस्तृत धारणा है। यह आर्थिक आवश्यकताओं, वस्तुओं, प्रेरणाओं और संस्थाओं में गुणात्मक परिवर्तनों से संबंधित है। यह प्रौद्योगिकी और संरचनात्मक परिवर्तनों जैसे वृद्धि के अंतर्निहित निर्धारकों का वर्णन करता है। विकास में वृद्धि और ह्रास दोनों सम्मिलित होते हैं। एक अर्थव्यवस्था वृद्धि कर सकती है परन्तु यह विकास नहीं कर सकती क्योंकि प्रौद्योगिकी और संरचनात्मक परिवर्तनों के अभाव के कारण गरीबी, बेरोजगारी और असमानताएं निरंतर विद्यमान रहती हैं परन्तु प्रति व्यक्ति उत्पादन में वृद्धि में अभाव के कारण, विशेषकर जब जनसंख्या तीव्रता से बढ़ रही है, तो आर्थिक वृद्धि के बिना विकास के बारे में सोचना कठिन है।

नोट

टास्क ''आर्थिक विकास में आर्थिक संवृद्धि के अतिरिक्त कुछ और निहित है।'' बताइये।

1.2 आर्थिक वृद्धि एवं विकास की विशेषताएँ (Characteristic of Economic Growth and Development)

आर्थिक विकास की विभिन्न परिभाषाओं का विश्लेषण करने पर इसकी पाँच प्रमुख विशेषताएँ स्पष्ट होती हैं:

(1) **एक प्रक्रिया** (A Process)–आर्थिक विकास एक प्रक्रिया है। प्रक्रिया से आशय अर्थव्यवस्था में संरचनात्मक तथा संस्थागत परिवर्तनों से होता है। इन परिवर्तनों के कारण ही अर्थव्यवस्था में उत्पादन के साधनों की पूर्ति तथा वस्तुओं की माँग-संरचना में परिवर्तन होता है।

साधनों की पूर्ति में परिवर्तन से अर्थ जनसंख्या, उत्पादन-साधन, पूँजी, उत्पादन तकनीक व अन्य संस्थागत परिवर्तनों से है। इसी प्रकार वस्तु सम्बन्धी माँग में परिवर्तन से अर्थ जनता की आय की रुचियों में परिवर्तन से है। जैसे-जैसे किसी देश के आर्थिक विकास की प्रक्रिया आगे बढ़ती जाती है, वैसे-वैसे माँग एवं पूर्ति के स्वरूप में अनेक प्रकार के परिवर्तन होते जाते हैं। एक परिवर्तन दूसरे परिवर्तन को जन्म देता है तथा एक आर्थिक प्रक्रिया दूसरी क्रिया को गतिशील बनाती है।

(2) **प्रति व्यक्ति वास्तविक आय में वृद्धि** (Increase in Per Capita Income)–आर्थिक विकास का उद्देश्य प्रति व्यक्ति आय में होने वाली वृद्धि है। प्रति व्यक्ति आय का अनुमान राष्ट्रीय आय को जनसंख्या से भाग देने पर लगाया जा सकता है:

$$\text{प्रति व्यक्ति आय (Per Capita Income)} = \frac{\text{राष्ट्रीय आय (National Income)}}{\text{जनसंख्या (Population)}}$$

वस्तुत: केवल राष्ट्रीय आय में होने वाली वृद्धि आर्थिक विकास का प्रतीक नहीं है। इसका कारण यह है कि यदि जनसंख्या में होने वाली वृद्धि दर राष्ट्रीय आय में होने वाली वृद्धि दर की तुलना में अधिक होगी तो प्रति व्यक्ति आय बढ़ने के स्थान पर कम हो जायेगी। अत: आर्थिक विकास का अनुमान प्रति व्यक्ति आय में होने वाली वृद्धि के आधार पर लगाया जा सकता है।

आर्थिक विकास की विशेषताएँ

1. एक प्रक्रिया
2. प्रति व्यक्ति वास्तविक आय में वृद्धि
3. दीर्घकालीन सतत्! वृद्धि
4. निर्धनता तथा असमानता में वृद्धि नहीं होनी चाहिए
5. सामाजिक, सांस्कृतिक, संस्थात्मक एवं आर्थिक परिवर्तन

वास्तविक आय से अभिप्राय किसी देश की मौद्रिक किसी देश की आय का स्थिर कीमतों पर लगाये जाने वाले अनुमान से है। इसकी गणना निम्न सूत्र से की जाती है:

$$\text{वास्तविक आय (R)} = \frac{\text{मौद्रिक आय (Y)}}{\text{कीमत स्तर (P)}}$$

इसका आशय यह हुआ कि मौद्रिक आय में होने वाली वृद्धि आर्थिक विकास का वास्तविक सूचक नहीं है।

(3) **दीर्घकालीन सतत् वृद्धि** (Long-term Continuous Increase)–आर्थिक विकास की परिभाषा में एक और स्मरणीय बात यह है कि **शुद्ध आय में निरन्तर वृद्धि होनी चाहिए।** अल्पकाल में आर्थिक क्रिया के एकाएक बढ़ जाने से जैसा कि अच्छी फसल या ऐसी ही अन्य लघुकालीन परिस्थिति के कारण प्रति व्यक्ति आय में होने वाली अस्थायी वृद्धि को आर्थिक विकास नहीं समझा जाना चाहिए।

नोट

(4) **निर्धनता तथा असमानता में वृद्धि नहीं होनी चाहिए** (Poverty and Inequality of Income should not Increase)–आर्थिक विकास की स्थिति में प्रति व्यक्ति वास्तविक आय में इस प्रकार वृद्धि होनी चाहिए कि निर्धनता रेखा से नीचे लोगों की संख्या में वृद्धि नहीं होनी चाहिए। इसके साथ-साथ आय के वितरण की असमानता में भी वृद्धि नहीं होनी चाहिए। अत: वास्तविक आय में वृद्धि के साथ-साथ उसका नया पुनर्वितरण भी आर्थिक विकास के लिए आवश्यक है।

(5) **सामाजिक, सांस्कृतिक, संस्थात्मक एवं आर्थिक परिवर्तन** (Social, Cultural, Institutional and Economic Changes)–आर्थिक विकास में न केवल आर्थिक परिवर्तनों का समावेश होता है बल्कि इसमें सामाजिक, सांस्कृतिक, संस्थापक परिवर्तन भी सम्मिलित किये जाते हैं।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

1. निम्नलिखित कथनों में सत्य/असत्य की पहचान करें–

1. विभिन्न अर्थशास्त्रियों ने आर्थिक विकास और वृद्धि को अलग-लग ढंग से प्रयुक्त किया है।
2. आर्थिक विकास में केवल आर्थिक परिवर्तनों का समावेश होता है।
3. आर्थिक विकास का उद्देश्य प्रति व्यक्ति आय में होने वाली वृद्धि से है।
4. केवल राष्ट्रीय आय में होने वाली वृद्धि ही आर्थिक विकास का प्रतीक है।
5. मौद्रिक आय में होने वाली वृद्धि आर्थिक वृद्धि का वास्तविक सूचक है।

1.3 वृद्धि और विकास: तुलना एवं अन्तर (Growth and Development : Comparisons and Difference)

एक लम्बे समय तक 'आर्थिक विकास' शब्द का प्रयोग आर्थिक संवृद्धि (Economic Growth), आर्थिक प्रगति (Economic Progress), आर्थिक कल्याण (Economic Welfare) तथा दीर्घकालीन परिवर्तन (Secular Change) शब्दों में समानार्थी शब्दों के रूप में प्रयोग किया जाता रहा है। शुम्पीटर ने अपनी पुस्तक *'The Theory of Economic Development'* जिसका प्रकाशन सन् 1911 में हुआ, **आर्थिक वृद्धि** तथा **आर्थिक विकास** इन दोनों शब्दों में अन्तर स्पष्ट किया है।

आर्थिक वृद्धि (Economic Growth) से हमारा अभिप्राय राष्ट्रीय आय के विस्तार से है। अत: आर्थिक संवृद्धि में केवल इस बात का ध्यान दिया जाता है कि क्या किसी कालावधि में इसके पहले की कालावधि की तुलना में मात्रा की दृष्टि से अधिक उत्पादन हो रहा है या नहीं। अन्य शब्दों में, **आर्थिक वृद्धि** एक परिमाणात्मक संकल्पना (Quantitative Concept) है। **प्रो. चार्ल्स किण्डलबर्गर** (Charles P. Kindleberger) के अनुसार ''आर्थिक संवृद्धि का अर्थ अधिक उत्पादन से है।''

इस प्रकार आर्थिक संवृद्धि एक **संकुचित अवधारणा** है जिसके अन्तर्गत केवल यह देखा जाता है कि देश के कुल उत्पादन या प्रति व्यक्ति उत्पादन में समय के साथ-साथ कितनी वृद्धि हुई है, जबकि अर्थव्यवस्था के आर्थिक व सामाजिक ढाँचे में कोई परिवर्तन नहीं हुआ हो। उदाहरण के लिए यदि एक देश की राष्ट्रीय आय और प्रति व्यक्ति आय के स्तर में वृद्धि होती है तो इसे आर्थिक संवृद्धि कहा जायेगा। यह सम्भव है कि किसी देश में राष्ट्रीय आय में वृद्धि तो हो लेकिन अर्थव्यवस्था का कोई विकास न हो। **रॉबर्ट क्लॉवर** (Robert Clover) ने लाइबीरिया के बारे में जाँच की है और वह इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि वहाँ विदेशी फर्मों को रियायतों की बदौलत निर्यात में भारी वृद्धि हुई है। जिसके फलस्वरूप वहाँ की राष्ट्रीय आय में भी वृद्धि हुई है लेकिन इससे दूसरे आर्थिक क्षेत्रों में कोई पूरक विकास नहीं हुआ है। इसके अलावा न ही कोई ढाँचागत या संस्थागत परिवर्तन हुए हैं। देश में होने वाली आर्थिक संवृद्धि का फायदा सभी वर्गों को नहीं हुआ है, इसे रॉबर्ट क्लॉवर **बिना विकास की वृद्धि** कहता है।

संक्षेप में, ''आर्थिक वृद्धि का अर्थ केवल उत्पादन में वृद्धि से है, जबकि आर्थिक विकास का अर्थ अधिक उत्पादन, नवीन तकनीक एवं संस्थागत सुधारों के समन्वय से है।''

नोट

उपर्युक्त विवेचना से आर्थिक संवृद्धि की निम्नलिखित विशेषताओं का पता चलता है :

(1) आर्थिक संवृद्धि का सम्बन्ध **राष्ट्रीय आय** या **प्रति व्यक्ति आय** में वृद्धि से है।

(2) आर्थिक संवृद्धि **सतत् प्रकृति** (Continuous Nature) की होती है क्योंकि यह स्वाभाविक एवं स्व-स्फूर्ति (Natural and Self-generation) वाली होती है।

(3) आर्थिक संवृद्धि एकपक्षीय है अर्थात् केवल राष्ट्रीय आय तथा प्रति व्यक्ति आय में होने वाली वृद्धि से सम्बन्धित है, उत्पादन संरचना में होने वाले परिवर्तनों से नहीं।

(4) आर्थिक संवृद्धि एक संख्यात्मक या परिमाणात्क संकल्पना है।

(5) इसमें **नवीन तकनीक एवं संस्थागत सुधारों** का अभाव रहता है।

(6) आर्थिक संवृद्धि की दर धनात्मक के साथ-साथ कभी-कभी **ऋणात्मक** भी हो सकती है।

(7) आर्थिक संवृद्धि की धारणा आर्थिक दृष्टि से ऐसे **उन्नत देशों** के लिए उपयुक्त है जहाँ पर संसाधन पर्याप्त और विकसित है।

नोट्स आर्थिक विकास एक सापेक्षिक शब्द है। इसका संबंध एक समय विशेष से न होकर दीर्घकालीन परिवर्तनों से होता है।

सारणी–1 आर्थिक वृद्धि एवं आर्थिक विकास में अन्तर

अन्तर का आधार (Basis for Difference)	आर्थिक वृद्धि (Economic Growth)	आर्थिक विकास (Economic Development)
(1) **प्रकृति**	(*i*) आर्थिक वृद्धि स्वाभाविक क्रमिक व स्थिर गति वाला परिवर्तन होता है।	(*i*) आर्थिक विकास प्रेरित एवं औसतन गति वाला परिवर्तन होता है।
	(*ii*) इसमें केवल उत्पादन में वृद्धि आवश्यक है।	(*ii*) इसमें उत्पादन में वृद्धि के साथ-साथ **तकनीकी एवं संस्थागत** परिवर्तन का होना आवश्यक है।
(2) **सामाजिक न्याय**	आर्थिक वृद्धि के साथ-साथ सामाजिक न्याय आवश्यक नहीं है।	आर्थिक विकास में उत्पादन एवं आय में वृद्धि के साथ-साथ सामाजिक न्याय भी आवश्यक होता है।
(3) **पूर्व-निर्धारित लक्ष्य**	आर्थिक वृद्धि में विशिष्ट उद्देश्य एवं लक्ष्य पूर्व-निर्धारित नहीं होते हैं।	आर्थिक विकास में उद्देश्य व लक्ष्य पूर्व-निर्धारित होते हैं जिनके अनुसार अर्थव्यवस्था को निर्देश मिलते हैं।
(4) **धनात्मक एवं ऋणात्मक**	आर्थिक वृद्धि की दर धनात्मक के साथ-साथ कभी-कभी ऋणात्मक भी हो सकती है।	आर्थिक विकास की कल्पना सामान्यत: धनात्मक वृद्धि के रूप में होती है।
(5) **देश**	आर्थिक वृद्धि को प्राय: विकसित देशों के सन्दर्भ में प्रयुक्त किया जाता है	आर्थिक विकास को प्राय: अर्द्ध-विकसित देशों के सन्दर्भ में प्रयुक्त किया जाता है।

नोट

(6) **अन्य अन्तर**	(*i*) इसमें किसी नवीनता का सृजन नहीं होता है।	(*i*) इसमें विकास की नई शक्तियां उत्पन्न की जाती हैं।
	(*ii*) इसमें साम्य की दिशा में कोई आधारभूत परिवर्तन नहीं होता है।	(*ii*) इसमें प्रचलित साम्य में निरन्तर सुधार लाने के प्रयास किये जाते हैं।
	(*iii*) यह संख्यात्मक है।	(*iii*) यह गुणात्मक है।
	(*iv*) यह नियमित घटनाओं का परिणाम है।	(*iv*) यह उन्नत करने की प्रबल इच्छा, सृजनात्मक शक्तियाँ एवं क्रियाशीलता का परिणाम है।
	(*v*) यह **स्थैतिक** साम्य की दशा है।	(*v*) यह **गत्यात्मक** साम्य की दशा है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

2. रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the Blanks)

1. आर्थिक वृद्धि में नवीन ..... तथा संस्थागत सुधारों का अभाव है।
2. आर्थिक वृद्धि से अभिप्राय ..... के विस्तार से है।
3. ..... के अनुसार, ''आर्थिक वृद्धि का अर्थ अधिक उत्पादन से है।
4. आर्थिक वृद्धि ..... है।
5. आर्थिक वृद्धि को ..... देशों के सन्दर्भ में प्रयुक्त किया जाता है।

1.4 आर्थिक वृद्धि एव विकास की माप (Measurement of Economic Growth and Development)

आर्थिक विकास एक सापेक्षिक शब्द है तथा इसका सम्बन्ध एक समय विशेष से न होकर दीर्घकालीन परिवर्तनों से है जिसके कारण आर्थिक विकास का एक निश्चित मापदण्ड देना अत्यन्त कठिन है। यही कारण है कि आर्थिक विकास के मापदण्ड के विषय में अर्थशास्त्रियों के विचारों में विभिन्नता रही है।

आर्थिक विकास के मापदण्ड के सम्बन्ध में प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के विचार और आधुनिक अर्थशास्त्रियों के विचार अलग-अलग हैं जैसा कि निम्नलिखित विवरण से स्पष्ट हो जायेगा।

(1) प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के विचार (Views of Classicial Economists)

विभिन्न प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के आर्थिक विकास के मापदण्ड के सम्बन्ध में विचार निम्न प्रकार हैं :

(1) **वाणिज्यवादी अर्थशास्त्रियों** ने उपलब्ध सोना-चाँदी की मात्रा तथा विदेशी व्यापार की मात्रा को आर्थिक विकास का मापदण्ड माना है, जबकि इस विचारधारा की सार्थकता न थी, न है।

(2) **एडम स्मिथ** एवं समकालीन अर्थशास्त्रियों ने शुद्ध राष्ट्रीय उत्पादन की मात्रा का अधिक होना ही आर्थिक विकास माना है।

(3) **कार्ल मार्क्स** अधिकतम सामाजिक कल्याण का आधार समाजवाद अथवा साम्यवाद को मानता है, इसलिए मार्क्स के अनुसार समाजवाद ही आर्थिक विकास का मापदण्ड है।

(4) **प्रो. जे. मिल** ने तो सहकारिता को ही आर्थिक विकास का मापदण्ड माना है।

प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों द्वारा सुझाये गये मापदण्ड एकाकी थे और उनका कोई वैज्ञानिक आधार नहीं था।

नोट

(2) आधुनिक अर्थशास्त्रियों के विचार
(Views of Modern Economists)

आधुनिक अर्थशास्त्रियों ने आर्थिक विकास के लिए उत्पादन के साथ-साथ वितरण को भी महत्व दिया। आधुनिक अर्थशास्त्रियों ने आर्थिक विकास के लिए किसी एक तत्व को मापदण्ड नहीं माना। उनकी दृष्टि से आर्थिक विकास के लिए सभी आवश्यक तत्वों का एक महत्वपूर्ण स्थान है। इन सब तत्वों के परिणामस्वरूप ही किसी देश में आर्थिक विकास होता है। आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार आर्थिक विकास के कुछ प्रमुख मापदण्ड अग्र प्रकार हैं :

1. **राष्ट्रीय आय** (National Income)–आर्थिक विकास का माप करने के लिए हमें देश की राष्ट्रीय आय को देखना पड़ता है। किसी देश में एक वर्ष के अन्दर पैदा की गयी समस्त वस्तुओं एवं सेवाओं के मौद्रिक मूल्य को कुल राष्ट्रीय उत्पादन कहते हैं परन्तु वस्तुओं एवं सेवाओं के उत्पादन के लिए जिन उपकरणों का प्रयोग किया जाता है, उनमें घिसावट या मूल्य-ह्रास होता है। अत: यदि कुल राष्ट्रीय उत्पादन में से **सम्पत्ति की घिसावट** का मूल्य घटा दिया जाय तो शेष शुद्ध राष्ट्रीय उत्पादन होगा। यह कुल **राष्ट्रीय उत्पादन आर्थिक विकास की उचित कसौटी नहीं है** क्योंकि कुल राष्ट्रीय उत्पादन में सम्पत्ति की प्रतिस्थापना पर ध्यान नहीं दिया जाता है। **शुद्ध राष्ट्रीय उत्पादन या आय ही आर्थिक विकास का मापदण्ड है।** यदि किसी राष्ट्र में शुद्ध राष्ट्रीय उत्पादन बढ़ रहा है तो वह उसकी बढ़ती हुई राष्ट्रीय आय व आर्थिक विकास का संकेतक है परन्तु यह वृद्धि निरन्तर व स्थाई होनी चाहिए।

आधुनिक अर्थशास्त्रियों के विचार

1. राष्ट्रीय आय
2. प्रति व्यक्ति आय
3. आर्थिक कल्याण
4. आर्थिक विकास के मापक निर्देशांक :
   - (*i*) सामाजिक अथवा मूलभूत आवश्यकता सूचक
   - (*ii*) क्रयशक्ति समता सूचकांक
   - (*iii*) मानव विकास सूचकांक
   - (*iv*) अन्य निर्देशांक

इसी तथ्य को रेखाचित्र 1.1 द्वारा स्पष्ट किया गया है।

चित्र से स्पष्ट है कि पाँचवें वर्ष तक A देश B देश की तुलना में धनी देश है। पर आरम्भ से ही B देश में राष्ट्रीय आय की वृद्धि दर A देश की अपेक्षा अधिक है। फलत: पाँचवें वर्ष में पहुँचते-पहुँचते B देश की आय A देश के बराबर हो जाती है और उसके बाद B देश A देश की तुलना में अधिक धनी हो जाता है।

सीमाएँ (Limitations)–राष्ट्रीय आय को आर्थिक विकास के मापन के एक महत्वपूर्ण मापदण्ड के रूप में स्वीकार किया गया है परन्तु इसे सन्तोषजनक नहीं माना जाता है क्योंकि राष्ट्रीय आय की गणना करने में बहुत-सी कठिनाइयाँ आती हैं। जैसे–

(*i*) राष्ट्रीय आय सदैव मुद्रा में ही मापी जाती है परन्तु बहुत-सी वस्तुएँ एवं सेवाएँ ऐसी होती हैं जिनका मुद्रा में मूल्यांकन करना कठिन होता है।

(*ii*) राष्ट्रीय आय की गणना करने में किसी वस्तु या सेवा को कई बार गिनने की आशंका बनी रहती है।

(*iii*) राष्ट्रीय आय के माप में हस्तान्तरण भुगतान, जैसे– पेंशन, बेरोजगारी भत्ता आदि को सम्मिलित करने में कठिनाई उत्पन्न होती है।

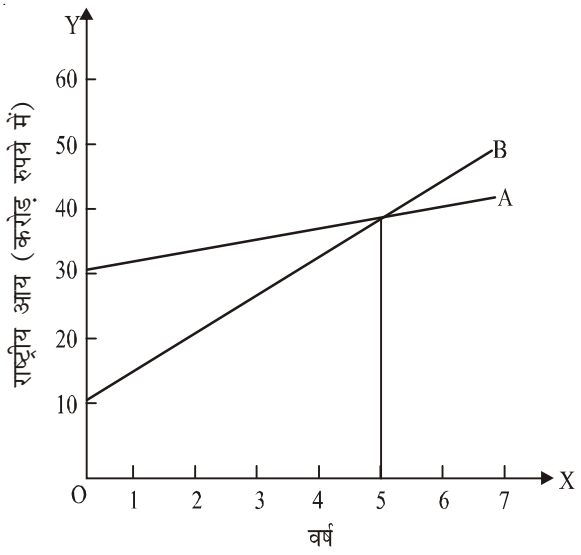

चित्र 1

नोट

(*iv*) राष्ट्रीय आय की परिगणना में बहुत-सी सार्वजनिक सेवाएँ, जैसे–पुलिस व सैनिक सेवाएँ भी ली जाती हैं जिनका ठीक-ठीक हिसाब लगाना कठिन होता है।

(*v*) पूँजीगत लाभ व हानियों को भी राष्ट्रीय आय में आगणन करने में कठिनाई आती है।

2. **प्रति व्यक्ति आय–**कुछ अर्थशास्त्रियों का मत है कि वास्तविक राष्ट्रीय आय को विकास का एकमात्र द्योतक नहीं माना जा सकता। उनका कहना है कि राष्ट्रीय आय में वृद्धि होने से यह सम्भव है कि जन-समूह की निर्धनता बढ़ जाये। ऐसा उस समय होता है जब जनसंख्या में वृद्धि की गति राष्ट्रीय आय में वृद्धि की गति से अधिक तेजी से होती है क्योंकि वास्तविक राष्ट्रीय आय की वृद्धि का अर्थ यह नहीं है कि प्रति व्यक्ति आय बढ़ रही है। हो सकता है कि लोग बचत की दर बढ़ा रहे हों या फिर सरकार स्वयं इस बढ़ी हुई आय को सैनिक अथवा अन्य उद्देश्यों के लिए इस्तेमाल कर रही हो। वास्तविक राष्ट्रीय आय में वृद्धि के बावजूद जनसाधारण की गरीबी का दूसरा कारण यह भी हो सकता है कि बढ़ी हुई आय बहुसंख्यक गरीबों के पास जाने की बजाय मुट्ठी भर अमीरों के हाथ में जा रही हो।

आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार अर्द्ध-विकसित देशों की प्रमुख समस्या वहाँ के निवासियों के जीवन-स्तर में सुधार की होती है और जीवन-स्तर में सुधार तभी सम्भव है, जबकि प्रति व्यक्ति आय बढ़े। अत: उनके मत में आर्थिक विकास का सही **मापदण्ड प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि है, न कि राष्ट्रीय आय** में वृद्धि।

क्या आप जानते हैं

फाई रैनिस तथा स्टुअर्ट ने देशों का अध्ययन किया था जिसमें ताईवान, दक्षिण कोरिया तथा इण्डोनेशिया ने अपनी मूलभूत आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए औसत से अधिक विकास किया। ब्राजील ने मात्र न्यूनतम मूलभूत आवश्यकताओं को पूरा किया और आवश्यकता से अधिक विकास किया जबकि सोमानी, क्यूबा, मिस्र तथा श्रीलंका ने मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति बहुत अच्छी तरह की लेकिन आर्थिक विकास औसत से कम था।

प्रति व्यक्ति आय के पक्ष में तर्क–प्रति व्यक्ति आय के पक्ष में निम्न तर्क दिये जा सकते हैं :

(*a*) **जीवन-स्तर में सुधार** (Improvement in Living Standard)–आर्थिक विकास में वर्तमान रुचि का मुख्य कारण अर्द्ध-विकसित देशों के निवासियों का जीवन-स्तर सुधारना है। इसके लिए प्रति व्यक्ति आय का बढ़ना आवश्यक है।

(*b*) **आर्थिक कल्याण में वृद्धि** (Increase in Economic Welfare)– पिछले कुछ वर्षों में जनसंख्या, विशेषकर एशिया के देशों में अत्यधिक बढ़ी है। यदि हम इसकी उपेक्षा कर देंगे तो आर्थिक कल्याण की वृद्धि का कोई अर्थ नहीं होगा। साथ ही विगत वर्षों में जनसंख्या और प्रति व्यक्ति आय दोनों में ही वृद्धि हुई है। इसका यह अर्थ हुआ कि राष्ट्रीय आय में वृद्धि, प्रति व्यक्ति आय की अपेक्षा अधिक रही है।

(*c*) **प्रति व्यक्ति उत्पादन में वृद्धि** (Increase in Per Capital Production)– आर्थिक विकास के लिए प्रति व्यक्ति उत्पादन बढ़ना अनिवार्य है और इस बढ़ती हुई उत्पादिता का सही सूचक बढ़ती हुई प्रति व्यक्ति आय है, न कि राष्ट्रीय आय।

प्रति व्यक्ति आय के विपक्ष में तर्क– आर्थिक विकास के मापदण्ड के रूप में प्रति व्यक्ति आय के विपक्ष में निम्नलिखित तर्क दिये जा सकते हैं :

(*a*) प्रति व्यक्ति आय के बढ़ने के बावजूद प्रति व्यक्ति उपभोग की मात्रा कम होना।

(*b*) एच्छिक रूप से अथवा अनिवार्य रूप से बचतों का अधिक किया जाना।

(*c*) धन का असमान वितरण होना इत्यादि। अत: आर्थिक विकास का यह सूचक भी मानव-जाति के अन्तिम लक्ष्य, आर्थिक कल्याण के प्रति तटस्थ बना रहता है।

3. **आर्थिक कल्याण** (Economic Welfare)–कुछ अर्थशास्त्रियों ने आर्थिक कल्याण को आर्थिक विकास का उचित मापदण्ड माना है। उनके अनुसार ऐसी प्रक्रिया को आर्थिक विकास माना जाता है जिससे प्रति व्यक्ति वास्तविक आय व उपभोग में वृद्धि होती है और उसके साथ-साथ आय की असमानताओं का अन्तर कम होता है तथा देश के निवासियों

नोट

को अधिकतम सन्तुष्टि मिलती है। **ओकन** और **रिचर्डसन** के शब्दों में, आर्थिक विकास ''भौतिक समृद्धि में ऐसा अनवरत् दीर्घकालीन सुधार है जोकि वस्तुओं और सेवाओं के बढ़ते हुए प्रवाह में प्रतिबिम्बित समझा जा सकता है। संक्षेप में, **जीवन स्तर मुख्यतः उपभोग के स्तर पर निर्भर करता है। इसलिए देश में बढ़ता हुआ उपभोग व जीवन स्तर ही आर्थिक विकास का अभिसूचक है।**

सीमाएँ (Limitations)– इस मापदण्ड की प्रमुख सीमाएँ निम्नलिखित हैं :

(*a*) यह आवश्यक नहीं है कि वास्तविक राष्ट्रीय आय में वृद्धि का अर्थ आर्थिक कल्याण में सुधार ही हो क्योंकि हो सकता है कि वास्तविक राष्ट्रीय आय बढ़ने पर भी उसका वितरण न्यायपूर्ण नहीं है जिसके फलस्वरूप गरीबों के उपभोग स्तर में किसी प्रकार की वृद्धि न हो।

(*b*) उपभोग तथा जीवन स्तर अत्यन्त भ्रामक शब्द हैं जिनकी निरपेक्ष माप सम्भव नहीं है।

(*c*) कल्याण के दृष्टिकोण से हमें केवल यह नहीं देखना चाहिए कि क्या उत्पादित किया जाता है बल्कि यह भी कि उसका उत्पादन कैसे होता है। वास्तविक राष्ट्रीय उत्पादन के बढ़ने से सम्भव है कि अर्थव्यवस्था में वास्तविक लागतों (पीड़ा और त्याग) और सामाजिक लागतों में वृद्धि हुई हो। उदाहरणार्थ, उत्पादन में वृद्धि अधिक घण्टे तथा श्रम-शक्ति की कार्यकारी अवस्थाओं में गिरावट के कारण हुई हो तो ऐसी स्थिति में उत्पादन बढ़ने पर भी आर्थिक कल्याण में वृद्धि नहीं होगी।

4. **आर्थिक विकास के मापक निर्देशांक** (Economic Development Measurement Indices)– विभिन्न अर्थशास्त्रियों, अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं, जैसे– विश्व आर्थिक मंच (World Economic Forum), विश्व बैंक (World Bank) आदि ने विभिन्न सामाजिक व आर्थिक निर्देशांकों के द्वारा विभिन्न देशों के आर्थिक विकास के स्तर को मापने का प्रयास किया है। जैसे :

(*i*) सामाजिक अथवा मूलभूत आवश्यकता सूचक।

(*ii*) क्रय शक्ति समता सूचक।

(*iii*) मानव विकास सूचक आदि।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

3. सही विकल्प चुनिए– (Choose the correct option)

1. आर्थिक विकास के मापदण्ड के संबंध में प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के विचार और आधुनिक अर्थशास्त्रियों के विचार–
   (क) एक हैं (ख) अलग-अलग हैं
   (ग) क और ख दोनों (घ) इनमें से कोई नहीं
2. समाजवाद ही आर्थिक विकास का मापदण्ड है। किसने कहा–
   (क) वाणिज्यवादी अर्थशास्त्रियों ने (ख) एडम स्मिथ ने
   (ग) कार्ल मार्क्स ने (घ) प्रो. जे. मिल ने
3. आर्थिक विकास के लिए अनिवार्य है
   (क) प्रतिव्यक्ति आय (ख) राष्ट्रीय आय
   (ग) आर्थिक कल्याण (घ) इनमें से कोई नहीं।
4. आर्थिक विकास के मापक निर्देशांक हैं
   (क) मानव विकास सूचकांक (ख) आर्थिक कल्याण
   (ग) राष्ट्रीय आय (घ) इनमें से कोई नहीं।

नोट

1.5 सारांश (Summary)

निष्कर्ष (Conclusion)–अत: आर्थिक वृद्धि का संबंध देश की प्रति व्यक्ति आय या उत्पादन में एक मात्रात्मक निरंतर वृद्धि से है जो कि उसकी श्रम शक्ति, उपभोग, पूंजी और व्यापार की मात्रा में प्रसार के साथ होती है। दूसरी ओर, आर्थिक विकास एक विस्तृत धारणा है। यह आर्थिक आवश्यकताओं, वस्तुओं, प्रेरणाओं और संस्थाओं में गुणात्मक परिवर्तनों से संबंधित है।

आर्थिक विकास एक प्रक्रिया है। प्रक्रिया से आशय अर्थव्यवस्था में संरचनात्मक तथा संस्थागत परिवर्तनों से होता है। इन परिवर्तनों के कारण ही अर्थव्यवस्था में उत्पादन के साधनों की पूर्ति तथा वस्तुओं की माँग-संरचना में परिवर्तन होता है।

केवल राष्ट्रीय आय में होने वाली वृद्धि आर्थिक विकास का प्रतीक नहीं है। इसका कारण यह है कि यदि जनसंख्या में होने वाली वृद्धि दर राष्ट्रीय आय में होने वाली वृद्धि दर की तुलना में अधिक होगी तो प्रति व्यक्ति आय बढ़ने के स्थान पर कम हो जायेगी। अत: आर्थिक विकास का अनुमान प्रति व्यक्ति आय में होने वाली वृद्धि के आधार पर लगाया जा सकता है।

एक लम्बे समय तक 'आर्थिक विकास' शब्द का प्रयोग आर्थिक संवृद्धि (Economic Growth), आर्थिक प्रगति (Economic Progress), आर्थिक कल्याण (Economic Welfare) तथा दीर्घकालीन परिवर्तन (Secular Change) शब्दों में समानार्थी शब्दों के रूप में प्रयोग किया जाता रहा है।

आर्थिक संवृद्धि एक **संकुचित अवधारणा** है जिसके अन्तर्गत केवल यह देखा जाता है कि देश के कुल उत्पादन या प्रति व्यक्ति उत्पादन में समय के साथ-साथ कितनी वृद्धि हुई है, जबकि अर्थव्यवस्था के आर्थिक व सामाजिक ढाँचे में कोई परिवर्तन नहीं हुआ हो।

''आर्थिक संवृद्धि का अर्थ केवल उत्पादन में वृद्धि से है, जबकि आर्थिक विकास का अर्थ अधिक उत्पादन, नवीन तकनीक एवं संस्थागत सुधारों के समन्वय से है।''

आर्थिक विकास एक सापेक्षिक शब्द है तथा इसका सम्बन्ध एक समय विशेष से न होकर दीर्घकालीन परिवर्तनों से है जिसके कारण आर्थिक विकास का एक निश्चित मापदण्ड देना अत्यन्त कठिन है। यही कारण है कि आर्थिक विकास के मापदण्ड के विषय में अर्थशास्त्रियों के विचारों में विभिन्नता रही है।

आधुनिक अर्थशास्त्रियों ने आर्थिक विकास के लिए उत्पादन के साथ-साथ वितरण को भी महत्व दिया। आधुनिक अर्थशास्त्रियों ने आर्थिक विकास के लिए किसी एक तत्व को मापदण्ड नहीं माना। उनकी दृष्टि से आर्थिक विकास के लिए सभी आवश्यक तत्वों का एक महत्वपूर्ण स्थान है। इन सब तत्वों के परिणामस्वरूप ही किसी देश में आर्थिक विकास होता है।

विभिन्न अर्थशास्त्रियों, अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं, जैसे– विश्व आर्थिक मंच (World Economic Forum), विश्व बैंक (World Bank) आदि ने विभिन्न सामाजिक व आर्थिक निर्देशांकों के द्वारा विभिन्न देशों के आर्थिक विकास के स्तर को मापने का प्रयास किया है। जैसे :

(*i*) सामाजिक अथवा मूलभूत आवश्यकता सूचक।

(*ii*) क्रय शक्ति समता सूचक।

(*iii*) मानव विकास सूचक आदि।

1.6 शब्दकोश (Keywords)

1. **गत्यात्मक–** गतिशील, गति वाला
2. **परिमाणात्मक–** परिमाणगत, परिमाण से संबंधित

3. **सूचकांक–** मूल्य बताने वाला आँकड़ा

नोट

1.7 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. आर्थिक विकास से आप क्या समझते हैं? प्रति व्यक्ति वास्तविक आय में वृद्धि कहाँ तक आर्थिक विकास का सन्तोषजनक माप प्रस्तुत करती है?
2. आर्थिक विकास तथा आर्थिक वृद्धि में अन्तर स्पष्ट कीजिए। क्या राष्ट्रीय आय विकास का सन्तोषजनक मापदण्ड है?
3. क्या आर्थिक वृद्धि के बिना आर्थिक विकास हो सकता है? स्पष्ट कीजिए।
4. आर्थिक वृद्धि और आर्थिक विकास में अन्तर स्पष्ट कीजिए। आर्थिक विकास को कैसे मापा जा सकता है?
5. आर्थिक विकास का अर्थ स्पष्ट कीजिए। आर्थिक विकास, आर्थिक प्रगति तथा आर्थिक वृद्धि में अंतर स्पष्ट कीजिए।

उत्तर: स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

1. 1. सत्य 2. असत्य 3. सत्य 4. असत्य 5. असत्य

2. 1. तकनीक 2. राष्ट्रीय आय 3. प्रो. चार्ल्स किण्डल बर्गर 4. एकपक्षीय 5. विकसित

3. 1. (ख) 2. (ग) 3. (क) 4. (क)

1.8 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. *वृद्धि एवं विकास का अर्थशास्त्र*: डॉ. पी. मिश्रा; साहित्य भवन पब्लिकेशन्स : आगरा
2. *विकास नियोजन एवं नीतियाँ*: वी. सी सिन्हा: साहित्य भवन पब्लिकेशन्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.) लि. रजिस्टर्ड कार्यालय नई दिल्ली
3. *विकास का अर्थशास्त्र एवं आयोजन*: डा. एस. एल. डिंगल: वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा. लि.

नोट

इकाई–2: आर्थिक वृद्धि के स्त्रोत (Sources of Economics Growth)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

2.1 आर्थिक वृद्धि के स्त्रोत (Sources of Economics Growth)

2.2 सारांश (Summary)

2.3 शब्दकोश (Keywords)

2.4 अभ्यास–प्रश्न (Review Questions)

2.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- आर्थिक वृद्धि के स्त्रोत को जानने में।

प्रस्तावना (Introduction)

सामान्यत: आर्थिक वृद्धि व आर्थिक विकास में कोई अन्तर नहीं माना जाता और दोनों शब्दों को एक–दूसरे के पर्यायवाची शब्द के रूप में प्रयोग किया जाता है। आर्थिक वृद्धि से शब्द का प्रयोग आर्थिक दृष्टि से विकसित राष्ट्रों के संबंध में किया जाता है जहाँ पर साधन ज्ञात और विकसित हैं जबकि विकास शब्द का प्रयोग उन अविकसित देशों के संबंध में है जहाँ अब तक प्रयोग न किये गये साधनों का उपयोग एवं विकास करने की संभावना हो।

2.1 आर्थिक वृद्धि के स्त्रोत (Sources of Economics Growth)

आर्थिक वृद्धि के निम्न दो स्त्रोत हैं–

(*i*) आंतरिक स्त्रोत (Internal Sources)

(*ii*) बाह्य स्त्रोत (External Sources)

स्त्रोत जुटाने का सम्बन्ध योजना के लिए वित्त व्यवस्था करने से है। वित्त, संसाधन जुटाने का उपकरण है। संसाधन जुटाव में वित्त के विविध आन्तरिक तथा बाह्य, अर्थात् देशीय और विदेशी, साधनों का अध्ययन किया जाता है। आर्थिक वृद्धि की प्रक्रिया में वस्तुओं एवं सेवाओं की पूर्तियों और माँगों में जब समायोजन नहीं पाये जाते तो वित्तीय साधनों द्वारा उनको सन्तुलन में लाने का प्रयत्न किया जाता है। यही कुसमायोजन स्फीति तथा भुगतान–शेष जैसी समस्याएँ उत्पन्न करते हैं। फिर, योजनाओं के भौतिक लक्ष्य पूरे करने के लिए भी पर्याप्त वित्तीय साधनों की आवश्यकताएँ होती है, जो कि विभिन्न साधनों के जुटाव से ही पूरी की जा सकती हैं। अल्पविकसित अर्थव्यवस्था में उपभोग कम करके तथा बचतें बढ़ा कर ही निवेश को प्रोत्साहित किया जा सकता है जिस पर आर्थिक वृद्धि निर्भर करती है।

नोट

(*i*) आन्तरिक स्त्रोत (Internal Sources)

आन्तरिक स्त्रोत में सामुदायिक बचतें, करों द्वारा साधन जुटाव, सार्वजनिक उधार, सार्वजनिक उद्यमों के लाभ, तथा घाटे की वित्त-व्यवस्था सम्मिलित होते हैं।

(*i*) बचतें (Savings): आन्तरिक संसाधनों के जुटाव में बचतें एक महत्वपूर्ण साधन हैं। एक अल्पविकसित अर्थव्यवस्था में बचत करने योग्य केवल तीन वर्ग होते हैं–भूमिपति, व्यापारी तथा मध्य आय वर्ग। लेकिन ये तीनों वर्ग अधिकतर विशिष्ट उपभोग, रीति-रिवाजों, भवन-निर्माण आदि पर अपनी बचतों को व्यय कर देते हैं।

बचतों का संग्रह करने के लिए सरकार को अनेक प्रकार के संगठित प्रयत्न करने चाहिए जिनसे बचतें बढ़ें। बचत प्रवृत्ति बढ़ाने के लिए प्रचार तथा सामाजिक शिक्षा के अतिरिक्त ऊँची ब्याज दर वाले सरकारी बॉन्ड, बचत सर्टिफिकेट, बोनस, उपहार स्कीमें, लाटरी, पुरस्कार आदि विधियाँ अपनाई जा सकती हैं। जनसाधारण में छोटी बचतों को प्रोत्साहित करने के लिए जीवन बीमा, अनिवार्य भविष्य निधि, यूनिट-ट्रस्ट, देहातों में बचत बैंक, चलते-फिरते बैंक खोलने चाहिए तथा बचतों को सहकारी समितियों के माध्यम से बढ़ावा देना चाहिए। ग्राम-बचतें जुटाने के लिए ग्राम-ऋणपत्र देहाती क्षेत्रों की विशिष्ट विकास परियोजनाओं के साथ जोड़े जाने चाहिए अर्थात् ग्राम-ऋणपत्रों से प्राप्त राशि को केवल ग्रामीण विकास परियोजनाओं पर ही खर्च करना चाहिए। इससे ग्रामीण अपने बचतों को ऐसे ऋणपत्रों पर लगायेंगे।

टास्क 'प्रतिभूतियों' से क्या तात्पर्य है?

(*ii*) कर (Taxes): साधन जुटाव में कर एक अत्यन्त प्रभावशाली साधन है। कर, उपभोग पर नियंत्रण करने, स्फीति को रोकने, बचत तथा निवेश को प्रोत्साहित करने, साधनों को सरकार को हस्तान्तरण करने, निवेश के ढाँचे को बदलने, आर्थिक असमानताओं को कम करने और आर्थिक अतिरेक को बढ़ाने तथा एकत्रित करने में सहायक होते हैं। आर्थिक अतिरेक दो प्रकार के होते हैं–कृषि अतिरेक, एवं औद्योगिक अतिरेक। कराधान द्वारा साधन में इन अतिरेकों को किस प्रकार एकत्रित किया जा सकता है उसका विवेचन हम नीचे करते हैं–

(*a*) कृषि अतिरेक (Agricultural Surplus)–आर्थिक विकास से जब देश के कृषि क्षेत्र में उत्पादन तथा उत्पादकता में वृद्धि होती है (जैसे कि भारत में हरित क्रान्ति से हुई है) तो **विक्रेय अतिरेक** बढ़ता है। जमींदारों, व्यापारियों और बिचौलियों की आदत इस अतिरेक को अनुत्पादक दिशाओं जैसे स्वर्ण, आभूषण, सट्टा क्रियाओं और विशिष्ट उपभोग में लगाने की होती है। इसलिए सरकार को चाहिए कि सिंचाई, निर्माण कार्य, बाढ़ नियंत्रण, सुधरी हुई कृषि सेवाएँ आदि विकास परियोजनाओं के लिए आरोही भूमिकर, कृषि आय कर तथा विशेष कर-निर्धारण जैसे जल कर, बिजली शुल्क आदि सुधार कर के माध्यम से इस अतिरेक को जुटाए। जापान के आर्थिक विकास में भूमि कर का 80 या 90% भाग साधन जुटाव का एक प्रमुख स्त्रोत रहा है। रूस और चीन में भी कृषि अतिरेकों को उपज के रूप में अधिकतम मात्रा में एकत्रित किया जाता रहा है।

(*b*) औद्योगिक अतिरेक (Industrial Surplus)–आर्थिक वृद्धि के साथ औद्योगिक लाभों की प्रतिशतता में भी वृद्धि होती है जिसे औद्योगिक अतिरेक कहा जाता है। **लुईस** के अनुसार लाभों की दर में वृद्धि करके बचतों को विकासशील देशों में 5% से बढ़ाकर 12% पर लाया जा सकता है। परन्तु ऐसा तभी सम्भव है यदि लाभों को अनुत्पादक कार्यों में न लगाकर पुन: निवेश में लगाया जाए। इसके लिए आवश्यक है कि अनुपार्जित आय (unearned income) पर भारी कर, यथा सम्पत्ति कर, उपहार कर, पूँजी लाभ कर, व्यय कर लगाए जाएँ। दूसरी ओर, अवतरित अतिरिक्त लाभों पर कर इतने ऊँचे नहीं होने चाहिए जिससे बचत तथा बचत पर प्रतिकूल प्रभाव पड़े। इंग्लैण्ड में 18वीं शताब्दी में और जापान में 20वीं शताब्दी के प्रारम्भ में औद्योगिक अतिरेक प्रमुख स्त्रोत था। लुईस के अनुसार, आर्थिक सहायता और कर छूट देकर, कच्चे माल और पूँजी-उपकरणों की उपयुक्त पूर्ति करके, प्रतियोगी वस्तुओं के आयात पर प्रतिबन्ध लगाकर, मजदूरी और श्रम-संगठनों को नियंत्रित करके, तथा उद्योगों की वस्तुओं को सरकार द्वारा क्रय करके लाभ बढ़ाए जा सकते हैं जो आगे साधन जुटाव में सहायक होते हैं।

नोट

प्रत्यक्ष करों के अतिरिक्त, अप्रत्यक्ष कर साधन जुटाव में अधिक महत्त्वपूर्ण योगदान देते हैं। अप्रत्यक्ष करों अथवा वस्तु-करों से अधिक राजस्व प्राप्त होते हैं क्योंकि सभी नागरिकों को इन करों का भुगतान करना पड़ता है। उदाहरणार्थ, माचिस पर थोड़े-से उत्पादन शुल्क को प्रत्येक व्यक्ति जो भी माचिस खरीदता है, देता है। परन्तु शुल्क का भार महसूस नहीं होता और न ही अधिकांश उपभोक्ताओं को उसका ज्ञान ही होता है क्योंकि यह कर लगाई गई वस्तु की कीमत में शामिल होता है। अप्रत्यक्ष करों का सर्वाधिक स्वीकृत नियम विलास वस्तुओं पर ऊँची और उपभोक्ता वस्तुओं पर नीची दरें रखना है।

नोट्स आजकल अप्रवासियों द्वारा विदेशी विनिमय प्राप्त करके तथा देश के उद्योगों में निवेश करके भी विदेशी पूँजी प्राप्त होती है जो भुगतान-शेष की समस्या को सुलझाने में काफी हद तक सहायक होती है।

(*iii*) सार्वजनिक उधार (Public Borrowing)

जनता से उधार लेना भी विकास के लिए साधन जुटाव का एक महत्त्वपूर्ण साधन है। यह स्रोत कराधान से अच्छा है। कराधान का अर्थ है बलकृत बचत, जबकि उधार ऐच्छिक है। करदाता कर देकर कभी प्रसन्न नहीं होता क्योंकि उसे कर के रूप में दी गई मुद्रा वापस मिलने की आशा नहीं होती। दूसरी ओर, उधारदाता अपनी मर्जी से सरकार को अपनी मुद्रा उधार देता है ताकि निश्चित अवधि के बाद उसे ब्याज सहित प्राप्त कर सके।

विकासशील अर्थव्यवस्था में सार्वजनिक उधार स्फीति विरोधी स्रोत का काम भी करता है, जब लोगों की अतिरेक मुद्रा सरकार के पास उधार के रूप में आ जाती है। सरकार को चाहिए कि उधारग्रहण नीति को अधिक आकर्षक बनाए ताकि छोटी बचतें अधिक मात्रा में इस ओर लगाई जा सकें। इसके लिए निम्नलिखित कदम उठाने चाहिए–

प्रथम, सरकार को चाहिए कि बचतों को अनुत्पादक दिशाओं में, जैसे स्वर्ण, आभूषण, भू-सम्पदा, तथा विलासिताओं पर खर्च होने से रोके। शिक्षा तथा प्रचार द्वारा बचतों को प्रोत्साहित करे।

दूसरे, बचतों को आकर्षित करने के लिए बचत बैंक, बीमा कम्पनियाँ, यूनिट-ट्रस्ट, सामाजिक सुरक्षा संस्थाओं की स्थापना करे।

तीसरे, एक सुसंगठित बिल बाजार स्थापित किया जाए जिसमें विविध प्रकार के सरकारी बॉन्ड एवं प्रतिभूतियों का विनिमय आसानी से किया जा सके। इन्हीं कारणों से भारत सरकार का उधार प्रोग्राम काफी सफल रहा है।

(*iv*) सार्वजनिक उद्यमों के लाभ (Profits of Public Enterprises)

केन्द्रीय एवं राज्य सरकारें सार्वजनिक उद्यम या लोक उद्योग स्थापित करके उनके द्वारा लाभ अर्जित करती हैं जो आर्थिक वृद्धि के लिए साधन जुटाने का साधन है। भारत, ब्राजील, कोलम्बिया, फिलिपीन्ज जैसे कई विकासशील देशों में निजी उद्यमों की तरह सार्वजनिक उद्यम लाभ-कीमत नीति पर चलाए जाते हैं। इस नीति के अनुसार ये पर्याप्त लाभ कमाते हैं जो राजस्व का एक महत्वपूर्ण स्रोत है। इन लाभों का कुछ भाग-पुनर्निवेश के लिए और कुछ अन्य परियोजनाओं पर राज्य द्वारा उपयोग किया जाता है। सार्वजनिक उद्यमों का लाभ के आधार पर संचालन करने से विदेशों से ऋण लेने तथा घाटे के वित्त-प्रबंधन की भी अधिक आवश्यकता नहीं पड़ती है। इस प्रकार, सार्वजनिक उद्यमों के लाभ आर्थिक वृद्धि के लिए साधन जुटाने में महत्वपूर्ण योगदान देते हैं।

(*v*) घाटे का वित्त प्रबंधन (Deficit Financing)

जब ऊपर वर्णित साधनों से पर्याप्त राजस्व प्राप्त न हो तो सरकार घाटे की वित्त-व्यवस्था को अपनाती है। भारतीय योजना आयोग के अनुसार घाटे के वित्त-प्रबंधन का प्रयोग बजट-घाटों के माध्यम से कुल राष्ट्रीय आय में होने वाली प्रत्यक्ष वृद्धि को प्रकट करने के लिए किया जाता है, चाहे वे घाटे राजस्व खाते में हों, चाहे पूँजी-खाते में। इस प्रकार की नीति का सार यह है कि सरकार राजस्व-प्राप्तियों की अपेक्षा अधिक व्यय करती है। इस घाटे को पूरा करने के

नोट

लिए सरकार या तो अपने संचित शेषों (accumulated balances) को काम में लाती है या देश के केन्द्रीय बैंक से उधार लेती है या नए करेंसी नोट जारी करती है।

विकास के लिए साधन जुटाने के रूप में घाटे की वित्त–व्यवस्था को छिपी हुई या अदृश्य करनीति माना जाता है जिसका अत्यधिक महत्व होता है। घाटे के वित्त–प्रबंधन द्वारा जब सरकार अधिक मुद्रा जारी करती है तो उससे कीमतें बढ़ती हैं जो उपभोग को कम कर देती हैं और साधनों को चालू उपभोग से निवेश की ओर मोड़ देती हैं।

क्या आप जानते हैं सरकार घाटे को पूरा करने के लिए या तो अपने संचित शेषों को काम में लाती है या देश के केन्द्रिय बैंक से उधार लेती है या नए करेंसी नोट जारी करती है।

स्फीतिकारी वित्त बनाम कराधान (Inflationary Finance vs Taxation)

जैसा कि ऊपर वर्णित विवेचन से स्पष्ट होता है घाटे के वित्त–प्रबन्धन की नीति स्त्रोत के लिए सहायक हो सकती है जब तक अर्थव्यवस्था में कीमतों, मजदूरी, वस्तुओं की पूर्ति आदि पर नियंत्रण रहता है अन्यथा इससे स्फीति होना स्वाभाविक है। इसके विपरीत कई अर्थशास्त्री ऊँचे कर लगाने पर अधिक बल देते हैं। प्रत्यक्ष कर उपभोग को अवश्य कम करते हैं परन्तु उनका जनसाधरण पर प्रभाव नहीं पड़ता क्योंकि वे इनकी सीमा में नहीं आते। दूसरी ओर, अप्रत्यक्ष कर वस्तुओं की कीमतें बढ़ा कर स्फीतिकारी वित्त की तरह ही अर्थव्यवस्था पर कुप्रभाव डालते हैं। यद्यपि कराधान भी कीमतों में वृद्धि करता है फिर भी यह साधन–जुटाव के रूप में घाटे के वित्त–प्रबन्धन से श्रेष्ठ है। **प्रथम,** करों का कीमतों पर प्रभाव स्फीतिकारी वित्त से काफी कम होता है। **दूसरे,** सरकार करों पर तो नियंत्रण कर सकती है लेकिन मुद्रा पूर्ति पर नियंत्रण करना कठिन होता है। **तीसरे,** स्फीतिकारी वित्त के प्रभाव की अपेक्षा करों के प्रभाव को अधिक दक्षता के साथ नियंत्रित किया जा सकता है। **अन्तिम,** स्फीतिकारी वित्त का घरेलू लागतें बढ़ाने में करों की अपेक्षा अधिक प्रभाव होता है जिससे निर्यातों पर कुप्रभाव पड़ता है। प्रो. लुईस का यह मत है कि घाटे के वित्त–प्रबन्धन की नीति को प्रारंभ करना तो आसान है लेकिन उससे उत्पन्न स्फीति को नियंत्रित करना कठिन होता है। अत: करों में वृद्धि करके साधन जुटाना उचित है।

बाह्य साधन (External Sources)

आर्थिक वृद्धि के बाह्य स्त्रोत निम्नलिखित हैं–

(*i*) **आयात प्रतिस्थापन** (Import Substitution)–आयात प्रतिस्थापन से देश के अन्दर उन सभी वस्तुओं के उद्योगों को लगाना जिनका देश दूसरे देशों से आयात करता है। इस प्रकार औद्योगीकरण के कारण घरेलू बचत एवं निवेश की दर को बढ़ाना होता है। औद्योगीकरण के कारण निवेश की प्रक्रिया तीव्र होगी और अधिकतम लाभ प्राप्त होने से बचतों में भी सम्भावित वृद्धि होगी।

(*ii*) **निर्यात प्रोत्साहन** (Export Promotion)–आर्थिक वृद्धि के लिए घरेलू साधनों के साथ–साथ बाह्य साधनों की भी आवश्यकता होती है। ये वित्तीय साधन मुख्यत: विदेशी व्यापार और विदेशी पूँजी द्वारा प्राप्त होते हैं। विकासशील देशों की प्रमुख वस्तुएँ अधिकतर कच्चा माल होता है जिन्हें विकसित देशों को निर्यात करके मशीनरी, पूँजी पदार्थों तथा अर्द्धनिर्मित वस्तुओं से विनिमय किया जाता है। ऐसे देश निर्यात प्रोत्साहन की नीति अपना कर निर्यातों के परिमाण को बढ़ाकर भुगतान–शेष को संतुलित कर सकते हैं।

(*iii*) **विदेशी पूँजी** (Foreign Capital)–विदेशी पूँजी किसी देश में निजी निवेश अथवा सार्वजनिक निवेश, ऋण एवं अनुदान के रूप में प्राप्त होती है। ये मदें विदेशी सहायता के अनुरूप बजट प्राप्तियाँ समझी जाती हैं। अत: ये राजस्व का एक मुख्य स्त्रोत ही होती है जिनको शुद्ध रूप में लिया जाता है, अर्थात् ब्याज आदि का भुगतान करने के पश्चात।

नोट

निजी विदेशी पूँजी दो प्रकार की होती है–प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष। प्रत्यक्ष निजी विदेशी पूँजी के अन्तर्गत निवेशक देश की कम्पनी पूँजी आयात करने वाले देश में अपनी कम्पनी की एक शाखा खोलती है जिसके लिए वह सारा व्यय स्वयं करती है जिसमें फैक्टरी के लिए जमीन लेना, बिल्डिंग बनाना, मशीनें लाना और वस्तु का निर्माण करने से लेकर उसका बेचना शामिल होता है। अप्रत्यक्ष निजी विदेशी पूँजी के अन्तर्गत विदेशी कम्पनियाँ एवं व्यक्ति देशीय कम्पनियों के शेयर, प्रतिभूतियाँ एवं ऋण-पत्र खरीदते हैं जिससे विदेशी पूँजी देश में आती है। आजकल अप्रवासियों द्वारा विदेशी विनिमय प्राप्त करके तथा देश के उद्योगों में निवेश करके भी विदेशी पूँजी प्राप्त होती है जो भुगतान-शेष की समस्या को सुलझाने में काफी हद तक सहायक होती है।

दूसरी ओर सार्वजनिक विदेशी पूँजी कर्जो और अनुदानों के रूप में विदेशी सरकारों से प्राप्त होती है। साथ में संयुक्त राष्ट्र की एजेन्सियाँ जैसे IBRD, IFC, IDA आदि भी इस प्रकार की सहायता प्रदान करती हैं। अत: विदेशी व्यापार एवं विदेशी पूँजी का विकास के लिए साधन जुटाने में महत्वपूर्ण योगदान है।

परन्तु विदेशी पूँजी का आगमन देश में तभी सम्भव है यदि आन्तरिक तथा राजनैतिक स्थिरता हो, आधारभूत सुविधाएँ जैसे परिवहन, विद्युत, आदि विद्यमान हों, पूँजी तथा लाभों के स्थानान्तरण की सुविधाएँ प्राप्त हों, करों में यदि छूट न भी हो पर कर अधिक न हों।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks)–

1. आर्थिक वृद्धि के लिए स्रोत जुटाने का संबंध योजना के लिए ..... व्यवस्था करने से है।
2. सरकार करों पर तो नियंत्रण कर सकती है लेकिन ..... पूर्ती पर नियंत्रण करना कठिन होता है।
3. विकास के लिए साधन जुटाने के रूप में घाटे की वित्त-व्यवस्था को छिपी हुई या अदृश्य ..... माना जाता है।
4. विदेशी पूँजी का आगमन देश में तभी संभव है यदि ..... तथा ..... स्थिरता हो।
5. निजी विदेशी पूँजी ..... प्रकार की होती है।

2.2 सारांश (Summary)

- आन्तरिक स्रोत में सामुदायिक बचतें, करों द्वारा साधन जुटाव, सार्वजनिक उधार, सार्वजनिक उद्यमों के लाभ, तथा घाटे की वित्त-व्यवस्था सम्मिलित होते हैं।
- बचतों का संग्रह करने के लिए सरकार को अनेक प्रकार के संगठित प्रयत्न करने चाहिए जिनसे बचतें बढ़ें। बचत प्रवृत्ति बढ़ाने के लिए प्रचार तथा सामाजिक शिक्षा के अतिरिक्त ऊँची ब्याज दर वाले सरकारी बॉन्ड, बचत सर्टिफिकेट, बोनस, उपहार स्कीमें, लाटरी, पुरस्कार आदि विधियाँ अपनाई जा सकती हैं।
- प्रत्यक्ष करों के अतिरिक्त, अप्रत्यक्ष कर साधन जुटाव में अधिक महत्त्वपूर्ण योगदान देते हैं। अप्रत्यक्ष करों अथवा वस्तु-करों से अधिक राजस्व प्राप्त होते हैं क्योंकि सभी नागरिकों को इन करों का भुगतान करना पड़ता है।
- भारतीय योजना आयोग के अनुसार घाटे के वित्त-प्रबंधन का प्रयोग बजट-घाटों के माध्यम से कुल राष्ट्रीय आय में होने वाली प्रत्यक्ष वृद्धि को प्रकट करने के लिए किया जाता है,
- विकास के लिए साधन जुटाने के रूप में घाटे की वित्त-व्यवस्था को छिपी हुई या अदृश्य करनीति माना जाता है जिसका अत्यधिक महत्व होता है।
- आर्थिक वृद्धि के लिए घरेलू साधनों के साथ-साथ बाह्य साधनों की भी आवश्यकता होती है। ये वित्तीय साधन मुख्यत: विदेशी व्यापार और विदेशी पूँजी द्वारा प्राप्त होते हैं।
- **निजी विदेशी पूँजी दो प्रकार की होती है**–प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष।

नोट

- विदेशी पूँजी का आगमन देश में तभी सम्भव है यदि आन्तरिक तथा राजनैतिक स्थिरता हो, आधारभूत सुविधाएँ जैसे परिवहन, विद्युत, आदि विद्यमान हों, पूँजी तथा लाभों के स्थानान्तरण की सुविधाएँ प्राप्त हों, करों में यदि छूट न भी हो पर कर अधिक न हों।

2.3 शब्दकोश (Keywords)

- **बलकृत–** ज़बरदस्ती, बलयुक्त।
- **प्रतिभूतियाँ–** साख-पत्र, सिक्योरिटी।

2.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. आर्थिक वृद्धि के लिए वित्तीय साधनों की व्याख्या कीजिए।
2. आर्थिक वृद्धि के लिए विभिन्न स्त्रोतों की व्याख्या कीजिए।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

1. वित्त
2. मुद्रा
3. करनीति
4. आन्तरिक, राजनैतिक
5. दो

2.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. *संवृद्धि एवं विकास का अर्थशास्त्र*: डॉ. पी. मिश्रा; साहित्य भवन पब्लिकेशन्स : आगरा
2. *विकास नियोजन एवं नीतियाँ*: वी. सी सिन्हा: साहित्य भवन पब्लिकेशन्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.) लि. रजिस्टर्ड कार्यालय नई दिल्ली
3. *विकास का अर्थशास्त्र एवं आयोजन*: डा. एस. एल. डिंगल: वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा. लि.

नोट

इकाई–3: मानव विकास सूचकांक एवं पी.क्यू.एल.आई. (Human Development Index and PQLI)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

3.1 मानव विकास सूचकांक (Human Development and Index)

3.2 जीवन का भौतिक गुणवत्ता सूचक (Physical Quality of Life Index)

3.3 सारांश (Summary)

3.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

3.5 शब्दकोश (Keywords)

3.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- मानव विकास सूचकांक से संबंधित जानकारी प्राप्त करने में।
- जीवन का भौतिक गुणवत्ता सूचक जानने में।

प्रस्तावना (Introduction)

अर्थशास्त्रियों ने एक, दो अथवा अधिक संकेतकों को लेकर मानव विकास के सम्मिश्र सूचकों के निर्माण के लिए मूल आवश्यकताओं के सामाजिक सूचकों को मापने का प्रयास किया है। अब मौरिस द्वारा विकसित जीवन का भौतिक गुणवत्ता सूचकांक (Physical Quality of Life Index) तथा संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम (UNDP) द्वारा विकसित मानव विकास सूचकांक (HDI) का अध्ययन करेंगे।

3.1. मानव विकास सूचकांक (Human Development Index)

संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम (United Nations Development Programme, UNDP) के साथ जुटे हुए अर्थशास्त्री महबूबल हक ने विकास के एक सर्वमान्य सूचकांक को विकसित करने की दिशा में सबसे पहले प्रयास शुरू किया। उनके कहने पर नोबल पुरस्कार से सम्मानित प्रो. ए. के सेन तथा प्रो. सिंगर हंस के नेतृत्व में अर्थशास्त्रियों के एक समूह ने मानव विकास सूचकांक को विकसित किया।

HDI की पूरी धारणा इस मान्यता पर आधारित है कि "किसी राष्ट्र में रहने वाले लोग ही उस राष्ट्र की संपत्ति हैं।" आर्थिक विकास का मूल उद्देश्य एक ऐसा वातावरण तैयार करना है जिससे लोग लम्बे, स्वस्थ तथा सृजनात्मक जीवन का आनन्द उठा सकें।

मानव विकास प्रतिवेदन के अनुसार, "मानव विकास लोगों की पसन्दगियों के विस्तृत करने की एक प्रक्रिया है।" ये पसन्दगियाँ अनेक हो सकती हैं और इन पसन्दगियों में समय के साथ परिवर्तन हो सकता है। पर विकास के प्रत्येक

नोट

स्तर पर तीन आवश्यक पसन्दगियाँ हैं। और हैं–लंबी और स्वस्थ जिंदगी जीने की इच्छा, ज्ञान प्राप्त करने की अभिलाषा और एक खूबसूरत ज़िंदगी व्यतीत करने के लिए आवश्यक संसाधनों तक पहुँचने की इच्छा। यदि ये तीनों पसंदगियाँ उपलब्ध नहीं है तो व्यक्ति को अनेक अवसरों से वंचित होना पड़ेगा अत: व्यक्ति को एक खूबसूरत ज़िंदगी व्यतीत करने के लिए (*i*) आवश्यकताओं को संतुष्ट करने के लिए आय (*ii*) शिक्षा तथा (*iii*) स्वास्थ्य आवश्यक है।

3.2 जीवन का भौतिक गुणवत्ता सूचक (Physical Quality of Life Index)

मौरिस डी. मौरिस (Morris D. Morris)[11] ने 1979 में 23 विकसित तथा विकासशील देशों के जीवन की सम्मिश्र भौतिक गुणवत्ता (composite physical quality of life) का तुलनात्मक अध्ययन किया। उसने शिशु मृत्युदर, एक वर्ष की आयु में जीवन सम्भाव्यता तथा 15 वर्ष की आयु में मूल शिक्षा जैसे तीन सूचक घटकों को, लोगों की मूल आवश्यकताओं को पूरा करने के कार्य के मूल्यांकन के लिए जोड़ा। इस सूचक से बहुत से सूचकों, जैसे स्वास्थ्य, शिक्षा, पेयजल, पोषण तथा स्वच्छता आदि का पता चलता है। प्रत्येक सूचक के तीनों घटकों को शून्य से 100 तक के पैमाने पर रखा गया है जिसमें शून्य को मन्दत्तम तथा 100 को सर्वोत्तम प्रदर्शन के रूप में परिभाषित किया गया है। PQLI सूचक की गणना तीनों घटकों को समान भर (weight) देते हुए औसत निकाल कर की जाती है तथा सूचक को भी शून्य से 100 के पैमाने पर रखा गया है।

मौरिस के अनुसार, तीनों सूचकों में से प्रत्येक सूचक परिणाम को मापता है न कि आगतों को, जैसे आय। प्रत्येक सूचक आवंटन प्रभावों के प्रति संवेदनशील है अर्थात् इन सूचकों में वृद्धि अथवा सुधार से लोगों को उसी अनुपात में मिलने वाले लाभ का पता चलता है। परन्तु कोई भी सूचक विकास के किसी स्तर विशेष पर निर्भर नहीं है। प्रत्येक सूचक की अन्तर्राष्ट्रीय तुलना की जा सकती है। सन् 1950 में गेबन* की शिशु मृत्युदर 229 प्रति हजार को मन्दत्तम मानते हुए मौरिस ने इसे शून्य पर स्थिर कर दिया, तथा इसकी उच्चतम सीमा को सन् 2000 तक 7 प्रति हजार का लक्ष्य बनाया गया। इसी प्रकार, वियतनामा में एक वर्ष की आयु पर जीवन संभाव्यता सन् 1950 में 38 वर्ष ली। इसे मौरिस ने जीवन संभाव्यता सूचक पर शून्य का स्थान दिया। इसकी उच्चतम सीमा पुरुषों में तथा महिलाओं को मिलाकर सन् 2000 तक 77 वर्ष रखी गई। अंत में, 15 वर्ष की आयु में शिक्षा की दर को शिक्षा सूचक बनाया गया। मौरिस ने इसके सहसंबंध निम्न अनुसार प्रस्तुत किए हैं :

(N = 150)	शिशु मृत्युदर	जीवन संभाव्यता
एक वर्ष की आयु में जीवन संम्भाव्यता	–0.919	–
शिक्षा	–0.919	0.897

एक वर्ष की आयु में जीवन संभाव्यता तथा शिशु मृत्युदर के बीच सहसंबंध (correlation) का गुणांक उच्च डिग्री तथा ऋणात्मक (negative) है। इस प्रकार का सहसंबंध शिक्षा तथा शिशु मृत्युदर के बीच है अर्थात् शिक्षा के साथ शिशु मृत्युदर में गिरावट आती है। शिक्षा तथा जीवन संभाव्यता के बीच गुणांक ऊंची डिग्री का धनात्मक (positive) सह-संबंध दर्शाता है अर्थात शिक्षा के साथ-साथ जीवन संभाव्यता में भी वृद्धि होती है। मौरिस के अनुसार एक वर्ष की आयु में जीवन संभाव्यता तथा शिशु मृत्युता जीवन की भौतिक गुणवत्ता के बहुत अच्छे सूचक हैं। और यही बात शिक्षा तथा जीवन संभाव्यता के बारे में कही गई है। वास्तव में शिक्षा सूचक विकास की संभावना को व्यक्त करता है।

11 *Measuring the Conditions of the World's Poor* : The Physical Quality of Life Index 1979.

* Gaban अफ्रीका का एक देश है।

नोट

टास्क 'जीवन संभाव्यता' पर टिप्पणी लिखिए।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks)–

1. PQLA सूचक की गणना तीनों ..... को समान भार देते हुए औसत निकाल कर की जाती है।
2. 15 वर्ष की आयु में शिक्षा की दर को शिक्षा ..... बनाया गया।
3. PQLA जीवन की ..... को मापता है जो गरीबों के लिए बहुत जरूरी है।
4. वियतनामा में एक वर्ष की आयु पर जीवन ..... सन् 1950 में 38 वर्ष ली।

नीचे तालिका 1.1 में दो विकसित व दो विकासशील देशों की GNP प्रतिव्यक्ति वृद्धि दर तथा PQLI से संबंधित आंकड़े प्रस्तुत हैं–

तालिका 3.1 : जीवन का भौतिक गुणवत्ता निष्पादन तथा GNP प्रतिव्यक्ति वृद्धि दर

देश	(PQLI)			औसत वार्षिक GNP प्रति
	1950	1960	1970	व्यक्ति वृद्धि दर %
भारत	14	30	40	1.8
श्रीलंका	65	75	80	1.9
इटली	80	87	92	5.0
संयुक्त राज्य अमेरिका	89	91	93	2.4

उपर्युक्त तालिका से पता चलता है कि भारत जिसे मौरिस "बास्केट केस" कहता है, अपनी GNP प्रति व्यक्ति 1.8% की धीमी वृद्धि दर के बावजूद, 1950 से 1970 तक की दो दशकों की अवधि में इसके PQLI में 14 से 40 तक की धीमी, परन्तु कोई विशेष प्रगति नहीं हुई। उसी अवधि के दौरान श्रीलंका का PQLI भारत से कहीं अधिक था, हालांकि इसकी औसत GNP प्रति व्यक्ति वृद्धि दर (1.9%) लगभग भारत के बराबर रही। अमेरिका तथा इटली दोनों विकसित देशों का PQLI काफी ऊंचा था। परन्तु इटली की प्रति व्यक्ति GNP दर (5%) अमेरिका (2.4%) से लगभग दुगुनी थी। इस सन्दर्भ में मौरिस ने देखा की प्रतिव्यक्ति GNP दर तथा PQLI के बीच कोई स्वत: तालमेल नहीं है। वास्तव में, सामाजिक संबंधों की उपस्थिति अथवा अनुपस्थिति, पोषण संबंधी दर्जा, लोगों का स्वास्थ्य, शिक्षा तथा पारिवारिक वातावरण, किसी समाज के PQLI को निर्धारित करते हैं। इसके अतिरिक्त, उच्च PQLI को बनाने तथा बनाए रखने में सहायक संस्थागत प्रबंध के निर्माण में बहुत समय लग जाता है।

इसकी सीमाएं (Its Limitations)

मौरिस ने यह स्वीकार किया है कि PQLI मूल आवश्यकताओं को केवल एक सीमा तक ही माप सकता है। यह GNP का परिपूरक है न कि विस्थापक। यह आर्थिक वृद्धि को मापने का काम भी नहीं करता है। इसके अतिरिक्त यह सामाजिक और आर्थिक संगठन के बदलते हुए ढांचे को भी नहीं दर्शाता। अत: यह आर्थिक विकास को नहीं मापता। इसी प्रकार, यह कुल कल्याण को भी नहीं मापता है। फिर भी, यह जीवन की गुणवत्ताओं को मापता है जो गरीबों के लिए बहुत जरूरी हैं।

मौरिस द्वारा PQLI के प्रयुक्त तीन चरों को मनगढंत भार देने के कारण मौरिस की आलोचना हुई। प्रो. मायर के अनुसार, "PQLI द्वारा लिए गए गैर-आय वाले घटक महत्त्वपूर्ण हैं, परन्तु उतने ही महत्त्वपूर्ण समग्र गरीबी सूचकांक को प्राप्त करने के लिए समूहन (aggregation) के वितरण संवेदनशील (sensitive) तरीके और आय तथा उपभोग आंकड़े होते हैं।

नोट

निष्कर्ष (Conclusion)–इन सीमाओं के बावजूद, PQLI विशेषकर अल्पविकास के विशेष क्षेत्रों का पता लगाने तथा सामाजिक नीतियों की असफलता अथवा उपेक्षा के शिकार समाज के विभिन्न वर्गों की जानकारी प्राप्त करने में काम आ सकता है। यह उस सूचक की ओर इंगित करता है जहां तुरन्त कार्रवाई की आवश्यकता है। सरकार ऐसी नीतियां अपना सकती है जिनसे PQLI में भी शीघ्र वृद्धि हो तथा आर्थिक विकास भी बढ़े।,

नोट्स HDI तीन आधारभूत पहलुओं में उपलब्धियों का एक मिश्रित सूचक है : एक लंबा व स्वस्थ जीवन, ज्ञान तथा उत्कृष्ठ जीवन-स्तर।

3.2.1 मानव विकास सूचकांक का निर्माण (Construction of HDI)

किसी देश के HDI का मूल्य निकालने के लिए तीन सूचकों को लिया जाता है :

1. **दीर्घायु,** जिसे जन्म के समय जीवन की संभाव्यता द्वारा मापा जाता है : 25 वर्ष तथा 85 वर्ष।
2. **शैक्षिक योग्यताओं की प्राप्ति,** जिसे वयस्क शिक्षा (दो-तिहाई भार) तथा प्राथमिक, माध्यमिक व क्षेत्रीय विद्यालयों में उपस्थित अनुपातों (एक-तिहाई भार) के मिश्रण के रूप में मापा जाता है। उदाहरणार्थ, वयस्क शिक्षा : 0% से 100% तथा दाखिलों का मिश्रित अनुपात : 0% से 100%।
3. **जीवन स्तर,** जिसे डालर की क्रय शक्ति समता (purchasing power parity) पर आधारित वास्तविक प्रतिव्यक्ति GDP द्वारा मापा जाता है।

HDI जीवन की संभाव्यता सूचक, शैक्षिक प्राप्तियां सूचक तथा समायोजित वास्तविक प्रतिव्यक्ति GDP सूचक का सरल औसत सूचक है।* इसकी गणना इन तीनों संकेतकों के योग को 3 से विभाजित कर निकाली जाती है। इसमें प्रत्येक चर का न्यूनतम तथा अधिकतम मूल्य स्थिर है, जिसे घटाकर **शून्य** (0) तथा **एक** (1) के बीच पैमाने पर रखा गया है तथा प्रत्येक देश इस पैमाने के किसी न किसी बिन्दु पर आता है।

प्रत्येक देश का HDI मूल्य यह दर्शाता है कि उसे अपने कुछ पारिभाषित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए कितना प्रयास करना है : 85 वर्ष के औसत जीवन की अवधि, सभी के लिए शिक्षा की उपलब्धि तथा उत्कृष्ट जीवन स्तर। HDI एक दूसरे के संबंध में विभिन्न देशों का क्रम (rank) तय करता है। किसी भी देश का HDI क्रम विश्व आवंटन के बीच ही तय होता है। उदाहरणार्थ, यह क्रम प्रत्येक विकसित तथा विकासशील देशों से संबंधित अपने HDI मूल्य पर आधारित है जिसके लिए उस देश द्वारा HDI न्यूनतम मूल्य **शून्य** (0) से HDI अधिकतम मूल्य **एक** (1) तक प्रयास किए गए। ऐसे देश जिनका HDI मूल्य 0.5 से कम है उन्हें निम्नस्तर के मानव विकास क्रम में रखा जाता है तथा 0.5 से 0. 8 मूल्य वाले देशों को मध्यम तथा 0.8 से ऊपर HDI मूल्य वाले देश उच्चस्तर में गिने जाते हैं। HDI में देशों को उनकी प्रति व्यक्ति GDP के आधार पर भी क्रमबद्ध किया जाता है। मानव विकास रिपोर्ट 2003 में 175 विकसित एवं विकासशील देशों से संबंधित वर्ष 2001 की वास्तविक प्रति व्यक्ति GDP के क्रम, HDI मूल्य तथा HDI क्रम प्रस्तुत किए गए हैं। जिन 175 देशों के HDI की गणना की गई थी उनमें से 55 उच्च विकास वर्ग (0.8 से 0.95) में थे; 86 मध्यम वर्ग (0.5 से 0.79) में तथा 34 निम्न वर्ग (0.48 से 0.2) में थे। नार्वे, आइसलैंड और स्वीडन HDI में उच्च वर्ग के 55 विकसित देशों में सबसे आगे थे। उस वर्ग में सबसे अन्तिम क्रम 55 पर मैक्सिको का था। मध्यम वर्ग में विघटित सोवियत संघ के अधिकांशत: देशों सहित 86 विकसित तथा विकासशील देश थे। इस वर्ग में एंटिगुआ और बारबुडा सबसे आगे 56वें क्रम पर रहे। श्रीलंका 99वें क्रम पर तथा चीन 104वें क्रम पर रहा। निम्न वर्ग में 34 विकासशील देश थे जिनमें सबसे ऊपर कैमरून, नेपाल तथा पाकिस्तान थे। पाकिस्तान का HDI क्रम 144 तथा भारत का 127 था जबकि बांग्लादेश 139 तथा नेपाल 143वें क्रम पर रहे, जैसा तालिका 1.2 में दर्शाया गया है–

*__HDI__ is a simple average of life expectancy index, educational attainment index and adjusted real GDP per capita index.

नोट

क्या आप जानते हैं

PQLI मूल आवश्यकताओं को केवल एक ही सीमा तक माप सकता है। यह GNP का परिपूरक है न कि विस्थापक तथा यह आर्थिक वृद्धि को नहीं नापता।

तालिका 3.2 : चुने हुए देशों का मानव विकास सूचकांक, 2001

देश	*HDI मूल्य*	*HDI क्रम (Rank)*	*वास्तविक GDP प्रति व्यक्ति क्रम (PPPS)*	*वास्तविक GDP* प्रति व्यक्ति क्रम घटा HDI क्रम*
1. उच्च मानव विकास				
नार्वे	0.944	1	5	4
आस्ट्रेलिया	0.939	4	12	8
संयुक्त राज्य अमेरिका	0.937	7	2	5
कनाडा	0.937	8	9	1
जापान	0.932	9	14	5
इंग्लैंड	0.930	13	19	6
न्यूजीलैंड	0.919	20	28	8
अर्जेंटिना	0.849	34	45	11
2. मध्यम मानव विकास				
मलयेशिया	0.790	58	56	−2
मॉरिशस	0.779	62	50	−12
ब्राजील	0.777	65	64	−1
श्रीलंका	0.730	99	112	13
चीन	0.721	104	102	−2
भारत	0.590	127	115	−12
बांग्लादेश	0.502	139	146	7
3. निम्न मानव विकास				
नेपाल	0.499	143	151	8
पाकिस्तान	0.499	144	137	−7
जिम्बाब्वे	0.496	145	127	−18
नाइजीरिया	0.463	152	165	13
तंजानिया	0.400	160	174	14
जाम्बिया	0.386	163	170	7

- एक धनात्मक आंकड़ा यह बताता है कि वास्तविक GDP प्रति व्यक्ति क्रम से HDI क्रम ऊँचा है। ऋणात्मक आंकड़ा इसके विपरीत बताता है।

HDI क्रम वास्तविक प्रति व्यक्ति GDP से विशेष रूप से भिन्न है। ऐसे देश जिनका GDP क्रम HDI से ऊँचा है उनकी उच्च आय के लोगों का अधिक साम्यता से आवंटित करने की पर्याप्त क्षमता (potential) है। ऐसे 71 देश थे जिनका GDP क्रम उनके HDI क्रम से ऊँचा था। इनमें इक्वेटोरिअल गुएना (-78) और बोत्स्वाना (-65) पर थे।

नोट

ऐसे देश जिनका HDI क्रम उनके GDP क्रम से अधिक है, यह दर्शाते हैं कि उन्होंने अपनी आय को प्रभावी ढंग से अपने लोगों का जीवन-स्तर सुधारने में प्रयोग किया है। ऐसे देश जिनका HDI क्रम उनके GDP क्रम से ऊँचा था, उनमें से तजाकिस्तान (41) और क्यूबा (38) पर थे। इस प्रकार HDI यह दर्शाता है कि कई देशों के प्रति व्यक्ति GDP स्तर समान हो सकते हैं परन्तु उनकी मानव विकास उपलब्धियाँ भिन्न हो सकती हैं या फिर HDI समान हो सकते हैं परन्तु GDP प्रति व्यक्ति स्तर भिन्न हो सकते हैं।

HDI हमें विकास की प्रगति की ओर जाने के बारे में बताता है। मानव विकास रिपोर्ट में कहा गया है कि निम्न मानव विकास वाले देशों को मानव विकास की उच्च श्रेणी तक पहुँचने में 200 से भी अधिक वर्ष लग सकते हैं। चीन इस स्तर तक 25 वर्षों में पहुँच जाएगा, जबकि भारत को अभी 100 वर्ष लगेंगे। परन्तु ये सब तो मात्र कच्चे अनुमान हैं।

इसकी सीमाएँ (Its Limitations)

HDI की भी अपनी सीमाएँ हैं। **प्रथम,** केवल तीन सूचक ही मानव विकास के सूचक नहीं हैं, शिशु मृत्यु दर, पोषण आदि अन्य सूचक भी हो सकते हैं। **द्वितीय,** HDI निरपेक्ष (absolute) की बजाय सापेक्ष (relative) मानव विकास मापता है ताकि यदि सभी देश समान भारित (weighted) दर से अपने HDI मूल्य को सुधार लें तो निम्न मानव विकास वाले देशों के सुधार का पता नहीं चल पाएगा। **तृतीय,** किसी देश का HDI वहां पाई जाने वाली ऊँची असमानता को दूर करने के लक्ष्य से भटक सकता है। **अंत में,** दूसरे सामाजिक सूचकों के साथ प्रति व्यक्ति GNP क्रमों को लेने तथा अनुपूरित करने की वैकल्पिक कूटनीति फिर भी बेहतर है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

2. निम्नलिखित कथनों में सत्य/असत्य की पहचान करें–

1. किसी राष्ट्र में रहने वाले लोग ही उस राष्ट्र की संपत्ति हैं।
2. किसी देश की HDI का मूल्य निकालने के लिए 4 सूचकों को लिया जाता है।
3. किसी देश का HDI क्रम विश्व आवंटन के बीच ही तय होता है।
4. HDI के केवल तीन सूचक ही मानव विकास के सूचक हैं।

3.3 सारांश (Summary)

- अर्थशास्त्रियों ने एक, दो अथवा अधिक संकेतकों को लेकर मानव विकास के सम्मिश्र सूचकों के निर्माण के लिए मूल आवश्यकताओं के सामाजिक सूचकों को मापने का प्रयास किया है।
- HDI की पूरी धारणा इस मान्यता पर आधारित है कि "किसी राष्ट्र में रहने वाले लोग ही उस राष्ट्र की संपत्ति हैं।"
- विकास के प्रत्येक स्तर पर तीन आवश्यक पसन्दगियाँ हैं और हैं–लंबी और स्वस्थ जिंदगी जीने की इच्छा, ज्ञान प्राप्त करने की अभिलाषा और एक खूबसूरत ज़िंदगी व्यतीत करने के लिए आवश्यक संसाधनों तक पहुँचने की इच्छा।
- मौरिस डी. मौरिस (Morris D. Morris)[11] ने 1979 में 23 विकसित तथा विकासशील देशों के जीवन की सम्मिश्र भौतिक गुणवत्ता (composite physical quality of life) का तुलनात्मक अध्ययन किया।
- सन् 1950 में गेबन* की शिशु मृत्युदर 229 प्रति हजार को मन्दत्तम मानते हुए मौरिस ने इसे शून्य पर स्थिर कर दिया, तथा इसकी उच्चतम सीमा को सन् 2000 तक 7 प्रति हजार का लक्ष्य बनाया गया।
- एक वर्ष की आयु में जीवन संभाव्यता तथा शिशु मृत्युदर के बीच सहसंबंध (correlation) का गुणांक उच्च डिग्री तथा ऋणात्मक (negative) है।
- PQLI मूल आवश्यकताओं को केवल एक सीमा तक ही माप सकता है। यह GNP का परिपूरक है न कि विस्थापक। यह आर्थिक वृद्धि को मापने का काम भी नहीं करता है।

नोट

- HDI जीवन की संभाव्यता सूचक, शैक्षिक प्राप्तियां सूचक तथा समायोजित वास्तविक प्रतिव्यक्ति GDP सूचक का सरल औसत सूचक है।
- मानव विकास रिपोर्ट 2003 में 175 विकसित एवं विकासशील देशों से संबंधित वर्ष 2001 की वास्तविक प्रति व्यक्ति GDP के क्रम, HDI मूल्य तथा HDI क्रम प्रस्तुत किए गए हैं।
- नार्वे, आइसलैंड और स्वीडन HDI में उच्च वर्ग के 55 विकसित देशों में सबसे आगे थे। उस वर्ग में सबसे अन्तिम क्रम 55 पर मैक्सिको का था। मध्यम वर्ग में विघटित सोवियत संघ के अधिकांशतः देशों सहित 86 विकसित तथा विकासशील देश थे।
- HDI क्रम वास्तविक प्रति व्यक्ति GDP से विशेष रूप से भिन्न है। ऐसे देश जिनका GDP क्रम HDI से ऊँचा है उनकी उच्च आय के लोगों का अधिक साम्यता से आवंटित करने की पर्याप्त क्षमता (potential) है।
- केवल तीन सूचक ही मानव विकास के सूचक नहीं हैं, शिशु मृत्यु दर, पोषण आदि अन्य सूचक भी हो सकते हैं।

3.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

(1) जीवन का भौतिक गुणवत्ता सूचक (PQLA) क्या बतलाता है। इसकी आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।

(2) मानव विकास सूचक (HDI) विभिन्न देशों के आर्थिक विकास के बारे में किन बातों का ज्ञात होता है व्याख्या कीजिए।

3.5 शब्दकोश (Keywords)

- **संभाव्यता**- हो सकने योग्य, कल्पना योग्य।
- **अनुपूरित**- बाद में पूरा किया गया, बाद में जोड़ा या बढ़ाया हुआ अंश।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

1.	1. घटकों	2. सूचक	4. गुणवत्ता	5. संभाव्यता।
2.	1. सत्य	2. असत्य	3. सत्य	6. असत्य।

3.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. *विकास का अर्थशास्त्र एवं आयोजन*: डॉ. एम. एल. झिंगन: वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा. लि.
2. *संवृद्धि एवं विकास का अर्थशास्त्र*: डॉ जे. पी मिश्रा: साहित्य भवन पब्लिकेशन्स एवं डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.) लि. रजिस्टर्ड कार्यालय नई दिल्ली

नोट

इकाई–4: आर्थिक वृद्धि मॉडल-1 हैरोड डोमर वृद्धि मॉडल (Economic Growth Models-1 Harrod-Domar Growth Model)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

4.1 सतत् वृद्धि की आवश्यकताएँ (Requirements of Steady Growth)

4.2 हैरोड का मॉडल एवं विकास की दरें (The Harrod Model and Rates of Growth)

4.3 हैरोड वृद्धि मार्ग एवं दीर्घकालीन असन्तुलनों का स्वरूप तथा वृद्धि दरों में विचलन (Harrod Growth Path and Genesis of Long Run Disequilibrium and Divergence in Different Growth Rates)

4.4 डोमर का मॉडल (The Domar Model)

4.5 सारांश (Summary)

4.6 शब्दकोश (Keywords)

4.7 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

4.8 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- सतत् वृद्धि की आवश्यकताओं को समझने में।
- हैरोड के मॉडल एवं विकास की दरों की विवेचना करने।
- हैरोड वृद्धि मार्ग को तथा दीर्घकालीन असन्तुलनों का स्वरूप तथा वृद्धि दरों में विचलन विवरण को समझने में।

प्रस्तावना (Introduction)

हैरोड तथा डोमर (Harrod and Domar) के आर्थिक वृद्धि के मॉडल औद्योगिक दृष्टि से विकसित अर्थव्यवस्थाओं के अनुभव तथा उनकी समस्याओं पर आधारित हैं। यह मॉडल मुख्यत: विकसित पूँजीवादी अर्थव्यवस्थाओं के लिए है। हैरोड तथा डोमर ने इस प्रकार की अर्थव्यवस्थाओं की सतत् तथा एकरूप वृद्धि की आवश्यकताओं का विश्लेषण करने का प्रयास किया है।

4.1 सतत् वृद्धि की आवश्यकताएँ (Requirements of Steady Growth)

हैरोड तथा डोमर दोनों ने ही सतत् तथा निर्बाधित कार्यकरण (Uninterrupted Working) के लिए ऐसी आवश्यक वृद्धि दर को खोजने का प्रयत्न किया है जिससे अर्थव्यवस्था निरन्तर साम्य की स्थिति में बनी रहे।

नोट

इनके 'मॉडल' में आर्थिक वृद्धि की प्रक्रिया में विनियोग का महत्त्वपूर्ण स्थान है। विनियोग से तात्पर्य अर्थव्यवस्था में विशुद्ध उत्पादन-क्षमता का निर्माण करना है जो निर्मित पूँजी परिसम्पत्ति के सम्पूर्ण जीवन अवधि में प्रति वर्ष राष्ट्रीय आय के प्रवाहों की अधिकाधिक वृद्धि करता है। विश्लेषण के दृष्टिकोण से विनियोग की दोहरी भूमिका होती है–प्रथम, यह आय में वृद्धि करता है तथा द्वितीय, यह अर्थव्यवस्था में पूँजी-परिसम्पत्ति की वृद्धि करता है जिसके परिणामस्वरूप अर्थव्यवस्था की उत्पादन क्षमता में वृद्धि होती है। प्रथम को आय प्रभाव अथवा माँग प्रभाव कहा जाता है तथा दूसरे को पूर्ति प्रभाव कहा जाता है। इस प्रकार अर्थव्यवस्था में जब तक विशुद्ध विनियोग किया जाता रहेगा, तब तक वास्तविक आय तथा उत्पादन में वृद्धि होती रहेगी किन्तु निरन्तर आय को पूर्ण रोजगार सन्तुलन पर बनाये रखने के लिए आवश्यकता इस बात की है कि वास्तविक आय तथा उत्पादन में उसी दर से वृद्धि हो जिस दर से पूँजी स्टॉक की उत्पादन क्षमता का विस्तार हो रहा है। यदि इसमें किसी प्रकार का अन्तर (Divergence) होता है तो अतिरिक्त अथवा अप्रयुक्त क्षमता (Idle-capacity) उत्पन्न हो जायेगी जिसके परिणामस्वरूप साहसी विनियोगों को कम करने के लिए बाध्य हो जायेंगे। अन्ततः आगामी समयावधियों (Periods) में आय तथा रोजगार का स्तर घट जायेगा जिससे अर्थव्यवस्था सतत् तथा एकरूप वृद्धि के सन्तुलन मार्ग से हट जायेगी। इसका अर्थव्यवस्था पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा। दीर्घकाल में पूर्ण रोजगार की स्थिति कायम रखने के लिए विशुद्ध विनियोगों में निरन्तर वृद्धि आवश्यक होती है। इस प्रकार यह आवश्यक है कि वास्तविक आय में निरन्तर उस दर से वृद्धि होती रहे जिससे कि बढ़ते हुए पूँजी स्टॉक का पूर्णतः उपयोग कर सकना सम्भव हो। आय वृद्धि की इस आवश्यक दर को 'वांछित वृद्धि दर' (Warranted Rate of Growth) कहा जा सकता है।

हैरोड तथा डोमर के सिद्धान्त की मान्यताएँ (Assumptions of Harrod-Domar Model)

हैरोड तथा डोमर का मॉडल निम्नलिखित मान्यताओं पर आधारित है :

1. आय के पूर्ण रोजगार स्तर को प्रारम्भिक अवस्था में प्राप्त कर लिया गया है।
2. आर्थिक गतिविधियों में सरकारी हस्तक्षेप का अभाव है।
3. यह मॉडल बन्द अर्थव्यवस्था में कार्यशील होता है। दूसरे शब्दों में, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार नहीं होता है।
4. औसत उपभोग प्रवृत्ति (APS) तथा सीमान्त बचत प्रवृत्ति (MPS) बराबर होती है।
5. विनियोग तथा उत्पादन-क्षमता में वृद्धि के बीच समायोजन में समय अन्तराल नहीं होता है।
6. ब्याज की दरें अपरिवर्तित रहती हैं।
7. सीमान्त बचत प्रवृत्ति (MPS) स्थिर रहती है।
8. उत्पादन प्रक्रिया में पूँजी तथा श्रम का अनुपात स्थिर रहता है।
9. बचत तथा विनियोग उसी वर्ष की आय से सम्बन्धित हैं।
10. सामान्य मूल्य स्तर में किसी प्रकार का कोई अन्तर नहीं होता है। दूसरे शब्दों में, मौद्रिक आय तथा वास्तविक आय समान रहती है।
11. पूँजीगत वस्तुओं को अनन्तजीवी (Infinite Life) मान लिया जाता है। अतः उनके मूल्य ह्रास (Depreciation) का प्रश्न ही नहीं उठता है।
12. पूँजी-स्टॉक का आय से अनुपात अर्थात् पूँजी गुणांक (Capital Co-efficient) को स्थिर मान लिया जाता है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

1. निम्नलिखित कथनों में सत्य तथा असत्य की पहचान करें–

1. हैरोड -डोमर मॉडल में आर्थिक वृद्धि की प्रक्रिया में विनियोग का महत्त्वपूर्ण स्थान है।
2. दीर्घकाल में पूर्ण रोज़गार की स्थिति कायम रखने के लिए विशुद्ध विनियोग में निरन्तर वृद्धि आवश्यक नहीं होती।

नोट

3. आय वृद्धि की आवश्यक दर को वांछित वृद्धि दर कहा जाता है।
4. औसत उपभोग प्रवृत्ति (APS) तथा सीमान्त बचत प्रवृत्ति (MPS) बराबर होती है।

4.2 हैरोड का मॉडल एवं विकाण की दरें (The Harrod Model and Rates of Growth)

हैरोड ने अपने मॉडल में यह प्रदर्शित करने का प्रयास किया है कि अर्थव्यवस्था में किस प्रकार सतत् वृद्धि (अर्थात् सन्तुलन) की स्थिति पायी जाती है। यदि सतत् वृद्धि की दर किसी कारण से परिवर्तित हो जाती है, तब अर्थव्यवस्था के असन्तुलन की स्थिति उत्पन्न हो जाती है तथा संचयी (Cumulative) शक्तियों के प्रभाव के परिणामस्वरूप विचलन बना रहता है। इस विचलन के परिणामस्वरूप दीर्घकालीन अवस्फीति अथवा स्फीति की दशाएँ उत्पन्न हो सकती हैं।

हैरोड मॉडल में उत्पादक तथा उपभोक्ताओं द्वारा आय की वृद्धि को प्रभावित करने से संबंधित दो मान्यताएँ हैं जो निम्नानुसार हैं :

1. **उत्पादकों के व्यवहार से सम्बन्धित मान्यता**–इस मॉडल में यह मान्यता मान ली गयी है कि साहसी जो आय तथा विनियोग के संबंध में निर्णय लेते हैं, उन पर पूर्वकाल में हुई उत्पादन में वृद्धि का प्रभाव पड़ता है। समाज में उत्पादन पूँजी के कुल स्टॉक का एक निश्चित अनुपात होता है। दूसरे शब्दों में, यदि देश में उत्पादन में वृद्धि हुई है, तब पूँजी के कुल स्टॉक में भी वृद्धि होना आवश्यक है। इस प्रकार पूँजी की मात्रा में वृद्धि के परिणामस्वरूप विनियोग की मात्रा में वृद्धि होती है। विनियोग में वृद्धि आय में वृद्धि पर निर्भर करती है।
2. **उपभोक्ताओं का व्यवहार**–विशुद्ध बचतें (Net Savings) कुल आय का एक स्थिर अनुपात होती हैं। विशुद्ध बचतों (Net Savings) को ही वास्तविक बचत (Actual Savings) कहा जाता है किन्तु इन्हें अनुमानित बचत (Intended Saving) नहीं कहा जाता है। वास्तविक बचत वास्तविक विनियोग (Realised Investment) के बराबर होती है। हैरोड का यह मत है कि (*i*) वास्तविक बचत = वास्तविक विनियोग। इसी प्रकार किसी व्यक्ति अथवा समाज की कुल आय उपभोग तथा बचत का योग होता है।

टास्क यह दिखाइए कि साम्यवस्था में $G = Gw = Gn$ होता है।

विकास की दरें (Rates of Growth)

हैरोड का मॉडल निम्नांकित तीन वृद्धि की दरों पर आधारित है :

1. वास्तविक वृद्धि की दर (Actual Rate of Growth)–हैरोड ने वास्तविक वृद्धि की दर को G द्वारा व्यक्त किया है। वास्तविक वृद्धि की दर को बचत अनुपात तथा पूँजी-उत्पादन अनुपात निर्धारित करते हैं। वास्तविक वृद्धि की दर अल्पकालीन चक्रीय परिवर्तनों की प्रदर्शित करती है। इसके अतिरिक्त, यह विकास की दर से देश की वास्तविक वृद्धि दर को दर्शाती है। हैरोड ने इसको निम्न समीकरण द्वारा प्रदर्शित किया है :

$$GC = s \qquad ...(i)$$

उपरोक्त समीकरण में :

(*i*) G = उत्पादन की वृद्धि दर।

इसको निश्चित दी हुई समयावधि में कुल आय में हुई वृद्धि के रूप में प्रदर्शित किया जा सकता है।

$$\text{उत्पादन की वृद्धि दर} = \frac{\text{आय में हुई वृद्धि}}{\text{कुल आय}}$$

नोट

अथवा $$G = \frac{\Delta Y}{Y}$$

(*ii*) C = पूँजी में हुई विशुद्ध वृद्धि है। इसकी बढ़ी हुई आय में से विनियोग के अंश के रूप में परिभाषित किया जाता है।

$$\text{पूँजी में वृद्धि} = \frac{\text{विनियोग}}{\text{आय में वृद्धि}}$$

अथवा $$C = \frac{I}{\Delta Y}$$

(*iii*) *s* = औसत बचत प्रवृत्ति। बचत आय में से बचाया हुआ अंश है।

$$s = \frac{s}{Y} = \frac{\text{बचत}}{\text{आय}}$$

हैरोड का प्रथम समीकरण निम्नानुसार है :

$$GC = s$$

उपरोक्त समीकरण में :

(*i*) $$G = \frac{\Delta Y}{Y}$$

(*ii*) $$C = \frac{I}{\Delta Y}$$

(*iii*) $$s = \frac{s}{Y}$$

उपरोक्त समीकरण में G, C तथा *s* के मूल्यों को रखने पर :

$$\frac{\Delta Y}{Y} \times \frac{I}{\Delta Y} = \frac{s}{Y}$$

अथवा $$\frac{I}{Y} = \frac{s}{Y}$$

अथवा $$I = s$$

उपरोक्त समीकरण यह प्रदर्शित करता है कि वास्तविक बचतें वास्तविक विनियोग के बराबर होती हैं।

आय का व्यवहार उपरोक्त संबंध को स्पष्ट करता है। उपरोक्त संबंध में आय (Y) पर औसत बचत प्रवृत्ति (*s*) निर्भर करती है तथा विनियोग (I) आय में वृद्धि (ΔY) पर निर्भर करता है, इसलिए उपरोक्त त्वरक सिद्धांत (Acceleration Principle) है।

2. वांछित वृद्धि की दर (Warranted Rate of Growth) – यह वृद्धि दर प्रमुख रूप से व्यवसायी वर्ग के व्यवहार से संबंधित है। इसको हैरोड ने दूसरे आधारभूत समीकरण के द्वारा व्यक्त किया है जो कि सतत् उन्नति के लिए साम्य की स्थितियों को दर्शाता है। हैरोड के मतानुसार वांछित वृद्धि की दर उस दर को कहा जाता है जिस पर उत्पादक जो कुछ भी कर रहे, संतुष्ट होंगे। इस प्रकार यह साहसियों से साम्य (Entrepreneurial Equilibrium) को व्यक्त करता है। इसको उन्नति की रेखा कहा जा सकता है जिसको यदि प्राप्त कर लिया जाए तो इससे लाभ प्राप्तकर्ताओं को संतुष्टि प्राप्त होगी। इस वृद्धि दर पर माँग इतनी अधिक होती है जिससे कि व्यवसायी वर्ग ने जितना भी उत्पादन किया है, उसका वे विक्रय कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त, वे उसी वृद्धि की प्रतिशत दर से निरन्तर उत्पादन करते रहेंगे। इस प्रकार विकास की यह दर व्यवसायियों के लिए बहुत अधिक उपयुक्त है। यह सच है कि अर्थव्यवस्था के कुछ विकासशील क्षेत्रों में अन्य क्षेत्रों की तुलना में उत्पादन में अधिक तीव्र गति से वृद्धि होती है तथा कुछ अन्य क्षेत्रों

नोट

में अथवा व्यवसायों में गिरावट आ जाती है किन्तु इस प्रकार की प्रवृत्तियों का आपसी प्रभाव एक-दूसरे से निरस्त हो जाता है। इसके अतिरिक्त, कुछ फर्में अपनी विकास की दर में वृद्धि की आवश्यकता का अनुभव कर सकती हैं तथा अन्य कुछ फर्में इसको घटाने को उत्सुक होंगी किन्तु यह व्यक्तिगत निर्णय भी एक-दूसरे से निरस्त हो जाते हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के लिए विकास की किसी विशिष्ट दर पर साहसी संतुष्ट हो जाते हैं तथा इसको कायम रखना चाहते हैं। विकास की इसी दर को वांछित वृद्धि की दर कहा है। हैरोड ने इसको निम्न समीकरण द्वारा व्यक्त किया है :

$$Gw\ Cr = s \qquad ...(ii)$$

उपरोक्त समीकरण में :

Gw = वांछित वृद्धि की दर जिसमें पूँजी का पूर्णरूपेण प्रयोग कर लिया जाता है। इस दर पर पूँजी के बढ़ते हुए स्टॉक का पूर्णरूपेण प्रयोग कर लिया जाता है। इसका मूल्य $\frac{\Delta Y}{Y}$ होता है।

Cr = यह पूँजी आवश्यकताओं (Capital Requirements) को प्रगट करता है अर्थात् वृद्धि की वांछित दर को बनाये रखने के लिए आवश्यक पूँजी की मात्रा को व्यक्त करता है। दूसरे शब्दों में, यह पूँजी उत्पादन अनुपात (Capital Out-put Ratio) को व्यक्त करता है। इसका मूल्य $\frac{I}{\Delta Y}$ होता है। s = औसत बचत प्रवृत्ति अर्थात् $\frac{s}{Y}$ है।

उपरोक्त समीकरण के अनुसार यदि अर्थव्यवस्था Gw की सतत् वृद्धि की दर से उन्नति करना चाहती है जिससे कि उसकी क्षमता का पूर्णत: प्रयोग किया जा सके, तब आय को $\frac{s}{Cr}$ प्रति वर्ष की दर से बढ़ना आवश्यक है, अर्थात्

$$Gw = \frac{W}{Cr}$$

अत: वार्षिक आय में वृद्धि = $\frac{\text{सीमान्त बचत प्रवृत्ति}}{\text{पूँजी उत्पाद अनुपात}}$

नोट्स "हैरोड के मॉडल में वास्तविक संवृद्धि दर का वांछित संवृद्धि दर से विचलन ऐसी शक्तियों को प्रेरित करता है कि जिसके फलस्वरूप वांछित समृद्धि दर से अधिक दूर आने की प्रवृत्ति प्रकट होती है।"

3. विकास की पूर्ण क्षमता वृद्धि दर अथवा विकास की प्राकृतिक वृद्धि दर (Full Capacity Rate of Growth or the Natural Rate of Growth)—वृद्धि की प्राकृतिक दर विभिन्न समष्टिगत चरों (Macro Variables) पर निर्भर करती है। समष्टिगत चर अनेक हैं, जैसे–जनसंख्या, प्राकृतिक साधन तथा पूँजी उपकरण आदि। इसे वृद्धि की सामान्य दर (General Rate of Growth) अथवा वृद्धि की पूर्ण रोजगार दर (Full Employment Rate of Growth) भी कहा जाता है। यह दर जनसंख्या वृद्धि तथा प्रावैधिक प्रगति द्वारा निर्धारित होती है। यह पूर्ण रोजगार उत्पादन वृद्धि की दर है। इसको निम्न समीकरण द्वारा व्यक्त किया जा सकता है :

$$Gn\ Cr \neq \text{or} = s$$

उपरोक्त सूत्र में :

Gn = विकास की प्राकृतिक वृद्धि दर।

उपरोक्त समीकरण के अनुसार यदि अर्थव्यवस्था Gn की प्राकृतिक वृद्धि दर से उन्नति करना चाहती है, तब आय को $\frac{s}{Cr}$ प्रति वर्ष की दर से बढ़ना आवश्यक है, अर्थात्

$$Gn = \frac{s}{Cr}$$

नोट

किन्तु यह आवश्यक नहीं है कि $Gn\ Cr$ अर्थात् प्राकृतिक वृद्धि दर के लिए आवश्यक पूँजी s अर्थात् $\frac{S}{Y}$ अर्थात् औसत बचत प्रवृत्ति के बराबर हों। $Gn\ Cr$ औसत बचत प्रवृत्ति के बराबर हो भी सकती है और नहीं भी हो सकती है।

4.3 हैरोड वृद्धि मार्ग एवं दीर्घकालीन असन्तुलनों का स्वरूप तथा वृद्धि दरों में विचलन (Harrod Growth Path and Genesis of Long-run Disequalibrium and Divergence in Different Growth Rates)

हैरोड के वृद्धि सिद्धान्त से यह स्पष्ट हो जाता है कि विकसित अर्थव्यवस्था में स्थिति की माँग के अनुसार '*s*' में कमी अथवा वृद्धि करना आवश्यक होता है। हैरोड वृद्धि मार्ग को चित्र 4.1 द्वारा दर्शाया जा सकता है।

चित्र 4.1 में X-अक्ष पर आय तथा Y-अक्ष पर बचत तथा विनियोग का प्रदर्शित किया गया है। आय Y_1 से Y_2 वृद्धि होने पर $A(Y_2)$ पर S_1 बचत के बराबर होने के लिए I_2 विनियोग करना आवश्यक होगा जिससे कि आय में Y_3 वृद्धि हो जायेगी। इसी प्रकार $B(Y_3)$ पर S_2 के बराबर आने के लिए Y_2 विनियोग I_3 को प्रोत्साहित करता है जिससे कि आय Y_3 से बढ़कर Y_4 स्तर पर पहुँच जाती है। इस प्रकार अर्थव्यवस्था वृद्धि मार्ग पर अग्रसर हो जाती है। विनियोग रेखा (I) तथा Y-अक्ष के समानान्तर रेखा का अन्तर्छेदन बिन्दु यह दर्शाता है कि आवश्यक विनियोग हो रहा है। यदि यह मान्यता मान ली जाए कि विनियोग गुणक में किसी प्रकार का कोई परिवर्तन नहीं होता है, तब बचतों का अनुपात जितना अधिक होगा, सन्तुलन कायम रखने के लिए आवश्यक विनियोग को प्रोत्साहित करने के लिए उत्पादन में वृद्धि की दर भी उतनी ही अधिक होना आवश्यक है।

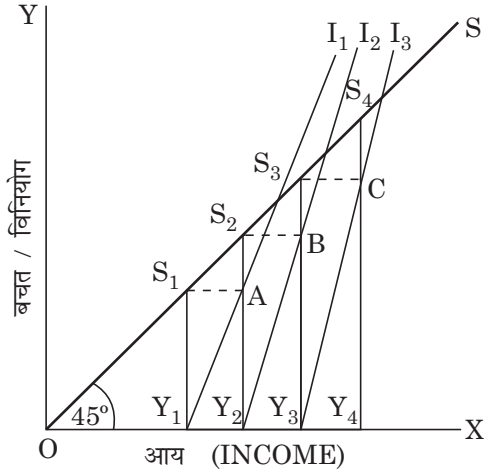

चित्र 4.1

दीर्घकालीन असन्तुलनों का स्वरूप तथा वृद्धि दरों में विचलन (Genesis of Long-run Disequilibrium and Divergence in Different Growth Rates)

पूर्ण रोजगार साम्य वृद्धि दर के लिए यह आवश्यक है कि :

(*i*) $G = Gw$

तथा

(*ii*) $C = Cr$

जबकि C = वास्तविक पूँजी, पदार्थ, तथा

Cr = आवश्यक पूँजी पदार्थ।

यदि वास्तविक वृद्धि दर G तथा वांछित वृद्धि दर Gw बराबर नहीं हैं तो अर्थव्यवस्था असन्तुलन की स्थिति में रहेगी।

दीर्घकालीन स्फीति (Long run Inflation)—यदि वांछित वृद्धि दर Gw से वास्तविक वृद्धि दर G अधिक है अर्थात् $G > Gw$ तब आवश्यक पूँजी पदार्थ Cr से वास्तविक पूँजी पदार्थ C कम होंगे अर्थात् $C < Cr$। जब $G > Gw$ होती हैं, तब दुर्लभताएँ (Shortages) उत्पन्न होती हैं जिनका कारण वस्तुओं तथा उपकरणों की अपर्याप्तता होती है। इस प्रकार की स्थिति दीर्घकालीन स्फीति को जन्म देती है। इसका कारण यह है कि क्षमता में वृद्धि की दर से अधिक दर से आय में वृद्धि होती है जिसके परिणामस्वरूप पूँजीगत वस्तुओं की कमी हो जाती है जिसका कारण यह है कि पूँजीगत वस्तुओं की वास्तविक मात्रा आवश्यक पूँजीगत वस्तुओं से कम होती है अर्थात् $C > Cr$। इस प्रकार की स्थिति में अनुमानित विनियोग वास्तविक विनियोग से अधिक होगा तथा उत्पादन कुल माँग से कम रह जायेगा।

नोट

यह परिस्थितियाँ दीर्घकालीन स्फीति की दशाओं को उत्पन्न करेंगी।

दीर्घकालीन मन्दी (Long-run Deflation)–यदि वांछित वृद्धि की दर Gw वास्तविक वृद्धि दर G से कम है ($Gw < G$), तब आवश्यक पूँजी Cr से वास्तविक पूँजी C अधिक होगी। ($C > C r$)। इस प्रकार की परिस्थितियाँ दीर्घकालीन मन्दी को उत्पन्न करेंगी। इसका कारण यह है कि वास्तविक आय वृद्धि की दर आवश्यक आय वृद्धि की दर की तुलना में धीमी गति से बढ़ती है जिससे पूँजीगत वस्तुओं की अधिकता ($C > C r$) हो जाती है। दूसरे शब्दों में, अनुमानित विनियोग वास्तविक विनियोग से कम होंगे तथा कुल माँग कुल पूर्ति से कम रह जायेगी जिससे उत्पादन रोजगार तथा आय में कमी हो जायेगी। यह परिस्थितियाँ दीर्घकालीन मन्दी की दशाओं को उत्पन्न करेंगी।

दीर्घकालीन गतिहीनता (Secular Stagnation)–हैरोड के मतानुसार यदि Gw से G में विचलन उत्पन्न हो जाता है, तब यह सन्तुलनावस्था से दूर हो जाता है। अत: G तथा Gw में छुरी–धार सन्तुलन (Knife-edge Equilibrium) आवश्यक है। इस प्रकार सार्वजनिक नीति का उद्देश्य G तथा Gw में सन्तुलन बनाये रखना होना चाहिए। इस दृष्टि से हैरोड का तीसरा समीकरण अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है जो निम्नानुसार है–

$$Gn\ Cr \neq s$$

पूर्ण रोजगार सन्तुलन के लिए यह आवश्यक है कि $Gn = Gw = G$ जो कि छुरी–धार सन्तुलन की स्थिति है। यदि वृद्धि की प्राकृतिक दर Gn, वांछित दर Gw तथा वास्तविक दर G में किसी प्रकार का विचलन होता है, तब अर्थव्यवस्था में दीर्घकालीन अस्थिरता अथवा स्फीति/अवस्फीति की दशाएँ उत्पन्न हो जायेंगी।

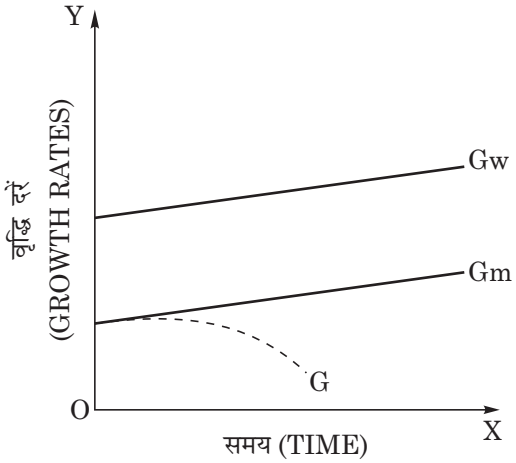

चित्र 4.2

यदि वास्तविक वृद्धि की दर वांछित वृद्धि की दर से अधिक है ($G > Gw$) तब विनियोग में वृद्धि बचतों की तुलना में अधिक तीव्रता से होगी तथा आय में वांछित वृद्धि की दर Gw की तुलना में अधिक तीव्रता से वृद्धि होगी। इसी प्रकार यदि वास्तविक वृद्धि दर G वांछित वृद्धि दर Gw से कम है ($G > Gw$), तब बचतों में वृद्धि विनियोग की अपेक्षा अधिक तीव्र गति से होगी तथा आय में वृद्धि (G) वांछित वृद्धि दर (Gw) की तुलना में कम होगी।

हैरोड के मतानुसार यदि वांछित वृद्धि की दर (Gw) पूर्ण क्षमता वृद्धि की दर (Gn) से अधिक है, तब दीर्घकालीन गतिहीनता (Secular Stagnation) की स्थिति उत्पन्न हो जायेगी। यहाँ वास्तविक वृद्धि दर (G) वांछित वृद्धि की दर (Gw) से अधिक होगी। इसका कारण यह है कि वास्तविक वृद्धि दर (G) पर उच्चतम सीमा (Upper Limit) प्राकृतिक वृद्धि दर (Gn) द्वारा लगायी जाती है। इस तथ्य को उपरोक्त चित्र द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता है।

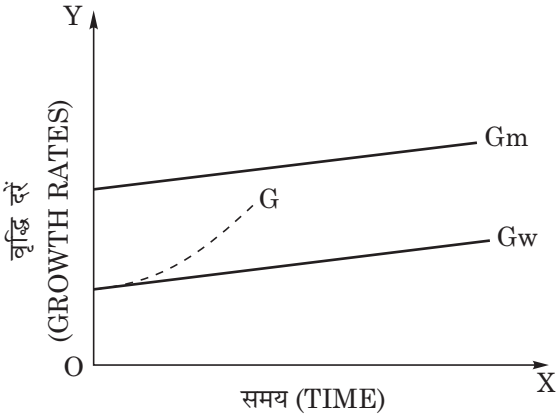

चित्र 4.3

जब पूर्ण क्षमता वृद्धि दर (Gn) से वांछित वृद्धि की दर (Gw) अधिक होती है ($Gw > Gn$), तब वास्तविक पूँजी (C) से आवश्यक पूँजी (Cr) अधिक होती है ($C > Cr$) तथा श्रम की कमी के कारण पूँजीगत वस्तुओं की अधिकता होती है। श्रम की कमी के कारण उत्पादन में वृद्धि की दर Gw के स्तर से नीचे रहती है। इस स्थिति में मशीनें बेकार हो जाती हैं तथा अर्थव्यवस्था में अधिक्षमता (Excess Capacity) रहती है। इसके परिणामस्वरूप विनियोग, उत्पादन, रोजगार

नोट

तथा आय में और भी अधिक कमी हो जाती है जिसके परिणामस्वरूप अर्थव्यवस्था में दीर्घकालीन मन्दी फैल जाती है। इस स्थिति में अर्थव्यवस्था की दृष्टि से बचतें एक बुराई का स्वरूप धारण कर लेती हैं।

जब वांछित वृद्धि की दर (Gw) प्राकृतिक वृद्धि दर (Gn) से कम होती है, तब G से Gw नीचे होती है जिससे दीर्घकालीन स्फीति की दशाएँ उत्पन्न हो जाती हैं। इसको चित्र 4.3 द्वारा दर्शाया जा सकता है–

जब पूर्ण क्षमता वृद्धि दर (Gn) से वांछित वृद्धि दर (Gw) कम होती है, तब वास्तविक पूँजी C से उपलब्ध पूँजी (Cr) कम होती है। ($C < Cr$) जिससे श्रम की अधिकता तथा पूँजीगत पदार्थों का अभाव होता है। इस स्थिति में वास्तविक विनियोग की तुलना में अनुमानित विनियोग अधिक होते हैं। इसके अतिरिक्त, व्यापारी वर्ग में अपने पूँजी भण्डारों में वृद्धि करने की प्रवृत्ति पायी जाती है। इससे दीर्घकालीन स्फीति की दशाएँ उत्पन्न हो जायेंगी। इस स्थिति में बचत को एक गुण कहा जा सकता है क्योंकि इससे वांछित वृद्धि दर Gw में वृद्धि होगी।

अत: हैरोड के मतानुसार यदि अर्थव्यवस्था में स्फीति अन्तराल (Inflationary Gap) है, तब बचतें एक गुण हैं किन्तु यदि अवस्फीति अन्तराल (Deflationary Gap) है, तब बचतें एक दोष हैं।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

2. सही विकल्प चुनिए (Choose the Correct option)

1. हैरोड का मॉडल कितनी वृद्धि दरों पर आधारित है–
   (क) तीन (ख) दो
   (ग) चार (घ) पाँच।
2. हैरोड ने वास्तविक वृद्धि दर को व्यक्त किया है–
   (क) C द्वारा (ख) I द्वारा
   (ग) ΔY द्वारा (घ) G द्वारा
3. अर्थव्यवस्था असन्तुलन की स्थिति में रहेगी यदि
   (क) $C = Cr$ (ख) $G = Gw$
   (ग) $I = S$ (घ) $GwCr = S$
4. हैरोड के अनुसार यदि अर्थव्यवस्था में स्फीति अन्तराल है तब बचतें हैं–
   (क) गुण (ख) दोष
   (ग) दोनों (घ) इनमें से कोई नहीं।

4.4 डोमर का मॉडल (The Domar Model)

डोमर ने 1947 में अपने मॉडल का विकास किया जिसका प्रकाशन मार्च 1947 में *'American Economic Review'* में हुआ। यह मॉडल मूलत: कीन्स की विचारधारा पर आधारित है। डोमर के मतानुसार कीन्स के मॉडल में अनेक कमियाँ हैं, जैसे–(*i*) कीन्स के मतानुसार बेरोजगारी का प्रमुख कारण जमाखोरी (Hoarding) है किन्तु डोमर का मत है कि यदि जमाखोरी समाप्त भी हो जाए (अर्थात् विनियोग करने से), तब भी पूर्ण रोजगार की स्थिति को प्राप्त कर सकना सम्भव नहीं होगा। (*ii*) कीन्स ने अपने सिद्धान्त से माँग वृद्धि को अधिक महत्त्व प्रदान किया है किन्तु विनियोग की मात्रा तथा दर की ओर उन्होंने ध्यान नहीं दिया है।

डोमर के मॉडल की मुख्य विषय-वस्तु यह है कि विनियोग से एक ओर तो आय का सृजन होता है तथा दूसरी ओर उत्पादन क्षमता में वृद्धि होती है, अत: पूर्ण रोजगार को बनाये रखने के लिए विनियोग में किस दर से वृद्धि हो जिससे कि उत्पादन-क्षमता में वृद्धि आय वृद्धि के बराबर हो। डोमर इस प्रश्न का उत्तर विनियोग के माध्यम से कुल पूर्ति तथा कुल माँग के बीच सम्बन्ध स्थापित करके प्रस्तुत करते हैं।

नोट

डोमर के मतानुसार पूँजीवादी अर्थव्यवस्था से पूर्ण रोजगार स्तर बनाये रखने के लिए आय में निरन्तर वृद्धि आवश्यक होती है। डोमर के सिद्धान्त में विनियोग की दोहरी भूमिका है–प्रथम, इससे व्यक्तियों की आय में वृद्धि होती है तथा द्वितीय, उत्पादन क्षमता में वृद्धि होती है तथा वस्तुओं की पूर्ति भी बढ़ती है। किसी अर्थव्यवस्था में जब उत्पादन क्षमता के बराबर वास्तविक आय में वृद्धि होगी, वहीं पूर्ण रोजगार की स्थिति कायम होगी। विनियोग के उत्पादन–क्षमता को पूर्ति पक्ष (Supply Side) तथा वास्तविक आय–वर्धक–क्षमता को माँग पक्ष (Demand Side) कहा जाता है।

उत्पादक–क्षमता में वृद्धि (Increase in Productive Capacity)–डोमर ने पूर्ति पक्ष को निम्नानुसार प्रस्तुत किया–

मान लीजिए कि–

(*i*) विनियोग की वार्षिक दर I है; तथा

(*ii*) नव–निर्मित पूँजी की प्रति डालर प्रति वर्ष उत्पादन क्षमता औसतन s है (यह उत्पादन में वृद्धि के पूँजी में वृद्धि के अनुपात अथवा वास्तविक आय अथवा सीमान्त पूँजी–उत्पादन अनुपात (Capital-output Ratio) तथा त्वरक (Accelerator) के व्युत्क्रम (Reciprocal) को व्यक्त करता है।

अत: यदि I डालर विनियोग किया जाये, तब उसकी उत्पादन क्षमता I-s डालर प्रति वर्ष होगी।

किन्तु नया विनियोग कुछ पुराने को खोकर ही सम्भव होगा। इस प्रकार श्रम, बाजार तथा उत्पादन के अन्य साधनों के लिए पुराने विनियोग से इसकी प्रतियोगिता होगी जिससे कि पुराने संयन्त्रों के उत्पादन में कुछ कमी होगी तथा अर्थव्यवस्था के वार्षिक उत्पादन (उत्पादन क्षमता) में I-s से थोड़ी कम ही वृद्धि होगी जिसे $I\sigma$ के द्वारा व्यक्त किया जा सकता है। यहाँ σ से तात्पर्य विनियोग की औसत उत्पादकता (Average Productivity & Investment) अथवा सामाजिक क्षमता (Social Potential) है। सूत्र रूप में इसे निम्नानुसार व्यक्त किया जा सकता है–

$$\sigma = \frac{\Delta Y}{I}$$

इस प्रकार $I\sigma < I - s$

$I\sigma$ अर्थव्यवस्था का उत्पादन में समग्र विशुद्ध सम्भावित वृद्धि (Total Net Potential Increase in Output) है। इसे सिग्मा प्रभाव (Sigma Effect) कहा जाता है।

कुल माँग में अपेक्षित वृद्धि (Required Increase in Aggregate Demand)–डोमर ने माँग का विश्लेषण कीन्स के गुणक के द्वारा किया है–

मान लीजिए कि– ΔY = आय में वार्षिक वृद्धि

ΔI = विनियोग में वृद्धि

तथा $\propto = \frac{\Delta s}{\Delta Y}$ = सीमान्त बचत प्रवृत्ति

तब आय में वृद्धि = विनियोग में वृद्धि के गुणक के $\left(\frac{1}{\propto}\right)$ गुणा होगी।

आय में वृद्धि के विनियोग में वृद्धि के गुणक के $\left(\frac{1}{\propto}\right)$ गुणा वृद्धि का कारण यह है कि $\propto$ = सीमान्त बचत प्रवृत्ति

तथा $\frac{1}{\propto} = \frac{1}{(1 - MPC)}$।

अत: $\Delta Y = \Delta I \frac{1}{\propto}$

साम्यावस्था (Equilibrium)

आय का पूर्ण रोजगार सन्तुलन स्तर पर बने रहने के लिए यह आवश्यक है कि कुल माँग, कुल पूर्ति के बराबर हो।

नोट

डोमर का आधारभूत समीकरण निम्नानुसार है–

$$\Delta I = \frac{1}{\propto} = I\sigma$$

दोनों पक्षों को I से विभाजित किया जाये तथा $\propto$ से गुणा, तब–

$$\Delta I \times \frac{1}{\propto} \times \frac{1}{I} \times \propto = I\sigma \times \frac{1}{I} \times \propto$$

अथवा $$\frac{\Delta I}{I} = \propto \sigma$$

यदि दोनों पक्षों को $\frac{I}{\propto}$ से गुणा किया जाये, तब

$$\frac{\Delta I}{I} \times \frac{I}{\propto} = \propto \sigma \times \frac{I}{\propto}$$

अथवा $$\Delta \frac{I}{\propto} = I\sigma$$

किन्तु $$I\sigma = \Delta I \frac{I}{\propto}$$

तथा $$\Delta I \frac{I}{\propto} = \Delta Y$$

अत: $$I\sigma = \Delta Y$$

उपरोक्त समीकरण से स्पष्ट है कि पूर्ण रोजगार स्तर को बनाये रखने के लिए यह आवश्यक है कि–

$$\frac{\Delta I}{I} = \propto \sigma$$

जबकि $\frac{\Delta I}{I}$ विशुद्ध स्वतन्त्र (Autonomous) विनियोग की दर है तथा $\propto \sigma$ सीमान्त बचत प्रवृत्ति ($\propto$) तथा विनियोग की उत्पादक (σ) का गुणनफल है अत: पूर्ण रोजगार स्तर तभी कायम रह सकता है जबकि $\frac{\Delta I}{I}$ (शुद्ध स्वतन्त्र विनियोग की दर) $\propto \sigma$ के बराबर हो। $\propto \sigma$ सीमान्त बचत प्रवृत्ति ($\propto$) तथा विनियोग की उत्पादकता (σ) का गुणनफल है।

डोमर ने अपने मॉडल को निम्न संख्यात्मक उदाहरण द्वारा व्यक्त किया है–

मान लीजिए कि,

उत्पादन क्षमता (σ) = 25% प्रति वर्ष

सीमान्त बचत प्रवृत्ति ($\propto$) = 12% प्रति वर्ष

आय (Y) 150 बिलियन प्रति वर्ष

पूर्ण रोजगार स्तर को बनाये रखने के लिए आवश्यक विनियोग = $\frac{150 \times 12}{100}$ = 18 बिलियन डालर विनियोग आवश्यक है।

परिणामस्वरूप इससे उत्पादन क्षमता में विनियोजित मात्रा की σ गुना वृद्धि होगी अर्थात् $150 \times \frac{12}{100} \times \frac{12}{100} = 4.5$ बिलियन डालर। इससे राष्ट्रीय आय में भी इतनी ही वृद्धि होगी किन्तु आय में सापेक्ष (Relative) वृद्धि आय द्वारा विभक्त

नोट

निरपेक्ष वृद्धि के बराबर होगी, यथा–

$$150 \times \frac{\frac{12}{100} \times \frac{25}{100}}{150} = \frac{12}{100} \times \frac{25}{100} = \propto \sigma = 3\%$$

इस प्रकार पूर्ण रोजगार स्तर को बनाये रखने के लिए आय में 3% प्रति वर्ष की दर से वृद्धि आवश्यक है। इस सुनहरी मार्ग से विचलन (Divergence) के परिणामस्वरूप चक्रीय परिवर्तन (Cyclical Fluctuations) होंगे।

जब $\propto \sigma$ की अपेक्षा $\frac{\Delta I}{I}$ अधिक होगा, तब अर्थव्यवस्था में तेजी (Boom) होगी तथा जब $\propto \sigma$ से $\frac{\Delta I}{I}$ कम होगा, तब अर्थव्यवस्था में मन्दी होगी।,

क्या आप जानते हैं विनियोग के दो पहलू है–एक ओर विनियोग आय का सृजन करते हैं और दूसरी ओर पूँजी के स्टॉक में वृद्धि के कारण ये अर्थव्यवस्था की उत्पादन क्षमता में वृद्धि करते हैं।

हैरोड -डोमर मॉडल की अल्प-विकसित देशों की दृष्टि से सीमाएँ (Limitations of Harrod-Domar Models from the Stand-point of Underdeveloped Countries)

हैरोड -डोमर मॉडल औद्योगिक दृष्टि से विकसित अर्थव्यवस्थाओं की समस्याओं पर आधारित हैं। इन अर्थव्यवस्थाओं की प्रमुख समस्या दीर्घकालीन स्थिरता तथा उच्चावचनों की है। यह मॉडल उस आय वृद्धि की दर को निर्धारित करने का प्रयास करता है जिससे कि अर्थव्यवस्था में दीर्घकालीन स्थिरता बनी रहे तथा साथ ही साथ उसमें उच्चावचन भी न हो। किन्तु अर्द्धविकसित देशों की समस्या उच्चावचनों की नहीं बल्कि आर्थिक विकास की है। हैरोड -डोमर मॉडल अर्द्धविकसित अर्थव्यवस्थाओं में अनेक कारणों से लागू नहीं होता है जिनमें से निम्नलिखित महत्वपूर्ण हैं–

1. **परिस्थितियों में भिन्नता** (Different Conditions)–हैरोड -डोमर मॉडल का विकास विकसित देशों की अर्थव्यवस्थाओं को ध्यान में रखते हुए किया गया है। इस मॉडल के विकास का उद्देश्य विकसित अर्थव्यवस्थाओं को दीर्घकालीन गतिहीनता के सम्भावित प्रभावों से बचाना है। इस मॉडल का यह उद्देश्य नहीं है कि अर्द्धविकसित अर्थव्यवस्था में विकास के कार्यक्रमों के लिए दिशा-निर्देश प्रदान किये जायें।
2. **सरकारी हस्तक्षेप** (Government Intervention)–यह मॉडल इस मान्यता पर आधारित है कि सरकार आर्थिक गतिविधियों में किसी भी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं करती है। किन्तु अर्द्धविकसित देशों में आर्थिक गतिविधियों में सरकारी हस्तक्षेप के बिना वांछित गति से आर्थिक विकास सम्भव नहीं है। इन देशों में सरकार को पथ-प्रदर्शक की भूमिका का निर्वाह करना पड़ता है।
3. **बेरोजगारी की समस्या के स्वरूप की विभिन्नता** (Difference in the Form of Unemployment)– **प्रो. कुरिहारा** (Kurihara) के अनुसार इस मॉडल द्वारा प्रस्तावित विनियोग की वृद्धि दर अल्प-विकसित देशों में पायी जाने वाली बेरोजगारी की समस्या का निदान प्रदान कर सकने में असमर्थ है। यह मॉडल विकसित देशों की बेरोजगारी की समस्या को हल करने में भले ही सफल हो किन्तु अर्द्ध विकसित देशों की बेरोजगारी तथा छिपी हुई बेरोजगारी को दूर कर सकने में सफल नहीं होगा।
4. **निम्न बचत-अनुपात** (Low Saving Ratio)–इस मॉडल की विशेषता ऊँचा बचत अनुपात (High Saving Ratio) तथा ऊँची पूँजी-उत्पादन अनुपात (High Capital-output Ratio) है। अर्द्ध विकसित देशों में जनसंख्या का अधिकांश भाग जीवन-निर्वाह स्तर (Subsistence Level) पर रहता है जिनके बचत करने का प्रश्न ही नहीं उठता है। इस प्रकार इन देशों में बचत करने वाले व्यक्तियों का प्रतिशत कुल जनसंख्या का बहुत ही कम प्रतिशत है। इन देशों में बचत तथा विनियोग का निर्णय सामान्यत: एक ही वर्ग लेता है।

नोट

5. **संरचनात्मक बेरोजगारी** (Structural Unemployment)–**प्रो. कुरिहारा** के मतानुसार यह मॉडल पूँजी के पूर्ण उपयोग का तो दावा करता है किन्तु श्रम के पूर्ण रोजगार का नहीं। हैरोड -डोमर द्वारा समझायी गयी विकास की दर प्रभावपूर्ण माँग की कमी से उत्पन्न होने वाली माँग की समस्या का ही निदान प्रस्तुत कर सकती है। अर्द्धविकसित देशों की संरचनात्मक बेरोजगारी की समस्या का निदान केवल प्रभावपूर्ण माँग में वृद्धि करने मात्र से ही कर सकना सम्भव नहीं है। वास्तव में, संरचनात्मक बेरोजगारी की समस्या के उदय का प्रमुख कारण यह है कि जिस दर से जनसंख्या में वृद्धि होती है, उस दर से पूँजी संचय में वृद्धि नहीं होती है।
6. **निम्न पूँजी-उत्पादन अनुपात** (Low Capital-output Ratio)–अर्द्धविकसित देशों में दुर्लभताओं तथा अड़चनों के कारण सामान्य उत्पादकता प्रायः अवरुद्ध हो जाती है जिससे पूँजी-उत्पादन अनुपात का सही-सही अनुमान लगा सकना सम्भव नहीं होता है। यदि इन अवरोधों को दूर कर दिया जाता है, तब पूर्व में विनियोजित पूँजी की उत्पादकता में पर्याप्त वृद्धि हो जाती है जिससे पूँजी-उत्पादन अनुपात निम्न होता है। इस कारण से इस प्रकार की अर्थव्यवस्थाओं को अपनी उत्पादन विधियों में सुधार कर तथा विनियोग की विभिन्न बाधाओं को दूर कर अपने बचत अनुपात को बढ़ाना पड़ेगा अथवा पूँजी-उत्पादन अनुपात को बढ़ाना आवश्यक होगा। **प्रो. हर्षमैन** के मतानुसार बचत-प्रवृत्ति तथा पूँजी-उत्पादन अनुपात पर आधारित मॉडल का "पूर्वसूचक तथा व्यवहार-योग्य मूल्य (Predictive and Operational Value) बहुत ही कम होता है। क्या विकसित अर्थव्यवस्थाओं की तुलना में अर्द्धविकसित अर्थव्यवस्थाओं में उपयोगिता भी कम होती है।
7. **अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार** (Foreign Trade)–यह मॉडल बन्द अर्थव्यवस्था की मान्यता पर आधारित है किन्तु अर्द्धविकसित अर्थव्यवस्थाएँ बन्द अर्थव्यवस्थाएँ नहीं बल्कि खुली अर्थव्यवस्थाएँ हैं। इन अर्थव्यवस्थाओं में आर्थिक विकास की दृष्टि से अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार तथा विदेशी सहायता का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है।
8. **संस्थागत परिवर्तन** (Institutional Changes)–इन विकास मॉडलों में संस्थागत तत्वों को स्थिर मान लिया जाता है किन्तु संस्थागत परिवर्तनों के अभाव में अर्द्धविकसित देशों का विकास सम्भव ही नहीं है।
9. **मूल्यों में परिवर्तन** (Price Changes)–इसमें मान लिया जाता है कि मूल्यों में किसी प्रकार का कोई भी परिवर्तन नहीं होता है किन्तु अर्द्धविकसित देशों में आर्थिक विकास के साथ मूल्यों में परिवर्तन हो जाता है।

एच. डब्ल्यू. सिंगर (H. W. Singer) के अनुसार हैरोड -डोमर का मॉडल विकसित देशों के लिए 'आशावादी-मॉडल' है किन्तु अर्द्धविकसित देशों के लिए इस मॉडल में निराशावादी विचार ही सामने आते हैं। इस प्रकार अर्द्धविकसित देशों के लिए इस मॉडल की व्यावहारिकता नहीं के बराबर है क्योंकि यह अवास्तविक मान्यताओं पर आधारित है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

3. रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks)–

1. डोमर ने अपने मॉडल का विकास ..... ई. में किया था।
2. पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में पूर्ण ..... की स्थिति बनाएं रखने के लिए आय में निरन्तर वृद्धि आवश्यक होती है।
3. डोमर के सिद्धान्त में ..... की दोहरी भूमिका होती है।
4. विनियोग की वार्षिक ..... है।

4.5 सारांश (Summary)

- हैरोड तथा डोमर (Harrod and Domar) के आर्थिक वृद्धि के मॉडल औद्योगिक दृष्टि से विकसित अर्थव्यवस्थाओं के अनुभव तथा उनकी समस्याओं पर आधारित हैं।
- हैरोड तथा डोमर दोनों ने ही सतत् तथा निर्बाधित कार्यकरण (Uninterrupted Working) के लिए ऐसी आवश्यक वृद्धि दर को खोजने का प्रयत्न किया है जिससे अर्थव्यवस्था निरन्तर साम्य की स्थिति में बनी रहे।

नोट

- विश्लेषण के दृष्टिकोण से विनियोग की दोहरी भूमिका होती है–प्रथम, यह आय में वृद्धि करता है तथा द्वितीय, यह अर्थव्यवस्था में पूँजी-परिसम्पत्ति की वृद्धि करता है।
- हैरोड ने अपने मॉडल में यह प्रदर्शित करने का प्रयास किया है कि अर्थव्यवस्था में किस प्रकार सतत् वृद्धि (अर्थात् सन्तुलन) की स्थिति पायी जाती है। यदि सतत् वृद्धि की दर किसी कारण से परिवर्तित हो जाती है, तब अर्थव्यवस्था के असन्तुलन की स्थिति उत्पन्न हो जाती है
- हैरोड मॉडल में उत्पादक तथा उपभोक्ताओं द्वारा आय की वृद्धि को प्रभावित करने से संबंधित दो मान्यताएँ हैं।
- हैरोड का यह मत है कि (*i*) वास्तविक बचत = वास्तविक विनियोग।
- आय का व्यवहार उपरोक्त संबंध को स्पष्ट करता है। उपरोक्त संबंध में आय (Y) पर औसत बचत प्रवृत्ति (*s*) निर्भर करती है तथा विनियोग (I) आय में वृद्धि (ΔY) पर निर्भर करता है, इसलिए उपरोक्त त्वरक सिद्धांत (Acceleration Principle) है।
- हैरोड के मतानुसार वांछित वृद्धि की दर उस दर को कहा जाता है जिस पर उत्पादक जो कुछ भी कर रहे, संतुष्ट होंगे। इस प्रकार यह साहसियों से साम्य (Entrepreneurial Equilibrium) को व्यक्त करता है।
- G*n* C*r* औसत बचत प्रवृत्ति के बराबर हो भी सकती है और नहीं भी हो सकती है।
- हैरोड के वृद्धि सिद्धान्त से यह स्पष्ट हो जाता है कि विकसित अर्थव्यवस्था में स्थिति की माँग के अनुसार '*s*' में कमी अथवा वृद्धि करना आवश्यक होता है।
- यदि वास्तविक वृद्धि दर G तथा वांछित वृद्धि दर G*w* बराबर नहीं हैं तो अर्थव्यवस्था असन्तुलन की स्थिति में रहेगी।
- यदि वांछित वृद्धि दर G*w* से वास्तविक वृद्धि दर G अधिक है अर्थात् G > G*w* तब आवश्यक पूँजी पदार्थ C*r* से वास्तविक पूँजी पदार्थ C कम होंगे अर्थात् C < C*r*।
- यदि वांछित वृद्धि की दर G*w* वास्तविक वृद्धि दर G से कम है (G*w* < G), तब आवश्यक पूँजी C*r* से वास्तविक पूँजी C अधिक होगी। (C > C *r*)। इस प्रकार की परिस्थितियाँ दीर्घकालीन मन्दी को उत्पन्न करेंगी।
- सार्वजनिक नीति का उद्देश्य G तथा G*w* में सन्तुलन बनाये रखना होना चाहिए।
- पूर्ण रोजगार सन्तुलन के लिए यह आवश्यक है कि G*n* = G*w* = G जो कि छुरी-धार सन्तुलन की स्थिति है।
- जब वांछित वृद्धि की दर (G*w*) प्राकृतिक वृद्धि दर (G*n*) से कम होती है, तब G से G*w* नीचे होती है जिससे दीर्घकालीन स्फीति की दशाएँ उत्पन्न हो जाती हैं।
- हैरोड के मतानुसार यदि अर्थव्यवस्था में स्फीति अन्तराल (Inflationary Gap) है, तब बचतें एक गुण हैं किन्तु यदि अवस्फीति अन्तराल (Deflationary Gap) है, तब बचतें एक दोष हैं।
- डोमर ने 1947 में अपने मॉडल का विकास किया जिसका प्रकाशन मार्च 1947 में *'American Economic Review'* में हुआ। यह मॉडल मूलत: कीन्स की विचारधारा पर आधारित है।
- डोमर के मॉडल की मुख्य विषय-वस्तु यह है कि विनियोग से एक ओर तो आय का सृजन होता है तथा दूसरी ओर उत्पादन क्षमता में वृद्धि होती है
- डोमर के मतानुसार पूँजीवादी अर्थव्यवस्था से पूर्ण रोजगार स्तर बनाये रखने के लिए आय में निरन्तर वृद्धि आवश्यक होती है। डोमर के सिद्धान्त में विनियोग की दोहरी भूमिका है–प्रथम, इससे व्यक्तियों की आय में वृद्धि होती है तथा द्वितीय, उत्पादन क्षमता में वृद्धि होती है तथा वस्तुओं की पूर्ति भी बढ़ती है।
- विनियोग के उत्पादन-क्षमता को पूर्ति पक्ष (Supply Side) तथा वास्तविक आय-वर्धक-क्षमता को माँग पक्ष (Demand Side) कहा जाता है।
- Iσ अर्थव्यवस्था का उत्पादन में समग्र विशुद्ध सम्भावित वृद्धि (Total Net Potential Increase in Output) है। इसे सिग्मा प्रभाव (Sigma Effect) कहा जाता है।

नोट

- आय का पूर्ण रोजगार सन्तुलन स्तर पर बने रहने के लिए यह आवश्यक है कि कुल माँग, कुल पूर्ति के बराबर हो।
- हैरोड -डोमर मॉडल औद्योगिक दृष्टि से विकसित अर्थव्यवस्थाओं की समस्याओं पर आधारित हैं। इन अर्थव्यवस्थाओं की प्रमुख समस्या दीर्घकालीन स्थिरता तथा उच्चावचनों की है।
- अर्द्धविकसित देशों की समस्या उचावचनों की नहीं बल्कि आर्थिक विकास की है। हैरोड -डोमर मॉडल अर्द्धविकसित अर्थव्यवस्थाओं में अनेक कारणों से लागू नहीं होता है
- हैरोड -डोमर का मॉडल विकसित देशों का 'आशावादी-मॉडल' है किन्तु अर्द्धविकसित देशों के लिए इस मॉडल में निराशावादी विचार ही सामने आते हैं।

4.6 शब्दकोश (Keywords)

- **निर्बाधित–** बाधारहित कार्य करना।
- **मौद्रिक–** मुद्रा से सम्बन्धित कार्यकलाप।
- **अनन्त जीवी–** दीर्घजीवी अर्थात अधिकतम समय तक जीवित रहनेवाला।

4.7 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. हैरोड -डोमर मॉडल की व्याख्या कीजिए। यह किस सीमा तक अर्द्धविकसित देशों पर लागू होता है।
2. हैरोड -डोमर के वृद्धि मॉडल की व्याख्या कीजिए तथा इसमें निहित वृद्धि अस्थिरता के तत्वों को समझाइए।
3. आय की सतत् वृद्धि के लिए आवश्यक शर्तों के निर्धारण में प्रयुक्त किसी एक मॉडल का परीक्षण कीजिए।
4. डोमर के आर्थिक संवृद्धि के प्रारूप की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।
5. हैरोड आर्थिक समृद्धि मॉडल की व्याख्या कीजिए। ऐसा क्यों कहा जाता है कि हैरोड मॉडल में संस्थिति की स्थिति चाकू के धार पर होती है।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

1.	1. सत्य	2. असत्य	3. सत्य	4. सत्य
2.	1. (क)	2. (घ)	3. (ख)	4. (क)
3.	1. 1947	2. रोजगार	3. विनियोग	4. दर

4.8 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. *संवृद्धि एवं विकास का अर्थशास्त्र*: डॉ. जे. पी. मिश्रा: साहित्य भावन पब्लिकेशन्स: आगरा
2. *विकास नियोजन एवं नीतियाँ*: वी. सी. सिन्हा: साहित्य भवन पब्लिकेशन्स एंड डिस्ट्रीव्यूटर्स (प्रा.) लि. रिजिस्टर्ड कार्यालय नई दिल्ली
3. *विकास का अर्थशास्त्र एवं आयोजन*: डॉ. एम. एल. झिंगन: वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा. लि.

नोट

इकाई–5: वृद्धि का नव-क्लासिकी मॉडल (Neo-Classical Growth Models)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

5.1 बृद्धि का नव-क्लासिकी मॉडल (Neo-Classical Growth Models)

5.2 मॉडल (The Model)

5.3 सारांश (Summary)

5.4 शब्दकोश (Keywords)

5.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

5.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- बृद्धि का नव-क्लासिकी मॉडल की विवेचना करने में।
- मॉडल को जानने में।

प्रस्तावना (Introduction)

केम्ब्रिज विश्वविद्यालय के प्रो॰ जे॰ ई॰ मीड[1] ने आर्थिक वृद्धि का नव-क्लासिकी मॉडल निर्मित किया है, जिसका "उद्देश्य यह प्रकट करना है कि संतुलन वृद्धि की प्रक्रिया के दौरान सरलतम क्लासिकी आर्थिक प्रणाली का व्यवहार क्या होगा।"

5.1 वृद्धि का नव-क्लासिकी मॉडल (Neo-Classical Growth Models)

प्रोफेसर मीड ने निम्नलिखित मान्यताओं के गिर्द अपने मॉडल का निर्माण किया है :

(*i*) स्वतन्त्र बन्द अर्थव्यवस्था होती है जिसमें पूर्ण प्रतियोगिता पाई जाती है।

(*ii*) पैमाने के स्थिर प्रतिफल पाए जाते हैं।

(*iii*) अर्थव्यवस्था में दो वस्तुएँ–उपभोग-वस्तुएँ तथा पूँजी-वस्तुएँ–उत्पादित होती हैं।

(*iv*) अर्थव्यवस्था में मशीनें ही पूँजी का एकमात्र रूप हैं।

(*v*) सब मशीनें एक जैसी मान ली जाती हैं।

(*vi*) यह मान लिया जाता है कि उपभोग वस्तुओं की स्थिर मुद्रा कीमत होती है।

(*vii*) भूमि तथा श्रम का पूर्ण प्रयोग होता है।

1. A Neo-classical Theory of Economic Growth, 1961.

नोट

(*viii*) अल्पकालीन तथा दीर्घकालीन दोनों में ही श्रम का मशीनरी से अनुपात बदला जा सकता है। मीड इसे मशीनरी की पूर्ण लोचता की मान्यता कहता है।

(*ix*) यह भी मान लिया जाता है कि पूँजी-वस्तुओं तथा उपभोग-वस्तुओं के बीच उत्पादन में पूर्ण स्थानापन्नता होती है।

(*x*) वाष्पीकरण द्वारा मूल्यह्रास की मान्यता है, अर्थात् प्रतिवर्ष मशीनों की कुछ प्रतिशतता घिस जाती है, जिसके पुनः स्थापन की आवश्यकता होती है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

1. रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks)–

1. मीड के मॉडल में पैमाने के ····· प्रतिफल पाए जाते हैं।
2. उपभोग वस्तुओं की स्थिर ····· कीमत होती है।
3. अर्थव्यवस्था में उपभोग-वस्तुएँ तथा ····· उत्पादित की जाती हैं।
4. अर्थव्यवस्था में मशीनें ही ····· का एकमात्र रूप हैं।

5.2 मॉडल (The Model)

उपरिनिर्दिष्ट अर्थव्यवस्था में शुद्ध उत्पादन (Net output) चार तत्वों पर निर्भर करती है :

(*i*) मशीनों के रूप में उपलब्ध पूँजी का शुद्ध स्टॉक;

(*ii*) उपलब्ध श्रम शक्ति की मात्रा;

(*iii*) भूमि तथा प्राकृतिक साधनों की प्राप्यता; और

(*iv*) तकनीकी ज्ञान की स्थिति, जिसमें कालपर्यन्त (over time) सुधार होता चलता है। यह सम्बन्ध उत्पादन फलन के रूप में भी व्यक्त किया जाता है,

$$Y = F (K, L, N, t)$$

जहाँ Y शुद्ध उत्पादन या शुद्ध राष्ट्रीय आय है, K पूँजी का वर्तमान स्टॉक (मशीनें), L श्रम-शक्ति, N भूमि तथा प्राकृतिक साधन और t समय है जो तकनीकी प्रगति को प्रकट करते हैं।

1. राष्ट्रीय आय (National Income) – भूमि अथवा प्राकृतिक साधनों की मात्रा को स्थिर मान लेने से, किसी भी एक वर्ष में K, L और t में वृद्धि होने पर शुद्ध उत्पादन (राष्ट्रीय आय) में वृद्धि को यूँ व्यक्त किया जा सकता है।

$$\Delta Y = MPP_k \Delta K + MPP_L \Delta L + \Delta Y' \quad ...(1)$$

जहां Δ प्रत्येक स्थिति में वृद्धि को प्रकट करता है, MPP_k पूँजी का सीमान्त उत्पादन, ΔK मशीनरी के स्टॉक में वृद्धि, MPP_L श्रम का सीमान्त उत्पादन, श्रम की मात्रा में वृद्धि ΔL और t के स्थान पर Y' रखने से एवं तकनीकी प्रगति के कारण वार्षिक उत्पादन की वृद्धि-दर ΔY द्वारा व्यक्त की गई है।

उत्पादन की वार्षिक आनुपातिक वृद्धि-दर को दिखाने के लिए समीकरण (1) को दोनों तरफ से Y से विभाजित करने से,

$$\frac{\Delta Y}{Y} = \frac{MPP_K}{Y} (\Delta K) + \frac{MPP_L}{Y} (\Delta L) + \frac{\Delta Y'}{Y}$$

समीकरण को पूर्णरूप से दिखाने के लिए पूँजी-स्टॉक की आनुपातिक वृद्धि-दर व श्रम-शक्ति की आनुपातिक वृद्धि-दर को भी व्यक्त किया जाता है। इसलिए ΔK को K से गुणा व K से विभाजित और ΔL को L से गुणा व L से विभाजित करते हैं :

नोट

$$\frac{\Delta Y}{Y} = \frac{MPP_K}{Y}\left(\frac{\Delta K}{K}\right)K + \frac{MPP_K}{Y}\left(\frac{\Delta L}{L}\right)L + \frac{\Delta Y'}{Y}$$

जहाँ $\Delta Y/Y$ उत्पादन की आनुपातिक वृद्धि दर, $\Delta K/K$ पूँजी के स्टॉक की आनुपातिक वृद्धि दर, $\Delta L/L$ श्रम की आनुपातिक वृद्धि दर और $\Delta Y'/Y$ तकनीकी प्रगति की आनुपातिक वृद्धि दर है।

हम इन आनुपातिक वृद्धि-दरों को क्रमशः y, k, l तथा r से व्यक्त करते हैं। अतः आधारभूत समीकरण (2) इस प्रकार से होगा–

$$y = Uk + Ql + r \qquad ...(2)$$

समीकरण (2) यह बता रहा है कि आय की वृद्धि-दर (y), पूँजी के आनुपातिक सीमान्त उत्पादन (U) द्वारा भारित योग (weighted sum) पूँजी के स्टॉक में वृद्धि की दर (k) जमा श्रम के सीमान्त उत्पादन (Q) द्वारा भारित जनसंख्या की वृद्धि-दर (l) जमा तकनीक की वृद्धि-दर (r) का योग है।

2. प्रति व्यक्ति वास्तविक आय (Real per capita income) – लेकिन अर्थव्यवस्था की वास्तविक वृद्धि का सूचक आय (y) की वृद्धि-दर की अपेक्षा प्रति व्यक्ति वास्तविक आय की वृद्धि-दर है।[2]

प्रति व्यक्ति वास्तविक आय की वृद्धि-दर

$$\begin{aligned} y - l &= U_k + Ql + r - l \\ &= U_k - l + Ql + r \\ &= U_k - (1 - Q)\, l + r \end{aligned}$$

समीकरण में $[-(1-Q)l]$ भाग घटते प्रतिफल की प्रवृत्ति को प्रकट करता है जबकि भूमि एवं पूँजी की दी हुई मात्रा पर श्रम की मात्रा बढ़ती है।

3. पूँजी संचय (Capital accumulation) – अर्थव्यवस्था की वृद्धि-दर वास्तव में एक अन्य महत्त्वपूर्ण साधन पूँजी-संचय की वार्षिक दर से भी निर्धारित होती है जो कि समीकरण (2) के U_k तथ्य [2]उदाहरणार्थ, यदि कुल आय (y) 10 प्रतिशत बढ़ती है और जनसंख्या (l) 8 प्रतिशत से, ऐसी अवस्था में प्रतिव्यक्ति आय $(y - l) = (10 - 8) = 2$ प्रतिशत से बढ़ेगी। में निहित है :

$$U_k = \frac{MPP_K}{Y}\left(\frac{\Delta k}{K}\right)K$$

लेकिन पूँजी स्टॉक में वृद्धि-दर शुद्ध राष्ट्रीय आय में से बचतों के बराबर है:

$$\Delta K = I = sY$$

$$\therefore \qquad U_k = \frac{MPP_K}{Y}\left(\frac{sY}{K}\right)K$$

अथवा $\qquad U_k = MPP_k\, s$

अथवा $\qquad U_k = vs \qquad [MPP_k = v]$

आधारभूत समीकरण (2) में $U_k = vs$ रखने से, $y - l = vs - (1 - Q)\, l + r$

टास्क क्या नव-क्लासिकी मॉडल की मान्यताएँ अर्द्धविकसित अर्थव्यवस्था पर लागू होती हैं?

4. तकनीकी प्रगति (Technical progress) – यदि तकनीकी प्रगति (r) व जनसंख्या (l) की वृद्धि दर को स्थिर मान लिया जाए, तब ऐसी स्थिति में बचतों की दर में वृद्धि प्रति व्यक्ति पूँजी को बढ़ा देगी और पूँजी की सीमांत उत्पादन (v) में कमी ला देगी। यदि भूमि व श्रम के स्थान पर पूँजी का स्थानापन्न संभव होगा तो पूँजी की सीमांत उत्पादन (v) में कमी अपेक्षाकृत कम होगी और तकनीकी प्रगति (r) के प्रभाव के कारण (v) में वृद्धि होगी जो आने वाले समय में प्रति व्यक्ति आय की दर में वृद्धि करने में सहायक होगी। इस प्रकार साधनों द्वारा बढ़ाए गए अधिक लाभों में आय वितरण में परिवर्तन के कारण बचत (s) की और बढ़ने की संभावना रहेगी।

नोट

स्थिर जनसंख्या ($l = 0$) होने पर प्रति व्यक्ति वास्तविक आय पूँजी-संचय की दर (vs) व तकनीकी प्रगति (r) पर निर्भर करती है। समीकरण को पुनः लिखने से,

$$y - l = vs - (1 - Q)\, l + r$$

$$y = vs + r \qquad (\because \quad l = 0)$$

यदि जनसंख्या वृद्धि (l) के साथ-साथ तकनीकी प्रगति (r) को भी स्थिर मान लिया जाए, तो प्रति व्यक्ति आय (y) में वृद्धि-दर (vs) के साथ सीधी परिवर्तित होगी। अतः ऊपर का समीकरण $y = vs$ होगा ($\because \quad r = 0$).

कुल राष्ट्रीय उत्पाद (आय) पर तकनीकी प्रगति प्रभाव को चित्र 5.1 में दर्शाया गया है। मशीनरी (पूँजी स्टॉक) के कुल भण्डार को क्षैतिज अक्ष पर लिया गया है और कुल वार्षिक शुद्ध उत्पाद को अनुलम्ब अक्ष पर। वक्र OF_1 उत्पादन फलन है जो वर्ष 1 में तकनीकी ज्ञान दिया होने पर मशीनरी की दी हुई मात्रा से उत्पादन की मात्रा को व्यक्त करता है। यदि वर्ष 1 में मशीनरी की मात्रा OK हो तो उस वर्ष उत्पादन KA होगा। बिन्दु A पर वक्र की ढाल मशीनरी का सीमान्त उत्पाद बताती है। जो कम होती जाती है ज्यों-ज्यों हम वक्र की दाएँ ओर चले। ऐसा इसलिए कि अन्य साधनों की तरह मशीनरी पर घटते प्रतिफल का नियम लागू होता है। अतः बिन्दु C पर मशीनरी का सीमान्त उत्पादन बिन्दु A की अपेक्षा कम होगा। वर्ष 2 में तकनीकी प्रगति के कारण नया उत्पादन फलन OF_2 हो जाता है जिससे OK मशीनरी के प्रयोग से वर्ष 1 के उत्पादन KA की अपेक्षा अधिक उत्पादन KB होता है। इसी प्रकार, OK_1 मशीनरी के प्रयोग से वर्ष 2 में अधिक उत्पादन K_1D होता है जो वर्ष 1 के उत्पादन K_1C से अधिक है। इससे स्पष्ट होता है कि तकनीकी प्रगति के कुल वार्षिक शुद्ध उत्पाद में वृद्धि होती है।

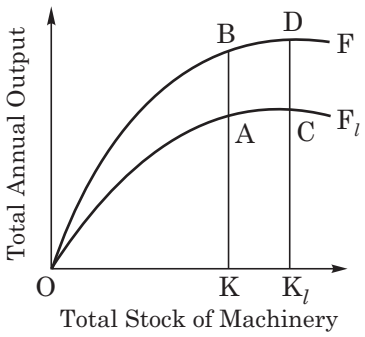

चित्र 5.1

5. सतत् आर्थिक वृद्धि की अवस्था (The state of steady economic growth) – इस अवस्था के लिए प्रोफेसर मीड यह मान कर चलते हैं कि जनसंख्या आनुपातिक दर (l) बढ़ रही है व तकनीकी प्रगति की दर (r) स्थिर रहती है। इस अवस्था में कुल उत्पादन (आय) में वृद्धि-दर व प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि-दर भी स्थिर रहती हैं। इसके लिए तीन स्थितियां अवश्य होनी चाहिए–

(क) विभिन्न साधनों के बीच स्थानापन्नता की सब लोचें इकाई के बराबर हों।

(ख) तकनीकी प्रगति (r) सब साधनों के प्रगति तटस्थ हो।

(ग) बचाए हुए लाभों (Sv), बचाई हुई मजदूरी (Sw) व बचाए हुए लगान (Sg) के अनुपात सब स्थिर होते हैं। अतः कुल बचतों $S = SvU + SwQ + SgZ$ का राष्ट्रीय आय में अनुपात भी स्थिर रहेगा।

समीकरण (2) को पुनः लिखने से $y = U_k + Ql + r$ सतत् आर्थिक वृद्धि की अवस्था में U, Q, l व r स्थिर मान लिये जायेंगे जबकि $K = \dfrac{\Delta K}{K} = \dfrac{I = sY = S}{K}$ [$\Delta K = I = sY = S$] भी स्थिर हैं। अतः Y/K तब स्थिर रहेगा जब पूँजी स्टॉक की वृद्धि-दर (k) राष्ट्रीय आय की वृद्धि-दर (y) के बराबर हो, तब आय की वृद्धि-दर स्थिर रहेगी।

(a) **क्रांतिक वृद्धि-दर** (Critical growth rate) – सतत् वृद्धि के लिए आय की वृद्धि-दर व पूँजी स्टॉक की वृद्धि-दर बराबर होनी चाहिए। दूसरे शब्दों में $\dfrac{\Delta Y}{Y} = \dfrac{\Delta K}{K}$ - प्रोफेसर मीड के अनुसार, पूँजी स्टॉक की एक क्रांतिक वृद्धि-दर होती है जिस पर आय की वृद्धि-दर व पूँजी स्टॉक की वृद्धि-दर बराबर होती है। यह तभी संभव है जबकि $y = k = a$ समीकरण (2) को पुनः लिखने से,

$$y = U_k + Ql + r$$

$$a = U_a = Ql + r \qquad [\because \quad y = k = a]$$

$$a - U_a = Ql + r$$

$$a(1 - U) = Ql + r$$

नोट

$$a = \frac{Ql + r}{1 - U}$$

क्या आप जानते हैं अर्थव्यवस्था की वृद्धि दर पूंजी संचय की वार्षिक दर से भी निर्धारित होती है।

अस्थिरता की स्थितियां (Conditions of Instability) – यदि किसी स्थिर या सतत् वृद्धि के स्तर से किसी भी प्रकार का विचलन होगा, तो पूँजी स्टॉक की वृद्धि-दर k या $\frac{\Delta K}{K} = \frac{sY}{K} > \frac{Ql + r}{1 - U}$ ऐसी स्थिति में पूँजी स्टॉक में वृद्धि आय में वृद्धि से अधिक होगी जिसके परिणामस्वरूप बचतें कम हो जायेंगी जो आगे पूँजी की वृद्धि दर में भी कमी को आय में वृद्धि-दर के बराबर ला देंगी।

यदि $\frac{Ql + r}{1 - U} > k$ होने पर पूँजी स्टॉक की अपेक्षा आय अधिक तेज़ी से बढ़ेगी, बचतों के बढ़ने से पूँजी स्टॉक की दर बढ़कर आय में वृद्धि स्तर के बराबर हो जायेगी।

सतत आर्थिक वृद्धि चित्र–सतत् आर्थिक वृद्धि मॉडल को चित्र 5.2 से स्पष्ट किया गया है। क्षैतिज अक्ष पर पूँजी स्टॉक की वृद्धि-दर (k) को लिया गया हो जिसे बिंदु O से 45° रेखा से भी दिखाया गया है। अनुलंब अक्ष पर जनसंख्या वृद्धि (Ql) जमा तकनीकी प्रगति (r) दर को मापा गया है। (Ay) राष्ट्रीय आय की कुल वृद्धि-दर (y) को मापता है जबकि (U) रेखा पूँजी की आनुपातिक सीमांत उत्पादकता को मापती है।

स्पष्ट है कि बिंदु B पर राष्ट्रीय आय की वृद्धि दर (y) अधिक है पूँजी स्टॉक की वृद्धि-दर (k) से क्योंकि 45° (k) रेखा नीचे रहती है रेखा (y) से। राष्ट्रीय आय की वृद्धि-दर (y) = BE > CE पूँजी स्टाक की वृद्धि-दर (k) से। वास्तव में CE = OE। राष्ट्रीय आय में पूँजी की आनुपातिक सीमांत उत्पादकता (U) बराबर DE व जनसंख्या वृद्धि जमा तकनीकी प्रगति ($Ql + r$) बराबर BD अत: बिंदु B सतत् आर्थिक वृद्धि का बिंदु नहीं होगा। परिणामस्वरूप पूँजी स्टॉक (k) बढ़ना शुरू होगा जब तक बिंदु H नहीं आता। जहां $y = k =$ HF जो कि सतत् वृद्धि की अवस्था को बता रहा है।

(a) क्रांतिक वृद्धि-दर माप–चित्र 5.2 से क्रांतिक वृद्धि-दर को बिंदु H से निकाला जा सकता है।

$$y = U_k + Ql + r$$

$$HF = GF \cdot HF + GH \qquad [\because \quad Ql + r = GH]$$

$$HF - GF \cdot HF = GH$$

$$HF (1 - GF) = GH$$

$$HF = \frac{GH}{1 - GF}$$

अथवा $$OF = \frac{GH}{1 - GF} \qquad [\because \quad HF = OF]$$

अथवा $$k = \frac{Ql + r}{(1 - U)}$$

अथवा $$a = \frac{Ql + r}{(1 - U)} \qquad [\because \quad y = k = a]$$

नोट

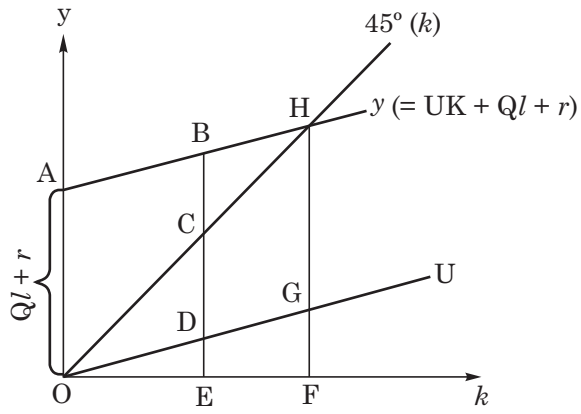

चित्र 5.2 मीड मॉडल की हैरॅड-डोमर से तुलना
(Comparison of Meade Model with Harrod-Domer Model)

नोट्स प्रोफेसर मीड के अनुसार सतत् वृद्धि के लिए आय की वृद्धि दर व पूँजी स्टॉक की वृद्धि-दर बराबर होनी चाहिए। $\frac{\Delta Y}{Y} = \frac{\Delta K}{K}$ जबकि हैरॅड के अनुसार, सतत् वृद्धि तब होती है जब $G = Gw = Gn$ डोमर मॉडल में यह स्थिति $\frac{\Delta I}{I} = \propto \alpha$.

प्रोफेसर मीड का MPP_k जो पूँजी की सीमांत उत्पादकता है, डोमर मॉडल के σ (सिग्मा) के बराबर है।

$$MPP_k = \frac{\Delta Y}{I} = \sigma$$

अथवा $$\frac{\Delta Y}{sY} = \sigma \; ; \frac{\Delta Y}{Y} = s\sigma \qquad [\because \quad \Delta K = I = sY]$$

$\therefore$ $$Gw = s\sigma \text{ हैरॅड की अभीष्ट दर } \left[\because \frac{\Delta Y}{Y} = Gw\right]$$

समीक्षात्मक मूल्यांकन (A Critical Appraisal)

प्रो. मीड के नव-क्लासिकी मॉडल की इसकी अवास्तविक मान्यताओं के कारण कटु आलोचना की गई है।

इसकी त्रुटियाँ (Its defects)–इस मॉडल की अनेक त्रुटियाँ हैं–

1. **पूर्ण प्रतियोगिता** (Perfect competition)–यह मॉडल क्लासिकी परम्परा के अनुसार है, जहाँ पूर्ण प्रतियोगिता पाई जाती है और समस्त उत्पादन इकाइयाँ स्वतन्त्र मानी जाती हैं। परन्तु ये गलत मान्यताएँ हैं क्योंकि न तो किसी अर्थव्यवस्था में पूर्ण प्रतियोगिता विद्यमान है और न ही उत्पादन इकाइयाँ एक-दूसरे से स्वतन्त्र होती हैं। इस कारण यह मॉडल अवास्तविक है।
2. **पैमाने के स्थिर प्रतिफल** (Constant returns to scale)–नव क्लासिकी सिद्धान्त की यह मान्यता भी त्रुटिपूर्ण है कि अर्थव्यवस्था में उत्पादन के क्षेत्र में केवल पैमाने के स्थिर प्रतिफल लागू होते हैं। वास्तविकता तो यह है कि विकास-प्रक्रिया में पैमाने के बढ़ते प्रतिफल पाए जाते हैं, न कि स्थिर प्रतिफल।
3. **आभासी-कारण संबंध** (Pseudo-causal relation)–श्रीमती रॉबिन्सन ने मीड के मॉडल को आभासी-कारण संबंध कहा है क्योंकि यह केवल इतना ही बताता है कि मौद्रिक नीति उपभोग वस्तुओं की कीमतें स्थिर रहती हैं, जबकि मुद्रा-मजदूरी दरें पूर्ण रोजगार को कायम रहती हैं।

नोट

4. **मशीनों की पूर्ण लोचता** (Perfect malleability of machines)–मीड के नव-क्लासिकी मॉडल की एक महत्त्वपूर्ण त्रुटि यह है कि इसमें सब मशीनें एक जैसी मान ली गई हैं और मशीनों की पूर्ण लोचता है। इसका अभिप्राय है कि अल्पकाल एवं दीर्घकाल में श्रम का पूँजी के साथ अनुपात बदला जा सकता है। मीड ने सभी मशीनों को एक जैसी तथा पूर्णतया परिवर्तनशील मानकर दूरदर्शिता की समस्या को टाल दिया है जिससे उसका मॉडल अव्यावहारिक बन गया है।
5. **अनिश्चितता को कोई स्थान नहीं** (No place for uncertainty)–प्रो. बटरिक (Prof. Butterick) के अनुसार मीड ने अपने मॉडल में अनिश्चितता को कोई स्थान नहीं दिया। इस मॉडल में सभी चरों में परस्पर सम्बन्धों को सुनिश्चित मान लिया है। इससे मॉडल की व्यावहारिकता कम हो जाती है और यह केवल सैद्धान्तिक विश्लेषण ही रह जाता है।
6. **बन्द अर्थव्यवस्था** (Closed Economy)–मीड का मॉडल, हैरोड तथा जॉन रॉबिन्सन के मॉडलों की तरह बन्द अर्थव्यवस्था की मान्यता पर आधारित है। यह अवास्तविक मान्यता है, जो अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार तथा आर्थिक विकास में विदेशी पूँजी के महत्व की अवहेलना करता है।
7. **संस्थानिक तत्वों की उपेक्षा** (Neglect of institutional factors)–इस मॉडल में एक अन्य कमी यह पाई जाती है कि विकास-प्रक्रिया में संस्थानिक तत्वों की पूर्णतया उपेक्षा करता है। प्रो. मीड यह भूल जाता है कि सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक और संस्थानिक परिवर्तन आर्थिक वृद्धि में महत्वपूर्ण योगदान देते हैं। इन तत्वों के बिना उसका मॉडल रॉबिन्सन क्रूसो मॉडल बन जाता है।
8. **गणितीय मॉडल** (Mathematical model)–मीड का मॉडल एक गणितीय मॉडल है जिसमें विभिन्न चरों के परस्पर जटिल संबंधों पर आधारित अनेक समीकरण पाए जाते हैं, जिन्हें अर्थशास्त्र का एक साधारण विद्यार्थी समझने में असमर्थ है। इस कठिनाई के कारण यह मॉडल अव्यावहारिक बन गया है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

2. सही विकल्प चुनिए–

1. उपरिनिर्दिष्ट अर्थव्यवस्था में शुद्ध उत्पादन निर्भर करता है–
   (क) चार तत्वों पर (ख) दो तत्वों पर
   (ग) छः तत्वों पर (घ) इनमें से कोई नहीं।
2. आनुपातिक वृद्धि दरों को क्रमशः व्यक्त करते हैं–
   (क) r, l, Ky (ख) k, y, r, l
   (ग) y, K, L तथा r (घ) इनमें से कोई नहीं।
3. यदि $\frac{Ql + r}{1 - v} > K$ होने पर पूँजी स्टॉक की अपेक्षा आय–
   (क) बढ़ेगी (ख) घटेगी
   (ग) स्थिर हो जायेगी (घ) इनमें से कोई नहीं।
4. प्रो. मीड का MPPK जो पूंजी की सीमान्त उत्पादकता है वह डोमर मॉडल के a के होता है।
   (क) बराबर (ख) असमान
   (ग) कम (घ) इनमें से कोई नहीं।

नोट

5.3 सारांश (Summary)

- केम्ब्रिज विश्वविद्यालय के प्रो॰ जे॰ ई॰ मीड[1] ने आर्थिक वृद्धि का नव-क्लासिकी मॉडल निर्मित किया है, जिसका "उद्देश्य यह प्रकट करना है कि संतुलन वृद्धि की प्रक्रिया के दौरान सरलतम क्लासिकी आर्थिक प्रणाली का व्यवहार क्या होगा।"
- तकनीकी ज्ञान की स्थिति, जिसमें कालपर्यन्त (over time) सुधार होता चलता है। यह सम्बन्ध उत्पादन फलन के रूप में भी व्यक्त किया जाता है,
- अर्थव्यवस्था की वास्तविक वृद्धि का सूचक आय (y) की वृद्धि-दर की अपेक्षा प्रति व्यक्ति वास्तविक आय की वृद्धि-दर है।
- यदि तकनीकी प्रगति (r) व जनसंख्या (l) की वृद्धि दर को स्थिर मान लिया जाए, तब ऐसी स्थिति में बचतों की दर में वृद्धि प्रति व्यक्ति पूँजी को बढ़ा देगी और पूँजी की सीमांत उत्पादन (v) में कमी ला देगी।
- स्थिर जनसंख्या ($l = 0$) होने पर प्रति व्यक्ति वास्तविक आय पूँजी-संचय की दर (vs) व तकनीकी प्रगति (r) पर निर्भर करती है।
- प्रोफेसर मीड यह मान कर चलते हैं कि जनसंख्या आनुपातिक दर (l) बढ़ रही है व तकनीकी प्रगति की दर (r) स्थिर रहती है। इस अवस्था में कुल उत्पादन (आय) में वृद्धि-दर व प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि-दर भी स्थिर रहती है।
- प्रोफेसर मीड के अनुसार सतत् वृद्धि के लिए आय की वृद्धि दर व पूँजी स्टॉक की वृद्धि-दर बराबर होनी चाहिए।
- यह मॉडल क्लासिकी परम्परा के अनुसार है, जहाँ पूर्ण प्रतियोगिता पाई जाती है और समस्त उत्पादन इकाइयाँ स्वतन्त्र मानी जाती हैं।
- विकास-प्रक्रिया में पैमाने के बढ़ते प्रतिफल पाए जाते हैं, न कि स्थिर प्रतिफल।
- मौद्रिक नीति उपभोग वस्तुओं की कीमतें स्थिर रहती हैं, जबकि मुद्रा-मजदूरी दरें पूर्ण रोजगार को कायम रखती हैं।
- मीड ने अपने मॉडल में अनिश्चितता को कोई स्थान नहीं दिया। इस मॉडल में सभी चरों में परस्पर सम्बन्धों को सुनिश्चित मान लिया है।

5.4 शब्दकोश (Keywords)

- **उपरिनिर्दिष्ट–** ऊपर संकेतिक।
- **संस्थानिक–** संस्थान से सम्बंधित।
- **प्राप्यता–** उपलब्धता।

5.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

(1) मीड द्वारा प्रदत्त आर्थिक वृद्धि के नव-क्लासिकी मॉडल की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।

(2) मीड मॉडल की हैरोड-डोमर से तुलना कीजिए।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

1. 1. स्थिर 2. मुद्रा 3. पूँजी-वस्तुएँ 4. पूँजी

2. 1. (क) 2. (ग) 3. (घ) 5. (क)

5.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

नोट

पुस्तकें

1. *विकास का अर्थशास्त्रण एवं आयोजन*: डॉ. एम. एल. झिंगन: वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा. लि.

2. *संवृद्धि एवं विकास का अर्थशास्त्र*: डॉ जे. पी मिश्रा: साहित्य भवन पब्लिकेशन्स एवं डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.) लि. रजिस्टर्ड कार्यालय नई दिल्ली

नोट

इकाई–6: आर्थिक वृद्धि मॉडल-II : वृद्धि एवं वितरण (Economic Growth Model-II : Growth and Distribution)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

6.1 आर्थिक वृद्धि मॉडल–II: वृद्धि एवं वितरण (Economic Growth Model II: Growth and Distribution)

6.2 आर्थिक वृद्धि और आय वितरण : कुज़नेट्स की परिकल्पना (Economic Growth and Income Distribution : The Kuznets Hypothesis)

6.3 विकास के साथ असमानता में वृद्धि के कारण (Causes of Increase in Inequality with Development)

6.4 विकास के साथ असमानता में कमी के कारण (Causes of Reduction in Inequality with Development)

6.5 समीक्षात्मक मूल्यांकन (Critical Appraisal)

6.6 सारांश (Summary)

6.7 शब्दकोश (Keywords)

6.8 अभ्यास–प्रश्न (Review Questions)

6.9 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- आर्थिक वृद्धि मॉडल–II: वृद्धि एवं वितरण को जानने में।
- आर्थिक वृद्धि और आय वितरण को समझने में।
- विकास के साथ असमानता में वृद्धि के कारण को समझने में। विकास के साथ असमानता में, कमी के कारण को समझने में समीक्षात्मक मूल्यांकन करनमे में।

प्रस्तावना (Introduction)

1950 और 1960 के दशकों में आय समानता और वृद्धि पर विचार **कुजनेट्स** के U–आकृति वक्र द्वारा प्रभावित हुआ। विकसित देशों के अनुभव पर कुज़नेट्स ने सुझाव दिया कि ऐतिहासिक तौर से, पहले आय असमानताएं बढ़ने की प्रवृत्ति होती है और फिर जब देश निम्नस्तर से विकसित होते हैं तो असमानताएं कम होने की प्रवृत्ति होती है और तब यह माना गया कि विकास की प्रारंभिक प्रावस्थाओं में आय के वितरण में अधिक असमानताओं का आर्थिक वृद्धि पर अनुकूल प्रभाव होता है और विकास की गति बढ़ने के साथ इसके लाभ दीर्घकाल में अपने आप

नोट

'रिस कर' निम्न आय वर्ग को प्राप्त होंगे। अत: विचार इस बात पर बल देता है कि आय वितरण को छुए बिना, पूंजी निर्माण, आधारित संरचना और अर्थव्यवस्था की उत्पादकीय क्षमता बढ़ाकर अर्थव्यवस्था की वृद्धि दर को अधिकतम किया जा सकता है।

6.1 आर्थिक वृद्धि मॉडल-II: वृद्धि एवं वितरण (Economic Growth Model-II Growth and Distribution)

पाश्चात्य आर्थिक विचारधारा के अनुसार आर्थिक वृद्धि के लक्ष्य आय वितरण से संगति नहीं रखते। आर्थिक वृद्धि, अर्थव्यवस्था की वृद्धि दर को अधिकतम बनाने पर बल देती है और आय के वितरण को बिल्कुल छोड़ देती है। **प्रो. लुइस** द्वारा दिया गया रूपक प्रयोग किया जाए तो यह ऐसा है जैसे आर्थिक विकास के घोड़े की सवारी करना और आर्थिक समानता के विकास के घोड़े को उसके अपने हाल पर छोड़ देना। 18वीं शताब्दी के इंग्लैंड, 19वीं शताब्दी के पश्चिमी यूरोप और 20वीं शताब्दी के जापान का यही अनुभव रहा जहां धन तथा आय की असमानताओं से धनी वर्गों की बचतें बढ़ीं जिन्होंने उन बचतों को उत्पादक निवेशों के लिए प्रयोग किया। क्लासिकी अर्थशास्त्री भी आय असमानता के पक्ष में थे। उनके अनुसार, आय समानता से बचतों में कमी होती है। आय समानता से अभिप्राय है कि श्रम वर्गों को अधिक आय प्राप्त हो और उनके उपभोग में वृद्धि हो। इससे, आगे जनसंख्या में बढ़ोतरी होती है जो वृद्धि के मार्ग में रुकावट उत्पन्न करती है। इसलिए क्लासिकी अर्थशास्त्री यह विश्वास रखते थे कि आर्थिक वृद्धि को प्रोत्साहन देने के लिए आय असमानताएं आवश्यक हैं।

परन्तु **मार्क्स** का विचार इससे विपरीत था। उसके अनुसार, आय असमानता पूंजीवाद का विनाश लाएगी। उसका यह तर्क था कि आय असमानता का अर्थ है गरीबों के लिए कम उपभोग। इससे वस्तुओं के भंडार बिक न पाएंगे और आगे उत्पादन बंद हो जाएगा। इस प्रकार, संचयी अति-उत्पादन और अल्प-उपभोग होगा तथा पूंजीवादी अर्थव्यवस्था दीर्घकालीन गतिहीनता की ओर अग्रसर होगी।

परन्तु **केन्ज** ने आर्थिक वृद्धि को कायम रखने के लिए आय समानता पर बल दिया। उसके अनुसार, जो समाज आय और धन की असमानताओं के कारण अधिक बचाता है वह दीर्घकालीन गतिहीनता लाता है, क्योंकि असमानताएं उसकी उपभोग क्षमता कम कर देंगी और मांग में कमी लाएंगी। अन्तत: इससे उत्पादन में गिरावट आएगी और आर्थिक क्रिया धीमी हो जाएगी। इसलिए, केन्ज आय समानता के पक्ष में था जो गुणक प्रभाव द्वारा आर्थिक वृद्धि को कायम रख सकती थी।

केन्जोपरान्त अर्थशास्त्रियों में प्रो. कुरिहारा ने केन्ज़ के विचार को और आगे बढ़ाया है। केन्ज यह मानता था कि उपभोग को बढ़ाना बचत का विकल्प है। परन्तु कुरिहारा यह दर्शाता है कि वे पूरक हैं। जब आय में असमानता होती है तो इससे अत्यधिक किफायत होती है तथा पूंजी की सीमांत उत्पादकता के कम होने से निवेश की प्रेरणा में गिरावट आती है। आर्थिक वृद्धि, बचत और उपभोग की दोनों शक्तियों को संतुलित करने की अपेक्षा रखती है जो एक "उच्च मजदूरी, कम लाभ अर्थव्यवस्था और निवेश मुक्त समाज में संभव है।"

प्रो. लुइस इस मत का मुख्य समर्थक है। उसने उस प्रक्रिया का विश्लेषण किया जिससे 18वीं शताब्दी में इंग्लैंड, 19वीं शताब्दी में पश्चिमी यूरोप, और 20वीं शताब्दी के प्रारंभ में जापान ने आय असमानताओं द्वारा आर्थिक वृद्धि की। उसने इसे अल्पविकसित देशों के लिए सुझाया है। लुइस का कहना है कि ऐच्छिक बचतें केवल वहीं राष्ट्रीय आय का महत्वपूर्ण बड़ा भाग बनती हैं जहां आय वितरण की असमानता ऐसी हो कि लाभ राष्ट्रीय का सापेक्षतया बड़ा भाग हो। जब वृद्धि हो रही हो तो परम्परागत क्षेत्र की अपेक्षा आधुनिक क्षेत्र अधिक तेजी से वृद्धि करता है और राष्ट्रीय आय से लाभ का सापेक्ष भाग भी बढ़ जाता है। इससे आय की असमानताएं बढ़ने लगती हैं पर दीर्घकाल में जब सब प्रकार के रोजगार के सुअवसर बढ़ते हैं और परम्परागत क्षेत्र भी विकसित होता है, तो आय का वितरण स्थिर हो जाता है। परन्तु यह स्वत:चालित प्रक्रिया है और अर्थव्यवस्था की वृद्धि का अतिरिक्त परिणाम मात्र है।

लुइस का यह मत है कि अर्थव्यवस्था के पूंजीवादी क्षेत्र का जानबूझकर विस्तार कर राष्ट्रीय आय के लाभ का भाग

नोट

बढ़ाया जाय। इसके लिए उसने यह सुझाव दिया है कि लोग अनर्जित आय पर विशेष रूप से भूमि लगान पर, निर्भर करते हैं, उन पर भारी कर लगाए जाएं और वह आय पूंजीवादियों को दे दी जाए जो लाभ पर निर्वाह करते हैं। आर्थिक सहायता और कर-छूट देकर, कच्चे माल तथा पूंजी उपस्कर की पर्याप्त मूर्तियां प्रदान करके, प्रतियोगी वस्तुओं का आयात नियंत्रित करके, मजदूरी तथा मजदूर संघ नियंत्रित करके, और उद्योगों की वस्तुओं की सरकारी खरीद द्वारा भी लाभ बढ़ाए जा सकते हैं। इस प्रकार यह तर्क दिया जाता है कि पूंजीवादी क्षेत्र को बड़े लाभ प्राप्त होने से बचतें अधिक होंगी जो अधिक पूंजी-निर्माण के लिए निवेश की जाएंगी जिनसे विकास दर बढ़ेगी।

विपक्ष में तर्क–परन्तु विकासशील देशों के प्रसंग में यह दृष्टिकोण सही नहीं है। तीव्र आर्थिक वृद्धि के लिए आय असमानता को बढ़ावा देना आवश्यक नहीं। विकसित देशों की अपेक्षा विकासशील देशों में ऐसे हालात पाए जाते हैं कि आर्थिक विकास के लिए आय असमानता का होना आवश्यक नहीं है। इस विचार के पक्ष में कई तर्क दिए जाते हैं।

ऐसे देशों में संसदीय प्रजातंत्र की व्यवस्था और प्रवर्त्तमान राजनीतिक वातावरण के अन्तर्गत आय असमानता को बढ़ावा देना संभव नहीं है। पूंजी-निर्माण के लिए लाभ में वृद्धि करने की नीति को अपनाना ताकि बचतें बढ़ाई जा सकें, सामाजिक अव्यवस्था उत्पन्न कर सकती है। ऐसा इस कारण है कि जरूरी नहीं कि लाभ उठाने वाले वर्ग जनसाधारण के कल्याण में दिलचस्पी रखते हों। अत: आय की असमानता आर्थिक विकास में बाधक हो सकती है।

आर्थिक सहायता, कर-छूट, मजदूरी और मजदूर संघ नियंत्रण आदि पूंजीवादी क्षेत्रों के लाभों को बढ़ाने की नीति निहित स्वार्थ उत्पन्न करती है जिससे विकासशील अर्थव्यवस्था के भीतर साधनों का कुवितरण हो जाता है।

फिर, इस बात की कोई गारण्टी नहीं है कि ऐसी अर्थव्यवस्था में धनी वर्ग बढ़े हुए लाभ को उत्पादक दिशाओं में खर्च करेंगे। इसके विपरीत व्यापारी, भूमिपति और धनी लोग अपनी आमदनी को अधिकतर प्रदर्शन उपभोग, जमाखोरी, आभूषणों, संपदाओं, स्वर्ण संग्रह सट्टे, विदेश यात्रा, भव्य इमारतों आदि पर व्यय करते हैं। कुछ हालात में तो उनका धन विदेशों में, पश्चिमी बैंकों के जमा खातों में, तथा स्वर्ण और विदेशी मुद्रा के रूप में इन बैंकों के लाकर्ज में पहुंच जाता है। अत: ऐसे लोगों की बचतें एवं निवेश कोई लाभदायक कार्य नहीं करते। वे अर्थव्यवस्था के उत्पादकीय साधनों में वृद्धि नहीं करतीं बल्कि उसका अपव्यय करती हैं।

दूसरी ओर, विकासशील देशों में आय असमानता को बढ़ावा देने की नीति अर्थव्यवस्था को अधिक हानि पहुंचाती है। असमानता विकास में बाधा करती है। इसलिए बुद्धिमत्ता इसी में है कि गरीबों की आय को बढ़ाने का प्रयत्न करना चाहिए।

फिर, असमानता बहुत क्षति लाती है। अकुशल प्रबंध द्वारा क्षति होती है। जो व्यपारी अमीर होते हैं वे कुशल उद्यमी भी हो सकते हैं, परन्तु उनके बच्चे जो उनकी संपत्ति को उत्तराधिकार में प्राप्त करते हैं अपने पिता जितने कुशल नहीं हो सकते। इस प्रकार अकुशल प्रबंध की प्रक्रिया प्रारंभ हो जाती है जिससे आर्थिक विकास की दर कम हो जाती है।

अधिकतर लोग गरीब होने के कारण उनके आयस्तर तथा रहन-सहन के स्तर निम्न होते हैं। इसलिए वे पौष्टिक खुराक, शिक्षा और प्रशिक्षण के लिए व्यवस्था नहीं कर पाते हैं। परिणामस्वरूप उनकी उत्पादकीय क्षमता कम होती है जिससे अर्थव्यवस्था की वृद्धि कम हो जाती है। इसलिए ऐसे गरीब वर्ग की आय को बढ़ाकर तथा असमानता में कमी करने से केवल उनकी उत्पादकीय क्षमता में ही वृद्धि नहीं होगी बल्कि अर्थव्यवस्था की उत्पादन क्षमता में भी वृद्धि होगी। इस प्रकार, असमानता के कारण एक अन्य प्रकार की आर्थिक क्षति, मानव-पूंजी का ह्रास है।

फिर गरीबों के आय-स्तर में वृद्धि होने से स्थानीय उत्पादित आवश्यक वस्तुओं जैसे खाद्य पदार्थ, कपड़ा आदि की मांग बढ़ेगी। स्थानीय वस्तुओं के लिए बढ़ी हुई मांग उनके उत्पादन को प्रोत्साहित करेगी जिससे निवेश बढ़ेगा और अर्थव्यवस्था के भीतर पूंजी-निर्माण और आर्थिक विकास अधिक होगा।

नोट्स कल्याणकारी राज्य के लक्ष्य से विकासशील देशों के प्रसंग में यह विश्वास ठीक नहीं ठहरता है कि आर्थिक वृद्धि के इंजन को आय असमानता चलाती है।

नोट

धनिकों तथा दरिद्रों के बीच द्वारा इसे कम करना होगा जिसके चार तरीके हैं–**प्रथम**, निम्नतर स्तर पर आय बढ़ाकर; **दूसरे**, ऊपर के स्तर पर आय घटाकर; **तीसरे**, भूमि सुधारों द्वारा गरीबों को परिसम्पत्तियां हस्तांतरण करके; तथा **चौथे**, दीर्घकालीन जनसंख्या नीति द्वारा जो गरीबों के आय-वितरण और उपभोग स्तरों को प्रभावित करे। पर आर्थिक विकास की कीमत पर आय पुनर्वितरण की नीति नहीं होनी चाहिए। आय असमानता कम करने के प्रयत्नों में अल्पविकसित देश ऐसे कदम न उठाएं जिनसे अधिक आय वाले वर्गों की बचत तथा निवेश प्रेरणा पर प्रतिकूल प्रभाव पड़े और जिससे उत्पादक व्यवस्था ठप्प हो जाए। वृद्धि तथा असमानता के उद्देश्यों में कहीं न कहीं समझौता करना होगा। दूसरे शब्दों में, यदि विकासशील देश चाहते हैं कि वे एक-साथ आर्थिक वृद्धि और आर्थिक समानता के घोड़ों पर सवार हों तो उन्हें संभल कर चलना होगा।

इन दो उद्देश्यों की उपलब्धि भारत की आर्थिक नीति का एक प्रमुख आधार-स्तम्भ रहा है। भारत के संविधान के **निदेशक सिद्धांतों** (Directive Principles) में से एक यह कहता है कि "राज्य, विशिष्ट रूप से, ऐसी नीति अपनाएगा जिससे आर्थिक व्यवस्था के परिचालन से जनसाधारण के हितों के विरुद्ध धन एवं उत्पादन के साधनों का संकेन्द्रण न हो सके।" असमानताएं कम करने का यह नियम देश के आर्थिक विकास की आगामी पंचवर्षीय योजनाओं का एक उद्देश्य बन गया।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

1. सही विकल्प चुनिए–

1. आर्थिक वृद्धि की दर अर्थव्यवस्था की वृद्धि दर पर बल देती हैं:
   (क) अधिकतम बनने को (ख) न्यूनतम बनने को
   (ग) क और ख दोनों (घ) इनमें से कोई नहीं।
2. आय असमानता से बचतों में होती है:
   (क) कमी (ख) वृद्धि
   (ग) क और ख दोनों (घ) इनमें से कोई नहीं।
3. प्रो. केन्ज ने आर्थिक वृद्धि को कायम रखने के लिए बल दिया है:
   (क) आय की असमानता पर (ख) आय की समानता पर
   (ग) वितरण पर (घ) इनमें से कोई नहीं।
4. आर्थिक विकास की कीमत पर नीति नहीं होनी चाहिए:
   (क) आय पुनर्वितरण की (ख) आय की असमानता की
   (ग) आय समानता की (घ) इनमें से कोई नहीं।
5. मार्क्स के अनुसार आय की असमानता पूँजीवाद का लायेगी:
   (क) प्रसार (ख) विनाश
   (ग) क और ख दोनों (घ) इनमें से कोई नहीं।

6.2 आर्थिक वृद्धि और आय वितरण: कुजनेट्स की परिकल्पना (Economic Growth and Income Distribution : The Kuznets Hypothesis)

अर्थशास्त्रियों में इस विषय पर बहुत मतभेद पाया जाता है कि क्या आर्थिक वृद्धि आय वितरण को कम करती है या बढ़ाती है। **प्रो. कुज़नेट्स** प्रथम अर्थशास्त्री है जिसने इस समस्या का आनुभाविकता से अध्ययन किया।[1] उसने निरीक्षण किया कि आर्थिक वृद्धि की प्रारम्भिक अवस्था में सापेक्ष आय से असमानता बढ़ती है कुछ समय के लिए स्थिर होती

नोट

है और बाद की अवस्थाओं में कम होती है। इसे आय वितरण की **विपरीत U-आकार की परिकल्पना** (inverted U-shaped hypothesis) कहते हैं।

तालिका 1 : विभिन्न देशों में आय असमानता 1950 के पास

देश	आय अंश %		अनुपात = धनाढ्यतम 20% / दरिद्रतम 60%	
	दरिद्रतम-60%	धनाढ्यतम-20%		
भारत (1949-50)	28	55	1.96	
श्रीलंका (1950)	30	50	1.67	LDCs
प्यूरटोरिको (1948)	24	56	2.33	
ब्रिटेन (1950)	34	44	1.29	DCs
अमरीका (1947)	36	45	1.25	

ऊपर की तालिका दर्शाती है कि LDCs में दरिद्रतम 60% राष्ट्रीय आय का 30% और उससे कम भाग प्राप्त करते थे, जबकि DCs में वे राष्ट्रीय आय का 30% से अधिक प्राप्त करते थे। जहां तक LDCs में धनाढ्यतम 20% की बात है वे 50% और उससे अधिक राष्ट्रीय आय प्राप्त करते थे और DCs में वे 45% और उससे कम प्राप्त करते थे। कुज़नेट्स इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि आय वितरण का आकार DCs की अपेक्षा LDCs में अधिक असमान था। यह LDCs में ऊँचा और DCs में नीचा था। अपने 1963[2] के अध्ययन में कुज़नेट्स ने अपनी विपरीत U-आकार उपकल्पना विकसित की जिसके लिए उसने 18 देशों के आंकड़े आय के आकार-वितरण (size distribution) के लिए। उनके आधार पर उसने LDCs और DCs के लिए भिन्न लोरेंज वक्र निर्मित किए और उनके गिन्नी गुणांक निकाले। DCs के लिए यह गुणांक 0.37 तथा LDCs के लिए 0.44 था। इससे कुज़नेट्स ने यह दर्शाया कि DCs की अपेक्षा LDCs में आय असमानताएं अधिक थी। इनकी चित्र 6.2 में व्याख्या की गई है जहां 45° सरल रेखा OD समान आय वितरण की है। उस रेखा के पास दाईं ओर गहरी रेखा DCs का लारेंज वक्र है। इसके दाईं ओर बिंदुकित रेखा LDCs का लोरेंज वक्र है।

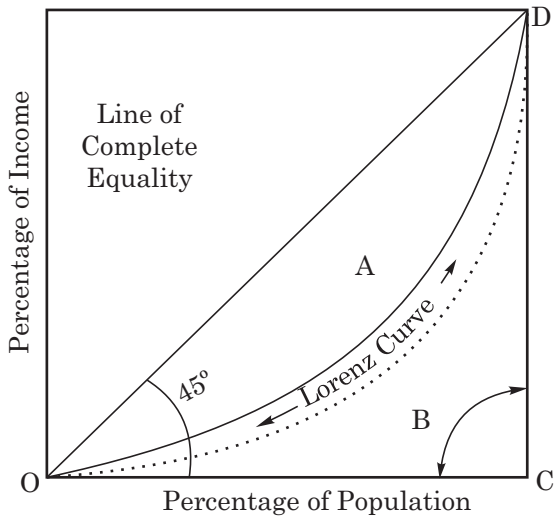

चित्र 6.2

परन्तु लोरेंज वक्र की अपेक्षा आय वितरण की गिन्नी गुणांक आय असमानता की कोटि (degree) का श्रेष्ठ माप है। यह 0 (पूर्ण समानता) से 1 (पूर्ण असमानता) के बीच परिवर्तित करता है। जितना अधिक गुणांक होगा, उतनी ही अधिक असमानता होगी। गिन्नी गुणांक को चित्र 6.2 में क्षेत्र A/A + B अथवा A/OCD के अनुपात के रूप में मापा जाता है। जितना अधिक यह अनुपात होगा, आय का वितरण उतना ही अधिक असमान होगा, अर्थात् उतना अधिक लोरेंज वक्र 45° रेखा से नीचे होगा।[1] चित्र 6.2 में, छायांकित क्षेत्र A जो गहरे लोरेंज वक्र द्वारा ढंका हुआ है DCs के लिए त्रिकोण OCD का लगभग 37% क्षेत्र चित्रित करता है और बिंदुकित लोरेंज वक्र LDCs के लिए त्रिकोण OCD का लगभग 44% क्षेत्र चित्रित करता है।

1. Simon Kuznets, "Economic Growth and Income Inequality," *AER,* March 1955.
2. Simon Kuznets, "Qualitative Aspects of Economic Growth of Nations : Distribution of Income by Size." *Economic Development and Cultural Change,* January 1963.

नोट

प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि से संबद्ध गिन्नी गुणांक जो आय-वितरण के परिवर्तनों को मापता है वह कुजनेट्स के विपरीत U-आकार वक्र K को अनुरेखित करता है, जैसा चित्र 6.3 में दर्शाया गया है। ध्यान दें कि कुज़नेट्स वक्र का अधिक सरल भाग दाईं ओर स्थित है, अर्थात् विकास के उच्च स्तरों पर प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि के साथ आय असमानता कम होती है। फिर भी, विकास के निम्न से मध्य स्तरों तक अनुमानित कुज़नेट्स वक्र के इर्दगिर्द अंतर अधिकतम है, जो LDCs से संबद्ध है। इस प्रकार, विपरीत U-आकार वक्र परिकल्पना वर्तमान विकसित और विकासशील देशों पर लागू होती है, जहां विकसित देशों की तुलना में विकासशील देशों में असमानता की कोटि अधिक है।

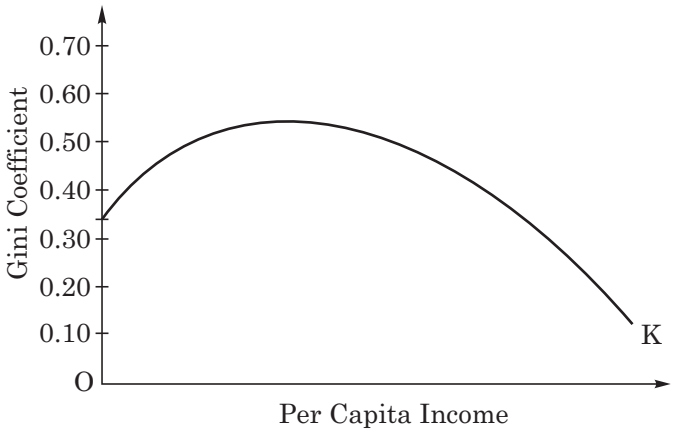

चित्र 6.3

6.3 विकास के साथ असमानता में वृद्धि के कारण (Causes of Increase in Inequality with Development)

ऐसे बहुत से कारक हैं जो LDCs में विकास की प्रारंभिक अवस्थाओं में सापेक्ष आय असमानता बढ़ाते हैं, वे इस प्रकार हैं–

1. LDCs में भौगोलिक, सामाजिक, वित्तीय और प्रौद्योगिकीय द्वैतवाद पाए जाते हैं। जब परम्परागत कृषि समाज में आधुनिक औद्योगिक अर्थव्यवस्था में परिवर्तन की प्रक्रिया प्रारंभ होती है, तो यह आय वितरण में असमानताएं बढ़ाती है। संरचनात्मक परिवर्तन होते हैं जो रोजगार के अवसर बढ़ाते हैं, नए संसाधनों का उपयोग करते हैं, और प्रौद्योगिकी में सुधार लाते हैं। इन सबसे औद्योगिक क्षेत्र में प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि होती है। शहरी क्षेत्रों में वर्करों, मैनेजरों, उद्यमियों आदि की आमदनी में तीव्र गति से वृद्धि होती है। इसके कारण हैं : निर्वाह योग्य कृषि, त्रुटिपूर्ण भूमि पट्टा-प्रणाली और ग्रामीण पिछड़ापन।
2. औद्योगिक क्षेत्र पूंजी-गहन तकनीकों का प्रयोग करता है जो शिक्षित, प्रशिक्षित और कुशल वर्करों को खपाता है। इस क्षेत्र में वर्करों की ऊंची आय होती है और मालिक अधिक लाभ कमाते हैं। इस प्रकार, आधुनिक औद्योगिक क्षेत्र ग्रामीण निर्वाह क्षेत्र की तुलना में अधिक तेजी से वृद्धि करता है। परिणामस्वरूप, उस क्षेत्र का राष्ट्रीय आय में आय और लाभ का सापेक्ष हिस्सा ग्रामीण क्षेत्र की अपेक्षा अधिक बढ़ता है।
3. ग्रामीण जनसंख्या का शहरी क्षेत्रों में स्थानांतरण अनपढ़ और अप्रशिक्षित लोगों को शहरों में लाभकर रोजगार के अवसर प्रदान नहीं करता है। उनमें से अधिकतर फल, सब्जियां, समाचार पत्र, आदि बेचने वाले, कार साफ करने वाले, बैरे (Waiters), कुली, दुकान-सहायक, घरेलू नौकर आदि बन जाते हैं। ऐसे सभी लोग अल्परोजगार युक्त होते हैं और उनकी आमदनी बहुत कम होती है।
4. जब विकास की प्रारंभिक अवस्था में शहरी क्षेत्रों में स्थानांतरण होता है तो कुछ भूमिपति भी इन क्षेत्रों में ग्रामीण क्षेत्रों से आ जाते हैं। वे शहरी संपत्ति, स्टाक, शेयर, बांड आदि में निवेश करते हैं। ऐसे निवेश उन्हें ग्रामीण क्षेत्रों में भूमि से अधिक आय प्रदान करते हैं।
5. शहरी क्षेत्रों में प्रौद्योगिकी उन्नति और वित्तीय सुविधाओं में बढ़ोतरी होने से उद्यमियों की एक नयी श्रेणी उभरती है जो व्यवसाय, व्यापार और विनिर्माण में विविधिकरण करती है। परिणामस्वरूप उनमें कार्यरत व्यक्तियों की आमदनी और लाभ बढ़ते हैं।

नोट

6. दूसरी ओर, सरकार की ओर से विकास के लिए वित्तीय संसाधनों के आवंटनों का झुकाव शहरी क्षेत्रों की ओर होता है, जिससे ग्रामीण अर्थव्यवस्था पिछड़ी हुई रह जाती है जिसमें छिपी हुई बेराजगारी ओर प्रति व्यक्ति कम आय पाई जाती है।
7. राजनैतिक कारणों से LDCs में सरकारें आय और धन का संकेन्द्रण कम करने के लिए भूमि सुधार तथा अन्य आर्थिक उपायों से संबद्ध कानून पास करने और उन्हें लागू करने में अनेक कठिनाइयां पाती हैं। परिणामस्वरूप, आय असमानता में वृद्धि होती है।
8. फिर, ऐसी सरकारें वित्तीय तौर से कमजोर होती हैं और वे निशुल्क शिक्षा, स्वास्थ्य सुविधाओं आदि सामाजिक सुरक्षा उपायों पर व्यय करने में असमर्थ होती हैं। ऐसे उपाय गरीबी को कम करके प्रतिव्यक्ति आय बढ़ाते हैं। ये सरकारें बचत, निवेश और पूंजी निर्माण बढ़ाने हेतु आय और लाभ पर भारी कर भी नहीं लगाती हैं।
9. सर्वोपरि, LDCs में जनसंख्या की उच्च वृद्धि दर लोगों की निरपेक्ष संख्या को और परिणामत: सापेक्ष असमानता को बढ़ती है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

2. निम्नलिखित कथनो में सत्य/असत्य की पहचान करें–

1. लारेंज वक्र की अपेक्षा आय वितरण की गिन्नी गुणांक आय असमानता की कोटि का श्रेष्ठ माप है।
2. औद्योगिक क्षेत्र श्रम-गहन तकनीकों का प्रयोग करता है।
3. सरकार वित्तिय साधनों का आवंटन केवल शहरी क्षेत्रों की ओर करती है।
4. आय वितरण में असमानता होने से संरचनात्मक परिवर्तन होते हैं।
5. आधुनिक औद्योगिक क्षेत्र ग्रामीण क्षेत्र की तुलना में धीमी गति से वृद्धि करता है।

6.4 विकास के साथ असमानता में कमी के कारण (Causes of Reduction in Inequality with Development)

कुज़नेट्स आय वितरण की असमानता में कमी के दो कारण बताता है। **प्रथम,** जब कोई देश विकास की बाद की अवस्थाओं में आय के उच्चस्तर पर पहुंच जाता है, तब उच्चस्तर आय वर्गों की प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि होती है क्योंकि उनका संपत्ति से प्राप्त आय का हिस्सा कम हो जाता है। **दूसरे,** जब सरकार शिक्षा, स्वास्थ्य सेवाओं, उत्तराधिकारी और आय कराधान, सामाजिक सुरक्षा, और आर्थिक सहायता से संबंधित व्यक्तियों अथवा समस्त वर्गों के लिए निर्णय लेती है, तो निम्नतम आय ग्रुपों की प्रतिव्यक्ति आय बढ़ती है।

टास्क आय वितरण से आप क्या समझते हैं?

ज्यों-ज्यों विकास होता जाता है, वह औद्योगिक क्षेत्र में संचयी प्रसार की एक श्रृंखला चालू कर देता है, जिससे प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि होती जाती है। ये आगे, ग्रामीण और पिछड़े हुए क्षेत्रों की वस्तुओं तथा कृषि पदार्थों की मांग में वृद्धि करती है, जिससे इन क्षेत्रों के लोगों की प्रति व्यक्ति आय में बढ़ोतरी होती है। इन्हें **हर्षमैन** विकास के नीचे की ओर रिसने वाले प्रभाव (trickling down effect) और **मिर्डल** प्रसरण प्रभाव (spread effects) कहते हैं।

इनके अतिरिक्त, ग्रामीण क्षेत्रों में शहरी या समुद्र पार से भेजी गई धनराशि के कारण भी देहाती आय बढ़ती हैं। देहात में रहने वाले जो लोग शहरों या विदेशों में रहते हैं, अपने घर वालों को काफी धनराशि भेजते हैं।

सर्वोपरि, विकास के साथ जनसंख्या की वृद्धि दर कम होती है जो प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि करती है।

नोट

क्या आप जानते हैं विकास की बाद की अवस्थाओं में पाया गया आय वितरण में सुधार–उत्पादन की संरचना में अंतरक्षेत्रीय परिवर्तन, श्रम शक्ति की शैक्षिक प्राप्ति और कुशलता में प्रसार तथा जनसंख्या में वृद्धि दर में गिरावट के कारण था।[1]

6.5 समीक्षात्मक मूल्यांकन (Critical Appraisal)

कुज़नेट्स की विपरीत U–उपकल्पना की कुछ अर्थशास्त्रियों द्वारा आनुभाविक तौर से जांच और पुष्टि की गई है जबकि अन्य इसके उलट पाते हैं। क्रेविस[2] 11 विकासशील और विकसित देशों के अपने अध्ययन द्वारा कुज़नेट्स की उपकल्पना की पुष्टि करता है कि विकास के निम्न स्तरों पर असमानता की कोटि पहले बढ़ती है और विकास के ऊंचे स्तरों पर कम होती है। **एडलमैन** और मौरिस[3] ने 43 विकासशील और 13 विकसित देशों के अपने अध्ययन में उनके औसत गिन्नी गुणांकों को क्रमश: 0.47 और 0.29 निकाला। इससे वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि विकास की एक विशेष सीमा तक आय असमानता बढ़ती है और उसके पश्चात कम होती है। इस प्रकार, उन्होंने कुज़नेट्स की विपरीत U–उपकल्पना की पुष्टि की। मोंटेक अहलूवालिया ने भी 60 देशों के आकड़ों से अपने विश्लेषण में पाया कि विकास की प्रारंभिक अवस्थाओं में सापेक्ष आय असमानता में काफी वृद्धि होती है तथा बाद की अवस्थाओं में इस प्रकृति के विपरीत होता है।

इस सबके बावजूद, कुज़नेट्स की विपरीत U–उपकल्पना की वैधता पर कुज़नेट्स और अन्य अध्ययनों में लिए गए आंकड़ों के आधार पर आपत्ति की गई है। कुज़नेट्स विकासशील और विकसित देशों का एक बहुत छोटा सैम्पल लेता है। इसलिए आलाचकों का कहना है कि उसका **विश्लेषण 5 प्रतिशत आनुभविक सूचना और 95 प्रतिशत अटकलबाजी पर आधारित है।**

टोडेरो[4] के अनुसार, विकसित देशों के लिए दीर्घकालीन आंकड़े कुज़नेट्स की U–उपकल्पना का समर्थन करते हैं। परन्तु LDCs में तत्वों के अध्ययन विरोधी परिणाम उत्पन्न करते हैं। उसका 13 LDCs का अध्ययन दर्शाता है कि ऊंचे आय स्तरों के साथ गिरती, न कि बढ़ती असमानताएं पाई जा सकती हैं। अर्थशास्त्रियों द्वारा कुज़नेट्स उपकल्पना की जांच करने हेतु प्रयोग की गई विधि में भी टोडेरो कमी पाता है। अधिकतर LDCs के लिए समय श्रेणी (time-Series) आंकड़े उपलब्ध न होने के कारण, अर्थशास्त्री प्रति–वर्गीय (Cross-sectional) आंकड़ों का प्रयोग करते हैं। निष्कर्ष निकालने हेतु प्रति–वर्गीय आंकड़ों का समय–श्रेणी तत्वों के लिए प्रयोग मूलत: गलत है। एक अध्ययन में आनंद और कनबूर ने दर्शाया है कि असमानता को मापने के लिए आंकड़ों के चुनाव से विकास और आय असमानता के बीच U–संबंध, विपरीत U–संबंध और कोई भी संबंध नहीं हो सकता है।

स्व–मूल्यांकन (Self Assessment)

3. रिक्त स्थानों की पूर्ती को (Fill in the Blanks)

1. कुज़नेहन ने आय वितरधस की असमानता में कमीके ..... कारण बताया है।
2. विकाण के साथ..... की वृद्धि दर करम हो जाती है।

1. M.S. Ahluwalia, "Inequality, Poverty and Development," *Journal of Development Economics,* December 1963.
2. I. B. Kravis, "International Differences in Distribution of Income," *R.E. & S.*, Nov., 1968.
3. S. Adelman and C.T. Morris, *Economic Growth and Social Equality in Developing Countries.* 1973.
4. M.P. todaro, *op. cit.*, p. 166.

नोट

3. ..... के अनुसार विकसित देशों के लिए दीर्घकालीन आंकड़ें कुजनेट्स की U-उपकल्पना का समर्धन कहते हैं।
4. मोअंके अह्लूवालिया ने भी अपने विश्लेषण में पाया कि विकास की प्रारंभिक उवस्थाओं में ..... असमानता में काफी वृद्धि होती है।

6.6 सारांश (Summary)

- पाश्चात्य आर्थिक विचारधारा के अनुसार आर्थिक वृद्धि के लक्ष्य आय वितरण से संगति नहीं रखते। आर्थिक वृद्धि, अर्थव्यवस्था की वृद्धि दर को अधिकतम बनाने पर बल देती है और आय के वितरण को बिल्कुल छोड़ देती है।
- पश्चिमी यूरोप और 20वीं शताब्दी के जापान का यही अनुभव रहा जहां धन तथा आय की असमानताओं से धनी वर्गों की बचतें बढ़ीं जिन्होंने उन बचतों को उत्पादक निवेशों के लिए प्रयोग किया।
- **केन्ज** ने आर्थिक वृद्धि को कायम रखने के लिए आय समानता पर बल दिया। उसके अनुसार, जो समाज आय और धन की असमानताओं के कारण अधिक बचाता है वह दीर्घकालीन गतिहीनता लाता है।
- लुइस का कहना है कि ऐच्छिक बचतें केवल वहीं राष्ट्रीय आय का महत्वपूर्ण बड़ा भाग बनती हैं जहां आय वितरण की असमानता ऐसी हो कि लाभ राष्ट्रीय का सापेक्षतया बड़ा भाग हो।
- विकासशील देशों के प्रसंग में यह दृष्टिकोण सही नहीं है। तीव्र आर्थिक वृद्धि के लिए आय असमानता को बढ़ावा देना आवश्यक नहीं।
- पूंजी-निर्माण के लिए लाभ में वृद्धि करने की नीति को अपनाना ताकि बचतें बढ़ाई जा सकें, सामाजिक अव्यवस्था उत्पन्न कर सकती है।
- विकासशील देशों में आय असमानता को बढ़ावा देने की नीति अर्थव्यवस्था को अधिक हानि पहुंचाती है। असमानता विकास में बाधा करती है। इसलिए बुद्धिमत्ता इसी में है कि गरीबों की आय को बढ़ाने का प्रयत्न करना चाहिए।
- असमानता बहुत क्षति लाती है। अकुशल प्रबंध द्वारा क्षति होती है। जो व्यपारी अमीर होते हैं वे कुशल उद्यमी भी हो सकते हैं, परन्तु उनके बच्चे जो उनकी संपत्ति को उत्तराधिकार में प्राप्त करते हैं अपने पिता जितने कुशल नहीं हो सकते।
- अर्थशास्त्रियों में इस विषय पर बहुत मतभेद पाया जाता है कि क्या आर्थिक वृद्धि आय वितरण को कम करती है या बढ़ाती है। **प्रो. कुज़नेट्स** प्रथम अर्थशास्त्री है जिसने इस समस्या का आनुभाविकता से अध्ययन किया।[1]
- आर्थिक वृद्धि की प्रारम्भिक अवस्था में सापेक्ष आय से असमानता बढ़ती है कुछ समय के लिए स्थिर होती है और बाद की अवस्थाओं में कम होती है। इसे आय वितरण की **विपरीत U-आकार की परिकल्पना।**
- ऐसे बहुत से कारक हैं जो LDCs में विकास की प्रारंभिक अवस्थाओं में सापेक्ष आय असमानता बढ़ाते हैं।
- LDCs में भौगोलिक, सामाजिक, वित्तीय और प्रौद्योगिकीय द्वैतवाद पाए जाते हैं। जब परम्परागत कृषि समाज में आधुनिक औद्योगिक अर्थव्यवस्था में परिवर्तन की प्रक्रिया प्रारंभ होती है।
- शहरी क्षेत्रों में वर्करों, मैनेजरों, उद्यमियों आदि की आमदनी में तीव्र गति से वृद्धि होती है। इसके कारण हैं: निर्वाह योग्य कृषि, त्रुटिपूर्ण भूमि पट्टा-प्रणाली और ग्रामीण पिछड़ापन।
- राजनैतिक कारणों से LDCs में सरकारें आय और धन का संकेन्द्रण कम करने के लिए भूमि सुधार तथा अन्य आर्थिक उपायों से संबद्ध कानून पास करने और उन्हें लागू करने में अनेक कठिनाइयां पाती हैं।
- सर्वोपरि, LDCs में जनसंख्या की उच्च वृद्धि दर लोगों की निरपेक्ष संख्या को और परिणामत: सापेक्ष असमानता को बढ़ाती है।

नोट

- **हर्षमैन** विकास के नीचे की ओर रिसने वाले प्रभाव (trickling down effect) और **मिर्डल** प्रसरण प्रभाव (spread effects) कहते हैं।
- कुज़नेट्स की विपरीत U-उपकल्पना की कुछ अर्थशास्त्रियों द्वारा आनुभविक तौर से जांच और पुष्टि की गई है जबकि अन्य इसके उलट पाते हैं।
- टोडेरो[7] के अनुसार, विकसित देशों के लिए दीर्घकालीन आंकड़े कुज़नेट्स की U-उपकल्पना का समर्थन करते हैं। परन्तु LDCs में तत्वों के अध्ययन विरोधी परिणाम उत्पन्न करते हैं।

6.7 शब्दकोश (Keywords)

- **उपस्कर–** उपकरण, जीवन-यापन हेतु आवश्यक अमग्ती।
- **दरिद्र–** गरीब।

6.8 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. वृद्धि बनाम असमानता का विश्लेषण कीजिए?
2. आर्थिक वृद्धि और आय वितरण से आप क्या समझते हैं? विकास के साथ आय असमान में वृद्धि के क्या कारण थे?
3. क्रुजनेट्स परिकल्पना से आप क्या समझते हैं? इसका समीक्षात्मक मूल्यांकन कीजिए।
4. विकास के साथ असमानता में वृद्धि तथा कमी के कारणों की स्पष्ट विवेचना कीजिए।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

1.	1. (क)	2. (क)	3. (क)	4. (क)
	5. (ख)			
2.	1. सत्य	2. असत्य	3. सत्य	4. असत्य
	5. असत्य			
3.	1. दो	2. जनसंख्या	3. टोडरो	4. सापेक्ष आय।

6.9 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. *संवृद्धि एवं विकास का अर्थशास्त्र*: डॉ. पी. मिश्रा; साहित्य भवन पब्लिकेशन्स : आगरा
2. *विकास नियोजन एवं नीतियाँ*: वी. सी सिन्हा: साहित्य भवन पब्लिकेशन्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.) लि. रजिस्टर्ड कार्यालय नई दिल्ली
3. *विकास का अर्थशास्त्र एवं आयोजन*: डा. एस. एल. डिंगल: वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा. लि.

नोट

इकाई–7: कुल कारक उत्पादकता तथा परिवर्धन लेखा (Total Factor Productivity and Growth Accounting)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

7.1 कुल कारक उत्पादकता एवं उत्पादकता में वृद्धि (Total Factor Productivity and Growth in Productivity)

7.2 कुल कारक उत्पादकता को प्रभावित करने वाले कारक (Factors Affect Total Factor Productivity

7.3 कुल कारक उत्पादकता का मापन (Measurement of Total Factor Productivity)

7.4 कुल कारक उत्पादकता की सीमाएं (Limitations of Total Factor Productivity)

7.5 कुल कारक उत्पादकता से जुड़े मुद्दे (Related Issues from Total Factor Productivity)

7.6 सारांश (Summary)

7.7 शब्दकोश (Keywords)

7.8 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

7.9 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- कुल कारक उत्पादकता तथा उत्पादकता में वृद्धि को जानने में।
- कुल कारक उत्पादकता को प्रभावित करने वाले कारक तथा सोलो अवशिष्ट की व्याख्या करने में।
- कुल कारक उत्पादकता के मापन, उत्पादकता उपायों की सीमाओं को समझने में।
- कुल कारक उत्पादकता से जुड़े मुद्दे विवेचना करने में की व्याख्या करने में।

प्रस्तावना (Introduction)

विकसित देशों के आर्थिक वृद्धि के सैद्धांतिक मॉडलों के साथ-साथ उनकी अत्यधिक आर्थिक वृद्धि के अनेक आनुभविक अध्ययन भी किए जाते हैं। इन अध्ययनों में विभिन्न वृद्धि कारकों के अवलोकित अंत-संबंध सुलझाकर आर्थिक वृद्धि के स्रोतों का पता लगाया जाता है। विभिन्न वृद्धि कारक हैं–उत्पाद में वृद्धि दर, श्रमशक्ति की मात्रा एवं गुणवत्ता में वृद्धि दर, पूँजी का स्टॉक तथा तकनीकी प्रगति की दर जो इन साधनों की उत्पादकता को निर्धारित करती है तथा उत्पादकता नियोजित संसाधनों से रोजगार उत्पन्न करने का संकेत देती है।

7.1 कुल कारक उत्पादकता एवं उत्पादकता में वृद्धि (Total Factor Productivity and Growth in Productivity)

कुल कारक उत्पादकता का एक संकल्पना के रूप में निरूपण गत शताब्दी के द्वितीय चतुर्थांश में हुआ। इस संकल्पना का बोध है कि उत्पादन के परंपरागत कारकों–श्रम तथा पूँजी के बावजूद कोई ऐसी वस्तु भी है जो प्रौद्योगिकीय प्रगति

नोट

से जुड़ी होती है तथा उत्पादन को प्रगति की ओर अग्रसर करती है। इन वस्तुओं में श्रम बल, मशीनें, मानवीय ज्ञान तथा कौशल का संयोजन सम्मिलित है। अर्थव्यवस्था के परिवर्धन के कारक पूँजी तथा श्रम का आकलन करने पर इन्हें समस्त परिवर्धन का कारण नहीं समझा जा सकता तथा तब हमें एक अवशिष्ट कारक मिलता है जिसे कुल कारक उत्पादकता कहा जाता है। समीकरण के आधार पर हम इसे निम्न प्रकार से समझ सकते हैं–

$$Y = A\,f(K, L)$$

जहाँ Y (उत्पादन) सकल घरेलू उत्पाद है, K निवेशित भौतिक पूँजी संचय, L श्रम (कार्य के घंटे) तथा A कुल कारक उत्पादकता है। पूँजी और श्रम दोनों का निरंतर रूप से निवेश संभव नहीं है इसलिए किसी भी अर्थव्यवस्था के परिवर्धन में कुल कारक उत्पादकता वास्तविक निर्धारक कारक है।

आधुनिक आर्थिक वृद्धि को प्रति व्यक्ति उत्पादन की दर में वृद्धि विशेषता प्रदान करती है। प्रति व्यक्ति उत्पादन की दर में वृद्धि प्रमुख रूप से आगतों की कोटि में सुधार के कारण होती है जो कि दक्षता बढ़ा देते हैं अथवा आगत की प्रति इकाई उत्पादकता में वृद्धि कर देते हैं। ऐसा श्रम तथा पूँजी के साधनों के आगत में वृद्धि अथवा दक्षता में वृद्धि का अर्थ है कि आगत की प्रति इकाई पर अधिक उत्पादन होगा। कुजनेट्स के अनुसार, हम देखते हैं कि उत्पादकता में वृद्धि की दर काफी अधिक है जो विकसित देशों में प्रति व्यक्ति उत्पादन की लगभग समस्त वृद्धि के लिए उत्तरदायी है। छिपी हुई लागतों तथा आगतों का विचार रखते हुए समायोजन करने पर भी, प्रति व्यक्ति उत्पादन में आधे से भी अधिक वृद्धि के लिए उत्पादकता में वृद्धि उत्तरदायी है। राष्ट्रीय उत्पादन वृद्धि का कारण जनसंख्या में होने वाली विशाल बढ़ोत्तरी रही है जिसने श्रम शक्ति में बहुत वृद्धि की। राष्ट्रीय उत्पादन में हुई वृद्धि के आगे पूँजी संचय में पर्याप्त वृद्धि की जिसके परिणामस्वरूप पुनरुत्पादनीय पूँजी में वृद्धि हुई। इटली, स्विटजरलैंड तथा ऑस्ट्रेलिया को छोड़कर सभी विकसित देशों में कुल जनसंख्या में श्रमशक्ति के अनुपात बढ़े हैं। डेनमार्क में इनका अनुपात (29.5:) अधिकतम रहा। इसके बाद यह अनुपात संयुक्त राज्य में 25.4:, कनाडा में 18.3:, बेल्जियम तथा जर्मनी में 15.8:, स्वीडन में 14.6: तथा ग्रेट ब्रिटेन में 13.1: था। यह वृद्धि संभवत: इसलिए हुई कि काम करने की उम्र के संबंध में जनसंख्या के आयु-ढाँचे में परिवर्तन कर दिया गया तथा इसके साथ-साथ जन्म दरें भी गिर गईं तथा काम करने की आयु से नीचे जनसंख्या के अनुपातों में कमी आई अथवा इसका अन्य कारण लाभप्रद व्यवसाय में भाग लेने वाली स्त्रियों की संख्या बढ़ना भी हो सकता है तथा सेवानिवृत्ति की आयु घटना भी। कारण कुछ भी रहा, परंतु कुल जनसंख्या में लाभप्रद व्यवसायों में लगे व्यक्तियों के अनुपात बढ़ गए। परंतु विकसित देशों की आर्थिक वृद्धि के साथ-साथ प्रति व्यक्ति श्रम-घंटों की संख्या में दीर्घावधि कमी हुई है। यह प्रवृति दक्षता अथवा उत्पादकता में वृद्धि को व्यक्त करती है।

टास्क परिवर्द्धन लेखा सूत्र से आप क्या समझते हैं?

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

1. निम्नलिखित कथनों में सत्य/असत्य की पहचान करें–

1. कुल कारक उत्पादकता का संकल्पना के रूप में निरूपण तृतीय चतुर्थांश में हुआ।
2. प्रति व्यक्ति उत्पादन की दर में वृद्धि प्रमुख रूप से आगतों की कोटी में सुधार के कारण होती है।
3. आर्थिक परिवर्धन का मुख्य कारण विनिमय है।
4. कुल कारक उत्पादकता में कोई भी आनुपातिक वृद्धि उत्पादन में समान आनुपातिक वृद्धि को दर्शाती है।
5. $Y_t = A_t K_t K_t^a L^{1-a}$ समीकरण 5 कारण दर्शाता है।

नोट

7.3 कुल कारक उत्पादकता वृद्धि को प्रभावित करने वाले कारक (Factor Affect Total Factor Productivity)

कुल कारक उत्पादकता वृद्धि को प्रभावित करने वाले कारक निम्नलिखित हैं–

1. प्रौद्योगिकीय प्रगति–प्रौद्योगिकीय उन्नति अथवा परिवर्तन आर्थिक वृद्धि के महत्त्वपूर्ण तत्त्व माने जाते हैं। प्रौद्योगिकीय उन्नति से नई उत्पादन तकनीकों के विकास अथवा अन्वेषण होते हैं जिससे श्रम एवं पूँजी की उत्पादकता में वृद्धि होती है। न्यूनतम लागत पर अधिक उत्पादन होता है और कम समय में बढ़िया वस्तुओं का निर्माण जिससे वस्तुओं की माँग बनी रहती है।

2. श्रमिकों के कुशलता स्तर–शिक्षित एवं कौशल श्रमिक भी कुल कारक उत्पादकता में वृद्धि कर देते हैं। इसके साथ-साथ विशिष्टीकरण तथा श्रम-विभाजन भी उत्पादकता वृद्धि के लिए महत्वपूर्ण हैं। श्रम-विभाजन से श्रम की उत्पादकीय शक्तियों में सुधार होता है। हर श्रमिक पहले से अधिक कुशल हो जाता है, वह नई मशीनों की खोज करने में भी समर्थ होता है जिससे उत्पादकता कई गुणा बढ़ जाती है।

3. विदेशी निवेश–विदेशी निवेश का कुशल उपयोग भी कुल कारक उत्पादकता की वृद्धि में सहायक होता है क्योंकि विदेशी निवेश की वृद्धि कुल कारक उत्पादकता की वृद्धि होती है। अर्द्धविकसित राष्ट्रों के निर्यात क्षेत्र में विदेशी विनियोजन का प्रभुत्व है। यह विदेशी विनियोजन प्राय: प्राथमिक उत्पादों के प्राविधीकरण पर ही केन्द्रित है जिनके उत्पादों को निर्यात किया जाता है।

4. प्राकृतिक आपदाएँ–विभिन्न प्राकृतिक आपदाएँ, जैसे-बाढ़, सूखा, भूकंप, आग आदि भी कुल कारक उत्पादकता की गिरावट में बहुत हद तक जिम्मेदार हैं क्योंकि इनके कारण उन्हीं आगतों से उत्पादन की मात्रा कम हो जाएगी। इससे फसलों पर या कृषि क्षेत्र को सर्वाधिक हानि पहुँचेगी जिसका सर्वाधिक असर विकासशील देशों पर पड़ेगा या न देशों पर जो सकल घरेलू उत्पाद के लिए कृषि पर काफी निर्भर हैं। यदि कृषि क्षेत्र उन्नति करेगा तो ही कुल कारक उत्पादकता में भी वृद्धि संभव है।

5. प्रतिस्पर्द्धा का स्तर–मुक्त-बाजार अर्थव्यवस्था वाले देशों में कुल कारक उत्पादकता का स्तर निम्न देखने को मिलता है, वहीं दूसरी ओर वे देश, जिनमें बाजार प्रतियोगी हैं तथा अर्थव्यवस्था सशक्त हैं वहाँ उच्चतर कुल कारक उत्पादकता देखने में आती है। अत: प्रतिस्पर्द्धा का स्तर भी कुल कारक उत्पादकता की वृद्धि या अवृद्धि का एक महत्वपूर्ण कारक है।

6. राजनीतिक स्थिरता–किसी भी देश की स्थिरता बढ़ती है, यदि वहाँ हर कार्य ईमानदारी तथा विकास प्रवृत्ति की भावना के साथ हो। देश की स्थिरता के साथ ही कुल कारक उत्पादकता भी बढ़ती है परंतु यदि किसी देश में भ्रष्टाचार, कालाबाजारी, नौकरशाही तथा अस्थिरता जैसे कारकों का बोलबाला हो वहाँ उत्पादन में अवश्य ही गिरावट आएगी, जिससे कुल कारक उत्पादकता भी कम होगी।

कुल कारक उत्पादकता और परिवर्धन लेखा

आर्थिक परिवर्धन हेतु मुख्य कारण है उत्पादकता। अधिक उत्पादनशील देश विश्व बाजारों में अधिक स्पर्द्धात्मक होते हैं क्योंकि वह निम्न लागत में उत्कृष्ट उत्पाद बनाने के योग्य होते हैं। यदि हम उत्पादन फलन से आरंभ कर समीकरण पता करें तो पाएँगे कि किसी समय विशेष t पर उत्पादन (Y_t) क्या होगा, यह (K_t) अर्थव्यवस्था के पूँजी संचय का एक फलन होता है, इसका श्रमबल (L_t) होता है तथा अर्थव्यवस्था की कुल कारक उत्पादकता (A_t) यदि उत्पादन बदलता है तो इसका एकमात्र कारण होता है पूँजी संचय, उसके श्रम बल अथवा कुल कारक उत्पादकता के स्तर में बदलाव। कॉब-डग्लस स्वरूप का उत्पादन फलन के लिए निम्नलिखित संकेत है–

$$Y_t = A_t K_t K_t^{\alpha} L_t^{1-\alpha}$$

इन समीकरणों में मुख्य बात यह है कि यह तीन कारण दर्शाता है जिनसे उच्चतर उत्पादन मिलेगा। वह हैं–

1. यदि काम के घंटों की संख्या बढ़ाई जाए (उच्चतर L),

नोट

2. यदि लोगों के पास काम करने हेतु पहले से अधिक उपकरण हों (उच्चतर K) तथा
3. यदि श्रम को पहले से अधिक लाभकारिता से प्रयोग किया जाए।

प्रत्येक घटक में परिवर्तन मुख्यत: चार प्रकार से होंगे–

1. **पूँजी में परिवर्तन**–यदि पूँजी संचय में एक आनुपातिक राशि $In\ K_t$ की वृद्धि कर दी जाए तो हम किसी प्रभाव तक बढ़ाई गई मात्रा की आनुपातिक वृद्धि दर हेतु हम कोई व्यावहारिक नियम लागू कर सकते हैं; जैसे–

$$In\ Y = \alpha\ In\ K$$

2. **श्रम में परिवर्तन**–यदि पूँजी संवय में एक आनुपातिक मात्रा InL_1 की वृद्धि की जाए ताकि श्रम बल में इस परिवर्तन से उत्पादन में आनुपातिक वृद्धि का ज्ञान किया जा सके तो समीकरण प्राप्त होगा–

$$In\ Y = (1 - \pm)\ 1bL$$

3. **कुल कारक उत्पादकता में परिवर्तन**–समीकरण $Iny + In\ A$ के अनुसार कुल कारक उत्पादकता में कोई भी आनुपातिक वृद्धि उत्पादन में समान आनुपातिक वृद्धि दर्शाती है।
4. **समूहकरण**–यदि हम पूँजी संचय, श्रमबल एवं कुल कारक उत्पादकता को परिवर्तनशील करें तो आनुपातिक वृद्धि दर समीकरण की भाषा में $In\ Y = In\ A + 0.33\ In\ K + 0.67\ In\ L$ होती है तथा यदि हमें उत्पादन की आनुपातिक वृद्धि दर ज्ञात हो तथा यदि उत्पादन फलन में ह्रासमान मापानुसार प्राचल $\pm$ भी ज्ञात हो तो हम परिवर्धन लेखा समीकरण की कुल उत्पादकता की वृद्धि दर आकलित करने तथा कुल उत्पादत Y की वृद्धि वियोजित करने के लिए (*i*) वर्धमान पूँजी संचय K से, (*ii*) वर्धमान श्रम बल L से तथा (*iii*) उच्चतर कुल कारक उत्पादकता A से योगदान प्राप्त कर सकते हैं। कुल कारक उत्पादकता को प्रभावित करने वाले कई कारक हैं जिनमें परिवर्तन आने से कुल कारक उत्पादकता भी प्रभावित होती है; जैसे–कार्य संगठन, सरकारी नियमन की कुशलता, कार्यबल की साक्षरता एवं कौशल, भवन निर्माण के नए तरीके, नई आविष्कृत मशीनें, शक्ति के नए स्त्रोत तथा अर्थव्यवस्था में एकाधिकार के स्तर। कुल कारक उत्पादकता की वृद्धि के लिए पूँजी एवं श्रम से अलग मानव पूँजी, प्रौद्योगिकीय विकास एवं मानव ज्ञान, कौशल, स्वास्थ्य प्रस्थिति आदि सम्मिलित हैं जो आर्थिक परिवर्धन को प्रभावित करने वाले अंतर्संबद्ध कारक हैं।

क्या आप जानते हैं इटली, स्विटजरलैंड तथा ऑस्ट्रेलिया को छोड़कर सभी विकसित देशों में कुल जनसंख्या में श्रमशक्ति के अनुपात बढ़े हैं।

7.3.1 सोलो अवशिष्ट

कुल कारक उत्पादकता कैसे मापी जाती है?

'सोलो अवशिष्ट' का अर्थ है परिवर्धन लेखा समीकरण में वृद्धि को ऐसे घटकों में बाँटने की अनुमति देना जिन्हें पूँजी संचय एवं श्रम बल की वृद्धि संबंधी कारक कहा जाता है। कुल कारक उत्पादकता को कई कारकों में परिवर्तन प्रभावित करता है, जैसे–भवन निर्माण के नए तरीके, कार्य संगठन, कार्य बल की साक्षरता एवं कौशल, सरकारी नियमन की कुशलता, शक्ति के नए स्त्रोत, नई आविष्कृत मशीनें तथा अर्थव्यवस्था में एकाधिकार के स्तर। सोलो अवशिष्ट के अनुसार–जब तक आय धनात्मक रहती है, बचतों तथा पूँजी स्टॉक में वृद्धि होती रहती है। इस अर्थव्यवस्था में यह संभावना भी पाई जाती है कि आय धनात्मक होने पर बचत शून्य हो जाती है ऐसी स्थिति में और निवेश नहीं होता तथा पूँजी स्टॉक स्थिर हो जाता है क्योंकि इसमें श्रम शक्ति बढ़ती रहती है इसलिए श्रम की सीमांत उत्पादकता कम होती जाती है। श्रम की उत्पादकता में निरंतर कमी, उत्पादकता की न्यूनतम वास्तविक मजदूरी दर से नीचे ले जाती है जिससे अदृश्य बेरोजगारी की स्थिति प्रकट होती है। यदि वास्तविक मजदूरी दर किसी निश्चित स्तर पर स्थिर रखी जाती है तो रोजगार का स्तर ऐसा होना चाहिए जिस पर श्रम की सीमांत उत्पादकता कायम रखी जाए। परंतु केवल

नोट

पूँजी तथा श्रम के आँकड़े कुल उत्पादकता की वृद्धि संबंधित आकलन के लिए अपूर्ण हैं क्योंकि परिवर्धन के दो से अधिक कारक हैं, जो–मानव पूँजी, प्रौद्योगिकीय विकास एवं मानव ज्ञान, स्वास्थ्य प्रस्थिति तथा कौशल। यह सब कारक अंतर्संबद्ध हैं तथा आर्थिक परिवर्धन दर पर पूरा प्रभाव डालते हैं।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

2. रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks)–

1. प्रौद्योगिकीय उन्नति ..... के महत्त्वपूर्ण तत्व माने जाते हैं।
2. 'सोलो अवशिष्ट' का अर्थ ..... है।
3. श्रम की उत्पादकता में निरंतर कमी, उत्पादकता को न्यूनतम ..... से नीचे मानी जाती है।
4. मुक्त बाजार अर्थव्यवस्था वाले देशों में कुल कारक ..... का स्तर निम्न होता है।
5. केवल पूँजी तथा श्रम के ..... कुल कारक उत्पादकता के आकलन के लिए अपूर्ण हैं।

7.3 कुल कारक उत्पादकता मापन : विभिन्न उपागम (Measurement Total Factor Productivity)

परिवर्धन लेखा तथा अर्थमिति कुल कारक उत्पादकता मापने की दो भिन्न विधियाँ हैं। इसके व्यापक रूप से पाँच प्रयुक्त उपागम हैं जिन्हें तीन मुख्य वर्गों मे विभाजित किया जाता है–सूचकांक, आँकड़ा अवगुंठन विश्लेषण तथा अर्थमितीय विधियाँ।

आँकड़ा अवगुंठन विश्लेषण (DEA)–यह एक अप्राचलिक उपागम है जो उत्पादन मापन हेतु प्रयोग होता है तथा रैखिक आयोजना का प्रयोग करता है। इसे चार्ने, कूपर एवं रोड़े द्वारा 1978 में प्रचलन में लाया गया, परंतु इसका उद्‌गम 1957 में फोरल से हुआ। इसमें किसी विशिष्ट उत्पादन फलन को मानकर नहीं चला जाता। इसमें समुक्तियों के एक पक्ष से दूसरे पक्ष तक की रैखिक संयोजन के अनुपात से तुलना की जाती है परंतु यह विधि कुशल नहीं हैं।

सूचकांक (कुल कारक उत्पादिता) (TFP)–यह उपागम आगतों तथा प्रदाओं के लिए एक समुच्चयन विधि प्रदान करता है जो सैद्धांतिक रूप से प्रेरित होती है। इसमें सोलो (1957) तथा डाइवर्ट (1976) की कृतियों को महत्त्वपूर्ण स्थान देकर दो सूचकांको से संबंधित किया गया है–सोलो सूचकांक तथा ट्रान्सलॉग सूचकांक।

सोलो सूचकांक–TFP के सोलो सूचकांक को दर्शाने का समीकरण निम्नलिखित है–

$$In\ A = In\ Y - (1 - \alpha)\ In\ L - \alpha\ In\ K$$

जिसमें–

Y = उत्पादन (मान योजित)

L = श्रम आगत

K = पूँजी आगत

α = योजित मान में पूँजी का आय अंश

InY = उत्पादन की वृद्धि दर

InL = श्रम आगत की वृद्धि दर

InK = पूँजी आगत की वृद्धि दर

InA = कुल कारक उत्पादकता की वृद्धि दर

इस सूचकांक के अनुसार श्रम तथा पूँजी के बीच प्रतिस्थापन की सुनम्यता एक-दूसरे के बराबर होती है तथा श्रम एवं पूँजी के आय अंश अचर होते हैं।

नोट

ट्रांसलॉग सूचकांक–इसमें प्रतिस्थापन की सुनम्यता चर होती है। ट्रांसलॉग का अर्थ है–पारलघुगणक सूचकांक। इसे दर्शाने का समीकरण निम्नलिखित है–

$$VIn\ TFP_t = VInY_t \left[\frac{SL_t + SL_{t-1}}{2} \times VInL_t\right] - \left[\frac{SK_t + SK_{t-1}}{2} \times VI_nK_t\right]$$

जिनमें,

Y = उत्पादन, α = उत्पादन, K = पूँजी

SL = श्रम का आय अंश

SK = पूँजी का आय अंश

VIn TFP = प्रौद्योगिकीय परिवर्तन की दर अथवा कुल कारक उत्पादकता की वृद्धि दर

इस सूचकांक का मुख्य लाभ है–आकलन की सरलता तथा मुख्य हानियाँ हैं–आँकड़ों की गुणवत्ता विषयक वांछनीयताएँ तथा फर्म के व्यवहार एवं बाजार प्राधार संबंधी अवधारणाएँ।

अर्थमितिक विधियाँ–उत्पादकता मापने के लिए अर्थमितिक विधियों का प्रयोग तीसरा उपागम है। अनुसंधानकर्ताओं द्वारा उत्पादकता के विषय पर बात करने के लिए विभिन्न प्रक्रियाओं का रूपांतरण हुआ है, जैसे–सहायक चर आकलन (IVE) लक्ष्यकुशल सीमांत आकलन (SFE) तथा कुल अर्द्ध-प्राचलिक प्रक्रियाएँ।

कुल कारक उत्पादकता उपायों की सीमाएँ–कुल कारक उत्पादकता मापन हेतु परिवर्धन लेखाक्रम प्रतिबंधात्मक अवधारणाओं पर आधारित हैं, जैसे–सतत मापानुसार लाभ, अपने सीमांत उत्पाद के अनुसार वहन किए जा रहे उत्पादन कारक तथा पूर्ण प्रतिस्पर्द्धा। परंतु ये अवधारणाएँ विकासशील देशों के अपूर्ण बाजारों के लिए यथार्थपरक नहीं हैं।

नोट्स कुल कारक उत्पादकता एक विकासशील देश की आर्थिक वृद्धि की महत्त्वपूर्ण संकल्पना है। कि उत्पादकता नियोजित संसाधनों से रोजगार उत्पन्न करने का संकेत देती है।

7.4 कुल कारक उत्पादकता उपायों की सीमाएँ (Limitations of Total Factor Productivity)

कुल कारक उत्पादकता मापने के लिए कुछ अवधारणाएँ प्रयोग की जाती हैं, जैसे–सतत मापानुसार लाभ, अपने सीमांत उत्पाद के अनुसार वहन किए जा रहे उत्पादन कारक तथा पूर्ण प्रतिस्पर्द्धा। मूलत: उत्पादकता मापन का उद्देश्य उत्पादन में परिवर्तनों को पहचानना होता है जो कि आगतों में परिवर्तनों द्वारा स्पष्ट नहीं किए जा सकते। मूल्यांकन करने हेतु प्रयास मूल्य लागत सीमांतों में परिवर्तनों के आकलन से लेकर उत्पादकता परिवर्तनों तक व्याप्त है। उत्पादन फलन के आकलन पर आधारित अर्थमितिक विधि, कुछ बेहतर स्थिति में रहती है क्योंकि यह इन प्रतिबंधात्मक अवधारणाओं की अपेक्षा नहीं रखती। अध्ययन के अंतर्गत सभी वर्षों में प्रौद्योगिकीय प्रगति की दर एक ही रहती है तथा बहु-सहरैखिकता की समस्या से काफी प्रभावित रहती है।

7.5 कुल कारक उत्पादकता से जुड़े मुद्दे (Related Issues from Total Factor Productivity)

कुल उत्पादकता से संबंधित विभिन्न मुद्दे और विवाद हैं–उत्पादकता में मंदी, प्रौद्योगिकी एवं पूँजी के बीच द्विभाजन, उत्पादकता एवं सूचना प्रौद्योगिकी तथा उत्पादकता एवं पर्यावरण। परंतु इन विभिन्न मुद्दों को कभी भी संतोषजनक रूप से हल नहीं किया गया है तथा आज भी उत्पादकता संबंधी अध्ययन-कार्यों में इनकी व्यापक उपेक्षा होती रही है।

नोट

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

3. सही विकल्प चुनिए–(Choose the Correct Option)

1. परिवर्धन लेखा तथा अर्थमिति कुल कारक उत्पादकता मापने की विधियाँ हैं–
   (क) दो (ख) चार
   (ग) सात (घ) इनमें से कोई नहीं।
2. आँकड़ा अवगुंठन विश्लेषण है–
   (क) अप्राचलिक उपागम (ख) प्राचलिक उपागम
   (ग) क और ख दोनों (घ) इनमें से कोई नहीं।
3. ट्रांसलॉग सूचकांक में प्रतिस्थापन की सुनम्यता होती है–
   (क) अचर (ख) चर
   (ग) स्थिर (घ) इनमें से कोई नहीं।
4. उत्पादकता मापन का उद्देश्य होता है–
   (क) उत्पादन में परिवर्तन को पहचाना (ख) उत्पादन आयात करना
   (ग) उत्पादन का निर्यात करना (घ) इनमें से कोई नहीं।

7.6 सारांश (Summary)

- कुल कारक उत्पादकता का एक संकल्पना के रूप में निरूपण गत शताब्दी के द्वितीय चतुर्थांश में हुआ।
- आधुनिक आर्थिक वृद्धि को प्रति व्यक्ति उत्पादन की दर में वृद्धि विशेषता प्रदान करती है। प्रति व्यक्ति उत्पादन की दर में वृद्धि प्रमुख रूप से आगतों की कोटि में सुधार के कारण होती है जो कि दक्षता बढ़ा देते हैं अथवा आगत की प्रति इकाई उत्पादकता में वृद्धि कर देते हैं।
- आर्थिक परिवर्धन हेतु मुख्य कारण है उत्पादकता। अधिक उत्पादनशील देश विश्व बाजारों में अधिक स्पर्द्धात्मक होते हैं।
- यदि हम पूँजी संचय, श्रमबल एवं कुल कारक उत्पादकता को परिवर्तनशील करें तो आनुपातिक वृद्धि दर समीकरण की भाषा में $In\ Y = In\ A + 0.33\ In\ K + 0.67\ In\ L$ होती है।
- प्रौद्योगिकीय उन्नति अथवा परिवर्तन आर्थिक वृद्धि के महत्त्वपूर्ण तत्त्व माने जाते हैं।
- विदेशी निवेश का कुशल उपयोग भी कुल कारक उत्पादकता की वृद्धि में सहायक होता है।
- 'सोलो अवशिष्ट' का अर्थ है परिवर्धन लेखा समीकरण में वृद्धि को ऐसे घटकों में बाँटने की अनुमति देना जिन्हें पूँजी संचय एवं श्रम बल की वृद्धि संबंधी कारक कहा जाता है।
- परिवर्धन लेखा तथा अर्थमिति कुल कारक उत्पादकता मापने की दो भिन्न विधियाँ हैं।
- कुल कारक उत्पादकता मापने के लिए कुछ अवधारणाएँ प्रयोग की जाती हैं, जैसे–सतत मापानुसार लाभ, अपने सीमांत उत्पाद के अनुसार वहन किए जा रहे उत्पादन कारक तथा पूर्ण प्रतिस्पर्द्धा।

7.7 शब्दकोश (Keywords)

- **परिवर्धन–** बढ़ाया जाना, सम्यक वृद्धि।
- **अवगुंठन–** छिपाना, ढका हुआ।

नोट

7.8 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. कुल कारक उत्पादकता की परिभाषा दीजिए तथा उत्पादकता में वृद्धि की व्याख्या कीजिए।
2. कुल कारक उत्पादकता को प्रभावित करने वाले कारकों को बताइए।
3. कुल कारक उत्पादकता को प्रभावित करने वाले कारक प्रौद्योगिकीय परिवर्तन के विषय में चर्चा कीजिए।
4. कुल कारक उत्पादकता को समझाइए तथा कुल कारक उत्पादकता उपायों की सीमाओं पर चर्चा कीजिए।
5. कुल कारक उत्पादकता मापन के विभिन्न उपागमों की विवेचना कीजिए।
6. कुल कारक उत्पादकता और परिवर्तन लेखा को स्पष्ट कीजिए।
7. 'सोलो अवशिष्ट' पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

1. 1. असत्य 2. सत्य 3. असत्य 4. सत्य
5. असत्य

2. 1. आर्थिक वृद्धि 2. परिवर्धन लेखा 3. मजदूरी दर 4. उत्पादकता
5. आँकड़े

3. 1. (क) 2. (क) 3. (ख) 4. (क)

7.9 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. *संवृद्धि एवं विकास का अर्थशास्त्र*: डॉ. पी. मिश्रा; साहित्य भवन पब्लिकेशन्स : आगरा
2. *विकास नियोजन एवं नीतियाँ*: वी. सी सिन्हा: साहित्य भवन पब्लिकेशन्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.) लि. रजिस्टर्ड कार्यालय नई दिल्ली
3. *विकास का अर्थशास्त्र एवं आयोजन*: डा. एस. एल. डिंगल: वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा. लि.

नोट

इकाई–8: तकनीकी परिवर्तन तथा प्रगति (Technical Change and Progress)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

8.1 तकनीकी परिवर्तन तथा उत्पादन प्रक्रिया (Technical Change and Production Progress)

8.2 तकनीकी परिवर्तन का वर्गीकरण (Classification of Technical Change)

8.3 सम्मिलित और असम्मिलित तकनीकी परिवर्तन (Combined and Uncombined Technical Change)

8.4 तकनीकी परिवर्तन संबंधी हिक्स का वर्गीकरण (Classification of Hicks Related to Technical Change)

8.5 तकनीकी परिवर्तन संबंधी हैरॉड का वर्गीकरण (Classification of Harod Related to Technical Change)

8.6 तकनीकी परिवर्तन संबंधी सोलो का वर्गीकरण (Classification of Solo Related to Technical Change)

8.7 तकनीकी परिवर्तन वाला नव–परंपरागत निदर्श (Neo-Traditional Model of Technical Change)

8.8 तकनीकी परिवर्तन से जुड़े कुछ मुद्दे (Some Related Issues from Technical Change)

8.9 सारांश (Summary)

8.10 शब्दकोश (Keywords)

8.11 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

8.12 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- तकनीकी परिवर्तन की उत्पादन प्रक्रिया तथा वर्गीकरण को समझने में।
- सम्मिलित और असम्मिलित तकनीकी परिवर्तन की विवेचना करने में।
- तकनीकी परिवर्तन संबंधी हिक्स और हैरॉड के वर्गीकरण की व्याख्या करने में।
- तकनीकी परिवर्तन के नव–परंपरागत मॉडल तथा तकनीकी से जुड़े मुद्दों को जानने में।

प्रस्तावना (Introduction)

आधुनिक अर्थव्यवस्था में होने वाला तकनीकी परिवर्तन एक बहुत बड़ा सत्य है तथा प्रगति का भी एक मुख्य कारण है। इसमें हम तकनीकी प्रगति को परिभाषित तथा, तकनीकी परिवर्तन तथा प्रौद्योगिकीय परिवर्तन के बीच भेद किया है, तकनीकी परिवर्तन का विभिन्न रूप में वर्गीकरण किया है, जैसे–सम्मिलित और असम्मिलित तकनीकी परिवर्तन,

नोट

तकनीकी परिवर्तन संबंधी हिक्स का, हैरॉड का तथा सोलो का वर्गीकरण/विभिन्न प्रकार की तकनीकी व्याख्या, संवर्धित, सम्मिलित तथा तटस्थ तकनीकी प्रगति का वर्णन तथा तकनीकी प्रगति वाले नवपरंपरागत परिवर्धन निदर्श का विश्लेषण किया गया है। अंततः यह इकाई तकनीकी परिवर्तन तथा कुल कारक उत्पादकता वृद्धि के बीच संबंधों पर प्रकाश डालता है।

8.1 तकनीकी परिवर्तन तथा उत्पादन प्रक्रिया (Technical Change and Production Progress)

तकनीकी प्रगति का अर्थ है–आगतों की समान मात्रा का प्रयोग कर अधिक उत्पादन प्रस्तुत करना। अर्थव्यवस्था में श्रम एवं पूँजी का प्रयोग कर हर वस्तु बनाई जाती है। अतः कोई भी वस्तु सजातीय नहीं होती। तकनीकी प्रगति होने से कालांतर में उत्पादन फलन बढ़ता है। उत्पादन फलन में तकनीकी परिवर्तन को प्रस्तुत करने के लिए

$Y = F(K, L, t)$ समीकरण का प्रयोग किया जाता है।

यहाँ कोणांक t का अर्थ है, एक उत्पादन फलन प्रवर्तक। पहले से अधिक उत्पादन प्रस्तुत करने के लिए समीकरण $Y = F(J(t) K, Z(t) L)$ का प्रयोग किया जाता है।

इसमें Y केवल श्रम तथा पूँजी का फलन नहीं रहता अपितु पूँजी तथा श्रम के संचय को J तथा Z कारकों से गुणा कर दिया जाता है जो दोनों समय के फलन हैं। $J(t)$–प्रभावी पूँजी तथा $Z(t)$–प्रभावी श्रम में परिवर्तित हो जाते हैं। dJ/dt, के धनात्मक तथा $Z(t) = 1$ होने पर तकनीकी को पूर्णतः पूँजी संवर्धक कहा जाता है तथा dZ/dt के धनात्मक तथा $J(t) = 1$ होने पर तकनीकी को पूर्णतः श्रम संवर्धक कहा जाता है। तथा dJ/dt तथा dZ/dt दोनों के धनात्मक होने पर तकनीकी प्रगति समान रूप से पूँजी तथा श्रम संवर्धक कही जाती है।

8.2 तकनीकी परिवर्तन का वर्गीकरण (Classification of Techincal Change)

तकनीकी परिवर्तन का संबंध मुख्यतः पूँजी–श्रम प्रबलता से होता है तथा कुल उत्पाद में पूँजी एवं श्रम के आनुपातिक अंश पर। तकनीकी परिवर्तन का पूँजी एवं श्रम के पारिश्रमिकों पर अप्रत्यक्ष प्रभाव होता है, जैसे–वेतन दर तथा पूँजी के किराए पर। विभिन्न समीकरणों से हमें ज्ञात होता है कि पूँजी का सीमांत उत्पाद धनात्मक है परंतु पूँजी की अथवा श्रम की वर्धमान मात्रा प्रयोग होने पर यह घटता है। दूसरा, यदि किसी प्रदत्त Y के लिए K के स्थान पर L रखा जाता है तो प्रतिस्थापन की सीमांत दर होती है, $-dK/dL = F_L/F_k$ तथा यदि मापानुसार सतत लाभ हो तो सकल उत्पादन श्रम एवं पूँजी का कुल पारिश्रमिक चुकाने में शेष हो जाता है।

सरलता की दृष्टि से अन्य कारकों, जैसे–भूमि पर विचार करने पर $Y = F(K, L)$ प्राप्त होता है। हम उत्पादन प्रतिश्रमिक Y से तथा पूँजी प्रतिश्रमिक k से इंगित करते हैं, परंतु श्रमिक उत्पादन अनुपात को हम $m = 1/y$ से दर्शाते हैं।

तब पूँजी/उत्पादन = (पूँजी/श्रमिक) × (श्रमिक/उत्पादन)

$= k \times m$ इसे n से इंगित करने पर

तब $n = km$ अथवा $k = n/m$ यहाँ m तथा n को तकनीकी गुणांक कहा जाता है। तकनीकी गुणांक का अर्थ है पूँजी–प्रदा अनुपात तथा श्रमिक–प्रदा अनुपात तथा k को पूँजी प्रबलता कहा जाता है। पूँजी–श्रमिक अनुपात अथवा पूँजी प्रबलता बढ़ने को पूँजी गहराना कहा जाता है। उत्पादन को पूँजी एवं श्रम के साथ अवकलित करने पर $\partial Y/\partial K$ तथा $\partial Y/\partial L$... प्राप्त होता है।

आमतौर पर $FK > 0, F_L > 0$, तथा $F_{kk} < 0$ तथा $F_{ll} < 0$ पूँजी का सीमांत उत्पाद धनात्मक है परंतु श्रम तथा पूँजी की वर्धमान मात्रा प्रयोग किए जाने पर यह घटता है। एक समघात के साथ $F = (K, L)$ अचर होता है। अतः समघात के किसी भी परिवर्तन के लिए Y अचर के साथ हमें प्राप्त होता है: $F_k dK + F_L dL = 0$

वेतन दर को w तथा पूँजी के किराए को r से इंगित करने पर प्राप्त होता है–

नोट

$$\partial Y/\partial L = w$$

तथा

$$\partial Y/\partial K = r$$

उत्पाद नि:शेषण प्रमेय के अनुसार सतत लाभ होने पर निम्नलिखित समीकरण सत्य होना चाहिए–

$$(\partial Y/\partial L)w + (\partial y/\partial K)r = Y$$

टास्क उन समस्याओं पर चर्चा कीजिए जो तकनीकी परिवर्तन को सम्मिलित माने जाने पर विश्लेषण में आ सकती हैं।

सर जोन हिक्स ने वर्ष 1932 में अपने पुस्तक 'दि थिअरी ऑफ वेजेज़' में प्रतिस्थापन की सुनम्यता संबंधी संकल्पना प्रस्तुत की थी जिसे पूँजी तथा श्रम के अनुपात के संतुलित परिवर्तन के रूप में परिभाषित करना सरल है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

1. सही विकल्प चुनिए– (Choose the correct option)

1. तकनीकी प्रगति का अर्थ है–
   (क) अधिक उत्पादन करना (ख) उत्पादन का आयात करना
   (ग) क और ख दोनों (घ) इनमें से कोई नहीं।
2. उत्पादन फलन में तकनीकी परिवर्तन को प्रस्तुत करने के लिए समीकरण प्रयोग किया जाता है–
   (क) $F = y(K, L, t)$ (ख) $y = F(K, L, t)$
   (ग) क और ख दोनों (घ) इनमें से कोई नहीं।
3. तकनीकी परिवर्तन का संबंध है–
   (क) पूँजी-श्रम की प्रबलता से (ख) मजदूरी और उत्पादन से
   (ग) क और ख दोनों (घ) इनमें से कोई नहीं।
4. "दि थिअरी ऑफ वेजेज" में प्रतिस्थापन की सुनम्यता संबंधी परिकल्पना प्रस्तुत की थी–
   (क) सर जॉन हिक्सले ने (ख) सोलो ने
   (ग) क और ख दोनों (घ) इनमें से कोई नहीं।
5. तकनीकी परिवर्तन का पूँजी एवं श्रम के परिश्रमिकों पर प्रभाव होता है–
   (क) प्रत्यक्ष (ख) अप्रत्यक्ष
   (ग) क और ख दोनों (घ) इनमें से कोई नहीं।

8.3 सम्मिलित और असम्मिलित तकनीकी परिवर्तन (Combined and Uncombined Technical Change)

तकनीकी परिवर्तन दो प्रकार के हो सकते हैं–सम्मिलित अथवा असम्मिलित। जब तकनीकी परिवर्तन उत्पादन कारक पूँजी के रूप में परिवर्तित होता है तो वह सम्मिलित तकनीकी परिवर्तन होता है। यह परिवर्तन नई प्रकार की मशीनों के रूप में भी होता है। दूसरी ओर, मशीनों के नए या पुराने प्रकार की जाँच किए बिना आगतों की कम मात्राओं का प्रयोग कर उतना ही उत्पादन प्रस्तुत करना असम्मिलित तकनीकी परिवर्तन कहलाता है। इसका उदाहरण है कारक संवध

नोट

र्क तकनीकी परिवर्तन। तकनीकी परिवर्तन न तो श्रम बचतकारी है तथा न ही पूँजी बचतकारी । इस पर तटस्थ संकल्पनाएँ हिक्स, हैरो तथा सोलो द्वारा दी गई हैं।

8.4 तकनीकी परिवर्तन संबंधी हिक्स का वर्गीकरण (Classification of Hicks Related to Technical Change)

सर जॉन हिक्स ने पूँजी के सीमित उत्पाद तथा श्रम के सीमांत अनुपात पर तकनीकी परिवर्तन के प्रभाव द्वारा तकनीकी प्रगति को परखा। उनके अनुसार तकनीकी प्रगति के पश्चात् अनुपात बढ़ने को श्रम बचतकारी कहा जाता है। अनुपात के वही रहने पर तटस्थ तथा अनुपात के गिरने पर इसे पूँजी बचतकारी कहते हैं। चिह्नांकनों द्वारा स्पष्ट करने पर यदि हम मानें कि–

$F_k(t1)$–तकनीकी प्रगति से पूर्व पूँजी का सीमांत उत्पाद है।

$F_k(t2)$–तकनीकी प्रगति पश्चात का सीमांत उत्पाद है।

$F_l(t1)$–तकनीकी प्रगति के पूर्व श्रम का सीमांत उत्पाद है।

$F_l(t2)$–तकनीकी प्रगति पश्चात श्रम का सीमांत उत्पाद है। तो हिक्स के अनुसार, यदि

1. $[F_k(t2)/F_l(t2)] > [F_k(t1)/F_l(t1)]$ तो तकनीकी प्रगति श्रम–बचतकारी होती है।
2. यदि $[F_k(t2)/F_l(t2)] = [F_k(t1)/F_l(t1)]$ तो तकनीकी प्रगति तटस्थ होती है।
3. यदि $[F_k(t2)/F_l(t2)] < [F_k(t1)/F_l(t1)]$ तो तकनीकी प्रगति पूँजी–बचतकारी होती है।

पूँजी बचतकारी तकनीकी प्रगति का सबसे प्रभावी उदाहरण है। ऐसा तकनीकी परिवर्तन जो श्रम बचाता है तथा पूँजी के किराए के सापेक्ष वेतन दर घटा देता है। अत: हिक्स ने तकनीकी प्रगति को तीन भागों में विभक्त किया–श्रम बचतकारी, पूँजी बचतकारी तथा हिक्स-तटस्थ।

नोट्स पूँजी तथा श्रम अनुपात के किसी भी प्रदत्त मान पर पूँजी के सीमांत उत्पाद तथा श्रम के सीमांत उत्पाद का बढ़ना श्रम बचतकारी कहलाता है।

पूँजी–श्रम उत्पाद का घटना पूँजी बचतकारी कहलाता है, तथा वही उत्पाद रहने पर हिक्स-तटस्थ कहलाता है। अत: हिक्स–तटस्थ तकनीकी प्रगति समान रूप से श्रम एवं पूँजी संवर्धन तकनीकी प्रगति है। उत्पाद फलन को समीकरण रूप में इस प्रकार लिखा जा सकता है–

$$Y = F (J (t) K, Z (t) L)$$

अथवा

$$Y = A (t) F (K, L)$$

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

2. निम्नलिखित कथनों में सत्य/असत्य की पहचान करें–

1. तकनीकी परिवर्तन तीन प्रकार के होते हैं।
2. पूँजी बचतकारी तकनीकी प्रगति का सबसे प्रभावशाली उदाहरण है।
3. हिक्स ने तकनीकी प्रगति को पाँच भागों में विभक्त किया है।
4. उत्पाद फलन को समीकरण के रूप में नहीं विभक्त किया जा सकता।
5. हैरॉड के वर्गीकरण में तकनीकी परिवर्तन बचतकारी कहलाता है।

नोट

8.5 तकनीकी परिवर्तन संबंधी हैरॉड का वर्गीकरण (Classification of Harod Related to Technical Change)

सर रॉय हैरॉड वर्ष 1937 में अपना वर्गीकरण सर्वप्रथम एक लेख में प्रस्तुत किया परंतु इसका विस्तृत रूप वर्ष 1948 में प्रकाशित हुआ। उनके अनुसार, तटस्थ तकनीकी प्रगति का अर्थ है ब्याज दर स्थिर होने पर पूँजी एवं श्रम के बीच कुल राष्ट्रीय उत्पाद का वितरण सतत रहना। यदि K/Y अचर हो तो तथा dS/dt शून्य से अधिक हो तो हैरॉड के वर्गीकरण में तकनीकी परिवर्तन श्रम बचतकारी कहलाता है। जब K/Y अचर हो तथा $dS/dt < 0$ हो तो तकनीकी परिवर्तन पूँजी-बचतकारी होता है तथा यदि अचर K/Y में S नियत रहता है तथा $dS/dt = 0$ हो तो तकनीकी प्रगति हैरो-तटस्थ होती है। श्रीमती जो रॉबिन्सन के ज्यामितीय साक्ष्य के अनुसार, तकनीकी प्रगति के हैरो तटस्थ होने पर तथा किसी नियत दर u पर आगे बढ़ने पर कुल उत्पादन फलन इस प्रकार होता है–

$$y = F(K, Z(t) L) \text{ जहाँ } [dz(t)/dt]/z(t) = u$$

8.6 तकनीकी परिवर्तन संबंधी सोलो का वर्गीकरण (Classification of Solo Related to Technical Change)

सोलो, हैरो तथा हिक्स के तकनीकी परिवर्तन संबंधी वर्गीकरण समान ही हैं। सोलो के अनुसार, यदि तकनीकी गुणांक परिवर्ती हों तो पूँजी-श्रम अनुपात की प्रवृत्ति यह होगी कि वह अपने आप को समय बीतने पर संतुलन अनुपात की दिशा में समायोजित कर लेगा। हिक्स के वर्गीकरण में अचर पूँजी-श्रम अनुपात के बिन्दुओं पर विभिन्न प्रति श्रमिक उत्पादन वक्रों पर बिन्दुओं तुलना की गई है, हैरो की योजना में अचर पूँजी-प्रदा अनुपात के बिन्दुओं पर विभिन्न प्रति श्रमिक उत्पादन वक्र पर तथा सोलो का वर्गीकरण श्रम-प्रदा अनुपात पर स्थिर है तथा पुराने व नए प्रति श्रमिक उत्पादन पर स्थित बिन्दुओं की तुलना करता है।

क्या आप जानते हैं सोलो का विश्लेषण संतुलन पथ की ओर केन्द्रित है चाहे वह किसी भी पूँजी-श्रम अनुपात से क्यों न प्रारंभ हो

8.7 तकनीकी परिवर्तन वाला नव-परंपरागत निदर्श (Neo-Traditional Model of Technical Change)

सोलो निदर्श में परिवर्धन का प्रेरणा स्त्रोत तकनीकी प्रगति होता है, कुंजी पूँजी का संचयन अथवा बचत दर को बढ़ाना नहीं। तकनीकी परिवर्तन के स्थिर अवस्था निदर्शों के अध्ययन के लिए हिक्सी की वर्गीकरण योजना से हैरो की योजना अधिक उपयोगी सिद्ध होती है। तकनीकी प्रगति को विशेष रूप से हैरो-तटस्थ या श्रमिक-संवर्द्धक होना चाहिए। सोलो के परिवर्धन निदर्श में एकमात्र अंतर है कि श्रम बल को प्राकृतिक इकाइयों में मापने के स्थान पर दक्षता इकाइयों में मापना उपयोगी है।

8.8 तकनीकी परिवर्तन से जुड़े कुछ मुद्दे (Some Related Issues from Technical Change)

तकनीकी परिवर्तन अथवा तकनीकी प्रगति की विषयवस्तु की इस पाठ्यक्रम में कई बार चर्चा की गई है तथा आगे भी की जाएगी, वह है अंतर्जात परिवर्तन, बहुक्षेत्रीय परिवर्धन निदर्श तथा पूँजीवाद विकास संबंधी शुम्पीटर का सिद्धांत आदि।

नोट

सम्मिलित तकनीकी प्रगति–सम्मिलित तकनीकी प्रगति अनेक परिवर्धन निदर्शों में बाह्यजात होती है। यह एक सरलीकारक युगल होती है। जो विश्लेषण को सरल बनाती है। यह प्रगति प्रौद्योगिकी की अथवा मशीनों की प्रकृति पर निर्भर नहीं करती। वहीं सम्मिलित तकनीकी प्रगति आधुनिक मशीनों के स्टॉक तथा अर्थव्यवस्था में पूँजीगत माल पर निर्भर करती है। सोलो के लेख में प्रभावी पूँजी का एक सूचकांक प्रस्तुत किया गया।

पूँजी की प्रकृति–उत्पादन या आय एक प्रवाह है तथा पूँजी संचय मात्र एक स्टॉक है। पूँजी के संचय में कोई मान आरोपित करना कठिन होता है, क्योंकि यहाँ सूचकांक समस्या देखने को मिलती है। कैल्डोर का कथन है कि किसी परिवर्तन द्वारा दर्शाए गए पूँजी संचयन का प्रभाव तकनीकी प्रगति के प्रभाव से भिन्न होता है। उनके इस सुझाव का बाद में आधुनिक अंतर्जात परिवर्तन के सिद्धांत के रूप में भी विकसित हो गया। तकनीकी प्रगति वाले निदर्शों में पूँजी का मापन करने में बहुत सावधानी रखनी पड़ती है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

3. रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks)–

1. सोलो हैरॉड तथा ..... के तकनीकी परिवर्तन संबंधी वर्गीकरण समान हैं।
2. सोलो का विश्लेषण ..... पथ की ओर केन्द्रित है। चाहे वह किसी भी पूँजी अनुपात से क्यों न प्रारंभ हो।
3. सोलो मॉडल में परिवर्धन का प्रेरणा स्रोत ..... होता है।
4. सम्मिलित तकनीकी प्रगति ..... युगल होती है।
5. उत्पादन या आय एक प्रवाह है तथा पूँजी संचय मात्र एक ..... है।

8.9 सारांश (Summary)

- आधुनिक अर्थव्यवस्था में होने वाला तकनीकी परिवर्तन एक बहुत बड़ा सत्य है तथा प्रगति का भी एक मुख्य कारण है।
- तकनीकी प्रगति का अर्थ है–आगतों की समान मात्रा का प्रयोग कर अधिक उत्पादन प्रस्तुत करना। अर्थव्यवस्था में श्रम एवं पूँजी का प्रयोग कर हर वस्तु बनाई जाती है।
- तकनीकी परिवर्तन का संबंध मुख्यत: पूँजी-श्रम प्रबलता से होता है तथा कुल उत्पाद में पूँजी एवं श्रम के आनुपातिक अंश पर।
- तकनीकी परिवर्तन दो प्रकार के हो सकते हैं–सम्मिलित अथवा असम्मिलित। जब तकनीकी परिवर्तन उत्पादन कारक पूँजी के रूप में परिवर्तित होता है तो वह सम्मिलित तकनीकी परिवर्तन होता है।
- तटस्थ तकनीकी प्रगति का अर्थ है ब्याज दर स्थिर होने पर पूँजी एवं श्रम के बीच कुल राष्ट्रीय उत्पाद का वितरण सतत रहना।
- सोलो, हैरो तथा हिक्स के तकनीकी परिवर्तन संबंधी वर्गीकरण समान ही हैं। सोलो के अनुसार, यदि तकनीकी गुणांक परिवर्ती हों तो पूँजी-श्रम अनुपात की प्रवृत्ति यह होगी कि वह अपने आप को समय बीतने पर संतुलन अनुपात की दिशा में समायोजित कर लेगा।

8.10 शब्दकोश (Keywords)

- **सुनम्यता**–लोचशीलता, झुकाव।
- **सीमांत**–सीमावर्ती, हद, सीमा।

नोट

8.11 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. तकनीकी परिवर्तन के वर्गीकरण को स्पष्ट कीजिए।
2. तकनीकी परिवर्तन तथा उत्पादन प्रक्रिया से आप क्या समझते हैं? सम्मिलित और असम्मिलित तकनीकी परिवर्तन को स्पष्ट कीजिए।
3. तकनीकी परिवर्तन सम्बन्धी हिक्स का वर्गीकरण समझाइए।
4. तकनीकी परिवर्तन वाले नव-परंपरागत निदर्श पर टिप्पणी लिखिए तथा तकनीकी परिवर्तन से जुड़े मुद्दे को समझाइए।
5. तकनीकी परिवर्तन सम्बन्धी हैरॉड वर्गीकरण तथा सोलो वर्गीकरण के बीच अंतर स्पष्ट कीजिए।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

1. 1. (क) 2. (ख) 3. (क) 4. (घ)
5. (ख)

2. 1. असत्य 2. सत्य 3. असत्य 4. असत्य
5. सत्य।

3. 1. हिक्स 2. संतुलन 3. तकनीकी प्रगति 4. सरलीकारक
5. स्टॉके।

8.12 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. *संवृद्धि एवं विकास का अर्थशास्त्र*: डॉ. पी. मिश्रा; साहित्य भवन पब्लिकेशन्स : आगरा
2. *विकास नियोजन एवं नीतियाँ*: वी. सी सिन्हा: साहित्य भवन पब्लिकेशन्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.) लि. रजिस्टर्ड कार्यालय नई दिल्ली
3. *विकास का अर्थशास्त्र एवं आयोजन*: डा. एस. एल. डिंगल: वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा. लि.

नोट

इकाई–9: इष्टतम आर्थिक वृद्धि के मॉडल (Models of Optimal Economic Growth)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

9.1 इष्टतम अर्थिक वृद्धि के मॉडल (Models of Optional Economic Growth)

9.2 वृद्धि संबंधी रामसे मॉडल (Growth Related Ramsay Model)

9.3 संचयन का स्वर्णिम नियम (Golden Rule of Collection)

9.4 परिवर्धन का कैस–कूपमैन मॉडल (Addiition of Kas-Kupman Model)

9.5 कैस–कूपमैन और मॉडल में बट्टा–छूट प्रयोग (Use Discount and Commission in Kas-Kupman Model)

9.6 कैस–कूपमैन मॉडल और रामसे मॉडल के साथ समानताएँ तथा असमानताएँ की (Similarity and Dissimilarity of Kas-Kupman and Ramsay Model)

9.7 सारांश (Summary)

9.8 शब्दकोश (Keywords)

9.9 अभ्यास–प्रश्न (Review Questions)

9.10 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- कालांतर में इष्टतमीकरण को समझने में।
- वृद्धि संबंधी रामसे मॉडल एवं संचयन के स्वर्णिम नियम को समझने में।
- परिवर्धन का कैस–कूपमैन मॉडल तथा मॉडल में बट्टा–छूट की व्याख्या करने में।
- कैस–कूपमैन मॉडल की रामसे मॉडल के साथ समानता और असमानता की विवेचना करने में।

प्रस्तावना (Introduction)

इस इकाई से हम अंतर्कालिक उपभोग की अवधारणा का वर्णन तथा अंतर्कालिक इष्टतमीकरण की तकनीक स्पष्ट रूप से इससे हम चर्चा की गई है। संवृद्धि संबंधी रामसे निदर्श, संचयन का स्वर्णिम नियम तथा परिवर्धन का कैस–कूपमैन निदर्श जैसे विभिन्न विषयों पर भी चर्चा कर सकेंगे। इस इकाई द्वारा हम एक नव–परंपरागत प्रकार की अर्थव्यवस्था का अध्ययन कर सकेंगे। इन विभिन्न विषयों पर चर्चा करने के पश्चात् ही हम इष्टतम आर्थिक संवृद्धि के निदर्श को समझ पाएँगे।

नोट

9.1 इष्टतम आर्थिक वृद्धि के मॉडल (Models of Optional Economic Growth)

अनेक समयावधियों के आद्योपांत विस्तार पाने वाले परिवेश के इष्टतमीकरण का अवलोकन करने के दो तरीके हैं–T समयावधियाँ हैं, $t = 1, 2, 3 \ldots T$ किसी भी निर्णयकर्ता द्वारा अवधि 1 व सभी अनुवर्ती समयावधियों $t = 2, 3, 4, \ldots$ T के लिए $t = 1$ पर निर्णय लिया जाता है। प्रत्येक अवधि वियोज्य है तथा प्रत्येक अवधि में विलग निर्णय लिए जाते हैं। प्रत्येक अवधि वियोज्य है तथा प्रत्येक अवधि में विलग निर्णय लिए जाते हैं। बजट निबाध को वर्तमान मान पदों में व्यक्त करने के लिए लिखा जाता है–

$$c_1 + \frac{c_2}{(1+r)} = m_1 + \frac{m_2}{(1+r)}$$

समयावधि के आद्योपांत इष्टतमीकरण करने पर फलन चुना जाता है, एकल इष्टतम मान नहीं। सतत अथवा असतत समयावधि पर, किसी भी परिवर्तनशील इष्टतमीकरण समस्या के अवकल होंगे–(क) आर्रभिक बिंदु से सात बिंदु तक ग्रास पथों की शृंखला, (ख) कोई प्रदत्त आर्रभिक बिंदु तथा एक प्रदत्त सात बिंदु, जो कि अनंत की ओर विस्तार पाने योग्य है, (ग) पथ मूल्यों की शृंखला तथा (घ) इष्टतम पथ चुनकर पथ मूल्य को अधिकतम अथवा न्यूनतम करने हेतु एक विनिर्दिष्ट लक्ष्य। परिवर्तनशील इष्टतमीकरण समस्याओं को हल करने की तीन विधियाँ हैं–परिवर्तन आयोजन, चरों का फलन तथा इष्टतम नियंत्रण समष्टि।

9.2 संवृद्धि संबंधी रामसे मॉडल (Growth Related Ramsay Model)

फ्रैंक रामसे कैम्ब्रिज एक युवा दार्शनिक तथा गणितज्ञ थे जिनकी मृत्यु 26 वर्ष की आयु में हो गई थी। उन्होंने पीगू के प्रश्न की बचत के इष्टतम स्तर को कैसे ज्ञात किया जाए का उत्तर खोजने का प्रयास किया। यह प्रश्न तब उठता है जब किसी बाजार अर्थव्यवस्था में वास्तविक बचत प्रत्याशित इष्टतम बचत से कम होती है। रामसे निदर्श, सोलो निदर्श से दशकों पहले 1926 में आ चुका था। रामसे निदर्श एक भविष्यसूचक सिद्धांत नहीं बल्कि एक चिरभोगजन्य सिद्धांत है। यह समाज एक प्रतिनिधि अभिकर्ता द्वारा भी निरूपित होता है जो फलन को अधिकतम करता है। इसे एक सामाजिक कल्याण फलन के रूप में भी प्रयोग किया जाता है जो निम्नवत है–

$$U = f(C)$$

निष्पक्ष फलन विषयक निम्नलिखित बातें ध्यान देने योग्य हैं–

1. प्रत्येक अवधि में उपयोगिता अन्य अवधियों में उपयोगिता से स्वतंत्र होती है, अत: J उपयोगिता फलत का योग है।
2. एक निश्चित समयावधि में समय को एक अनुलेख के रूप में रखा जाना उपभोग को प्रदर्शित करता है।
3. हम संकलन का प्रयोग करते हैं, क्योंकि हमने समय को असतत चर के रूप में लिया है।
4. पद J एक फलनक है। फलन C के बदलने पर U भी बदलेगा।

नोट्स सोलो मॉडल का विस्तारण ही रामसे मॉडल है।

रामसे ने प्रसारणों का फलन नामक गणितीय तकनीक का प्रयोग उपर्युक्त इष्टतमीकरण अवधारणा को हल करने के लिए किया। परंतु अर्थशास्त्री इस से अवगत नहीं थे इसलिए यह निम्नवत् सिद्ध हुई। बाद में रामसे ने B–U (C_t) समय t पर C_t का उपभोग करने से प्राप्त वास्तविक उपयोगिता का निरूपण किया तथा इस इष्टतमीकरण को पूँजी संचय की वृद्धि संबंधी निबाध के अधीन प्रयोग किया।

नोट

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

1. सही विकल्प चुनिए (Choose the correct option) –

1. अनेक समयावधियों को आद्योपांत विस्तार पाने वाले इष्टतमीकरण का अवलोकन करने के तरीके हैं–
   (क) दो (ख) तीन
   (ग) चार (घ) इनमें से कोई नहीं।
2. रामसे मॉडल, सोलो मॉडल से आय–
   (क) पहले (ख) बाद में
   (ग) साथ-साथ (घ) इनमें से कोई नहीं।
3. सामाजिक कल्याण फलन है–
   (क) $f = V(c)$ (ख) $c = f(V)$
   (ग) $c = f(V)$ (घ) इनमें से कोई नहीं।
4. हम संकलन का प्रयोग करते हैं क्योंकि हमने समय को लिया है–
   (क) असतत् चर के रूप में (ख) सतत् चर के रूप में
   (ग) स्थिर चर के रूप में (घ) इनमें से कोई नहीं।

9.3 संचयन का स्वर्णिम नियम (Golden Rule of Collection)

"स्वर्णिम नियम" शब्द बाइबिल के "आचरण के स्वर्णिम नियम" से लिया गया है। जिसका अर्थ है–"हम दूसरों के साथ कैसा व्यवहार करें जैसा कि हम उनसे अपने प्रति चाहते हैं" इष्टतम वृद्धि के संबंध में यहाँ "हम" का प्रयोग वर्तमान पीढ़ी के लिए तथा उनसे का प्रयोग अन्य पीढ़ियों के लिए किया गया है। इस नियम के द्वारा एडम फेल्प जिन्होंने 1961 में इसे प्रस्तुत किया कहना चाहते थे कि इस नियम के अर्थ के अनुसार हमें अपनी आने वाली पीढ़ियों के लिए वही सिद्धांत अपनाना चाहिए, जिससे बचत दर बढ़े तथा अर्थव्यवस्था हमें इष्टतम पथ पर प्राप्त हो ताकि आने वाली पीढ़ियाँ इष्टतम उपभोग स्तरों का आनन्द ले सकें।

कुछ आधारभूत समीकरण है। प्रथम राष्ट्रीय लेखाकरण की दृष्टि से $Y = C + I$, यहाँ C उपभोग है तथा I निवेश। इसका अर्थ है–$C = Y - I$ पूर्व इकाइयों की दृष्टि से समीकरण है–

$$c_t = f(k_t) - sf(k_t)$$

निष्पक्ष फलन में प्रतिस्थापना के बाद निबाध प्राप्त होता है–

$$\text{अधि. } c_t = f(k_t) = (n + \delta) K_t.$$

इस समीकरण को पूँजी संचयन का स्वर्णिम नियम' कहा जाता है जिसे 1961 में एडमंड फेल्प ने प्रस्तुत किया। इस समीकरण द्वारा साधन K को स्थिर अवस्था मान दिया जाता है। बाइबल के आचरण के स्वर्णिम नियम से स्वर्णिम नियम शब्द लिया गया है। इसका अर्थ है कि हम दूसरों के साथ ऐसा व्यवहार करें जैसा कि हम उनसे अपने प्रति चाहते हैं। यहाँ इष्टतम वृद्धि के अनुसार 'हम' का प्रयोग वर्तमान पीढ़ी तथा 'उसने' का प्रयोग अन्य पीढ़ियों के लिए किया गया है।

टास्क कैप-कूपमैन मॉडल तथा रामसे मॉडल का तुलना कीजिए।

नोट

9.4 परिवर्धन का कैस-कूपमैन मॉडल (Addition of Kas-Kupman Model)

रामसे निदर्श को डेविड कैस तथा जालिंग कूपमैन द्वारा दिया गया विस्तारण ही कैस-कूपमैन निदर्श है। उन्होंने बट्टा-छूट का प्रयोग किया। उनके समय अधिमान लागू करने में तार्किक की जगह गणितीय कारण अधिक है, जो अंतर्कालिक इष्टतमीकरण कार्यक्रम के हल के लिए आवश्यक है। उनके अनुसार, फेल्प स्वर्णिम नियम निष्पक्ष फलन में भी सीधे उपभोग प्रवाह के स्थान पर अधिकतमीकरण का उपयोग होना चाहिए। बट्टा-छूट तथा समय अधिमान को प्रकाश में लाने के लिए निम्नलिखित तर्क दिए जा सकते हैं–

1. सामाजिक नियोजक की अभिरुचि के रूप में औचित्य प्रतिपादन की आवश्यकता को लेना चाहिए।
2. वर्तमान अवधि में प्रत्येक व्यक्ति की उपयोगिता उनके बच्चों तथा उनके बच्चों के उपयोगिता का भी फलन होती है।

सिद्रौस्की निदर्श की मूल अवधारणा वास्तविक मुद्रा प्रतिभारों को उपयोगिता फलन में प्रविष्ट करवाने संबंधी है। जिस पर मुद्रा तथा वस्तुएँ परस्पर विनिमय की जाती हैं, उसी पर मुद्रा द्वारा प्रदान की जाने वाली विनिमय सेवाएँ भी निर्भर करती हैं। नामिक उपलब्धियाँ दुगुनी होने पर मूल्य स्तर भी दुगुना हो जाता है।

क्या आप जानते हैं उपयोगिता फलन कालांतर में योगात्मक रूप से वियोज्य होता है।

इष्टतमीकरण समस्या के आधारभूत तत्त्व अथवा अवयव

किसी परिवर्तनशील इष्टतमीकरण समस्या के आधारभूत तत्त्व निम्नलिखित हैं–

1. कोई प्रदत्त आरंभिक बिंदु तथा एक प्रदत्त सांत बिंदु जो कि अनंत की ओर विस्तार पा सकता है।
2. पथ मूल्यों की एक श्रृंखला।
3. आरंभिक बिंदु से सात बिंदु तक ग्रास पदों की श्रृंखला।
4. इष्टतम पथ चुनकर पथ मूल्य को अधिकतम अथवा न्यूनतम करने हेतु एक विनिर्दिष्ट लक्ष्य।

9.5 कैस-कूपमैन मॉडल बट्टा-छूट प्रयोग (Use Discount and Commission in Kas-Kupman Model)

बट्टा-छूट का अर्थ है भावी लाभों को भारित करने की प्रक्रिया ताकि उन्हें वर्तमान लाभों की भाँति ही मूल्यवान बनाया जा सके। रामसे निदर्श का विस्तारण ही कैस-कूपमैन निदर्ष है। यह दिर्श डेविड कैस् तथा जालिंग कूपमैन द्वारा पदान किए गए। उन्होंने बट्टा-छूट का प्रयोग किया जा रामसे निदर्श से भिन्न है। उनके समय अधिमान लागू करने में तार्किक की जगह गणितीय कारण अधिक हैं, अवश्यक है। कैस-कूपमैन निदर्श अब से बीस वर्ष बाद की उपयोगिता के बजाय वर्तमान उपयोगिता को मान देता है। कुल उपयोगिता का आकलन उपयोगिता प्रवाह के वर्तमान बट्टा-छूट मान के रूप में किया है–

$$U = U_o + \frac{U_1}{1+P} = \frac{U_2}{(1+P)^2} + ...$$

यहाँ P बट्टा दर ह। हम $1/(1+P)$ के β के रूप में प्रदर्शित कर सकते हं तथा कुल उपयोगिता को निम्नवत लिख सकते हैं–

$$U = U_o \beta U_1 + (\beta^2 U_2 + \beta^3 U_3 + ...$$

अथवा $U = \Sigma \beta U_t$

नोट

बट्टा-छूट को प्रकाश में लाने के लिए निम्नलिखित तर्क दिए जा सकते हैं-

1. इसे सामाजिक नियोन की अभिरुचि के रूप में लेना चाहिए।
2. बट्टा-छूट के द्वारा हम भावी पीढ़ियों के विषय में नहीं बल्कि 'वंशों' के विषय में सोचने लगे हैं।

इन सब बातों से निष्पक्ष फलन का अधिकतम सुधार अवश्यक हो जाता है।

9.6 कैस-कूपमैन निदर्श की रामसे निदर्श के साथ समानताएँ एवं असमानताएँ (Similarity and Dissimilarity of Kas-Kupman and Ramsay Model)

कैस-कूपमैन निदर्श रामसे निदर्श का ही विस्तारण है, परुतु इसमें कुछ समानताएं हैं तथा कुछ असमानताएँ हैं। जिनका वर्णन निम्नलिखित है-

समानताएँ-

1. दोनों ने ही अंतकालिक उपभोग तथा इष्टतम बचत निर्णय विषयक सिद्धांत दिया।
2. यह दोनों ही चिरभोगजन्य सिद्धांत है।
3. दोनों ने ही समय अभिमान लागू किया।
4. दोनों ने गणितीय तकनीक का प्रयोग किया।

असमानताएँ-

1. रामसे निदर्श में इष्टतमीकरण का मानक निदर्श रखा गया, परंतु कैस-कूपमैन दिर्श में बट्टा-छूट का प्रयोग किया गया।
2. रामसे के अनुसार उपयोगिता फलन लिया गया-

$$U = \left(\frac{C}{L}\right)$$

परंतु कैस-कूपमैन निदर्श का उपयोगिता फलन है-

3. रामसे निदर्श बट्टा-छूट का प्रयोग नहीं किया गया, परंतु कैस-कूपमैन दिर्श में बट्टा-छूट को प्रकाश में लाने के लिए विभिन्न तर्क दिए।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

2. रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks)–

1. बट्टा छूट भावी लाभों को ..... करने की प्रक्रिया है।
2. ..... मॉडल अब से बीस वर्ष बाद की उपयोगिता के बजाए वर्तमान उपयोगिता को मान देता है।
3. कैस-कूपमैन तथा रामसे ने अपने मॉडल में ..... का प्रयोग किया।
4. कैस-कूपमैन ने अपने मॉडल में ..... का प्रयोग किया है।
5. रामसे मॉडल तथा कैप-कूपमैन दोनों के सिद्धांत ..... सिद्धांत हैं।

9.7 सारांश (Summary)

- परिवर्तनशील इष्टतमीकरण समस्याओं को हल करने की तीन विधियाँ हैं–परिवर्तन आयोजन, चरों का फलन तथा इष्टतम नियंत्रण समष्टि।
- रामसे निदर्श, सोलो निदर्श से दशकों पहले 1926 में आ चुका था। रामसे निदर्श एक भविष्यसूचक सिद्धांत

नोट

नहीं बल्कि एक चिरभोगजन्य सिद्धांत है।

- एक निश्चित समयावधि में समय को एक अनुलेख के रूप में रखा जाना उपभोग को प्रदर्शित करता है।
- बाइबल के आचरण के स्वर्णिम नियम से स्वर्णिम नियम शब्द लिया गया है।
- रामसे निदर्श को डेविड कैस तथा जालिंग कूपमैन द्वारा दिया गया विस्तारण ही कैस-कूपमैन निदर्श है। उन्होंने बट्टा-छूट का प्रयोग किया।
- सिद्रौस्की निदर्श की मूल अवधारणा वास्तविक मुद्रा प्रतिभारों को उपयोगिता फलन में प्रविष्ट करवाने संबंधी है।

9.8 शब्दकोश (Keywords)

- **स्वर्णिम–** सुनहला।
- **इष्टतमीकरण–** सबसे अधिक वांछित, प्रक्रिया।
- **आद्योपांत–** आद्यंत, आदि से अंत तक।

9.9 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. किसी परिवर्तनशील इष्टतमीकरण समस्या के आधारभूत तत्व अथवा अवयव क्या हैं?
2. रामसे परिवर्धन मॉडल में इष्टतमीकरण के मूल प्रधार का वर्णन कीजिए।
3. "संचयन के स्वर्णिम नियम" से आप क्या समझते हैं?
4. कैस-कूपमैन के परिवर्धन मॉडल को समझाइए। कैस-कूपमैन मॉडल में बट्टा-छूट प्रयोग पर टिप्पणी लिखिए।
5. कैस-कूपमैन मॉडल की रामसे निदर्श के साथ समानताएँ एवं असमानताएँ बताइए।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

1. 1. (क) 2. (क) 3. (ख) 4. (क)

2. 1. भारित 2. कैस-कूपमैन 3. गणितीय तकनीकी 4. बट्टा-छूट
5. चिरभोगजन्य

9.10 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. *विकास का अर्थशास्त्र एवं आयोजन*: डॉ. एम. एल. झिंगन: वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा. लि.
2. *संवृद्धि एवं विकास का अर्थशास्त्र*: डॉ जे. पी मिश्रा: साहित्य भवन पब्लिकेशन्स एवं डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.) लि. रजिस्टर्ड कार्यालय नई दिल्ली

नोट

इकाई–10: वृद्धि के बहुक्षेत्रीय मॉडल (Multi-Sector Models of Growth)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

10.1 दो क्षेत्रीय परिवर्धन मॉडल (Dual-Sector Addition Model)

10.2 फैल्डमैन मॉडल (Fieldman Model)

10.3 बहुक्षेत्रीय परिवर्धन मॉडल (Multi-Sector Addition Model)

10.4 सारांश (Summary)

10.5 शब्दकोश (Keywords)

10.6 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

10.7 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- दो क्षेत्रीय परिवर्धन मॉडल को जानने में।
- फैल्डमैन मॉडल की व्याख्या करने में।
- बहुक्षेत्रीय परिवर्धन मॉडल की व्याख्या करने में।

प्रस्तावना (Introduction)

'बहुक्षेत्रीय' शब्द का तात्पर्य एक ऐसे वर्ग से है जिसमें एक उदाहरणस्वरूप दो क्षेत्रीय मॉडल होंगे। साधारणत: दो क्षेत्रीय तथा बहुक्षेत्रीय मॉडल के प्राधार एक-दूसरे से भिन्न होते हैं।

10.1 दो क्षेत्रीय वृद्धि मॉडल (Dual-Sector Addition Model)

पुरस्थापना और अवधारणाएँ–विभिन्न प्रकार के दो क्षेत्रीय मॉडलों में एक सामान्य प्राधार पाया जाता है। सजातीय पूँजी एवं श्रम के प्रयोग द्वारा एकल सजातीय वस्तु को उत्पादित किया जाता है। दो क्षेत्रीय निदर्शों की अवधारणाएँ निम्नलिखित हैं–

1. श्रम सजातीय होता है।
2. प्रतियोगात्मक साम्यावस्था वाली दशाएँ प्राप्त होती हैं।
3. एकमात्र सुनिर्माणनीय पूँजीगत वस्तु होती है।
4. श्रम तथा पूँजी का स्थानांतरण संभव है।
5. पूँजी का क से अवमूल्यन होता है।

नोट

उजावा निदर्श–वर्ष 1961 तथा 1963 में हिरोफूमी उजावा द्वारा महत्त्वपूर्ण दो क्षेत्रीय परिवर्धन मॉडलों पर लेख प्रकाशित किए गए। 1960 के दशक में लोकप्रियता हासिल करने के पश्चात् 1970 के दशक तक यह क्षीण होने लगी। उजावा निदर्श की एक अवधारणा के अनुसार पूँजी का एक नियत दर δ पर अवमूल्यन होता है जो कि पूँजी प्रयुक्त होने वाले क्षेत्र से स्वतंत्र होती है। उजावा के दो क्षेत्रीय निदर्श में की गई बचत का अर्थ निवेश होता है, क्योंकि बचत का अर्थ है पूँजीगत माला।

नोट्स दो-क्षेत्रीय निदर्श का 'गति का नियम' दर्शाकर मूल समीकरण अवकलित किया जा सकता है।

उजावा निदर्श–मशीन तथा आवाज के उत्पादनों को शिष्ट, सतत मापानुसार नव-परंपरागत उत्पादन फलन के अधीन प्रस्तुत किया जा सकता है–

$$Y_m = f_m(K_m, l_m)$$
$$y_c = f_c(K_c, l_c)$$

जहाँ K_m का L_m मशीन क्षेत्र में प्रयुक्त पूँजी तथा श्रम की मात्राएँ है तथा K_c तथा L_c उपभोग क्षेत्र में पूँजी तथा श्रम की मात्राएँ : दो क्षेत्रों का उत्पादन फलन प्रति श्रमिक रूप में इस प्रकार लिखा जा सकता है–

$$y_m = f(k_m)$$
$$y_c = f(k_c)$$

जहाँ

$$y_m = \frac{Y_m}{L_m}, k_m = \frac{K_m}{L_m}, y_c = \frac{Y_c}{L_c}, k_c = \frac{K_c}{L_c}$$

इसके अतिरिक्त वेतन दर तथा पूँजी का किराया (लाभ) दोनों क्षेत्रों में समान रहता है।

$$P_m = \frac{\partial Y_m}{\partial K_m} = r, P_c = \frac{\partial Y_c}{\partial K_c} = r$$

$$P_m = \frac{\partial Y_m}{\partial L_m} = w, P_c = \frac{\partial Y_c}{\partial L_c} = w$$

जहाँ P_m मशीन का मूल्य है तथा P_c उपभोज्य वस्तु का मूल्य। साम्यावस्था में निम्नलिखित दशाएँ संतुष्ट होती हैं–

$$Y_m = f_m(k_m, L_m), Y_c = f_c(K_c, L_c)$$

$$P_m \frac{\partial Y_m}{\partial K_m} = r, P_m = \frac{\partial Y_m}{\partial L_m} = w$$

$$P_c \frac{\partial Y_c}{\partial K_c} = r, P_c = \frac{\partial Y_c}{\partial L_c} = w$$

$$K_c = K_m = K; L_c + L_m = L$$
$$P_c Y_c = wL, P_m Y_m = rk$$

हम दो क्षेत्रीय निदर्श का 'गति का नियम' दर्शाकर मूल समीकरण अवकलित कर सकते हैं।

टास्क दो क्षेत्रीय परिवर्धन मॉडल पर टिप्पणी लिखिए।

उजावा-श्रीनिवासन विस्तारण–उजावा मॉडल का उजावा तथा टी.एन. श्रीनिवासन द्वारा विस्तारण किया गया। उजावा-श्रीनिवासन मॉडल ऐसी दशाओं का अन्वेषण करता है जिनमें उपभोज्य वस्तु क्षेत्र में पूँजी-श्रम अनुपात पूँजीगत-वस्तु क्षेत्र में पूँजी श्रम अनुपात से अधिक अथवा उसके समान हो। इष्टतमीकरण प्रयोग तथा तदनुसार परिवध

नोट

न पद की इष्टता दो मुख्य बातें हैं। ध्यान देने योग्य इस तथ्य में यह है कि यहाँ होने वाला अधिकतम उपभोग प्रतिव्यक्ति है, उपयोगिता नहीं।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

1. रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks)–

1. विभिन्न प्रकार के दो क्षेत्रीय मॉडलों में एक सामान्य ..... पाया जाता है।
2. उजावा मॉडल की एक अवधारणा के पूँजी का एक नियत ..... S पर अवमूल्यन होता है।
3. उजावा के दो क्षेत्रीय मॉडल में की गई बचत का अर्थ ..... होता है।
4. उजावा मॉडल का उजावा तथा ..... द्वारा विस्तारण किया गया।

10.2 फैल्डमैन मॉडल (Fieldman Model)

जी.डी. फैल्डमैन एक सोवियत अर्थशास्त्री थे, जिन्होंने नव-निर्मित सोवियत राज्य योजना आयोग में निवेश संबंधी समस्याओं पर काम किया। फैल्डमैन का मॉडल अपने दो "विभागों" के साथ विस्तारित जिंस पुनरुत्पादन सम्बन्धी मार्क्स की योजना से प्रभावित रहा। इसकी अवधारणाएँ हैं–

1. पूँजी स्थानांतरणीय नहीं है।
2. उत्पादन नियत-गुणांक प्रौद्योगिकी के साथ दोनों ही क्षेत्रों में किया जाता है।
3. पूँजी का अवमूल्यन नहीं होता।
4. पूँजीगत माल का आयात सम्भव नहीं।
5. पूँजीगत वस्तुओं के उत्पादन क्षेत्र में उत्पादन किसी भी अन्य क्षेत्र से स्वतंत्र होता है।

फैल्डमैन मॉडल में निवेश की आनुपातिक परिवर्धन दर α और w_1 पर निर्भर करती है।

फैल्डमैन मॉडल के निम्नलिखित निहितार्थ हैं–

1. उपभोग की दर तथा निवेश की दर एक-दूसरे के बराबर नहीं होती।
2. राष्ट्रीय आय की वृद्धि दर कुल निवेश की वृद्धि दर के बराबर नहीं होगी।

क्या आप जानते हैं फैल्डमैन मॉडल भारतीय आर्थिक विकास के लिए महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि इसने पी.सी. महालैनोबिस द्वारा निर्मित परिवर्धन मॉडल को प्रभावित किया था।

$$Y_i = \text{अल्पि}, \left[\frac{K_1}{w_1}, \frac{L_1}{z_1}\right]$$

$$Y_i = \text{भूमि}, \left[\frac{K_2}{w_2}, \frac{L_2}{z_2}\right]$$

जहाँ Y_1 क्षेत्र 1 का उत्पादन है, Y_2 क्षेत्र 2 का उत्पादन है, K तथा L अपने संगत अनुलेखों के साथ इन दो क्षेत्रों में अपना प्रयोग दर्शाते हैं, तथा w_1, w_2, z_1, z_2, नियत गुणांक है। उपभोज्य वस्तु की परिवर्तन दर है–

$$C = Y_2 = \frac{K_2}{w_2}$$

नोट

$$K_2 = I_2(1 - \alpha)\ I.K$$

$$C = \frac{(1-\alpha)}{w_2} \times \frac{1}{C}$$

कुछ निवेश दर I दर $\frac{\alpha}{w_1}$ से बढ़ता है तथा तदनुसार C की वृद्धि दर I की वृद्धि दर पर निर्भर करती है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

2. निम्नलिखित कथनों में सत्य/असत्य की पहचान करें–

1. जी.डी. फैल्डमैन एक सोवियत अर्थशास्त्री थे।
2. पूँजी का अवमूल्यन होता है।
3. फैल्डमैन मॉडल में निवेश की अनुपातिक परिवर्धन दर a और w_1 पर निर्भर करती है।
4. उपभोग की दर और निवेश की दर एक दूसरे के बराबर नहीं होती।

10.3 बहुक्षेत्रीय परिवर्द्धन मॉडल (Multi-Sector Addition Model)

बहुक्षेत्रीय परिवर्धन निदर्श का अर्थ है एक-क्षेत्रीय तथा दो-क्षेत्रीय निदर्शों का विस्तारण। इन निदर्शों में अन्य टिकाऊ पूँजीगत प्रकार की वस्तुएँ उत्पादित होती है। इन निदर्शों में उत्पादन फलन एक सीमित, रैखिक किस्म का होता है। प्रत्येक वस्तु उत्पादन हेतु उपलब्ध एक मात्र उत्पादन प्रक्रिया का होना परिवर्तनशील लियोन्टिफ्र प्रणाली का अभिलक्षण है। यह नियत गुणांक अवधारणा है। वॉन न्यूमैन के परिवर्धन निदर्श में उत्पादन में केवल मध्यवर्ती वस्तुओं का उपयोग किया जाता है। यह निदर्श एक 'बंद प्रणाली' स्वरूप है। वॉ न्यूमैन निदर्श एक अधिकतम दर पर संतुलित वृद्धि को बढ़ावा देता है। 1960 के दशक में वॉन न्यूमैन निदर्श के प्रलेखों तथा पुस्तकों की शृंखला को मिशियो मोरिशिमा विस्तृत किया गया। उनके अनुसार उपभोज्य वस्तुओं हेतु श्रमिकों की माँग वेतनों के साथ-साथ मूल्यों पर भी निर्भर करती है।

फैल्डमैन मॉडल उजावा मॉडल से भिन्न

फैल्डमैन का मॉडल उजावा मॉडल से भिन्न है कि उत्पादन नियत-गुणांक उत्पादन फलनों की सहायता से करवाया जाता है। जी.डी. फैल्डमैन जो एक सोवियत अर्थशास्त्री थे, उन्होंने 1927 में परिवर्धन संबंधी एक दीर्घावधि सिद्धांत तैयार किया। इस निदर्श में उत्पादन वृद्धि केवल पूँजी की उपलब्धता से निबाधित होती है। इस निदर्श की अवधारणाएँ निम्नलिखित हैं–

अर्थव्यवस्था को क्षेत्र 1 तथा क्षेत्र 2 में बाँटा गया है–

1. पूँजीगत वस्तुओं के संस्थापित होने के पश्चात उनका स्थानांतरण संभव नहीं।
2. उत्पादन नियत-गुणांक प्रौद्योगिकी के साथ दोनों ही क्षेत्रों में किया जाता है।
3. पूँजी का अवमूल्यन नहीं होता जिससे पूँजी संचय निवेश के बराबर हो जाता है।
4. पूँजीगत माल का आयात संभव नहीं, क्योंकि यह एक बंद अर्थव्यवस्था है।
5. क्षेत्र 1 में वस्तुओं का उत्पादन किसी भी अन्य देश में उत्पादन से स्वतंत्र होता है।

फैल्डमैन की निवेश की आनुपातिक परिवर्धन दर तथा α के w_1 पर निर्भर करती है तथा α के बढ़ने से निवेश की आनुपातिक वृद्धि दर भी बढ़ती है। इस निदर्श ने पी.सी. महालैनोबिस के निदर्श को प्रभावित किया था। अत: यह भारतीय आर्थिक विकास के अध्ययन में महत्त्वपूर्ण है। फैल्डमैन निदर्श के दो निहितार्थ हैं–

1. उपभोग की दर तथा निवेश की दर एक-दूसरे से अलग होंगी। निवेश की वृद्धि दर को $\alpha/W1$ से दर्शाया जाता है।

नोट

2. इस निदर्श का एक नीति निर्धारण है–पहले से अधिक पूँजीगत वस्तुओं के उत्पादन में लगी वर्तमान पूँजीगत वस्तुओं का उत्पादन बढ़ाना जिससे उपभोग, निवेश तथा उत्पादन की दर बढ़ेगी।

सामान्य बहुक्षेत्रीय उत्पादन प्रक्रिया के मूल प्राधार

बहुक्षेत्रीय परिवर्धन निदर्श का अर्थ है–एक-क्षेत्रीय तथा दो-क्षेत्रीय निदर्शों का विस्तारण। इन निदर्शों में अन्य टिकाऊ पूँजीगत प्रकार की वस्तुएँ उत्पादित होती हैं तथा उत्पादन फलन एक सीमित, रैखिक किस्म का होता है। इसमें हम श्रम को सजातीय तथा एक उपभोग क्षेत्र मानते हैं जो एकमात्र उपभोज्य वस्तु उत्पादित करता है। इसमें प्राप्त होने वाली पूर्ण नियोजन दशाएँ हैं–

$$\sum_{i=0}^{n} a_{oj} \, Y_j$$

बहु-क्षेत्रीय निदर्श के बृहत विशिष्ट अभिलक्षण के अंतर्गत परिवर्ती प्राचल अभिलक्षण वाले निदर्श आते हैं जो नियत-गुणांक हो सकते हैं। 1950, 1960 तथा 1970 के दशकों में प्रसिद्ध दर दो-क्षेत्रीय तथा बहु-क्षेत्रीय निदर्शों को 1980 के दशक में अंतर्जात परिवर्धन सिद्धांत के प्रसिद्ध हो जाने के कारण समर्थन मिलना बंद हो गया।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

3. सही विकल्प चुनिए– (Choose the Correct Option)

1. फैल्डमैन मॉडल उजावा मॉडल से है–
   (क) भिन्न (ख) समान
   (ग) समरूप (घ) इनमें से कोई नहीं।
2. जी.डी. फैल्डमैन अर्थशास्त्री थे–
   (क) सोवियत (ख) अमेरिकी
   (ग) भारतीय (घ) इनमें से कोई नहीं।
3. 1927 में परिवर्धन संबंधी दीर्घवधि सिद्धांत तैयार किया था–
   (क) महालैनोबिस (ख) जी.डी. फैल्डमैन
   (ग) उजावा ने (घ) इनमें से कोई नहीं।
4. पूँजीगत माल का आयात संभव नहीं है क्योंकि–
   (क) यह खुली अर्थव्यवस्था है (ख) बंद अर्थव्यवस्था है
   (ग) विस्तारण संभव (घ) इनमें से कोई नहीं।

10.4 सारांश (Summary)

- सजातीय पूँजी एवं श्रम के प्रयोग द्वारा एकल सजातीय वस्तु को उत्पादित किया जाता है।
- वर्ष 1961 तथा 1963 में हिरोफूमी उजावा द्वारा महत्त्वपूर्ण दो क्षेत्रीय परिवर्धन मॉडलों पर लेख प्रकाशित किए गए। 1960 के दशक में लोकप्रियता हासिल करने के पश्चात् 1970 के दशक तक यह क्षीण होने लगी। उजावा निदर्श की एक अवधारणा के अनुसार पूँजी का एक नियत दर δ पर अवमूल्यन होता है जो कि पूँजी प्रयुक्त होने वाले क्षेत्र से स्वतंत्र होती है। उजावा के दो क्षेत्रीय निदर्श में की गई बचत का अर्थ निवेश होता है, क्योंकि बचत का अर्थ है पूँजीगत माला।
- उजावा निदर्श का उजावा तथा टी.एन. श्रीनिवासन द्वारा विस्तारण किया गया।

नोट

- जी.डी. फैल्डमैन एक सोवियत अर्थशास्त्री थे, जिन्होंने नव-निर्मित सोवियत राज्य योजना आयोग में निवेश संबंध ी समस्याओं पर काम किया।
- बहुक्षेत्रीय परिवर्धन निदर्श का अर्थ है एक-क्षेत्रीय तथा दो-क्षेत्रीय निदर्शों का विस्तारण।
- फैल्डमैन का निदर्श उजावा मॉडल से भिन्न है कि उत्पादन नियत-गुणांक उत्पादन फलनों की सहायता से करवाया जाता है। जी.डी. फैल्डमैन जो एक सोवियत अर्थशास्त्री थे, उन्होंने 1927 में परिवर्धन संबंधी एक दीर्घावधि सिद्धांत तैयार किया।
- फैल्डमैन की निवेश की आनुपातिक परिवर्धन दर तथा α के w_1 पर निर्भर करती है तथा α के बढ़ने से निवेश की आनुपातिक वृद्धि दर भी बढ़ती है।
- बहुक्षेत्रीय परिवर्धन निदर्श का अर्थ है–एक-क्षेत्रीय तथा दो-क्षेत्रीय निदर्शों का विस्तारण।

10.5 शब्दकोश (Keywords)

- **अवमूल्यन–** मूल्य में कमी करना या होना।
- **विस्तारण–** विस्तार करना।
- **परिवर्ती–** परिवर्तनशील, परिवर्तन करने वाला।

10.6 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. उन मूल अवधारणाओं को लिखिए जो सभी प्रकार के दो क्षेत्रीय परिवर्धन मॉडलों के प्रति सर्वमान्य हैं।
2. उजावा मॉडल की मूल संरचना का वर्णन कीजिए।
3. फैल्डमैन मॉडल और उजावा मॉडल में क्या भिन्नता है?
4. सामान्य बहुक्षेत्रीय उत्पादन प्रक्रिया के मूल आधार का वर्णन कीजिए।
5. फैल्डमैन मॉडल की व्याख्या कीजिए।
6. बहुक्षेत्रीय परिवर्धन मॉडल की व्याख्या कीजिए तथा सामान्य बहुक्षेत्रीय उत्पादन प्रक्रिया के मूल प्रधार बताइए।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

1.	1. प्राधार	2. दर	3. निवेश	4. टी.एन. श्रीनिवास
2.	1. सत्य	2. असत्य	3. असत्य	4. सत्य
3.	1. (क)	2. (क)	3. (ख)	4. (ख)

10.7 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. *विकास का अर्थशास्त्र एवं आयोजन*: डॉ. एम. एल. झिंगन: वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा. लि.
2. *संवृद्धि एवं विकास का अर्थशास्त्र*: डॉ जे. पी मिश्रा: साहित्य भवन पब्लिकेशन्स एवं डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.) लि. रजिस्टर्ड कार्यालय नई दिल्ली

नोट

इकाई–11: अंतर्जात वृद्धि मॉडल (Endogenous Growth Models)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

11.1 अंतर्जात संवृद्धि मॉडल (Endogenous Growth Models)

11.2 सारांश (Summary)

11.3 शब्दकोश (Keywords)

11.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

11.5 सन्दर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- अंतर्जात संवृद्धि मॉडल को जानने में।

प्रस्तावना (Introduction)

प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् हम बाह्यजात तथा अंतर्जात परिवर्धन निदर्शों के मध्य अंतर ज्ञात कर सकते हैं, मानव पूँजी वाला नव-परंपरागत परिवर्धन निदर्श, अंतर्जात प्रौद्योगिकी, बढ़ते लाभ तथा एकाधिकारी प्रतिस्पर्द्धा के विषय में चर्चा कर सकते हैं तथा अंतर्जात परिवर्धन सिद्धांत के कुछ मुद्दों का अध्ययन कर सकते हैं। बढ़ते लाभ तथा एकाधिकारी प्रतिस्पर्द्धा परिवर्धन प्रक्रिया पर प्रभाव की चर्चा कर सकते हैं तथा प्रौद्योगिकी को अंतर्जात चर के रूप में ढालने पर विश्लेषण कर सकते हैं। प्रस्तुत अध्याय में अंतर्जात तकनीकी परिवर्तन तथा आर्थिक परिवर्धन पर प्रभाव को प्रस्तुत किया गया है।

11.1 अंतर्जात संवृद्धि मॉडल (Endogenous Growth Model)

मानक परिवर्तन सिद्धांतों की अवधारणा थी कि विभिन्न देशों में प्रारंभिक दशाएँ समान होने पर ही इन देशों के आय-स्तर अभिसरण करेंगे। इसके गरीब देशों की वृद्धि दर अधिक हो जाएगी तथा अमीर देशों की वृद्धि, परन्तु विभिन्न देशों के आर्थिक परिवर्धन के अनुसार दो तथ्य हैं–

1. अधिकांश विश्व के लिए जनसंख्या वृद्धि से तीव्र रही है उत्पादन वृद्धि।
2. विभिन्न देशों के लंबे समय से विषम परिवर्धन पथ पर रहने के बाद भी कोई अधिक अभिसरण नहीं दिखाई देता।

अनुसंधान प्रयासों में ऐसे सूत्र निदर्श भी शामिल हैं जो पूँजी संचयन को मानव पूँजी को सम्मिलित करने हेतु विस्तारित किए जाते हैं। मानव पूँजी को उत्पादन कारक के रूप में भी देखा जाता है। मन्किव-रोमर-वील (MRW) निदर्श के

नोट

अनुसार, मान लीजिए एक ऐसी अर्थव्यवस्था है जो मानव पूँजी के साथ संयोजन में भौतिक पूँजी का प्रयोग कर एक प्रदा Y प्रस्तुत करती है।

नोट्स

एक सतत लाभ कॉदुग्ला उत्पादन फलन के अनुसार $Y = K^{\alpha}(\Delta H)^{1-\alpha}$ जहाँ Δ एक बाह्यजात दर g पर बढ़ती श्रम संवर्धक प्रौद्योगिकी का निरूपण करता है।

लूकास का मानना है कि लोग कौशल संचित करने के लिए खर्च करते हैं–सभी श्रमिकों के अकुशल होने पर। अकुशल श्रमिकों की एक इकाई कुशल श्रमिकों की एक इकाई श्रमिकों की प्रभावी इकाई बढ़ा देती है।

$$\frac{d\,\mathrm{I}n\,\mathrm{H}}{dq} = \phi \Rightarrow \frac{d\mathrm{H}}{dq} = \phi\mathrm{H}.$$

जहाँ ϕ एक अचर है, $q = 0$, L = H, q = अकुशल श्रमिकों की बढ़त है।

विभिन्न समीकरणों द्वारा हमें यह स्पष्टीकरण मिलता है कि कुछ देशों के अमीर तथा कुछ के गरीब होने का क्या कारण है? ऐसे देश जहाँ भौतिक पूँजी में उच्च निवेश दरें हैं, प्रौद्योगिकी के उच्च स्तर हैं तथा वे समय संचयकारी कौशलों का उच्चानुपात व्यय करते हैं, अपेक्षाकृत अधिक धनी है। 'ज्ञान-पूँजी' मानव पूँजी से भिन्न है तथा परवर्ती संचयन में मदद करती है। अनुसंधान क्षेत्र में निवेश द्वारा नई जानकारी उत्पन्न होती है।

अंतर्जात प्रौद्योगिकी, बढ़ते लाभ और एकाधिकारी प्रतिस्पर्धा

एक मानक कॉब-डग्लस उत्पादन फलन है–

$$Y = A\, e^{nt}\, K^{\propto}\, L^{1-\alpha}$$

यहाँ Y = सकल घरेलू उत्पादन

K = मानव पूँजी संचय

L = अकुशल श्रमिक वर्ग

A = समाज की प्रौद्योगिकी दशा

e^n = बाह्यजात दर

αY = प्रतिशतता वृद्धि पूँजी में

α = राष्ट्रीय आय में पूँजी का अंश

परन्तु इस प्रकार के निदर्श द्वारा एक बार तो वृद्धि हो जाएगी परन्तु पूँजी तथा श्रम का अनुपात बढ़ते ही, पूँजी की सीमांत पूँजी में कमी आ जाएगी तथा अर्थव्यवस्था वापिस स्थिर हो जाएगी तथा पूँजी, श्रम एवं उत्पादन वृद्धि की दर समान होगी।

क्या आप जानते हैं उत्पादन की वृद्धि दर निवेश दर का एक वर्धमान फलन है।

प्रौद्योगिकी परिवर्धन का प्रपुंज स्पष्ट करता है, अत: वह बहुत महत्त्वपूर्ण है। प्रौद्योगिकी ही संपूर्ण परिवर्धन करवाती है तथा पूँजी में निवेश भी करवाती है। सभी प्रासंगिक वर्धमान लाभ को संभव बना देती है। वह तरीका जिससे उत्पादन प्रक्रिया हेतु आगतों को उत्पादन में बदला जाता है, प्रौद्योगिकी कहलाता है। उत्पादन प्रौद्योगिकी में योजनाओं द्वारा सुधार होता है। पॉल रोमर के अनुसार, अधिकांश आर्थिक वस्तुएँ प्रति द्वंद्वितापूर्ण होती हैं। रोमर ने एकाधिकारी प्रतिस्पर्द्धा एवं वर्धमान लाभ को प्रौद्योगिकीय उन्नति के साथ जोड़ा। उन्होंने एक मानक उत्पादन फलन दिया

नोट

$$Y = K^{\alpha} (AL)^{1-\alpha}$$

जहाँ L_y = श्रम

A = योजनाओं का संचय

α, = 0 तथा 1 के मध्य अवस्थित होता है।

यह उत्पादन फलन K तथा L में सतत लाभ दर्शाता है–पूँजी तथा श्रम की मात्रा दुगुनी करने पर उत्पादन भी दुगुना हो जाएगा। परन्तु L के परिदृश्य में आने के बाद मापानुसार वर्धमान लाभ होता है। योजनाओं की उत्पत्ति को दर्शाने के लिए रोमर ने अपने मॉडल में तीन क्षेत्रों को विकसित किया। (एक) अंतिम वस्तु क्षेत्र, (दो) मध्यवर्ती वस्तु माल क्षेत्र तथा (तीन) अनुसंधान एवं विकास क्षेत्र।

अंतर्जात परिवर्धन सिद्धांत में कुछ मुद्दे

अंतर्जात परिवर्धन सिद्धांत का पाठ है मानव पूँजी के संचयन पर जोर देना। परिवर्धन में रुचि रखने वाले विकासशील देशों को ज्ञान पूँजी के सृजन तथा निवेश हेतु नीतियों पर ध्यान देना चाहिए। इस सिद्धांत ने प्रति व्यक्ति परिवर्धन दर में अभिसरण के अभाव को स्पष्ट करने सम्बन्धी एक बेहतर काम किया। अत: इस सिद्धांत की मूल धारणा है कि परिवर्धन प्रौद्योगिकी जैसे कारकों से होती है तथा प्रौद्योगिकी ऐसी विषयवस्तु नहीं है जो बाह्यजात रूप से प्रदान की जाती हो, बल्कि व्यवस्था के भीतर है निर्धारित की जाती है।

टास्क कांब डगलस उत्पादन फलन क्या है?

विकासशील देशों के लिए अंतर्जात परिवर्धन निदर्श

विकासशील देशों की आवश्यकता होती है, अपनी बचत दर बढ़ाने की। अंतर्जात परिवर्धन सिद्धांत का प्रथम पाठ है मानव पूँजी के संचयन पर अधिक जोर देना तथा भौतिक पूँजी पर और भी अधिक जोर देना, परंतु विकासशील देशों को प्रौद्योगिकी के अंतर्राष्ट्रीय हस्तांतरण के लिए अपनी अर्थव्यवस्था को उदार बनाकर विश्व अर्थव्यवस्था से जोड़ना होगा। यह उनके स्वयं के लिए भी हितकर है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

निक्त स्थानों की पूर्ती कीजिए– (Fill in the blanks)

1. अधिकांश विश्व0 के जनसंख्या वृद्धि` तीव्र रही है .....।
2. ..... को उत्पादक कारक के रूप में भी देखा जाता है।
3. ..... के अनुसार, अधिकांश आर्थिक वस्तुएं प्रतिद्वंद्वितापूर्ण होती हैं।
4. उत्पादन प्रौघोगिकी में ..... द्वारा सुधार होता है।
5. योजनाओं की उत्पत्ति को दर्शाने के लिए .... ने अपने मॉडल में तीन क्षेत्रों को विकसित किया।
6. अंतर्जात परिवर्धन सिद्धांत क प्रथम पाठ है ..... के संय पर अधिक जोर देना।

11.2 सारांश (Summary)

- मानक परिवर्तन सिद्धांतों की अवधारणा थी कि विभिन्न देशों में प्रारंभिक दशाएँ समान होने पर ही इन देशों के आय-स्तर अभिसरण करेंगे। इसके गरीब देशों की वृद्धि दर अधिक हो जाएगी तथा अमीर देशों की वृद्धि, परन्तु विभिन्न देशों के आर्थिक परिवर्धन के अनुसार दो तथ्य हैं–

नोट

1. अधिकांश विश्व के लिए जनसंख्या वृद्धि से तीव्र रही है उत्पादन वृद्धि।
2. विभिन्न देशों के लंबे समय से विषम परिवर्धन पथ पर रहने के बाद भी कोई अधिक अभिसरण नहीं दिखाई देता।

- लूकास का मानना है कि लोग कौशल संचित करने के लिए खर्च करते हैं–सभी श्रमिकों के अकुशल होने पर। अकुशल श्रमिकों की एक इकाई कुशल श्रमिकों की एक इकाई श्रमिकों की प्रभावी इकाई बढ़ा देती है।
- ऐसे देश जहाँ भौतिक पूँजी में उच्च निवेश दरें हैं, प्रौद्योगिकी के उच्च स्तर हैं तथा वे समय संचयकारी कौशलों का उच्चानुपात व्यय करते हैं, अपेक्षाकृत अधिक धनी है। 'ज्ञान-पूँजी' मानव पूँजी से भिन्न है तथा परवर्ती संचयन में मदद करती है।
- एक मानक कॉब-डग्लस उत्पादन फलन है–

$$Y = A\, e^{nt}\, K^{\propto}\, L^{1-\alpha}$$

- प्रौद्योगिकी परिवर्धन का प्रपुंज स्पष्ट करता है, अत: वह बहुत महत्त्वपूर्ण है। प्रौद्योगिकी ही संपूर्ण परिवर्धन करवाती है तथा पूँजी में निवेश भी करवाती है। सभी प्रासंगिक वर्धमान लाभ को संभव बना देती है। वह तरीका जिससे उत्पादन प्रक्रिया हेतु आगतों को उत्पादन में बदला जाता है, प्रौद्योगिकी कहलाता है।
- अंतर्जात परिवर्धन सिद्धांत का पाठ है मानव पूँजी के संचयन पर जोर देना। परिवर्धन में रुचि रखने वाले विकासशील देशों को ज्ञान पूँजी के सृजन तथा निवेश हेतु नीतियों पर ध्यान देना चाहिए।
- विकासशील देशों की आवश्यकता होती है, अपनी बचत दर बढ़ाने की। अंतर्जात परिवर्धन सिद्धांत का प्रथम पाठ है मानव पूँजी के संचयन पर अधिक जोर देना तथा भौतिक पूँजी पर और भी अधिक जोर देना

11.3 शब्दकोश (Keywords)

- अभिसरण- मिलने के लिए जाना, आगे बढ़ना
- संवर्धक- वृद्धि करने वाला

11.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Question)

(*i*) अंतर्जात संवृद्धि मॉडल की विवेचना कीजिए।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

1. उत्पादन वृद्धि
2. मानव पूँजी
3. पाल रोमर
4. योजनाओं
5. रोमर
6. मानव पूँजी

11.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. *संवृद्धि एवं विकास का अर्थशास्त्र*: डॉ. पी. मिश्रा; साहित्य भवन पब्लिकेशन्स : आगरा
2. *विकास नियोजन एवं नीतियाँ*: वी. सी सिन्हा: साहित्य भवन पब्लिकेशन्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.) लि. रजिस्टर्ड कार्यालय नई दिल्ली
3. *विकास का अर्थशास्त्र एवं आयोजन*: डा. एस. एल. डिंगल: वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा. लि.

नोट

इकाई–12: प्रसंभाव्य संवृद्धि मॉडल (Stochastic Growth Models)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

12.1 प्रसंभाव्य संवृद्धि मॉडल (Stochastic Growth Models)

12.2 सारांश (Summary)

12.3 शब्दकोश (Keywords)

12.4 अभ्यास–प्रश्न (Review Questions)

12.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- प्रसंभाव्य संवृद्धि मॉडल (Stochastic Growth Models)

प्रस्तावना (Introduction)

अपना लक्ष्य साधने व उस तक पहुँचने में सिद्धहस्त को 'प्रसंभाव्य' कहते हैं। इसमें आर्थिक परिवर्धन पर अनिश्चितता के प्रभाव तथा ब्रॉक–मिर्मैन परिवर्धन निदर्श का भी वर्णन किया गया है।

12.1 प्रसंभाव्य संवृद्धि मॉडल (Stachastic Growth Models)

रिचर्ड बैलमैन ने 1950 में 'परिवर्तनशील आयोजना' तकनीक का आविष्कार किया, जिसके प्रयोग से इष्टतमीकरण की समस्या हल की जा सकती है। इसमें अनेक समयावधियाँ शामिल होती हैं, तथा t अनंत तक भी जा सकता है। उत्पादन फलन के अनुसार तथ्य सामने आता है कि उत्पादन में सिर्फ पूँजी के संचय पर बल्कि एक अनानुमेय, यादृच्छिक अवयव पर भी निर्भर करता है। प्राकृतिक आपदाओं, युद्ध जैसी स्थिति तथा वर्षा न होना जैसी स्थिति से भी उत्पादन पर दुष्प्रभाव पड़ता है।

ब्रॉक–मिर्मैन निदर्श कैस कूपमैन निदर्श का विस्तारण है। 1970 में ब्रॉक तथा मिर्मैन ने दो इष्टतमीकरण की स्थिति पर विचार किया तथा ऐसी स्थिति का अवलोकन किया जिसमें बट्टा–छूट नहीं थी। धन पर उपभोक्ता का लाभ अनिश्चित होने के कारण द्वितीय अवधि उपभोग भी अनिश्चित होगा। विभिन्न समीकरणों द्वारा हम इष्टतमीकरण के फलन भी प्राप्त कर सकते हैं।

टास्क ब्रॉक–मिर्मैन मॉडल के मूल प्राधार का वर्णन कीजिए।

नोट

वास्तविक व्यापार चक्र मॉडल

इसे प्राय: आर.बी.सी. (RBC) लिखा जाता है। यह सिद्धांत ब्रॉक-मिर्मैन निदर्श पर आधारित है। इसके दो प्रकार के प्रस्तावक कथन हैं–इसके अनुसार दीर्घावधि परिवर्धन तथा अल्पावधि को अलग-अलग आर्थिक क्रियाकलाप में देखा जाता है। परंपरागत रूप से इसे 'व्यापार-चक्र' कहा जाता है। RBC सिद्धांत के अनुसार वे निदर्श मौद्रिक शक्तियों की भूमिका निभाते हैं, जो व्यापार उतार-चढ़ावों को स्पष्ट करने का प्रयास करते हैं। अर्थव्यवस्था में अनेक प्रकार के घात हो सकते हैं जो माँग पक्ष के साथ-साथ आपूर्ति पक्ष पर भी उत्पन्न हो सकते हैं उत्पादकता आघात कई प्रकार के होते हैं–फसल खराब हो जाना, उत्पादन की नई तकनीकों का विकास, नई प्रबंधन नीतियाँ तथा अर्थव्यवस्था के बाहर से जाने वाले आपूर्ति आघात इत्यादि। उक्त व्यवसाय चक्र सुस्पष्ट रूप से उपयोगिता फलन में श्रम एवं अवकाश से संबंधित निर्णय ले आता है। यहाँ माना जाता है कि अवकाश उपयोगिता प्रदान करता है तथा अवकाश ही वह समय है जो श्रम प्रदान के बाद कुल समय से बचता है।

क्या आप जानते हैं उतार-चढ़ाव संबंधी सिद्धांत को वास्तविक व्यापार-चक्र सिद्धांत भी कहा जाता है।

अनिश्चितता की विद्यमानता

अनिश्चितता की विद्यमानता पर उत्पादन फलन के अनुसार तथ्य उजागर होता है कि उत्पादन केवल पूँजी संचय पर भी निर्भर करता है। प्राकृतिक आपदा, वर्षा न होना तथा युद्ध जैसी स्थिति उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव डालती है। जिससे संवृद्धि को भी हानि का सामना करना पड़ता है। इसका समीकरण है–

$$K_{t+1} = f(k_t, l_t) - (C_t, \varepsilon_t)$$

आर्थिक उतार-चढ़ावों के कारण के विषय में वास्तविक व्यापार चक्र सिद्धांत

सिद्धांती 'चक्र' की जगह 'उतार-चढ़ाव' शब्द प्रयोग करना उचित समझते हैं। उतार-चढ़ाव को स्पष्ट करने वाला निदर्श मौद्रिक शक्तियों की भूमिका निभाता है। RBC के अनुसार, "पैसा एक परदा" है तथा उत्पादन, आपूर्ति झटके आदि ही उतार-चढ़ाव की ओर अग्रसर करने वाली वास्तविक शक्तियाँ हैं।

वास्तविक व्यापार चक्र सिद्धांत को 'नया परंपरागत' इसलिए कहा जाता है क्योंकि यह सिद्धांत निरपेक्ष मूल्य स्तर के स्थान पर सापेक्ष मूल्यों पर जोर देता है।

नोट्स धन की तटस्थता को मानकर चलता है। यह सिद्धांत आपूर्ति पक्ष शक्तियों पर जोर देता है तथा परिवर्धन एवं विकास संबन्धी पूर्व परंपरागत सिद्धांतों के साथ समानता दर्शाता है।

यह सिद्धांत ब्रॉक-मिर्मैन निदर्श पर आधारित है, क्योंकि यहाँ बट्टा-छूट विद्यमान होती है। व्यापार चक्र को इस निदर्श से विस्तार मिलता है तथा उपयोगिता फलन में श्रम तथा अवकाश से संबंधित निर्णय प्राप्त होता है। यहाँ यह भी माना जाता है कि अवकाश उपयोगिता प्रदान करता है तथा श्रम प्रदान करने के बाद बचा कुल समय अवकाश ही कहलाता है।

नोट

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks)–

1. ब्रॉक-मिमैंन मॉडल कैस-कूपमैन मॉडल का ..... है।
2. प्राकृतिक अपदा वर्षा न होना तथा युद्ध जैसी स्थितियाँ उत्पादन पर ..... प्रभाव डालती हैं।
3. ..... के अनुसार, ''पैसा एक परदा है।''
4. अनिश्चितता की विद्यमानता पर ..... फलन के अनुसार तथ्य उजागर होता है कि उत्पादन केवल पूँजी संचय पर भी निर्भर करता है।
5. RBC के अनुसार, ... है तथा उत्पादन, आपूर्ति झटके आदि ही उतार-चढ़ाव की ओर अग्रसर करने वाली वास्तविक शक्तियाँ हैं।
6. ..... आपूर्ति पक्ष शक्तियों पर जोर देता है तथा परिवर्धन एवं विकास संबंधी पूर्व परंपरागत सिद्धांतों के साथ समानता दर्शाता है।
7. यह सिद्धांत ..... मॉडल पर आधारित है, क्योंकि यहाँ बट्टा-छूट विद्यमान होती है।

12.2 सारांश (Summary)

- रिचर्ड बैलमैन ने 1950 में 'परिवर्तनशील आयोजना' तकनीक का आविष्कार किया, जिसके प्रयोग से इष्टतमीकरण की समस्या हल की जा सकती है।

12.3 शब्दकोश (Keywords)

- **प्रस्तावक**–प्रस्ताव करने वाला।
- **घात**–अनुकूल अवसर।
- **मौद्रिक**–मुद्रा संबंधी।

12.6 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. 'परिवर्तनशील आयोजना' तकनीक का आविष्कार किसने किया?
2. "वास्तविक व्यापार चक्र मॉडल" क्या है?
3. 'RBC' सिद्धांत क्या है?
4. अनिश्चितता की विद्यमानता का सिद्धांत समझाइए।
5. अनिश्चितता की विद्यमानता का समीकरण दीजिए।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

1. विस्तारण	2. प्रतिकूल	3. RBC	4. उत्पादन
5. पैसा एक परदा है	6. वास्तविक व्यापार चक्र सिद्धांत		5. ब्रॉक-मिर्मैन।

12.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. *संवृद्धि एवं विकास का अर्थशास्त्र*: डॉ. पी. मिश्रा; साहित्य भवन पब्लिकेशन्स : आगरा
2. *विकास नियोजन एवं नीतियाँ*: वी. सी सिन्हा: साहित्य भवन पब्लिकेशन्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.) लि. रजिस्टर्ड कार्यालय नई दिल्ली
3. *विकास का अर्थशास्त्र एवं आयोजन*: डा. एस. एल. डिंगल: वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा. लि.

नोट

इकाई–13: विकास की सामाजिक एवं संस्थानिक अपेक्षाएँ: विकास एवं अल्पविकास में अंतर (Social and Institutional Aspects of Development: Difference between Development and Under-Development)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

13.1 विकास और अल्पविकास (Development and Under-Development)

13.2 अल्प-विकास की अवधारणा (Concept of Under-Development)

13.3 अर्द्ध-विकसित अर्थव्यवस्थाओं की विशेषताएँ (Characteristics of Under-Developed Economics)

13.4 विकसित तथा अर्द्ध-विकसित देशों में अन्तर (Difference between Developed and Under-Developing Countries)

13.5 क्या भारत एक अल्प-विकसित देश है? (Is India an Under-Developed Country ?)

13.6 सारांश (Summary)

13.7 शब्दकोश (Keywords)

13.8 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

13.9 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- अर्द्ध-विकास या अल्प-विकास की अवधारणा को समझने में।
- विकासशील या अर्द्ध-विकसित अर्थव्यवस्थाओं की विशेषताओं को जानने में।
- विकसित तथा अर्द्ध-विकसित देशों के अन्तर को जानने में।

प्रस्तावना (Introduction)

एक अर्द्ध-विकसित अर्थव्यवस्था वह है जिसका कुल उत्पादन एवं प्रति व्यक्ति आय का स्तर बहुत नीचा होता है इसलिए इन देशों में उपभोग, बचत और विनियोग का स्तर भी नीचा होता है। इन अर्थव्यवस्थाओं में भारत, पाकिस्तान, श्रीलंका आदि आते हैं। विकसित अर्थव्यवस्थाएँ वे हैं जिनका कुल उत्पादन एवं प्रति व्यक्ति आय का स्तर बहुत ऊँचा है, इसलिए इन अर्थव्यवस्थाओं में उपभोग, बचत और विनियोग का स्तर भी ऊँचा है। इन अर्थव्यवस्थाओं में जापान, अमेरिका

आदि देश आते हैं।

नोट

13.1 विकास और अल्पविकास (Development and Under-Development)

13.1.1 निर्धनता और असमानता (Poverty and Unequality)

उत्पादन संभाव्यता वक्र की सहायता से निर्धनता तथा असमानता को प्रदर्शित किया जाता है।

अर्थव्यवस्था में उत्पादित हो सकने वाली वस्तुओं का दो श्रेणियों में वर्गीकरण किया जाता है–विलासिता की वस्तुएँ तथा आवश्यक वस्तुएँ।

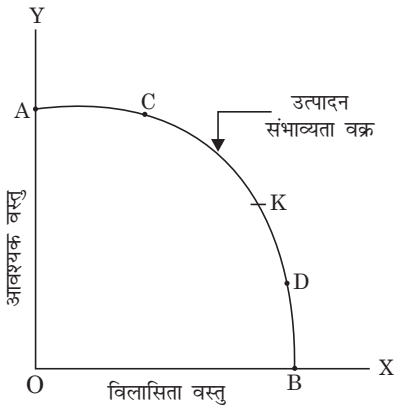

वक्र AB एक उत्पादन संभाव्यता वक्र है। यह दो वर्गों की वस्तुओं का विभिन्न संयोजन दर्शाती है। ABCD या K चिह्नित संयोजन इस अर्थव्यवस्था में कुशलता से उत्पन्न किया जा सकता है। अर्थव्यवस्था के तुलनात्मक रूप से निर्धन होने पर तथा आय के समान रूप में वितरण से वास्तविक उत्पादन C के आस-पास या C और K के बीच होगा। आय के असमान वितरण से असल उत्पादन D बिंदु के आस-पास होगा। अत: मिश्रित अर्थव्यवस्थाओं में उत्पादन संयोजन का मूलभूत निर्धारक समग्र प्रभावपूर्ण माँग वक्र आय के स्तर तथा आय के वितरण द्वारा निर्धारित होता है।

13.1.2 निर्धनता की प्रकृति (Nature of Poverty)

निर्धनता एक प्रकार का रोग है जिसका असर विश्व के अधिकांश भागों पर है। इसका अर्थ है मानव का रहन-सहन की आवश्यक वस्तुओं से दूर होना। इसके निम्नलिखित रूप हो सकते हैं–

निरपेक्ष तथा तुलनात्मक निर्धनता–'निरपेक्ष' निर्धनता का अर्थ है व्यक्ति के साधारण विकास को उनकी व्यक्तिगत शीलनिष्ठता के साथ समझौते के हद तक अवरुद्ध करना। अपनी जैविक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए अपने संसाधनों को उपयोग में लाने में असमर्थ होना गरीबी है। भूखा होना, अशिक्षित होना, अपर्याप्त आवास गृह में रहना तथा अमानवीय स्थिति में काम करना गरीबी है। असमानता की तथा असुरक्षा के विरुद्ध संरक्षण की डिग्री का चरम रूप है।

नोट्स निरपेक्ष निर्धनता में निर्धनता की अवधारणा का उपयोग किया जाता है तथा तुलनात्मक निर्धनता में आय में असमानता होती है।

13.1.3 निर्धनता का मापन (Measurement of Poverty)

निर्धनता के भिन्न माप पेशेवर अर्थशास्त्रियों द्वारा विकसित किए गए हैं जो कि निम्नलिखित हैं–

1. **हैड-काउन्ट अनुपात–**हैड-काउन्ट द्वारा उन लोगों की निरपेक्ष निर्धनता को मापा जाता है जिनकी आय गरीबी रेखा से नीचे गिर जाती है। भारत में गरीबी की रेखा को परिभाषित निम्न प्रकार से किया गया है–
   - जीवन निर्वाह का न्यूनतम पौषणिक स्तर निर्धारित किया है।
   - न्यूनतम आहार की लागत का अनुमान लगाया है।
   - प्रति व्यक्ति उपभोग व्यय के आधार पर गरीबी रेखा का विस्तृत वर्णन किया है।

   हैड-काउन्ट सूचकांक गरीबी की रेखा से नीचे गरीबों की संख्या का माप करता है, परंतु आय में कमी के

नोट

बारे में कुछ नहीं बताता। गरीबों को तीन श्रेणियों में वर्गीकृत किया जाता है–(*i*) जीवन की आवश्यकताओं से सर्वाधिक रहित, (*ii*) जीवन की आवश्यकताओं से रहित तथा; (*iii*) गरीब।

2. **गरीबी अंतराल**–इससे हमें गरीबी की गहराई का पता चलता है। गरीबी का प्रति व्यक्ति उपभोग तथा गरीबी रेखा का प्रतिशत, गरीबी के अनुपात को समायोजित करता है। यह एक विशालता का माप है।
3. **वर्गाकर गरीबी अंतराल**–जो लोग गरीबी के मानक से क्रमबद्ध रूप से और भी नीचे हैं, उन्हें गरीबी से बाहर निकालने के लिए यह अंतराल कार्य करता है।
4. **अन्य माप**–गरीबी के अन्य माप हैं–फोस्टर-ग्रीर थेयरबेक माप, सेन सूचकांक आदि।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

1. रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks)–

1. अर्द्ध-विकसित अर्थव्यवस्था वह है जिसका कुल उत्पादन एवं प्रतिव्यक्ति आय का स्तर बहुत ..... होता है।
2. विकसित अर्थव्यवस्थाओं में उपभोग, बचत और ..... का स्तर ऊँचा होता है।
3. द्वैतीय अर्थव्यवस्था में आर्थिक क्रियाओं का संचालन दो स्तरों पर होता है–एक ..... तथा दूसरा, आधुनिक (Modern)।
4. निरपेक्ष निर्धनता का अर्थ है व्यक्ति के साधारण विकास को उनकी व्यक्तिगत ..... के साथ समझौते के हद तक अवरुद्ध करना।
5. गरीबी रेखा से नीचे के गरीबों की संख्या का माप ..... के द्वारा किया जाता है।

13.2 'अल्प-विकास की अवधारणा (Concept of Under-Development)

'अल्प विकास' (Under-development) एक सापेक्ष विचार है। इसका आशय विकास की कमी से है। आर्थिक विकास की दृष्टि से अर्थशास्त्रियों ने विश्व की विभिन्न अर्थव्यवस्थाओं को दो प्रमुख भागों में वर्गीकृत किया है–(*i*) विकसित अर्थव्यवस्थाएँ (Developed Economics) तथा (*ii*) अर्द्ध-विकसित या विकासशील अर्थव्यवस्थाएँ[1] (Under-developed or Developing Economies)[1]।

विकसित अर्थव्यवस्थाएँ (Devloped Economies) वे हैं जिनका कुल उत्पादन एवं प्रति व्यक्ति आय का स्तर बहुत ऊँचा है, इसलिए इन अर्थव्यवस्थाओं में उपभोग, बचत और विनियोग का स्तर भी ऊँचा है। इन अर्थव्यवस्थाओं में जापान, अमेरिका आदि देश आते हैं।

इसके विपरीत, एक **अल्प-विकसित अर्थव्यवस्था** (Under-developed Economy) में कुल उत्पादन एवं प्रति व्यक्ति आय का स्तर बहुत नीचा होता है। इन अर्थव्यवस्थाओं में भारत, पाकिस्तान, श्रीलंका आदि देश आते हैं।

परिभाषाएँ (Definitions)–अर्द्ध-विकसित देश की एक ऐसी परिभाषा देना जिसमें सब आवश्यक तत्व सम्मिलित किये गये हों, अत्यन्त कठिन है, फिर भी किसी निश्चित निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए आवश्यक होगा कि कुछ प्रचलित परिभाषाओं का अध्ययन करें। प्रचलित परिभाषाओं का अध्ययन निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत किया जा सकता है–

(I) **प्रति व्यक्ति आय के आधार पर** (On the basis of Per Capita Income),

(II) **अल्प-विकसितता के कारणों पर आधारित परिभाषाएँ** (Definitions based on Causes of Under-development) एवं

(III) **विकास के आधार पर परिभाषाएँ** (Definitions based on Development)।

(I) प्रति व्यक्ति आय के आधार पर परिभाषाएँ (On the basis of Per Capita Income)

'संयुक्त राष्ट्र संघ के कुछ दक्ष सदस्यों के अनुसार, "विकासशील देश वे हैं जिनमें प्रति व्यक्ति वास्तविक आय

नोट

अमेरिका, कनाडा, आस्ट्रेलिया और पश्चिमी यूरोपीय देशों की प्रति व्यक्ति आय से कम हो।"[2] इस अर्थ में विकासशील देश और निर्धन देश पर्यायवाची शब्द हैं।

(II) अल्पविकसितता के कारणों पर आधारित परिभाषाएँ

(Definitions based on Causes of Under development)

(1) **प्रो. जे. आर. हिक्स** के अनुसार, "एक अल्प विकसित देश वह है जिसमें तकनीकी एवं मौद्रिक साधनों की मात्रा उत्पादन और बचत के वास्तविक स्तर के समान ही निम्न होती है जिसका परिणाम यह होता है कि श्रमिक को प्रति इकाई औसत पारिश्रमिक उस राशि से कम मिलता है जो यदि ज्ञात साधनों में तकनीकी की व्यवस्था की जाती तो उसे प्राप्त होती है।"[1]

(2) **भारतीय योजना आयोग** की दृष्टि में, "एक अल्प-विकसित अर्थव्यवस्था वह है जिसमें मानवीय शक्ति का अल्प-उपयोग या अनुपयोग एक ओर व प्राकृतिक साधनों का समुचित उपयोग न होने की स्थिति दूसरी ओर साथ-साथ पायी जाती हैं।"[2]

(III) विकास के आधार पर परिभाषाएँ

(Definitions based on Development)

जेकब वाइनर ने विकास की सम्भावनाओं के आधार पर अर्द्ध-विकसित की परिभाषा दी है। उनके शब्दों में, "अर्द्ध-विकसित देश वह है जिसमें उपलब्ध पूँजी, श्रम-शक्ति, प्राकृतिक साधनों आदि के अधिक उपयोग की काफी सम्भावनाएँ हैं जिससे वर्तमान जनसंख्या के रहन-सहन के स्तर को ऊँचा किया जा सके और प्रति व्यक्ति आय पहले से ही अधिक है तो रहन-सहन के स्तर को नीचा किये बिना अधिक जनसंख्या का निर्वाह किया जा सके।"[3]

उपर्युक्त परिभाषाओं में निहित तत्व (Implied Elements in Definitions)–अर्द्ध-विकसित देशों के सम्बन्ध में उपर्युक्त परिभाषाओं मे निम्नलिखित महत्वपूर्ण तत्व प्रकाश में आते हैं–

(*i*) **निम्न प्रति व्यक्ति आय** (Low Per Capita Income)–अर्द्ध-विकसित अर्थव्यवस्था में प्रति व्यक्ति आय विकसित अर्थव्यवस्थाओं की अपेक्षा प्रायः कम होती है।

---

1. एक अर्द्ध-विकसित देश या अर्थव्यवस्था के लिए अन्य नाम भी प्रयोग किये जाते हैं, जैसे–विकासशील अर्थव्यवस्था (Developing Economy), अविकसित अर्थव्यवस्था (Undeveloped Economy), पिछड़ी हुई अर्थव्यवस्था (Backward or Retarded Economy) इत्यादि। इनमें से दो शब्द अर्द्ध-विकसित अर्थव्यवस्था अथवा विकासशील अर्थव्यवस्था अधिक अच्छे समझे जाते हैं और अब अर्थशास्त्री प्रायः इन दोनों शब्दों का ही प्रयोग करते हैं। इन्हीं को **तीसरा संसार** (Third World) या **दक्षिण** (The South) भी कहा जाता है।

   संयुक्त राष्ट्र संघ (U.N.O.) ने अपने हाल के प्रकाशनों में इन दोनों देशों के लिए 'अल्पविकसित' शब्द के स्थान पर 'विकासशील अर्थव्यवस्था' शब्द का प्रयोग करना प्रारम्भ कर दिया है। इसका मुख्य कारण यह है कि आस्ट्रेलिया तथा न्यूजीलैण्ड को छोड़कर विश्व के अधिकांश धनी देश उत्तराखण्ड (Northern Hemisphere) में स्थित हैं, जबकि निर्धन देश दक्षिणी खण्ड (Southern Hemisphere) में स्थित हैं। इन अर्थव्यवस्थाओं का एक व्यापक वर्गीकरण **चार विश्व** (Four Worlds) के रूप में भी किया जाता है। **पहली दुनिया** (First World) शब्द का प्रयोग विकसित देशों के लिए किया जाता है। **दूसरी दुनिया** (Second World) शब्द का प्रयोग **रूस** तथा **कम्युनिस्ट** अर्थव्यवस्थाओं के लिए किया जाता है। **तीसरी दुनिया** (Third World) शब्द का प्रयोग अर्द्ध-विकसित अर्थव्यवस्थाओं के लिए किया जाता है। **चतुर्थ विश्व** (Fourth World) शब्द का प्रयोग संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा उन देशों के लिए किया गया है जहाँ आर्थिक विकास अत्यन्त कम हुआ है।

2. "We use the term under-developed countries to mean countries in which per capita real income is low when compared with the per capita real incomes of United States, Canada, Australia and West Europe."

नोट

(*ii*) **व्यापक निर्धनता** (Mass Poverty)—अर्द्ध-विकसित देशों की केन्द्रीय समस्या वहाँ की व्यापक निर्धनता है जोकि उनके विकास के नीचे स्तर का कारण और परिणाम दोनों ही हैं।

(*iii*) **उत्पादन की पुरातन प्रविधि** (Old Production Technique)—अर्द्ध-विकसित देशों में व्यापक निर्धनता का कारण प्राकृतिक साधनों का अभाव नहीं है अपितु **उत्पादन की पुरानी विधियों का प्रयोग और अनुपयुक्त सामाजिक संगठन है**।

(*iv*) **निम्न संसाधन आधार** (Low Resource Base)—अर्द्ध-विकसित देशों में व्यापक निर्धनता गरीबों के **निम्न संसाधन आधार का** परिणाम है। निर्धनों के पास भूमि, पूँजी, गृह-सम्पत्ति आदि के रूप में कुल परिसम्पत्ति का बहुत थोड़ा भाग होता है।

आदर्श परिभाषा (Ideal Defintion)—उपर्युक्त सभी विशेषताओं के आधार पर हम अर्द्ध-विकसित राष्ट्रों की परिभाषा निम्न प्रकार से दे सकते हैं–

"एक अर्द्ध-विकसित देश वह देश है जहाँ यद्यपि जनसंख्या वृद्धि की दर तुलनात्मक दृष्टि से अधिक हो और जहाँ पर्याप्त साधन हों, पर उनका प्रयोग उपयुक्त और पर्याप्त रूप से न हुआ हो, जहाँ के निवासियों का जीवन-स्तर निम्न हो, पूँजी-निर्माण की गति धीमी हो, फिर भी वहाँ के निवासी अपनी वर्तमान व बढ़ती हुई जनसंख्या के रहन-सहन के स्तर का बढ़ाने के लिए उत्साहपूर्ण ढंग से पूँजी, श्रम और अन्य साधनों का आधिकाधिक प्रयोग करने में सदैव रत हों।"

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

2. सही विकल्प चुनिए (Choose the correct option)—

1. अर्द्ध-विकसित अथवा विकासशील अर्थव्यवस्था वाले देशों को कहा जाता है–
   (क) दूसरी दुनिया (ख) तीसरी दुनिया
   (ग) चौथी दुनिया (घ) पाँचवीं दुनिया।
2. पहली दुनिया शब्द का प्रयोग किया जाता है–
   (क) विकसित देशों के लिए (ख) विकासशील देशों के लिए
   (ग) अत्यन्त पिछड़ी अर्थव्यवस्था वाले देशों के लिए
   (घ) इनमें से कोई नहीं।
3. रूस एवं कम्युनिष्ट देश किसके अंतर्गत आते हैं–
   (क) पहली दुनिया (ख) तीसरी दुनिया या संसार
   (ग) दूसरी दुनिया (घ) चौथी दुनिया।
4. संयुक्त राष्ट्र संघ के अनुसार अत्यंत कम विकसित अर्थव्यवस्थाएँ हैं–

---

1. "An under-developed country is one in which the technical and monetary ceilings are as low as practically coincide with actual level of output and saving with the result that the average remuneration per unit of labour is lower than what it could be, if known technology were applied to known resources." —*J.R. Hicks*
2. "An under-developed country is one which is characterised by the coexistence, in greater or lesser degree of unutilized or under-utilized man-power on the one hand and of unexploited natural resources on the other hand." —*Indian Planning Commission : First Five-Year Plan.*
3. "An under-developed country is a country which has good potential prospects for using more labour or more capital or more available natural resources or all of those to support its present population on a high level of living." —*Jacob Viner*

नोट

(क) चतुर्थ विश्व (ख) तीसरा संसार

(ग) पहली दुनिया (घ) दूसरी दुनिया।

5. संयुक्त राष्ट्र संघ के अनुसार अत्यंत कम विकसित अर्थव्यवस्थाएँ हैं–

(क) ब्रिटेन (ख) अमरीका

(ग) फ्रांस (घ) भारत।

13.3 अर्द्ध-विकसित अर्थव्यवस्थाओं की विशेषताएँ (Characteristics of Under-Developed Economics)

यद्यपि विकासशील अर्थव्यवस्था की सर्वमान्य विशेषताएँ अत्यन्त कठिन हैं क्योंकि विकासशील देशों में पर्याप्त भिन्नताएँ पायी जाती हैं। फिर भी कुछ सामान्य विशेषताओं को बताया जा सकता है जो सभी विकासशील देशों में न्यूनाधिक रूप में पायी जाती हैं। अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से इन विशेषताओं को निम्न छः भागों में बाँटा जा सकता है–

सारणी 1–अर्द्ध-विकसित देशों की विशेषताएँ

आर्थिक विशेषताएँ	जनसंख्या सम्बन्धी विशेषताएँ	सांस्कृतिक एवं सामाजिक विशेषताएँ	राजनीतिक विशेषताएँ	तकनीकी विशेषताएँ	अन्य विशेषताएँ
प्रति व्यक्ति निम्न आय निम्न जीवन स्तर पूँजी निर्माण की नीची दर कृषि प्रधानता प्राकृतिक साधनों का अल्प उपयोग विदेशी व्यापार त्रिकोणी अर्थव्यवस्था तृतीय क्षेत्र तथा अधो-संरचना का पिछड़ापन विदेशी ऋणग्रस्तता बेरोजगारी, अर्द्ध-बेरोजगारी एवं अदृश्य बेरोजगारी औद्योगीकरण का अभाव सम्पत्ति एवं आय वितरण में असमानता	जनसंख्या की अधिकता ऊँची जन्म व मृत्यु-दर अधिकांश जनता का गाँवों में निवास निम्न जीवन विधि आश्रितों की अधिकता जनसंख्या का घनत्व अकुशल जन-संख्या	रूढ़िवादियों की प्रधानता अशिक्षा महँगे रीति रिवाज स्त्रियों का निम्न स्थान छूआछूत का पालन भाग्यवादिता रीति-रिवाजों की प्रधानता	विदेशी शासन विदेशी नीति समान हित भ्रष्ट प्रशासन जागृति का उदय	तकनीकी व सामान्य शिक्षा का अभाव उत्पादन की प्राचीन विधियाँ परिवहन एवं संवहन की अपर्याप्तता अकुशल श्रमिकों की प्रचुरता	स्थिर व्यावसायिक ढाँचा दोषपूर्ण वित्तीय संगठन

टास्क तीसरी दुनिया से आप क्या समझते हैं?

नोट

(I) आर्थिक विशेषताएँ (Economic Characteristics)

(1) **प्रतिव्यक्ति निम्न आय** (Low Per Capita Income)–अर्द्ध-विकसित देशों की प्रमुख विशेषता प्रति व्यक्ति निम्न आय का स्तर होना है। इन देशों की औसत आय विश्व की औसत आय से बहुत कम होती है, उदाहरण के लिए, 1999 में स्विट्जरलैण्ड की प्रति व्यक्ति आय 38,350 डॉलर थी और अमेरिका की 30,600 डॉलर थी, जबकि भारत की 450 डॉलर, बांग्लादेश की 370 और नेपाल की 210 डॉलर थी। उल्लेखनीय है कि अर्द्ध-विकसित देशों की प्रति व्यक्ति आय में जो यह अन्तर है, वह निरन्तर और बढ़ता जा रहा है। इसका कारण राष्ट्रीय आय का निम्न स्तर अथवा जनसंख्या की अधिकता दोनों हो सकते हैं। राष्ट्रीय आय के निम्न स्तर के उत्तरदायी कारण हैं– निम्न उत्पादकता, निम्न बचत व विनियोग, पिछड़ी प्रौद्योगिकी व पिछड़ा आर्थिक व सामाजिक ढाँचा।

(2) **निम्न जीवन-स्तर** (Low Standard of Living)–अर्द्ध-विकसित देशों में निम्न प्रति व्यक्ति आय के कारण वहाँ के निवासियों का जीवन-स्तर अत्यन्त नीचा है। उदाहरण के लिए, जहाँ विकसित देशों में प्रति व्यक्ति प्रतिदिन औसत कैलोरी उपभोग 3,000 से ऊपर है, वहाँ अल्प-विकसित देशों में यह 2,000 के लगभग है। एक अनुमान के अनुसार अमेरिका में जहाँ 420 व्यक्तियों पर एक चिकित्सक है, वहाँ भारत में 2,460 व्यक्तियों पर, कीनिया में 10,150 व्यक्तियों पर एक चिकित्सक उपलब्ध है।

मानव विकास सूचकांक (HDI) यूनाइटेड नेशन्स डवलेपमेण्ट प्रोग्राम द्वारा तैयार किया गया एक सामूहिक सूचकांक है। इसका **अनुमान जीवन अवधि** (Longevity), **ज्ञान** (Knowledge) तथा **आय** (Income) के स्तर पर निर्भर करता है। इसे 0.1 से 1 तक के पैमाने पर मापा जाता है। विकसित राष्ट्रों की तुलना में अल्पविकसित राष्ट्रों का **मानव विकास सूचकांक** (HDI) कम होता है। अर्द्धविकसित देशों में यह सामान्यता 0.3 से 0.4 तक जबकि विकसित देशों में 0.8 से 0.9 तक रहता है।

(3) **पूँजी-निर्माण की नीची दर** (Low Rate of Capital Formation)–पूँजी-निर्माण किसी भी देश के आर्थिक विकास की मूलभूत आवश्यकता है, जबकि अल्प-विकसित देशों में न केवल पूँजी स्टॉक अपर्याप्त होता है बल्कि पूँजी-निर्माण की दर भी अत्यन्त कम होती है। इस दृष्टि से इन देशों को 'पूँजी दरिद्र' अथवा 'न्यून बचत व न्यून निवेश' वाली अर्थव्यवस्था कहा जाता है। उदाहरण के लिए, सन् 2000 में सकल पूँजी निर्माण भारत में सकल राष्ट्रीय उत्पाद का 23 प्रतिशत, कीनिया में 18 प्रतिशत तथा पाकिस्तान में 17 प्रतिशत थी, वहाँ सिंगापुर में 37 प्रतिशत थी। इसके विपरीत पूँजी निर्माण की दर जापान में 39 प्रतिशत व आस्ट्रेलिया में 30 प्रतिशत थी।

पूँजी निर्माण की कमी से अर्द्धविकसित देशों को आर्थिक क्रियाओं का विस्तार करने, आर्थिक क्रियाओं को प्रारम्भ करने तथा उत्पादन तकनीक में सुधार लाने में कठिनाई होती है और वे प्राथमिक व्यवसाय में ही संलग्न रहते हैं।

(4) **कृषि प्रधानता** (Predominance of Agriculture)–अर्द्ध-विकसित देशों में कृषि की प्रधानता रहती है। उनका प्रमुख उत्पादन खाद्य सामग्री और कच्चा माल रहता है। इन देशों में जनसंख्या का बहुत बड़ा भाग साधारणतया 65 से लेकर 85 प्रतिशत तक अपनी जीविका के लिए कृषि पर निर्भर रहता है। अत: कृषि पर जनसंख्या का अत्यधिक भार होता है। इन देशों में राष्ट्रीय आय का लगभग आधा या इससे भी अधिक भाग से प्राप्त होता है। एक अनुमान के अनुसार सन् 1999 में सकल घरेलू उत्पाद (GDP) में कृषि का योगदान भारत और कीनिया में 27 प्रतिशत, इण्डोनेशिया में 23 प्रतिशत था, जबकि उसी वर्ष कृषि का यह योगदान अमेरिका और जापान में क्रमश: 3 प्रतिशत तथा 2 प्रतिशत था। अल्प-विकसित देशों में कृषि पर अधिक निर्भरता के कारण एक तरफ विनिर्माणी उद्योगों का विकास नहीं हो पाया तो दूसरी ओर, भूमि पर अनावश्यक भार पड़ने के कारण कृषि-कार्य अनार्थिक सिद्ध हुआ है। निम्न प्रति व्यक्ति आय, पूँजी-निर्माण की धीमी गति, बाजार की अपूर्णताएँ तथा असन्तुलित एवं अवरुद्ध आर्थिक विकास, सही अर्थों में, कृषि उद्योग की

नोट

व्यापकता और उसकी निम्न उत्पादकता की ही देन हैं।

प्रो. बौर एवं **यामे** (Bauer & Yamay) के मतानुसार, "अल्प-विकसित देशों में कृषि एक प्रमुख व्यवसाय है जो आर्थिक व उत्पादन क्रियाओं में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है और कृषि जोतों के निर्माण, सुधार एवं विकास में ही समस्त राष्ट्रीय साधन लगा दिये जाते हैं।" **प्रो. लुइस** (W. Arthur Lewis) ने इस प्रकार के देशों को '*Producing Economies*' और **मायर** तथा **बाल्डविन** ने '*Primary Sector Economy*' कहकर सम्बोधित किया है।

(5) **प्राकृतिक साधनों का अल्प उपभोग** (Under-utilization of Natural Resources)–अर्द्ध-विकसित देशों में प्राकृतिक साधनों के प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होने के बाद भी उनका उपभोग या तो होता ही नहीं और यदि होता भी है तो बहुत कम मात्रा में। कभी-कभी तो अर्द्ध-विकसित देशों को इस बात का पता नहीं होता कि उनके देश में कौन-कौन-से प्राकृतिक साधन उपलब्ध हैं।

एक अनुमान के अनुसार यूरोप के विकसित देशों में उपलब्ध जल-शक्ति का 60 प्रतिशत भाग उपयोग में लाया जाता है, जबकि एशिया व मध्य अमेरिका में क्रमशः 19 प्रतिशत व 8 प्रतिशत भाग का ही उपयोग होता है।

(6) **विदेशी व्यापार** (Foreign Trade)–अर्द्ध-विकसित देशों की राष्ट्रीय आय में विदेशी व्यापार का बहुत कम योगदान होता है। ये अर्थव्यवस्थाएँ परम्परागत वस्तुओं का निर्यात करती हैं। इन देशों के निर्यातों में मुख्यतः प्राथमिक वस्तुएँ होती हैं जबकि आयातों में निर्मित वस्तुओं की प्रधानता होती है। इन अर्थव्यवस्थाओं का विदेशी व्यापार कुछ चुने हुए देशों या क्षेत्रों के साथ ही होता है।

(7) **त्रिकोणी अर्थव्यवस्था** (Triplism Economy)–अर्द्ध-विकसित अर्थव्यवस्थाएँ अधिकतर त्रिकोणी अर्थव्यवस्थाएँ होती हैं। इन अर्थव्यवस्थाओं में पाये जाने वाले तीन मुख्य क्षेत्र इस प्रकार हैं–(*i*) **जीवन निर्वाह क्षेत्र** (Subsistence Sector), (*ii*) **बाजार क्षेत्र** (Market Sector), (*iii*) **विदेशों द्वारा संचालित क्षेत्र** (Foreign Enclaves)।

अन्य अर्थव्यवस्थाओं में आर्थिक क्रियाओं का संचालन दो स्तरों पर होता है–एक, **परम्परागत** (Traditional) तथा दूसरे, **आधुनिक** (Modern)। जीवन निर्वाह क्षेत्र में उत्पादन परम्परागत तरीके से होता है। इसमें श्रम-विभाजन तथा विशिष्टीकरण बहुत कम पाया जाता है। उत्पादन की वृद्धि दर लम्बे समय तक स्थिर रहती है। अतएव विकास की सम्भावना कम होती है। इसके विपरीत, बाजार क्षेत्र या विदेशों द्वारा संचालित क्षेत्र में उत्पादन की आधुनिक तकनीक अपनायी जाती है परन्तु इस क्षेत्र का आकार अपेक्षाकृत बहुत छोटा होता है।

(8) **तृतीयक क्षेत्र या अधो-संरचना का पिछड़ापन** (Backwardness of Tertiary Sector and Infra-structure)–अर्द्ध-विकसित देशों में तृतीयक क्षेत्र अर्थात् व्यापार, बैंकिंग, बीमा आदि विभिन्न सेवाएँ तथा अधो-संरचना, जैसे–यातायात के साधन, बिजली, सिंचाई आदि काफी सीमा तक अविकसित स्थिति में होते हैं। इन अर्थव्यवस्थाओं में बाजार का आकार छोटा होने, जीवन निर्वाह के लिए उत्पादन, वस्तु विनिमय का प्रचलन आदि के फलस्वरूप सेवाओं तथा अधो-संरचना का सीमित विकास हो पाता है।

(9) **विदेशी ऋणग्रस्तता** (Foreign Indebtedness)–अर्द्ध-विकसित देश विदेशों से बहुत अधिक ऋण लेते हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि इन देशों की निर्यात क्षमता कम होती है तथा आयात की आवश्यकताएँ अपेक्षाकृत अधिक होती हैं।

(10) **निर्धनता का दुष्चक्र** (Vicious Circle of Poverty)–अर्द्ध-विकसित देशों की उपरोक्त विशेषताएँ उसकी निर्धनता का कारण भी हैं तथा परिणाम भी हैं। ये देश निर्धनता के दुष्चक्र में फँसे हुए हैं। इसलिए **नर्क्स** ने कहा है कि एक देश निर्धन है क्योंकि वह निर्धन है। इस प्रकार निर्धनता का दुष्चक्र चलता रहता है। **निर्धनता के दुष्चक्र के दो पक्ष हैं जैसा कि नीचे स्पष्ट किया गया है–**

नोट

(*i*) **माँग पक्ष** (Demand Side) :

कम आय → कम माँग → विनियोग की कम प्रेरणा → कम विनियोग → कम उत्पादकता

(*ii*) **पूर्ति पक्ष** (Supply Side) :

कम आय → कम बचत → कम विनियोग → कम उत्पादकता → कम आय

यही निर्धनता का दुष्चक्र अर्द्ध-विकसित देशों की प्रमुख विशेषता है। यह उनके अर्द्ध-विकसित होने का कारण भी है तथा **परिणाम** भी है। यदि इन देशों में आय में वृद्धि के प्रयत्न किये भी जाते हैं तो इनमें पायी जाने वाली जनसंख्या की ऊँची वृद्धि दर प्रति व्यक्ति आय की वृद्धि दर को नहीं बढ़ने देती। इसके फलस्वरूप इन देशों के लिए निर्धनता के दुष्चक्र को तोड़ना कठिन सिद्ध हो रहा है।

(11) **बेरोजगारी, अर्द्ध-बेरोजगारी एवं अदृश्य बेरोजगारी** (Unemployment, Under-employment and Disguise Unemployment)–अधिकांश अर्द्ध-विकसित देशों में व्यापक बेरोजगारी, अर्द्ध-बेरोजगारी एवं अदृश्य बेरोजगारी विद्यमान होती है। इसका प्रमुख कारण यह है कि इन देशों में श्रम की प्रचुरता है लेकिन श्रम को काम देने के लिए उत्पादन के अन्य साधन; जैसे–पूँजी, भूमि, तकनीकी सेवाएँ व साहसी योग्यता की कमी है। इन अर्थव्यवस्थाओं में बेरोजगारी के कारण ही व्यापक निर्धनता पायी जाती है।

(12) **औद्योगीकरण का अभाव** (Lack of Industrialisation)–विकासशील देशों का औद्योगिक ढाँचा बहुत कमजोर होता है। इसी कारण इन देशों में जनसंख्या का एक छोटा-सा भाग ही उद्योग में लगा होता है। इन देशों की राष्ट्रीय आय में उद्योग का भाग भी बहुत कम होता है। उदाहरणार्थ, सकल घरेलू उत्पाद (G.D.P.) में उद्योग का योगदान भारत में 57 प्रतिशत तथा कीनिया में 19 प्रतिशत था, जबकि विकसित देशों की राष्ट्रीय आय में उद्योगों का योगदान क्रमशः जर्मनी में 38 प्रतिशत, जापान में 44 प्रतिशत व अमेरिका में 27 प्रतिशत है।

इन देशों में आधारभूत उद्योग, जैसे–मशीन उद्योग, इस्पात उद्योग आदि नहीं के बराबर होते हैं। इसके फलस्वरूप औद्योगिक ढाँचे के बुनियादी तत्व यहाँ नहीं के बराबर होते हैं। उद्योग की उत्पादन तकनीक पुरानी होती है। जो थोड़े-बहुत उद्योग है।, वे उपभोग वस्तुओं का उत्पादन करते हैं। इनमें भी अधिकतर कुटीर तथा छोटे पैमाने के उद्योग होते हैं। ये उद्योग पुरानी तकनीक की मदद से परम्परागत वस्तुएँ तैयार करते हैं।

(13) **सम्पत्ति एवं आय वितरण में असमानता** (Inequality in Distribution of Property and Income)–विकासशील देशों में धन के वितरण की व्यापक विषमता पाई जाती है। सम्पूर्ण राष्ट्रीय आय का एक बहुत बड़ा भाग थोड़े-से व्यक्तियों के हाथों में केन्द्रित रहता है, जबकि जनसंख्या के एक बड़े भाग को सम्पूर्ण आय का अत्यन्त अल्प भाग ही मिलता है।

अल्पविकसित तथा विकसित देशों में पाया जाने वाला असमानता का विस्तार स्पष्ट हो जाता है–

सारणी 1–असमानता का विस्तार (Extent of Inequalities)

देश	राष्ट्रीय आय में सबसे अधिक आय वाले 20 प्रतिशत व्यक्तियों का भाग	राष्ट्रीय आय में कम आय वाले 20 प्रतिशत व्यक्तियों का भाग
विकसित देश		
यू. एस. ए.	46.4	5.2
स्विट्जरलैण्ड	40.3	6.9
अल्पविकसित देश		
ब्राजील	63.8	5.5
केन्या	50.2	6.7

Source : *World Development Report*, 2001

नोट

(II) जनसंख्या सम्बन्धी विशेषताएँ (Demographic Characteristics)

देश में पायी जाने वाली जनसंख्या सम्बन्धी विशेषताओं के आधार पर भी हम अर्थव्यवस्था को विकसित अथवा अर्द्ध-विकसित अर्थव्यवस्था में बाँट सकते हैं। अर्द्ध-विकसित देशों की जनसंख्या सम्बन्धी विशेषताएँ निम्नलिखित हैं–

(1) **जनसंख्या की अधिकता** (Excess of Population)–अर्द्ध-विकसित देशों में जनसंख्या बहुत ही अधिक है और जनसंख्या वृद्धि दर भी अपेक्षाकृत अधिक है। अर्द्ध-विकसित अर्थव्यवस्था में रूढ़ियों व अन्धविश्वास, शिक्षा आदि के कारण परिवार में बच्चों को भार नहीं माना जाता है, फलतः अधिकांश अर्द्ध-विकसित देशों को जनसंख्या-विस्फोट की स्थिति का सामना करना पड़ रहा है।

जनसंख्या का दबाव इतना गम्भीर होता है कि वह आर्थिक विकास एवं जीवन-स्तर को ऊँचा करने के प्रयास को निष्फल-सा कर देता है। **लीबिन्स्टीन** (Leibenstein) ने इसे **'निम्नस्तरीय जनसंख्या साम्य जाल'** (Low Level Equilibrium Population Trip) कहा है। इसका अर्थ यह है कि राष्ट्रीय आय में वृद्धि के साथ-साथ जनसंख्या में भी वृद्धि होती जाती है। फलतः प्रति व्यक्ति आय एक निम्न स्तर पर ही बनी रहती है। लीबिन्स्टीन ने अपनी पुस्तक *'Theory of Economic Demographic Development'* में यह प्रदर्शित किया है कि आय में वृद्धि के साथ-साथ मृत्यु-दर में कमी आने के कारण जनसंख्या में भी वृद्धि होती है। यदि जनसंख्या में यह वृद्धि, आय में वृद्धि से अधिक है तो यह (जनसंख्या) अर्थात् अ अ रेखाचित्र में बढ़ते हुए आय रेखा को 'प' बिन्दु पर काटते हुए इससे ऊपर उठ जाती है। तब 'प' बिन्दु पर प्रति व्यक्ति आय कम हो जायेगी जिसे **निम्नस्तरीय साम्य जाल** (Low Level Equilibrium Trap) कहा जाता है। इसका अर्थ यह है कि प्रति व्यक्ति आय जाल में फँस जाती है और स्थिर रहती है।

(2) **ऊँची जन्म व मृत्यु-दर** (High Birth and Death Rate)–अर्द्ध-विकसित देशों की जनसंख्या की एक उल्लेखनीय विशेषता यह है कि यहाँ जहाँ एक ओर जन्म व मृत्यु दरें दोनों ही विकसित देशों की अपेक्षा अधिक रहती हैं (जन्म-दर ऊँची होने के कारण हैं–बाल-विवाह, धार्मिक और सामाजिक अन्धविश्वास, संयुक्त परिवार, निर्धनता, सन्तान निरोधक की कमी), वहीं दूसरी ओर, तकनीकी पिछड़ेपन के कारण उत्पादन लागत अधिक रहती है जिससे अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में इस देश की प्रतिस्पर्द्धा शक्ति कम हो जाती है जिसके कारण उद्योगों का स्तर निम्न रहता है और उत्पादन तकनीकी पिछड़ी अवस्था में ही रह जाती है।

(3) **अधिकांश जनता का गाँवों में निवास** (Inhabitance of Major Population in Village)– विकासशील देशों में अधिकांश जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्रों में रहती है जिसका मुख्य व्यवसाय कृषि होता है। 2001 की जनगणना के अनुसार भारत की 76.7 प्रतिशत जनसंख्या गाँवों में व शेष शहरों में रहती है।

(4) **निम्न जीवनावधि** (Low Expentency of Life)–विकसित देशों की तुलना में विकासशील देशों की प्रत्याशित आयु कम होती है। विकसित देशों की प्रत्याशित आयु औसतन 73 से 79 वर्ष की होती है, जैसे–स्विट्जरलैण्ड में 78 वर्ष, स्वीडन में 78 वर्ष, अमेरिका में 77 वर्ष, ब्रिटेन में 76 वर्ष, आस्ट्रिया में 77 वर्ष। विकासशील देशों में यह 40 से 60 वर्ष तक ही है। वर्तमान में भारत में प्रत्याशित आयु 61 वर्ष है।

(5) **आश्रितों की अधिकता** (High Dependency)–विकासशील देशों में एक परिवार में आश्रित की मात्रा अधिक होती है। इसका अर्थ यह है कि इन देशों में कमाने वाले कम होते हैं, खाने वाले ज्यादा।

(6) **जनसंख्या का घनत्व** (Density of Population)–विकासशील देशों में जनसंख्या का घनत्व अधिक होता है, जबकि विकसित देशों में उतना नहीं होता है।

(7) **अकुशल जनसंख्या** (Unskilled Population)–अर्द्ध-विकसित देशों की जनसंख्या–शिक्षा, चिकित्सा, स्वास्थ्य एवं पौष्टिक भोजन के अभाव में सापेक्षिक दृष्टि से अकुशल रहती है और मानव पूँजी अच्छी किस्म की नहीं। इस बात की पुष्टि **मानव विकास रिपोर्ट** से होती है जिसके अनुसार मानव विकास सूचकांक अर्द्ध-विकसित राष्ट्रों में अत्यन्त कम है।

नोट

(III) सांस्कृतिक एवं सामाजिक विशेषताएँ (Cultural and Social Characteristics)

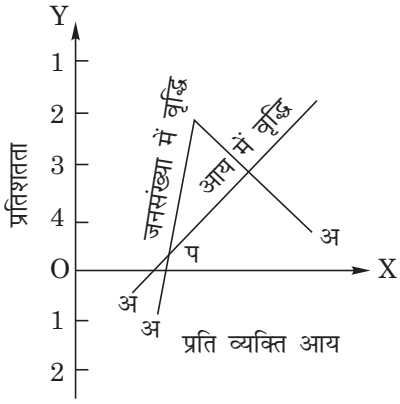

चित्र 27.1

(1) **रूढ़िवादियों की प्रधानता** (Domination of Traditions)—अर्द्ध-विकसित देशों में सामाजिक परम्पराओं और रूढ़ियों की प्रधानता रहती है जिसमें समाज की बहुमूल्य बचत का अपव्यय होता है।

(2) **अशिक्षा** (Illiteracy)—अर्द्ध-विकसित राष्ट्रों में शिक्षा का अभाव पाया जाता है और समाज के अधिकांश व्यक्ति अशिक्षित होते हैं।

(3) **महँगे रीति-रिवाज** (Costly Customs)—यहाँ के लोगों के रीति-रिवाज बहुत महँगे होते हैं और इन पर आय का एक बड़ा भाग व्यय होता है। वास्तव में, उत्सवों और समारोहों पर खर्च के कारण बचत की गुंजाइश कम होती है।

(4) **स्त्रियों का निम्न स्थान** (Low Status of Women)—अल्प-विकसित राष्ट्रों में स्त्रियों को निम्न स्थान प्रदान किया जाता है, उन्हें कोई स्वतन्त्रता नहीं दी जाती है और उनका भाग्य पुरुष के साथ जोड़ दिया जाता है।

(5) **छुआछूत का पालन** (Prevalance of Untouchability)—अर्द्ध-विकसित देशों में छुआछूत का पालन कठोरता के साथ किया जाता है और ऐसा न करने वालों का बहिष्कार कर दिया जाता है।

(6) **भाग्यवादिता** (Fatalism)—इन देशों में जनता अकर्मण्य, भाग्यवादी तथा साहसहीन होती है। प्रकृति पर विजय प्राप्त करने के स्थान पर प्राकृतिक बाधाओं के प्रति समर्पण की स्थिति पायी जाती है।

(7) **रीति-रिवाजों की प्रधानता** (Priority of Customs)—इन देशों में रीति-रिवाजों की प्रधानता होती है जिनको प्रत्येक व्यक्ति आँख मूँदकर मानता है और समय-समय पर उन्हीं रिवाजों के अनुसार कार्य करता है।

(8) **जातिवाद** (Castism)—इन देशों में वर्ग-भेद व जातिवाद की भावना व्याप्त होती है।

(9) **आध्यात्मिक प्रगति** (High Spitualism)—आध्यात्मिक, दार्शनिक और मनोवैज्ञानिक दृष्टि से अर्द्ध-विकसित देश बहुत धनी हैं जहाँ सन्तोष और मानसिक शान्ति प्रमुख सामाजिक मूल्य हैं। यदि व्यक्तिगत सुख और सन्तोष को आधार बनाया जाए तो अर्द्ध-विकसित देशों की गणना विश्व के देशों में सर्वप्रथम होगी।

(IV) राजनीतिक विशेषताएँ (Political Characteristics)

विकासशील देशों की प्रमुख राजनीतिक विशेषताएँ निम्नलिखित हैं–

(1) **विदेशी शासन** (Foreign Rule)—अधिकांश विकासशील देशों में विदेशी शासन रहा है और विदेशी शासकों ने इन राष्ट्रों के विकास में कोई रुचि नहीं ली है।

(2) **विदेशी नीति** (Foreign Policy)—विकासशील देशों की विदेश नीति गुट-निपेक्षता की नीति है।

(3) **समान हित** (Common Interest)—ये देश अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र के समान हितों की रक्षा के लिए परस्पर परामर्श करते हैं।

(4) **भ्रष्ट प्रशासन** (Corrupt Administration)—विकासशील देशों का प्रशासनिक ढाँचा प्रायः कमजोर होता है। परिणामस्वरूप यहाँ सरकारी कार्य बड़ी धीमी गति से होता है तथा बड़ी मात्रा में घूसखोरी, भ्रष्टाचार जैसी बुराइयाँ देखने को मिलती है।

(5) **जागृति का उदय** (Emergence of Awareness)—एक अन्य महत्वपूर्ण बात जिसके कारण अर्द्ध-विकसित देशों के विकास की समस्या का समाधान आज बहुत आवश्यक हो गया है, वह है इन देशों में जागृति का उदय। रूस की क्रान्ति तथा इधर कुछ ऐसे देशों को राजनीतिक स्वाधीनता मिलने से इस जागरूकता को और बल मिला है। परिवहन तन्त्र संचार साधनों में उन्नति के फलस्वरूप विश्व के देश अब एक-दूसरे के अधिक

नोट

निकट हो गये हैं। टेलीविजन, रेडियो, सामाचार-पत्रों, पुस्तकों तथा लोगों के विदेशों में आने-जाने से पारस्पारिक जानकारी में महत्वपूर्ण वृद्धि हुई है। अर्द्ध-विकसित देशों के लोग अब अपनी स्थिति, आवश्यकताओं तथा अधिकारों के विषय में अधिक जागरूक होने लगे हैं।

(V) तकनीकी विशेषताएँ (Technological Characteristics)

विकासशील देशों में निम्नलिखित तकनीकी विशेषताएँ पायी जाती हैं:

(1) **तकनीकी व सामान्य शिक्षा का अभाव** (Lack of Technical and General Education)–इन देशों में सामान्य और तकनीकी दोनों प्रकार की शिक्षाओं का अभाव पाया जाता है।

(2) **उत्पादन की प्राचीन विधियाँ** (Old Techniques of Production)–इन देशों में तकनीकी ज्ञान के अभाव में उत्पादन की प्राचीन विधियों का ही उपयोग किया जाता है जिसमें प्रति व्यक्ति उत्पादन बहुत कम रहता है।

(3) **परिवहन एवं संवहन की अपर्याप्तता** (Inadequacy of Transport and Management)– अर्द्ध-विकसित देशों में परिवहन एवं संवहन की सुविधाएँ अत्यन्त अपर्याप्त और पिछड़ी हुई अवस्था में रहती हैं जिससे आवश्यक वस्तुएँ तत्काल प्राप्त नहीं हो पातीं।

(4) **अकुशल श्रमिकों की प्रचुरता** (Abundant Unskilled Labour)–इन देशों में तकनीकी ज्ञान का सामान्यतया अभाव रहता है। फलत: अकुशल श्रमिकों की ही प्रचुरता रहती है।

(IV) अन्य विशेषताएँ (Other Characteristics)

(1) **स्थिर व्यावसायिक ढाँचा** (Static Occuapational Structure)–अर्द्ध-विकसित देशों में व्यावसायिक ढाँचा एकसमान अर्थात् स्थिर रहता है, उसमें परिवर्तन नहीं होते हैं।

(2) **दोषपूर्ण वित्तीय संगठन** (Defective Financial Organisation)–अर्द्ध-विकसित देशों में वित्तीय संगठन दोषपूर्ण होते हैं। इन देशों की बैंकिंग व्यवस्था प्रभावशाली नहीं होती, सरकारी आय के साधन सीमित होते हैं, मुद्रा बाजार असंगठित होता है तथा प्रत्यक्ष कर अधिक लगाये जाते हैं।

यह आवश्यक नहीं है कि ऊपर वर्णित सभी विशेषताएँ सभी अर्द्ध-विकसित देशों में देखने को मिलें। कुछ देशों में कुछ विशेषताओं की प्रधानता हो सकती है तो दूसरे देशों में अन्य विशेषताओं की। इसीलिए **हिगिन्स** (Higgins) ने कहा है कि अर्द्ध-विकसित देशों में कई वर्ग बनाये जा सकते हैं। कुछ अर्द्ध-विकसित देश अन्य देशों की अपेक्षा श्रेष्ठ स्थिति में हो सकते हैं। अन्य शब्दों में, अर्द्ध-विकसित देशों में कुछ पिछड़े हुए तो कुछ तेजी से विकासशील देश हो सकते हैं।

क्या आप जानते हैं विश्व की अर्द्ध-विकसित अर्थव्यवस्थाओं के लिए **दक्षिण** (South) तथा विकसित अर्थव्यवस्थाओं के लिए **उत्तर** (North) शब्दों का प्रयोग किया जाता है।

नोट

13.4 विकसित तथा अर्द्ध-विकसित देशों में अन्तर (Difference Between Developed and Under-Developed Countries)

विकसित तथा अर्द्ध-विकसित देशों के बीच अन्तर हम मुख्यत: निम्न आधारों पर कर सकते हैं:

अन्तर का आधार	विकसित देश	अर्द्ध-विकसित
(1) **प्राकृतिक साधन**	पर्याप्त प्राकृतिक साधन और उनका पूर्ण विदोहन।	पर्याप्त प्राकृतिक साधन परन्तु पूर्ण विदोहन न होना
(2) **आर्थिक स्थिति**	(अ) प्रति व्यक्ति वास्तविक आय अधिक होने से उपभोग का स्तर ऊँचा रहता है।	(अ) प्रति व्यक्ति आय कम होने के कारण उपभोग का स्तर निम्न रहता है।
(3) **कृषि**	(ब) राष्ट्रीय आय के अनुपात में बचत और विनियोग का स्तर ऊँचा होता है।	(ब) बचत और विनियोग का स्तर नीचा रहता है।
(4) **उद्योग**	जनसंख्या का एक अल्प भाग कृषि में कार्यरत रहता है और कृषि आधुनिक ढंग पर की जाती है।	(स) जनसंख्या का अधिकांश भाग कृषि उद्योग में संलग्न होता है और कृषि पुराने ढंग से की जाती है।
(5) **पूँजी निर्माण**	(अ) विशाल उत्पादन इकाइयों का संगठन।	(अ) उत्पादन कार्य छोटी-छोटी इकाइयों द्वारा किया जाना।
(6) **निर्यात**	(ब) प्रति इकाई औसत उत्पादन का कम होना।	(ब) प्रति इकाई औसत उत्पादन का अधिक होना।
	(स) ऊँची कार्यक्षमता के कारण प्रति श्रमिक अधिक उत्पादकता।	निम्न कार्यक्षमता के कारण श्रम उत्पादकता का नीचा होना।
(7) **जनसंख्या**	(अ) प्रति व्यक्ति ऊँचा पूँजी अनुपात	(अ) प्रति व्यक्ति कम पूँजी अनुपात
	(ब) प्रति इकाई औसत उत्पादन का कम होना।	(ब) प्रति इकाई औसत उत्पादन का निम्न कार्य क्षमता के कारण श्रम उत्पादक का नीचा होना।
	(अ) निर्यात पर कम निर्भरता।	(अ) निर्यात पर अधिक निर्भरता।
	(ब) निर्यात का मुख्य उद्देश्य राष्ट्रीय उत्पादन में सन्तुलन बनाये रखना।	(ब) निर्यात का उद्देश्य राष्ट्रीय आय में वृद्धि करना होता है।
	(स) अधिकांशत: निर्मित माल का निर्यात किया जाता है।	(स) अधिकांशत: कच्चे माल का निर्यात किया जाता है।
	(अ) कम जनसंख्या और जन्म तथा मृत्यु दर भी कम होती है।	(अ) अधिक जनसंख्या और जन्म व मृत्यु दर का ऊँचा पाया जाना।
	(ब) अधिक जीवन प्रत्याशा और अधिक कार्य-कुशलता का होना।	(ब) कम जीवन प्रत्याशा और कम कार्य-कुशलता।
(8) **प्राविधिक स्तर**	पूँजी-प्रधान तकनीक का प्रयोग व उच्च प्राविधिक स्तर।	श्रम-प्रधान तकनीक का उपयोग और निम्न प्राविधिक स्तर।

नोट

13.5 क्या भारत एक अल्प-विकसित देश है? (Is India An Under-Developed Country?)

भारत–एक विकासशील अर्थव्यवस्था (India – A Developing Economy)

अर्द्ध-विकसित देशों की विभिन्न विशेषताओं को देखते हुए तथा वाह्य दृष्टि से भारतीय अर्थव्यवस्था पर दृष्टिपात करने पर निःसन्देह यही कहा जायेगा कि भारत एक अर्द्ध-विकसित राष्ट्र है जिसके प्रमुख लक्षण निम्नलिखित हैं–(1) कृषि की प्रधानता, (2) प्रति व्यक्ति आय का निम्न स्तर, (3) पूँजी निर्माण का निम्न स्तर, (4) बेरोजगारी, (5) ऊँची जन्म व मृत्यु-दरें, (6) निम्न प्रत्याशित आयु, (7) जनसंख्या का घनत्व, (8) पुरानी उत्पादन विधि, (9) निम्न साक्षरता, (10) पिछड़ा आर्थिक व सामाजिक ढाँचा, (11) निम्न जीवन-स्तर आदि ऐसी कसौटियाँ हैं जो भारत को पिछड़ेपन के धरातल पर लाकर खड़ा कर देती हैं परन्तु पिछले कुछ वर्षों से भारत विकास की स्थैतिक अवस्था से निकलकर **प्रावैगिक अवस्था में प्रवेश कर चुका है** जैसा कि निम्न विवरण से स्पष्ट है:

(1) **नियोजित मिश्रित अर्थव्यवस्था** (Planned Mixed Economy)–1 अप्रैल, 1951 से भारतीय अर्थव्यवस्था नियोजित अर्थव्यवस्था के रूप में कार्यशील है। यहाँ आर्थिक विकास के लिए पंचवर्षीय योजनाएँ बनायी जाती हैं। इसे मिश्रित इसलिए कहा जाता है कि यहाँ सार्वजनिक क्षेत्र एवं निजी क्षेत्र दोनों को काम करने का समान अवसर दिया गया है। एक तरफ सरकारी उपक्रम है तो दूसरी तरफ निजी उपक्रम है।

जुलाई, 1991 से देश में आर्थिक सुधारों का नया कार्यक्रम अपनाया गया है जिसके अन्तर्गत **आर्थिक उदारीकरण** (Economic Liberalisation) का मार्ग अपनाया गया है। सरकार निजीकरण, बाजारीकरण व अन्तर्राष्ट्रीयकरण पर बल देने लगी है।

(2) **प्रति व्यक्ति आय एवं राष्ट्रीय आय में वृद्धि** (Increase in Per Capita Income & National Income)–भारत में प्रति व्यक्ति आय एवं राष्ट्रीय आय में निरन्तर वृद्धि हो रही है। प्रति व्यक्ति वार्षिक आय जो वर्ष 1950-51 में (1993-94 की कीमतों के आधार पर) 3,687 रुपये थी, वह वर्ष 2000-2001 में बढ़कर 10,254 रुपये हो गयी है।

(3) **बचत व विनियोग दरों में वृद्धि** (Increase in Saving and Investment Rates)–योजना अवधि में बचत व विनियोग दर में भी उतार-चढ़ाव आते रहे हैं। चालू मूल्यों के आधार पर GDP से सकल बचत का अनुपात जो 1950-51 में 8.9 प्रतिशत था, वह 2000-2001 में बढ़कर 23.0 प्रतिशत हो गया। इसी प्रकार सकल घरेलू पूँजी निर्माण की दर जो 1950-51 में 8.9 प्रतिशत थी, वह 2000-2001 में बढ़कर 24.0 प्रतिशत हो गयी।

(4) **तीनों क्षेत्रों का सापेक्षिक महत्व** (Relative Significance of Three Sectors)–पिछले 52 वर्षों में भारत की राष्ट्रीय आय में कृषि के योगदान में कमी आयी है और उद्योग तथा सेवा क्षेत्र का सापेक्षिक महत्व निरन्तर बढ़ता जा रहा है। ये परिवर्तन अर्थव्यवस्था के विकास के परिचायक हैं।

(5) **कृषि क्षेत्र का विकास** (Development of Agriculture)–कुछ समय पूर्व तक भारत में कृषि अत्यन्त ही पिछड़ी हुई तथा अविकसित स्थिति में थी परन्तु अब खेती में उपकरणों, रासायनिक खाद, अधिक उपज देने वाले बीजों व अन्य कृषि आदान (Agricultural Inputs) का प्रयोग धीरे-धीरे जोर पकड़ रहा है और खेती का व्यापारीकरण भी बढ़ रहा है। 'हरित क्रान्ति' के कारण अब पहले की अपेक्षा कृषि उत्पादन की मात्रा काफी तेजी से बढ़ने लगी है।

(6) **औद्योगिक विकास** (Industrial Development)–औद्योगिक क्षेत्र में तो परिवर्तन द्रुत गति से हो रहे हैं। अब देश में अनेक प्रकार के आधुनिक उद्योग, मूल व भारी उद्योग, जैसे–मशीन उद्योग, लोहा व इस्पात उद्योग, इन्जीनियरी उद्योग आदि स्थापित किये जा चुके हैं। पहले केवल दस्तकारी या कुटीर उद्योगों का ही बोलबाला था। औद्योगिक उत्पादन की मात्रा में इधर कुछ वर्षों से भारी वृद्धि हुई है।

नोट

औद्योगिक विकास के फलस्वरूप देश में निर्मित वस्तुओं का आयात काफी बढ़ गया है और निर्यात व्यापार में निर्मित वस्तुओं का भाग काफी तेजी से बढ़ रहा है। राष्ट्रीय आय और रोजगार में उद्योग क्षेत्र का योगदान धीरे-धीरे बढ़ रहा है।

(7) **सार्वजनिक क्षेत्र का विकास** (Development of Public Sector)—यहाँ सार्वजनिक उद्योगों में बराबर वृद्धि हो रही है। 1950-51 में भारत में 5 सार्वजनिक उद्योग थे जिनमें 29 करोड़ रुपये की पूँजी लगी थी वर्तमान में इनकी संख्या 235 व विनियोजित पूँजी बढ़कर 2,73,700 करोड़ रुपये हो गयी है। इन उद्योगों में लोहा एवं इस्पात उद्योग, सीमेण्ट उद्योग, रसायन उद्योग, इन्जीनियरिंग उद्योग, कोयला उद्योग व अनेक उपभोक्ता व औद्योगिक उद्योग शामिल हैं।

(8) **बाजार-तन्त्र द्वारा आर्थिक क्रियाओं का निर्देशन** (Direction to Economic Activities by Market Mechanism)—भारतीय अर्थव्यवस्था में बाजार-तन्त्र बहुत प्रभावशाली है। यहाँ वस्तुओं के आलावा उत्पादन के साधनों, जैसे—श्रम और पूँजी के पर्याप्त रूप में संगठित बाजार हैं। वस्तु बाजारों में अधिकांश चीजों की कीमतें माँग और पूर्ति की शक्तियों के बीच सन्तुलन द्वारा निर्धारित होती हैं। बाजार-तन्त्र द्वारा दिये जाने वाले निर्देशों को नियन्त्रित करने के लिए लाइसेन्स प्रणाली के आलावा आयात नियन्त्रण, अनिवार्य वस्तुओं के अभाव के समय उनका उचित मूल्य दुकानों (Fair Price Shops) के द्वारा वितरण तथा किसानों को प्रोत्साहन देने के लिए कृषि उत्पादों की समर्थन कीमतों (Support Prices) पर सरकार द्वारा खरीद की व्यवस्था की गई है।

(9) **निर्धनता दूर करने के विशिष्ट कार्यक्रम** (Specific Programmes for Eradicating Poverty)—छटी योजना में गरीबी दूर करने के विशिष्ट कार्यक्रम, जैसे—समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम व रोजगार सम्बन्धी विशेष कार्यक्रम अपनाने से निर्धनता-अनुपात (Proverty-ratio) घटा है लेकिन इस सम्बन्ध में योजना आयोग व लकड़ावाला विशेषज्ञ-समूह के आँकड़ों में भारी अन्तर पाया जाता है।

(10) **यातायात एवं संचार** (Transport and Communication)—रेलों, सड़कों जहाजरानी तथा संचार के साधनों में भी पर्याप्त विकास हुआ है। भारतीय रेल प्रणाली विश्व की बड़ी रेल प्रणालियों में अपना अग्रणी स्थान रखती है। जहाजरानी में भारत का विश्व की बड़ी 16 जहाजरानी प्रणालियों में महत्वपूर्ण स्थान है। संचार व्यवस्था में भी नये कीर्तिमान स्थापित किये गये हैं। उपग्रह के माध्यम से दूरसंचार व्यवस्था का विकास हुआ है।

(11) **मुद्रा और साख व्यवस्था** (Money and Credit System)—बैंकिंग और वित्त के क्षेत्र में भी प्रगति उत्साहवर्द्धक रही है। बैंकों एवं बीमा-कम्पनियों के राष्ट्रीयकरण से बैंक जमाओं और बीमा व्यवसाय में अत्यधिक वृद्धि हुई है। वित्तीय साधनों की उपलब्धि से कृषि, निर्यात, उद्योग, लघु एवं कुटीर उद्योगों, फुटकर एवं छोटे व्यापार, स्व-नियुक्त रोजगार, शिक्षा आदि क्षेत्र में महत्वपूर्ण प्रगति हुई है।

(12) **सामाजिक सेवाओं का विस्तार** (Expansion of Social Services)—शिक्षा, स्वास्थ्य आदि सामाजिक सेवाओं के विस्तार में भी पर्याप्त प्रगति हुई है। स्कूली एवं विश्वविद्यालय स्तर की शिक्षा और शोध के क्षेत्रों में अभूतपूर्व सुधार हुआ है। साक्षरता का स्तर बढ़ा है। अब देश में प्रशिक्षित श्रमिकों, तकनीकी विशेषज्ञों, वैज्ञानिकों, अनुसन्धानकर्ताओं, प्रशासकों व प्रबन्धकों आदि की कमी नहीं है।

(13) **सामाजिक परिवर्तन** (Social Changes)—भारतीय समाज में शिक्षा के प्रसार व विकास के साथ-साथ परिवर्तन हुआ है। रूढ़िवादिता, बाल-विवाह, पर्दा-प्रथा, छुआछूत आदि बुराइयाँ धीरे-धीरे कम हुई हैं और देशवासियों ने विकास के अनुरूप अपने को ढालने की चेष्टा की है जो एक प्रगति के पथ पर अग्रसर राष्ट्र के लिए आवश्यक है।

टास्क तीसरी दुनिया से आप क्या समझते हैं?

नोट

निष्कर्ष (Conclusion)–उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि भारतीय अर्थव्यवस्था यद्यपि पिछड़ी है लेकिन अब वह गरीबी के दुष्चक्र से बाहर है। योजनाकाल में हमने तीव्र गति से आर्थिक विकास किया है जिसके कारण यहाँ की अर्थव्यवस्था में संस्थात्मक एवं संरचनात्मक परिवर्तन स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर हो रहे हैं। आज हमारा औद्योगिक ढाँचा पहले से अधिक मजबूत है। कृषि क्षेत्र में विविध संस्थागत और तकनीकी सुधार हुए हैं। आधारभूत आर्थिक संरचना ज्यादा विकसित है। वित्तीय ढाँचा अधिक सशक्त और फैला हुआ है। आर्थिक उदारीकरण की नीति के तहत निजी क्षेत्र को बढ़ावा दिया जा रहा है। बाजार-संयन्त्र का अधिक उपयोग किया जा रहा है तथा देश की अर्थव्यवस्था को विश्व की अर्थव्यवस्था से जोड़ने का प्रयास चल रहा है। हर्ष की बात है कि भारतीय अर्थव्यवस्था **क्रयशक्ति की समता** (Purchasing Power Parity) की दृष्टि से **विश्व की चौथी बड़ी** अर्थव्यवस्था है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

3. निम्नलिखित कथनों में सत्य/असत्य की पहचान करें–

1. अर्द्ध-विकसित देशों की औसत आय विश्व की औसत आय से बहुत अधिक होती है।
2. मानव विकास सूचकांक यूनाइटेड नेशन्स डेवलपमेन्ट प्रोग्राम द्वारा तैयार किया गया एक सामूहिक सूचकांक है।
3. विकसित देशों की तुलना में विकासशील देशों की प्रत्याशित आयु अधिक होती है।
4. विकासशील देशों की विदेशी नीति गुट-निरपेक्षता की नीति है।
5. अर्द्ध-विकसित देशों की बैंकिंग व्यवस्था प्रभावशाली होती है।

13.6 सारांश (Summary)

- अल्प विकास एक सापेक्ष विचार है इसका अभिप्राय आर्थिक विकास की कमी से है।
- अर्थव्यवस्था में उत्पादित हो सकने वाली वस्तुओं का दो श्रेणियों में वर्गीकरण किया जाता है–विलासिता की वस्तुएँ तथा आवश्यक वस्तुएँ।
- निर्धनता एक प्रकार का रोग है जिसका असर विश्व से अधिकांश भागों पर है। इसका अर्थ है मानव का रहन-सहन की आवश्यक वस्तुओं से दूर होना।

13.7 शब्दकोश (Keywords)

- **जहाजरानी**–जहाज चालान, जहाज चलाने का काम।
- **प्रावैगिक**–प्रवेग संबंधी, तीव्र गति से संबंधी।
- **द्रुत**–तीव्र गति से, तेज।

13.8 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. अर्द्ध-विकसित अर्थव्यवस्था से आप क्या समझते हैं? क्या भारत एक अल्पविकसित अर्थव्यवस्था में है?
2. एक अर्द्ध-विकसित देश से आप क्या सकझते हैं? ऐसे देश की प्रमुख विशेषताओं को बताइए।
3. "एक अर्द्ध-विकसित देश जिर्राफ की भाँति है जिसका वर्णन करना कठिन है लेकिन जब हम उसे देखते हैं तो समझ जाते हैं।" क्या यह कथन भारत पर लागू होता है? तर्क दीजिए।
4. निर्धनता की प्रकृति समझाइए। निर्धनता और असमानता से आ क्या समझते हैं तथा निर्धनता का मापन किस प्रकार किया जा सकता है?

नोट

5. अल्प-विकास के सिद्धांत का क्या अभिप्राय है? विकासशील देश की विशेषताएँ बताइए।
6. विकसित तथा अर्द्ध-विकसित देशों में अंतर स्पष्ट कीजिए।
7. क्या भारत एक अल्पविकसित देश है?

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

1. 1. नीचा 2. विनियोग 3. परम्परागत (Traditional)
4. शीलनिष्ठता 5. हैड-काउन्ट सूचकांक

2. 1. (ख) 2. (क) 3. (ख) 4. (क)
5. (घ)

3. 1. असत्य 2. सत्य 3. असत्य 4. सत्य
5. असत्य।

13.9 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. *संवृद्धि एवं विकास का अर्थशास्त्र*: डॉ. पी. मिश्रा; साहित्य भवन पब्लिकेशन्स : आगरा
2. *विकास नियोजन एवं नीतियाँ*: वी. सी सिन्हा: साहित्य भवन पब्लिकेशन्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.) लि. रजिस्टर्ड कार्यालय नई दिल्ली
3. *विकास का अर्थशास्त्र एवं आयोजन*: डा. एस. एल. डिंगल: वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा. लि.

नोट

इकाई–14: आर्थिक विकास के मापक एवं सूचक (Measurement and Indicators of Economic Development)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

14.1 आर्थिक विकास के मापदंड (Measurement of Economic Developoment)

14.2 आर्थिक विकास के सूचक (Indicator of Economic Development)

14.3 सारांश (Summary)

14.4 शब्दकोश (Keywords)

14.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

14.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- आर्थिक के मापदंड को समझने में।
- आर्थिक विकास के सूचक को जानने में।

प्रस्तावना (Introduction)

आर्थिक विकास का माप व संकेतक (Measurement and Indicators of Economic Development)– आर्थिक विकास एक सापेक्षिक शब्द है तथा इसका सम्बन्ध एक समय विशेष से न होकर दीर्घकालीन परिवर्तनों से है जिसके कारण आर्थिक विकास का एक निश्चित मापदण्ड देना अत्यन्त कठिन है। यही कारण है कि आर्थिक विकास के मापदण्ड के विषय में अर्थशास्त्रियों के विचारों में विभिन्नता रही है।

14.1 आर्थिक विकास के मापदंड (Measurement of Economic Development)

आर्थिक विकास के मापदण्ड के सम्बन्ध में प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के विचार और आधुनिक अर्थशास्त्रियों के विचार अलग-अलग हैं जैसा कि निम्नलिखित विवरण से स्पष्ट हो जायेगा–

(I) प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के विचार (Views of Classical Economists)

विभिन्न प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के आर्थिक विकास के मापदण्ड के सम्बन्ध में विभिन्न विचार निम्न प्रकार रहे हैं–

(1) **वाणिज्यवादी अर्थशास्त्रियों ने** उपलब्ध सोना-चाँदी की मात्रा तथा विदेशी व्यापार की मात्रा को आर्थिक विकास का मापदण्ड माना है, जबकि इस विचारधारा की सार्थकता न थी, न है।

नोट

(2) **एडम स्मिथ** एवं समकालीन अर्थशास्त्रियों ने शुद्ध राष्ट्रीय उत्पादन की मात्रा का अधिक होना ही आर्थिक विकास माना है।

(3) **कार्ल मार्क्स** अधिकतम सामाजिक कल्याण का आधार समाजवाद अथवा साम्यवाद को मानता है, इसलिए मार्क्स के अनुसार समाजवाद ही आर्थिक विकास का मापदण्ड है।

(4) **प्रो. जे. एस. मिल** ने तो सहकारिता को ही आर्थिक विकास का मापदण्ड माना है।

प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों द्वारा सुझाये गये मापदण्ड एकाकी थे और उनका कोई वैज्ञानिक आधार नहीं था।

(II) आधुनिक अर्थशास्त्रियों के विचार (Views of Modern Economists)

आधुनिक अर्थशास्त्रियों ने आर्थिक विकास के लिए उत्पादन के साथ-साथ वितरण को भी महत्व दिया। आधुनिक अर्थशास्त्रियों ने आर्थिक विकास के लिए किसी एक तत्व को मापदण्ड नहीं माना। उनकी दृष्टि से आर्थिक विकास के लिए सभी आवश्यक तत्वों का एक महत्वपूर्ण स्थान है। इन सब तत्वों के परिणामस्वरूप ही किसी देश में आर्थिक विकास होता है। आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार आर्थिक विकास के कुछ प्रमुख मापदण्ड अग्र प्रकार हैं–

1. राष्ट्रीय आय (National Income)–आर्थिक विकास का माप करने के लिए हमें देश की राष्ट्रीय आय को देखना पड़ता है। किसी देश में एक वर्ष के अन्दर पैदा की गयी समस्त वस्तुओं एवं सेवाओं के मौद्रिक मूल्य को कुल राष्ट्रीय उत्पादन कहते हैं परन्तु वस्तुओं एवं सेवाओं का उत्पादन करने के लिए जिन उपकरणों का प्रयोग किया जाता है, उनमें घिसावट या मूल्य-ह्रास होता है। अत: यदि कुल राष्ट्रीय उत्पादन में से **सम्पत्ति की घिसावट** का मूल्य घटा दिया जाय तो शेष शुद्ध राष्ट्रीय उत्पादन होगा। पर कुल **राष्ट्रीय उत्पादन आर्थिक विकास की उचित कसौटी नहीं है** क्योंकि कुल राष्ट्रीय उत्पादन में सम्पत्ति की प्रतिस्थापना पर ध्यान नहीं दिया जाता है। **शुद्ध राष्ट्रीय उत्पादन या आय ही आर्थिक विकास का मापदण्ड है।** यदि किसी राष्ट्र में शुद्ध राष्ट्रीय उत्पादन बढ़ रहा है तो वह उसकी बढ़ती हुई राष्ट्रीय आय व आर्थिक विकास का संकेतक है परन्तु यह वृद्धि निरन्तर व स्थायी होनी चाहिए।

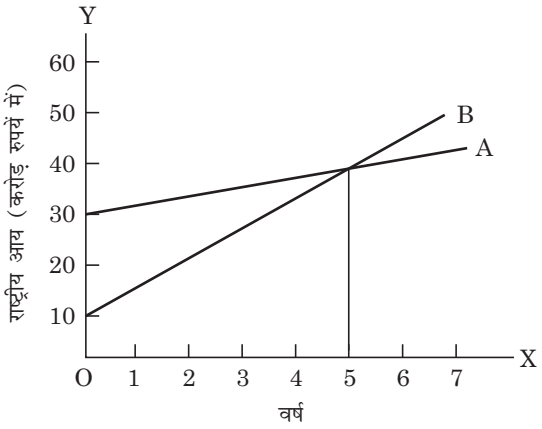

चित्र 14.1

इसी तथ्य को रेखाचित्र 1.1 द्वारा स्पष्ट किया गया है। चित्र से स्पष्ट है कि पाँचवें वर्ष तक A देश B देश की तुलना में धनी देश है। पर आरम्भ से ही B देश में राष्ट्रीय आय की वृद्धि दर A देश की अपेक्षा अधिक है। फलत: पाँचवें वर्ष में पहुँचते-पहुँचते B देश की आय A देश के बराबर हो जाती है और उसके बाद B देश A देश की तुलना में अधिक धनी हो जाता है।

सीमाएँ (Limitations)–राष्ट्रीय आय को आर्थिक विकास के मापन के एक महत्वपूर्ण मापदण्ड के रूप में स्वीकार किया गया है परन्तु इसे सन्तोषजनक नहीं माना जाता है क्योंकि राष्ट्रीय आय की गणना करने में बहुत-सी कठिनाइयाँ आती हैं। जैसे–(*i*) राष्ट्रीय आय सदैव मुद्रा में ही मापी जाती है परन्तु बहुत-सी वस्तुएँ एवं सेवाएँ ऐसी होती हैं जिनका मुद्रा में मूल्यांकन करना कठिन होता है। (*ii*) राष्ट्रीय आय की गणना करने में किसी वस्तु या सेवा को कई बार गिनने की आशंका बनी रहती है। (*iii*) राष्ट्रीय आय के माप में हस्तान्तरण भुगतान, जैसे–पेंशन, बेरोजगारी भत्ता आदि को सम्मिलित करने में कठिनाई उत्पन्न होती है। (*iv*) राष्ट्रीय आय की परिगणना में बहुत-सी सार्वजनिक सेवाएँ, जैसे–पुलिस व सैनिक सेवाएँ भी ली जाती हैं जिनका ठीक-ठीक हिसाब लगाना कठिन होता है। (*v*) पूँजीगत लाभ व हानियों को भी राष्ट्रीय आय में आगणन करने में कठिनाई आती है।

नोट

2. प्रति व्यक्ति आय–कुछ अर्थशास्त्रियों का मत है कि वास्तविक राष्ट्रीय आय को विकास का एकमात्र द्योतक नहीं माना जा सकता। उनका कहना है कि राष्ट्रीय आय में वृद्धि होने से यह सम्भव है कि जन-समूह की निर्धनता बढ़ जाये। ऐसा उस समय होता है जब जनसंख्या में वृद्धि की गति राष्ट्रीय आय में वृद्धि की गति से अधिक तेजी से होती है क्योंकि वास्तविक राष्ट्रीय आय की वृद्धि का अर्थ यह नहीं है कि प्रति व्यक्ति आय बढ़ रही है। हो सकता है कि लोग बचत की दर बढ़ा रहे हों या फिर सरकार स्वयं इस बढ़ी हुई आय को सैनिक अथवा अन्य उद्देश्यों के लिए इस्तेमाल कर रही हो। वास्तविक राष्ट्रीय आय में वृद्धि के बावजूद जनसाधारण की गरीबी का दूसरा कारण यह भी हो सकता है कि बढ़ी हुई आय बहुसंख्यक गरीबों के पास जाने की बजाय मुट्ठी भर अमीरों के हाथ में जा रही हो।

आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार अर्द्ध-विकसित देशों की प्रमुख समस्या वहाँ के निवासियों के जीवन-स्तर में सुधार की होती है और जीवन-स्तर में सुधार तभी सम्भव है, जबकि प्रति व्यक्ति आय बढ़े। अत: उसके मत में आर्थिक विकास का सही **मापदण्ड प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि है, न कि राष्ट्रीय आय में वृद्धि।**

टास्क आर्थिक विकास के माप से संबंधित राष्ट्रीय आय के पक्ष-विपक्ष में तर्क दीजिए।

प्रति व्यक्ति आय के पक्ष में तर्क–प्रति व्यक्ति आय के पक्ष में निम्न तर्क दिये जा सकते हैं–

(अ) जीवन-स्तर में सुधार (Improvement in Living Standard)–आर्थिक विकास में वर्तमान रूचि का मुख्य कारण अर्द्ध-विकसित देशों के निवासियों का जीवन-स्तर सुधारना है। इसके लिए प्रति व्यक्ति आय का बढ़ना आवश्यक है।

(ब) आर्थिक कल्याण में वृद्धि (Increase in Economic Welfare)–पिछले कुछ वर्षों में जनसंख्या, विशेषकर एशिया के देशों में अत्यधिक बढ़ी है। यदि हम इसकी उपेक्षा कर देंगे तो आर्थिक कल्याण की वृद्धि का कोई अर्थ नहीं होगा। साथ ही विगत वर्षों में जनसंख और प्रति व्यक्ति आय दोनों में ही वृद्धि हुई है। इसका यह अर्थ हुआ कि राष्ट्रीय आय में वृद्धि, प्रति व्यक्ति आय की अपेक्षा अधिक रही है।

(स) प्रति व्यक्ति उत्पादन में वृद्धि (Increase in Per Capita Production)–आर्थिक विकास के लिए प्रति व्यक्ति उत्पादन बढ़ना अनिवार्य है और इस बढ़ती हुई उत्पादिता का सही सूचक बढ़ती हुई प्रति व्यक्ति आय है, न कि राष्ट्रीय आय।

प्रति व्यक्ति आय के विपक्ष में तर्क–आर्थिक विकास के मापदण्ड के रूप में प्रति व्यक्ति आय के विपक्ष में निम्नलिखित तर्क दिये जा सकते हैं–

(अ) प्रति व्यक्ति आय के बढ़ने के बावजूद प्रति व्यक्ति उपयोग की मात्रा कम होना।

(ब) ऐच्छिक रूप से अथवा अनिवार्य रूप से बचतों का अधिक किया जाना।

(स) धन का असमान वितरण होना इत्यादि। अत: आर्थिक विकास का यह सूचक भी मानव-जाति के अन्तिम लक्ष्य, आर्थिक कल्याण के प्रति तटस्थ बना रहता है।

3. आर्थिक कल्याण (Economic Welfare)–कुछ अर्थशास्त्रियों ने आर्थिक कल्याण को आर्थिक विकास का उचित मापदण्ड माना है। उनके अनुसार ऐसी प्रक्रिया को आर्थिक विकास माना जाता है जिससे प्रति व्यक्ति वास्तविक आय व उपभोग में वृद्धि होती है और उसके साथ-साथ आय की असमानताओं का अन्तर कम होता है तथा देश के निवासियों को अधिकतम सन्तुष्टि मिलती है। **ओकन** और **रिचर्डसन**[1] के शब्दों में, आर्थिक विकास "भौतिक समृद्धि में ऐसा अनवरत् दीर्घकालीन सुधार है जो कि वस्तुओं और सेवाओं के बढ़ते हुए प्रवाह में प्रतिबिम्बित समझा जा सकता है।"

1. Okun and R. W. Richardson, *Studies in Economic Development,* p. 230.

नोट

नोट्स जीवन स्तर मुख्यत: उपभोग के स्तर पर निर्भर करता है। इसलिए देश में बढ़ता हुआ उपभोग व जीवन स्तर ही आर्थिक विकास का अभिसूचक है।

सीमाएँ (Limitations)–इस मापदण्ड की प्रमुख सीमाएँ निम्नलिखित हैं–

(अ) यह आवश्यक नहीं है कि वास्तविक राष्ट्रीय आय में वृद्धि का अर्थ आर्थिक कल्याण में सुधार ही हो क्योंकि हो सकता है कि वास्तविक राष्ट्रीय आय बढ़ने पर भी उसका वितरण न्यायपूर्ण नहीं है जिसके फलस्वरूप गरीबों के उपभोग स्तर में किसी प्रकार की वृद्धि न हो।

(ब) उपभोग तथा जीवन स्तर अत्यन्त भ्रामक शब्द हैं जिनकी निरपेक्ष माप सम्भव नहीं है।

(स) कल्याण के दृष्टिकोण से हमें केवल यह नहीं देखना चाहिए कि क्या उत्पादित किया जाता है बल्कि यह भी कि उसका उत्पादन कैसे होता है। वास्तविक राष्ट्रीय उत्पादन के बढ़ने से सम्भव है कि अर्थव्यवस्था में वास्तविक लागतों (पीड़ा और त्याग) और सामाजिक लागतों में वृद्धि हुई हो। उदाहरणार्थ, उत्पादन में वृद्धि अधिक घण्टे तथा श्रम-शक्ति की कार्यकारी अवस्थाओं में गिरावट के कारण हुई हो तो ऐसी स्थिति में उत्पादन बढ़ने पर भी आर्थिक कल्याण में वृद्धि नहीं होगी।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

1. रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks)–

1. आर्थिक विकास की माप के लिए देश की ..... आय को देखना पड़ता है।
2. शुद्ध राष्ट्रीय उत्पादन या ..... ही आर्थिक विकास का मापदण्ड है।
3. वास्तविक राष्ट्रीय आय को विकास का एकमात्र ..... नहीं हैं।
4. आर्थिक विकास के लिए ..... को बढ़ाना अनिवार्य होता है।
5. उपभोग तथा जीवन स्तर अत्यंत ..... शब्द हैं जिनका निरपेक्ष माप संभव नहीं है।

14.2 आर्थिक विकास के सूचक (Indicator of Economic Development)

1950 तथा 1960 के दशकों में GNP/GNP प्रति व्यक्ति को आर्थिक विकास का सूचक माना जाता रहा। 1960 के विकास दशक के लिए संयुक्त राष्ट्र ने एक प्रस्ताव द्वारा अल्पविकसित देशों के लिए GNP में 5 प्रतिशत की वृद्धि दर का लक्ष्य निश्चित किया। इस लक्षित दर को प्राप्त करने के लिए अर्थशास्त्रियों ने शहरीकरण के साथ तीव्र औद्योगिकीकरण का सुझाव दिया। उनका यह मत था कि GNP की वृद्धि से प्राप्त लाभ अपने-आप रोजगार और आय सुअवसरों में वृद्धि के रूप में गरीबों तक **धीरे-धीरे** पहुंच जाएंगे। इस प्रकार, विकास के इस माप के अनुसार गरीबी, बेरोजगारी और आय असमानताओं की समस्याओं को गौण महत्त्व दिया गया।

रोस्टोव द्वारा प्रतिपादित विकास के इस एक रेखीय वृद्धि की अवस्थाओं के पथ को नर्क्स के कम बचतों, छोटी मार्किटों तथा जनसंख्या दबावों के कुचक्रों (vicious circles) ने और शक्ति प्रदान की। यह समझा गया कि इन कुचक्रों को दूर करने से प्राकृतिक शक्तियां मुक्त हो जाएंगी जो अर्थव्यवस्था में ऊंची वृद्धि लाएंगी। इसके लिए रोडान ने 'बड़ा धक्का', नर्क्से ने संतुलित विकास, हर्षमैन ने असंतुलित विकास, तथा लीबन्स्टीन ने क्रान्तिक न्यूनतम प्रयत्न सिद्धान्त का सुझाव दिया। परन्तु अल्पविकसित देशों में विकास के लिए पूंजी, तकनीकी ज्ञान, विदेशी विनिमय, आदि के रूप में "लुप्त अंशों" (missing components) को प्रदान करने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय सहायता पर अधिक बल दिया गया। विदेशी सहायता के तर्क के पीछे "दो-अंतराल मॉडल" (two gap model) तथा आयात स्थानापन्नता द्वारा औद्योगिकीकरण था ताकि अल्पविकसित देश धीरे-धीरे विदेशी सहायता का परित्याग कर दें।

नोट

डेविड मोरवैट्ज (David Morawetz) के अनुमान यह बताते हैं कि इस विकास कूटनीति के अपनाने से विकासशील देशों में 1950–75 के बीच GNP प्रति व्यक्ति में 3.4 प्रतिशत प्रति वर्ष औसत दर से वृद्धि हुई। परन्तु यह वृद्धि दर ऐसे देशों की गरीबी, बेरोजगारी तथा असमानताओं की समस्याओं को सुलझाने में असफल रही।

आर्थिक विकास के सूचक के रूप में GNP के विरुद्ध अर्थशास्त्रियों के बीच आलोचनाएं 1960 की दशाब्दी से बढ़ती जा रही थीं परन्तु सार्वजनिक तौर से प्रथम प्रहार प्रो. डडले सियरज् (Dudley Seers) ने 1969 में नई दिल्ली में आयोजित Eleventh World Conference of the Society for International Development के अध्यक्षीय भाषण में किया। उसने समस्या को इस प्रकार प्रस्तुत किया, "एक देश के विकास के बारे में पूछे जाने वाले प्रश्न हैं–गरीबी को क्या हो रहा है? बेरोजगारी को क्या हो रहा है? असमानता को क्या हो रहा है? यदि ये तीनों ऊंचे स्तरों से कम हुए हैं तो बिना संशय के उस देश के लिए विकास की अवधि रही है। यदि इन मुख्य समस्याओं में से एक या दो अधिक बुरी अवस्था में हो रही हैं, विशेषतया तीनों ही, तो परिणाम को 'विकास' कहना आश्चर्यजनक होगा चाहे प्रति व्यक्ति आय दुगुनी हुई हो। उस समय के विश्व बैंक के गर्वनर **रार्बट मैक्कनमारा** (Robert McNamara) ने भी फरवरी 1970 में विकासशील देशों में GNP वृद्धि दर को आर्थिक विकास के सूचक के रूप में विफलता को इन शब्दों में स्वीकार किया–"प्रथम विकास दशाब्दी में, GNP में 5 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि दर के प्राथमिक विकास उद्देश्य को प्राप्त किया गया था। यह मुख्य उपलब्धि थी। परन्तु GNP में सापेक्षतया ऊंची वृद्धि दर विकास में संतोषजनक उन्नति न लाई। विकासशील विश्व में, दशाब्दी के अन्त में, कुपोषण सामान्य है, शिशु मृत्यु दर ऊंची है, अनपढ़ता विस्तृत है, बेरोजगारी स्थानिक रोग है जो और बढ़ रहा है, धन और आय का पुनर्वितरण अत्यन्त विषम है।"

विकास के GNP/GNP प्रति व्यक्ति माप से असंतुष्ट होकर, 1970 की दशाब्दी से अधिक विचारकों ने विकास प्रक्रिया की गुणवत्ता की ओर ध्यान देना प्रारंभ किया है। जिसके अनुसार वे तीन विभिन्न, परन्तु पूरक, रोजगार को बढ़ाने, गरीबी को दूर करने तथा आय और धन की असमानताओं को कम करने के लिए मूलभूत मानवीय आवश्यकताओं (basic human needs) की कूटनीति पर बल देते हैं। इसके अनुसार, जनसाधारण को स्वास्थ्य, शिक्षा, जल, खुराक, कपड़े, आवास, काम आदि के रूप में मूलभूत भौतिक आवश्यकताएं और साथ ही सांस्कृतिक पहचान तथा जीवन और कार्य में उद्देश्य एवं सक्रिय भाग की भावना जैसी अभौतिक आवश्यकताएं प्रदान करना है। मुख्य उद्देश्य गरीबों को मूलभूत मानवीय आवश्यकताएं प्रदान करने उनकी उत्पादकता बढ़ाना और गरीबी दूर करना है। यह तर्क दिया जाता है कि मूलभूत मानवीय आवश्यकताओं का प्रत्यक्ष प्रबंध करने से गरीबी पर थोड़े संसाधनों द्वारा और थोड़े समय में प्रभाव पड़ता है। शिक्षा, स्वास्थ्य और अन्य मूलभूत आवश्यकताओं के रूप में मानव संसाधन विकास से उत्पादकता के उच्च स्तर प्राप्त होते हैं। ऐसा विशेष तौर से वहाँ होता है जहाँ ग्रामीण भूमिहीन अथवा शहरी गरीब पाए जाते हैं तथा जिनके पास दो हाथों और काम करने की इच्छा के सिवाय कोई भौतिक परिसंपत्तियां नहीं होती हैं। इस कूटनीति के अन्तर्गत मूलभूत न्यूनतम आवश्यकताओं के प्रबंध के अलावा, रोजगार के सुअवसरों, पिछड़े वर्गों के उत्थान तथा पिछड़े क्षेत्रों के विकास पर बल देना और उचित कीमतों एवं दक्ष वितरण प्रणाली द्वारा आवश्यक वस्तुओं को गरीब वर्गों को जुटाना है।

क्या आप जानते हैं आर्थिक विकास के माप के रूप में GNP अथवा GNP प्रति व्यक्ति से असंतुष्ट होकर, कुछ अर्थशास्त्रियों ने आर्थिक विकास को सामाजिक अथवा मूलभूत (आधारभूत) आवश्यकता सूचक के रूप में मापना प्रारंभ किया है।

विभिन्न अर्थशास्त्रियों, अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं, जैसे–विश्व आर्थिक मंच (World Economic Forum), विश्व बैंक (World Bank) आदि ने विभिन्न सामाजिक व आर्थिक निर्देशांकों के द्वारा विभिन्न देशों के आर्थिक विकास के स्तर को मापने का प्रयास किया है। उनमें से कुछ प्रमुख निर्देशांकों (Indices) का अध्ययन हम आगे कर रहे हैं–

(*i*) **सामाजिक अथवा मूलभूत आवश्यकता सूचक** (Social or Basic Needs Indicator)–विकास के राष्ट्रीय आय प्रति व्यक्ति माप से असन्तुष्ट होकर 1970 की दशाब्दी से आर्थिक विचारकों ने विकास प्रक्रिया की गुणवत्ता की ओर

नोट

ध्यान देना प्रारम्भ किया है जिसके अनुसार वे तीन विभिन्न परन्तु पूरक, रोजगार को बढ़ाने, गरीबी को दूर करने तथा आय और धन की असमानताओं को कम करने के लिए **मूलभूत मानवीय आवश्यकताओं** (Basis Human Needs) की कूटनीति पर जोर देते हैं।

इस कूटनीति के अन्तर्गत मूलभूत न्यूनतम आवश्यकताओं के प्रबन्ध के अतिरिक्त रोजगार के सुअवसरों, पिछड़े वर्गों के उत्थान तथा पिछड़े क्षेत्रों के विकास पर बल देना और उचित कीमतों एवं दक्ष वितरण प्रणाली द्वारा आवश्यक वस्तुओं को जुटाना है।

हिक्स और स्ट्रीटन[1] मूलभूत आवश्यकताओं के लिए छः सामाजिक सूचकों पर विचार करते हैं–

	मूल आवश्यकता	सूचक
(1)	स्वास्थ्य	जन्म के समय जीवन की प्रत्याशा
(2)	शिक्षा	प्राथमिक शिक्षा विद्यालयों में जनसंख्या के प्रतिशत के अनुसार दाखिले द्वारा साक्षरता की दर।
(3)	खाद्य	प्रति व्यक्ति कैलोरी आपूर्ति
(4)	जल आपूर्ति	शिशु मृत्यु दर तथा पीने योग्य पानी तक कितने प्रतिशत जनसंख्या की पहुँच
(5)	स्वच्छता	शिशु मृत्यु दर तथा स्वच्छता प्राप्त जनसंख्या का प्रतिशत
(6)	आवास	कोई नहीं

इस प्रकार इस कूटनीति में आय वृद्धि के साथ-साथ गरीबी, बेरोजगारी, स्वास्थ्य व शिक्षा तथा वितरण विषमताओं को दूर करने के उद्देश्यों को यथोचित स्थान दिया गया है। अनेक अर्द्ध-विकसित देशों के हाल के अनुभवों व अध्ययनों की पृष्ठभूमि में इस कसौटी को न्यायसंगत ठहराया गया है।

फाई, रैनिस तथा **स्टूवर्ट**[2] ने नौ देशों का अध्ययन किया जिसके अनुसार उन्होंने पाया कि (अ) ताईवान, दक्षिण कोरिया तथा इण्डोनेशिया में मूलभूत आवश्यकताओं को पूरा करने के साथ-साथ औसत से अधिक आर्थिक विकास हुआ है। (ब) ब्राजील ने मात्र न्यूनतम मूलभूत आवश्यकताओं को पूरा किया तथा औसत से अधिक आर्थिक विकास किया। (स) सोमानी, क्यूबा, मिस्र तथा श्रीलंका ने मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति बहुत अच्छी तरह से की लेकिन आर्थिक विकास औसत से कम था। (द) केवल एक देश मालदीव ने मात्र न्यूनतम मूलभूत आवश्यकताओं के प्रावधान के साथ औसत से कम आर्थिक विकास प्राप्त किया।

उपर्युक्त अध्ययन के अनुसार **फाई, रैनिस तथा स्टुअर्ट इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि आर्थिक विकास और मूलभूत आवश्यकताओं की कूटनीति के बीच कोई विवाद नहीं है अर्थात् विकासशील देशों की आर्थिक विकास की दर मूलभूत आवश्यकताओं की कूटनीति द्वारा बढ़ी है।**

हम रेखाचित्र 1.2 की सहायता से भी यह स्पष्ट कर सकते हैं कि मूलभूत आवश्यकताओं की कूटनीति, कुल राष्ट्रीय आय, प्रति व्यक्ति आय व आर्थिक कल्याण के मापदण्ड से श्रेष्ठ है। चित्र में (*i*) OX-अक्ष पर समयावधि और OY-अक्ष पर प्रति व्यक्ति उपभोग (विकास दर) को दर्शाया गया है। (*ii*) P_1, P_2, P_3 तीन विकास पथ हैं। P_1 पथ का सम्बन्ध कुल राष्ट्रीय आय व प्रति व्यक्ति आय की कूटनीति से है। इस पथ में शुरू में गरीबों में प्रति व्यक्ति उपभोग समय T_1 तक घटता है क्योंकि तेजी से औद्योगीकरण से गरीबी, बेरोजगारी, असमानता बढ़ती है परन्तु जब प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि के लाभ गरीबों तक 'रिस कर' पहुँचते हैं तो उनके रोजगार तथा आय में वृद्धि होती है और समय T_1 के बाद **प्रति व्यक्ति उपभोग** में भी वृद्धि होनी शुरू हो जाती है।

(*iii*) पथ P_2 का सम्बन्ध **आर्थिक कल्याण** की धारणा से है जो गरीबों में प्रति व्यक्ति उपभोग की धीमी वृद्धि को दर्शाता है। यह पथ समय T_2 से पथ P_1 से पीछे रहता है।

1. Normal L. Hicks and Paul. P. Streeten, *'Indicators of Development : The Search for a Basic Needs Yardstick,' World Development,* Vol. 7, 1979.
2. C. H. Fei, G. Ranis and F. Stewart, *Basic Needs : A Framework for Analysis, 1979.*

नोट

(*iv*) **पथ P_3 मूलभूत आवश्यकताओं** की कूटनीति से सम्बन्धित है जिसमें शुरू में गरीबों में उपभोग के मूलभूत न्यूनतम वेतनमान स्तर को प्राप्त करने को उच्च प्राथमिकता दी जाती है जो समय T_3 तक आर्थिक कल्याण तथा प्रति व्यक्ति आय के उपभोग स्तरों से कम रहता है परन्तु दीर्घकाल में जब गरीबों की मूलभूत आवश्यकताओं के पूरा होने के कारण उनकी उत्पादकता तथा आय के स्तरों में वृद्धि हो जाती है तो समय T_3 से आगे आर्थिक विकास तीव्र गति से होने लगता है।

(*v*) इस प्रकार पथ P_3 पहले पथ P_2 को R बिन्दु पर पीछे छोड़ देता है तथा बाद में S बिन्दु पर पथ P_1 से ऊपर चला जाता है।

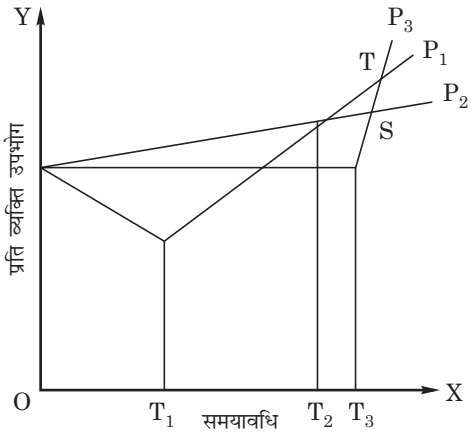

चित्र 14.2

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि **मूलभूत आवश्यकताओं की कूटनीति या मापदण्ड कुल राष्ट्रीय आय या प्रति व्यक्ति आय व आर्थिक कल्याण की आर्थिक विकास की कूटनीति से श्रेष्ठ है।**

(*vi*) **भौतिक जीवन-कोटि निर्देशांक** (Physical Quality of Life Index, POLI)–कुछ विद्वानों के अनुसार भौतिक जीवन-कोटि में सुधार आर्थिक विकास का संकेतक माना है। **मारिश डी मारिश** ने एक वर्ष पर जीवन प्रत्याशा, बाल मृत्यु दर (Infant Mortality) तथा साक्षरता तीनों को मिलाकर समन्वित निर्देशांक निर्मित किया जिसे उन्होंने जीवन की भौतिक गुणवत्ता निर्देशांक (Physical Quality of Life Index POLI) कहा।

इस कूटनीति या संकेतक से बहुत-से सूचकों, जैसे–स्वास्थ्य, शिक्षा, पेय जल, पोषण तथा स्वच्छता आदि का पता चला है। प्रत्येक सूचक के तीनों घटकों को शून्य से 100 तक के पैमाने पर रखा गया है। जिसमें शून्य को निम्नतम तथा 100 को सर्वोत्तम प्रदर्शन के रूप में परिभाषित किया गया है। POLI सूचक की गणना तीनों घटकों को समान भार (Weight) देते हुए औसत निकालकर की जाती है तथा सूचक को भी शून्य से 100 के पैमाने पर रखा गया है। इस निर्देशांक के आधार पर देश में विकास के होने या न होने का पता चलता है। यदि जीवन-निर्देशांक में स्थायी तौर से वृद्धि होती है जो कि तभी सम्भव है, जबकि देश में कुल राष्ट्रीय उत्पादन का वितरण और उपयोग इस ढंग से हो कि अधिकाधिक लोग लाभ उठा सकें और फलस्वरूप शिशु मृत्यु-दर घटे तथा प्रत्याशित आयु और साक्षरता बढ़े तो यह इस बात का सूचक होगा कि देश में आर्थिक विकास हो रहा है।

अपने अध्ययन में मैरिस ने यह पाया कि प्रति व्यक्ति आय व POLI के बीच कोई स्वत: तालमेल नहीं होता। उन्होंने पाया कि यद्यपि श्रीलंका का POLI भारत से कहीं अधिक था, जबकि इसकी औसत प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि दर लगभग भारत के बराबर थी। इसी प्रकार अमेरिका तथा इटली दोनों ही विकसित देशों का POLI काफी ऊँचा था परन्तु इटली की प्रति व्यक्ति आय की वृद्धि दर अमेरिका से लगभग दुगुनी थी। अत: उनका मत था कि राष्ट्रीय आय या प्रति व्यक्ति आय नहीं बल्कि POLI ही आर्थिक विकास का एक उचित मापदण्ड है।

सीमाएँ (Limitations)

अनेक अर्थशास्त्री इस मापदण्ड की निम्नलिखित आधारों पर आलोचनाएँ करते हैं:

(*i*) POLI मूल आवश्यकताओं को केवल एक सीमा तक ही माप सकता है।

(*ii*) यह मापदण्ड सामाजिक और आर्थिक संगठन के बदले हुए ढाँचे को भी नहीं प्रदर्शित करता है। अत: यह आर्थिक विकास को नहीं मापता।

(*iii*) इसके अन्तर्गत केवल तीन सूचकों को ही लिया गया है और अनेक सूचकों को छोड़ दिया गया है जो जीवन की गुणवत्ता को प्रभावित करते हैं।

नोट

(*iv*) POLI कुल कल्याण को भी नहीं मापता है।

उपर्युक्त सीमाओं के होते हुए भी POLI जीवन की गुणवत्ताओं को मापता है जो गरीबों के लिए बहुत आवश्यक है। साथ ही यह अल्पविकसित के उन विशेष क्षेत्रों का पता लगाने तथा सामाजिक नीतियों की असफलता तथा उपेक्षा के शिकार समाज के विभिन्न वर्गों की जानकारी प्राप्त करने में सहायक हो सकता है। यह उस सूचक की ओर संकेत करता है जहाँ तत्काल सरकारी हस्तक्षेप व कार्यवाहियों की आवश्यकता होती है। सरकार ऐसी नीतियाँ अपना सकती है जिससे POLI में भी शीघ्र वृद्धि हो तथा आर्थिक विकास भी त्वरित हो।

(*ii*) **क्रयशक्ति समता सूचकांक** (Purchasisng Power Parity Index)–आर्थिक विकास के मापदण्ड के रूप में क्रयशक्ति समता सूचकांक का भी उपयोग किया जाता है। इस सूचकांक का सर्वप्रथम उपयोग अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष ने किया था। आजकल विभिन्न देशों के रहन-सहन की तुलना के लिए विश्व बैंक द्वारा इस सूचकांक का उपयोग किया जा रहा है।

क्रयशक्ति समता विधि के अन्तर्गत किसी देश की सकल राष्ट्रीय आय को किसी पूर्ण निश्चित अन्तर्राष्ट्रीय विदेशी विनिमय दर पर न व्यक्त करके, उस देश के भीतर मुद्रा की क्रयशक्ति के आधार पर व्यक्त किया जाता है। और विभिन्न देशों के रहन-सहन के स्तर के माप व तुलना के लिए क्रयशक्ति समता स्थापित की जाती है।

क्रयशक्ति समता स्थापित करने की विधि को हम एक उदाहरण द्वारा समझ सकते हैं। मान लीजिए, X तथा Y दो देश हैं जिनका अपनी मुद्रा में प्रति व्यक्ति सकल घरेलू उत्पाद क्रमशः 30 हजार व 35 हजार है। चूँकि दोनों देशों में अलग-अलग मुद्राओं का प्रचलन है। अतः इनकी तुलना तब तक सम्भव नहीं है जब तक कि इन्हें किसी एक मुद्रा या एक इकाई में बदल नहीं दिया जाता। ऐसा करने के लिए सरल तरीका यह होगा कि दोनों देशों की प्रति व्यक्ति घरेलू उत्पाद को किसी अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा जैसे डालर में बदल दिया जाये। मान लीजिए कि दोनों देशों की मुद्राओं के सम्बन्ध में निर्धारित विनिमय दर 1 $ = 50 है। ऐसी स्थिति में X देश की प्रति व्यक्ति आय 600 डालर तथा Y देश की प्रति व्यक्ति आय 700 डालर होगी। ऐसी स्थिति में यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि चूँकि Y देश में प्रति व्यक्ति की आय अधिक है। इसलिए वहाँ के निवासियों का रहन-सहन का स्तर ऊँचा है।

परन्तु उपर्युक्त निष्कर्ष जिसमें डालर के रूप में प्रति व्यक्ति आय के आधार पर व्यक्तियों का रहन-सहन या उपभोग का स्तर मापा गया है, यह आवश्यक नहीं है कि वहाँ के निवासियों के जीवन स्तर का सही चित्र प्रस्तुत करे क्योंकि हो सकता है, दोनों देशों में मुद्रा (डालर) की क्रयशक्ति अलग हो जिसमें उनकी वास्तविक आय पृथक्-पृथक् होगी। वस्तुतः रहन-सहन का स्तर **वास्तविक आय** पर निर्भर करता है और यदि दोनों देशों में डालर की क्रयशक्ति समान नहीं है तो डालर के रूप में व्यक्त की गयी प्रति व्यक्ति आय भ्रामक निष्कर्ष दे सकती है। उदाहरण के लिए, यदि X देश में एक डालर की क्रयशक्ति 20 वस्तुओं व सेवाओं की इकाई है और Y देश में 10 वस्तुओं व सेवाओं की इकाई है तो वास्तविक रूप में परिवर्तित करने पर X देश की प्रति व्यक्ति आय 12,000 वस्तुएँ व सेवाएँ तथा Y देश की प्रति व्यक्ति आय 7,000 वस्तुएँ व सेवाएँ होगी। इस आधार पर सही निष्कर्ष यह प्राप्त होता है कि X देश में उपभोग का स्तर Y देश के उपभोग के स्तर से ऊँचा है। इसीलिए अर्थशास्त्रियों ने क्रयशक्ति समता सूचकांक (Purchasing Power Parity Index) तैयार किया जिसके आधार पर क्रयशक्ति समता के रूप में विभिन्न देशों की प्रति व्यक्ति आय को विश्व बैंक व्यक्त करता है। क्रयशक्ति समता के आधार पर भारत की प्रति व्यक्ति आय 1998 में 1,700 डालर थी और इस आधार पर भारतीय अर्थव्यवस्था विश्व की चौथी बड़ी अर्थव्यवस्था है परन्तु अधिकांश अर्थशास्त्री क्रयशक्ति समता सूचकांक को आर्थिक विकास की मापन की एक अच्छी विधि नहीं मानते हैं।

(*iii*) **मानव विकास सूचकांक** (Human Development Index, HDI)–सयुंक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम (United Nations Development Programme, UNDP) के साथ जुटे हुए अर्थशास्त्री महबूबल हक ने विकास के एक सर्वमान्य सूचकांक को विकसित करने की दिशा में सबसे पहले प्रयास शुरू किया। उनके कहने पर नोबल पुरस्कार से सम्मानित प्रो. ए. के. सेन तथा प्रो. सिंगर हंस के नेतृत्व में अर्थशास्त्रियों के एक समूह ने मानव विकास सूचकांक (HDI) विकसित किया।

नोट

(HDI) की पूरी धारणा इस मान्यता पर आधारित है कि "किसी राष्ट्र में रहने वाले लोग ही उस राष्ट्र की वास्तविक सम्पत्ति हैं।" आर्थिक विकास का मूल उद्देश्य एक ऐसा वातावरण तैयार करना है जिससे लोग लम्बे, स्वस्थ्य तथा सृजनात्मक जीवन का आनन्द उठा सकें।

मानव विकास प्रतिवेदन के अनुसार "मानव विकास लोगों की पसन्दगियों के विस्तृत करने की एक प्रक्रिया है।" ये पसन्दगियाँ अनेक हो सकती हैं और इन पसन्दगियों में समय के साथ परिवर्तन हो सकता है, पर विकास के प्रत्येक स्तर पर तीन आवश्यक पसन्दगियाँ है और ये हैं–लम्बी और स्वस्थ जिन्दगी जीने की इच्छा, ज्ञान प्राप्त करने की अभिलाषा और एक खूबसूरत जिन्दगी व्यतीत करने के लिए आवश्यक संसाधनों तक पहुँचने की इच्छा। यदि ये तीनों पसन्दगियाँ उपलब्ध नहीं है तो व्यक्ति को अनेक अवसरों से वंचित होना पड़ेगा। अत: व्यक्ति को एक खूबसूरत जिन्दगी व्यतीत करने के लिए (अ) आवश्यकताओं को सन्तुष्ट करने के लिए आय, (ब) शिक्षा तथा (स) स्वास्थ्य आवश्यक है। इस प्रकार HDI तीन आधारभूत पहलुओं में उपलब्धियों का एक मिश्रित सूचक है–एक लम्बा व स्वस्थ जीवन, शिक्षा या ज्ञान तथा उत्कृष्ट जीवन स्तर।

मानव विकास सूचकांक का निर्माण (Construction of HDI)

किसी देश के HDI का मूल्य निकालने के लिए तीन सूचकों को लिया जाता है :

(1) दीर्घायु जिसे जन्म के समय जीवन की सम्भाव्यता द्वारा मापा जाता है–25 वर्ष तथा 85 वर्ष।

(2) शैक्षिक योग्यताओं की प्राप्ति जिसे व्यस्क शिक्षा (दो-तिहाई भार) तथा प्राथमिक, माध्यमिक व क्षेत्रीय विद्यालयों में उपस्थित अनुपातों (एक-तिहाई भार) के मिश्रण अनुपात–0% से 100%।

(3) जीवन स्तर जिसे डालर की क्रयशक्ति समता (Purchasing Power Parity) पर आधारित वास्तविक प्रति व्यक्ति GDP द्वारा मापा जाता है।

HDI जीवन की सम्भाव्यता सूचक, शैक्षिक प्राप्तियाँ सूचक तथा समायोजित वास्तविक प्रति व्यक्ति GDP सूचक का सरल औसत सूचक है।[1] इसकी गणना इन तीनों संकेतकों के योग को 3 से विभाजित कर निकाली जाती है। इसमें प्रत्येक चर का न्यूनतम तथा अधिकतम मूल्य स्थिर है जिसे घटाकर शून्य (0) तथा एक (1) के बीच पैमाने पर रखा गया है तथा प्रत्येक देश इस पैमाने के किसी न किसी बिन्दु पर आता है। ऐसे देश जिनका HDI मूल्य 0.5 से कम है, उन्हें निम्न स्तर के मानव विकास क्रम में रखा जाता है तथा 0.5 से 0.8 मूल्य वाले देशों को मध्यम तथा 0.8 से ऊपर HDI मूल्य वाले देश उच्च स्तर में गिने जाते हैं। HDI में देशों को उनके प्रति व्यक्ति GDP के आधार पर भी क्रमबद्ध किया जाता है।

(*iv*) **अन्य निर्देशांक** (Other Index)–**विश्व आर्थिक मंच** (World Economic Forum) ने भी आर्थिक विकास के मापक निर्देशांक सुझाए हैं जिसमें से कुछ प्रमुख निम्नलिखित हैं :

(अ) प्रौद्योगिकी निर्देशांक (Technology Index)–यह निर्देशांक किसी देश में प्रौद्योगिकी के स्तर का मापन करता है। इसके अन्तर्गत विदेश से प्रौद्योगिकी का आयात और नवोन्मेष (Innovation) में देशों की भागीदारी को भी सम्मिलित किया जाता है। जिस देश का प्रौद्योगिकी निर्देशांक क्रम निर्धारण में जितना ही कम होता है, उसे उतना ही अधिक विकसित माना जाता है, उदाहरण के लिए, विश्व आर्थिक मंच (World Economic Forum) द्वारा सर्वेक्षित कुल 59 देशों में अमेरिका का प्रौद्योगिकी निर्देशांक 1 था और भारत का 38 था।

(ब) स्टार्ट-अप निर्देशांक (Start-up Index)–यह कारोबार को शुरू करने की अनुकूल स्थितियों का मापन करती है। जिस देश का स्टार्ट-अप निर्देशांक जितना ही कम होगा, उस देश में उद्योग शुरू करने की स्थितियाँ उतनी ही अनुकूल होंगी।

(स) आर्थिक सृजनात्मक निर्देशांक (Economic Creativity Index)–यह निर्देशांक **प्रौद्योगिकी निर्देशांक**

1. HDI is a simple average of life expectancy index, educational attainment index and the adjusted real GDP per capita index.

नोट

और स्टार्ट-अप निर्देशांक दोनों की सूचना एक साथ देता है। यह एक साथ देता है। यह निर्देशांक हमें यह बताता है कि किसी देश में प्रौद्योगिकी के स्तर और नवोन्मेष की क्या स्थिति है और देशों में व्यवसाय शुरू करने की स्थितियाँ कहाँ तक अनुकूल हैं। यह निर्देशांक क्रम निर्धारण में जितना ही कम होगा, वह देश उतना ही अधिक विकसित होगा।

कुछ चुने हुए देशों के विभिन्न आर्थिक विकास मापक निर्देशांक नीचे सारणी 2 में दिये जा रहे हैं :

सारणी 2–विभिन्न सामाजिक-आर्थिक सूचकांकों पर आधारित चुनिन्दा देशों का क्रम निर्धारण

सूचकांक	*भारत*	*सिंगापुर*	*चीन*	*पाकि-स्तान*	*श्रीलंका*	*दक्षिण अफ्रीका*	*मैक्सिको*	*अमेरिका*	*जापान*	*सर्वेक्षित देशों की कुल संख्या*
(1) मानव विकास सूचकांक (1998)	128	24	99	135	84	103	55	3	9	174
(अ) जीडीपी (पीपीपी) सूचकांक	0.51	0.92	0.57	0.47	0.57	0.74	0.73	0.95	0.91	174
(ब) शिक्षा सूचकांक	0.55	0.86	0.79	0.44	0.83	0.88	0.84	0.97	0.94	174
(स) जीवन प्रत्याशा सूचकांक	0.63	0.87	0.75	0.66	0.81	0.47	0.75	0.86	0.92	174
(2) आर्थिक रचनात्मक सूचकांक (2000)	38	3	48	–	–	26	35	1	21	59
(अ) प्रौद्योगिक सूचकांक (2000)	38	3	47	–	–	32	11	1	6	59
(ब) स्टार्ट-अप सूचकांक (2000)	38	7	46	–	–	19	51	1	37	59
(3) विकास प्रतिस्पर्द्धात्मकता सूचकांक (2000)	49	2	41	–	–	33	43	1	21	59

(द) संवृद्धि स्पर्द्धात्मक निर्देशांक (Growth Competitive Index)–इसका उद्देश्य उन घटकों को मापना होता है जो किसी अर्थव्यवस्था की आर्थिक विकास की गति त्वरित करते हैं। इस निर्देशांक में उन परिवर्तनों को जो (1) उत्पादकता स्तर (Productivity Level), (2) संचय की उच्च दरों व नवोन्मेष (High Rate of Accumulation and Innovation) तथा (3) उत्पादकता में सुधार आदि को ध्यान में रखकर तैयार किया जाता है। जिस देश का यह निर्देशांक जितना कम होगा, वह देश उतना ही अधिक विकसित होगा।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

2. निम्नलिखित कथनों में सत्य असत्य की पहचान करें–

1. हिक्स तथा स्ट्रीरन ने मूल आवश्यकताओं के लिए छः सामाजिक सूचकों पर विचार किया है।
2. भौतिक गुणवत्ता निर्देशांक का प्रतिपादन हिक्स ने किया।
3. विश्व बैंक ने आर्थिक विकास के मापदण्ड के रूप में क्रयशक्ति समता सूचकांक का प्रतिपादत किया।
4. UNOP मानव विकास सूचकांक का प्रकाशन करता है।
5. भौतिक जीवन-कोटि सूचकांक आर्थिक विकास का सूचक नहीं है।

नोट

14.3 सारांश (Summary)

- आर्थिक विकास एक सापेक्षिक शब्द है तथा इसका सम्बन्ध एक समय विशेष से न होकर दीर्घकालीन परिवर्तनों से है।
- आधुनिक अर्थशास्त्रियों ने आर्थिक विकास के लिए उत्पादन के साथ-साथ वितरण को भी महत्व दिया। आधुनिक अर्थशास्त्रियों ने आर्थिक विकास के लिए किसी एक तत्व को मापदण्ड नहीं माना।
- आर्थिक विकास का माप करने के लिए हमें देश की राष्ट्रीय आय को देखना पड़ता है।
- **राष्ट्रीय उत्पादन आर्थिक विकास की उचित कसौटी नहीं है** क्योंकि कुल राष्ट्रीय उत्पादन में सम्पत्ति की प्रतिस्थापना पर ध्यान नहीं दिया जाता है।
- यदि किसी राष्ट्र में शुद्ध राष्ट्रीय उत्पादन बढ़ रहा है तो वह उसकी बढ़ती हुई राष्ट्रीय आय व आर्थिक विकास का संकेतक है परन्तु यह वृद्धि निरन्तर व स्थायी होनी चाहिए।
- आर्थिक विकास में वर्तमान रुचि का मुख्य कारण अर्द्ध-विकसित देशों के निवासियों का जीवन-स्तर सुधारना है। इसके लिए प्रति व्यक्ति आय का बढ़ना आवश्यक है।
- कुछ अर्थशास्त्रियों ने आर्थिक कल्याण को आर्थिक विकास का उचित मापदण्ड माना है।
- कल्याण के दृष्टि से हमें केवल यह नहीं देखना चाहिए कि क्या उत्पादित किया जाता है बल्कि यह भी कि उसका उत्पादन कैसे होता है।
- 1950 तथा 1960 के दशकों में GNP/GNP प्रति व्यक्ति को आर्थिक विकास का सूचक माना जाता रहा।
- **रोस्टोव** द्वारा प्रतिपादित विकास के इस एक रेखीय वृद्धि की अवस्थाओं के पथ को नर्क्स के कम बचतों, छोटी मार्किटों तथा जनसंख्या दबावों के कुचक्रों (vicious circles) ने और शक्ति प्रदान की।
- फाई, रैनिस तथा स्टुअर्ट इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि आर्थिक विकास और मूलभूत आवश्यकताओं की कूटनीति के बीच कोई विवाद नहीं है अर्थात् विकासशील देशों की आर्थिक विकास की दर मूलभूत आवश्यकताओं की कूटनीति द्वारा बढ़ी है।
- मूलभूत आवश्यकताओं की कूटनीति या मापदण्ड कुल राष्ट्रीय आय या प्रति व्यक्ति आय व आर्थिक कल्याण की आर्थिक विकास की कूटनीति से श्रेष्ठ है।
- आर्थिक विकास के मापदण्ड के रूप में क्रयशक्ति समता सूचकांक का भी उपयोग किया जाता है। इस सूचकांक का सर्वप्रथम उपयोग अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष ने किया था।
- सयुंक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम (United Nations Development Programme, UNDP) के साथ जुटे हुए अर्थशास्त्री महबूबल हक ने विकास के एक सर्वमान्य सूचकांक को विकसित करने की दिशा में सबसे पहले प्रयास शुरू किया।

14.4 शब्दकोश (Keywords)

- **द्योतक**–प्रकट करने वाला, व्यक्त करने वाला।
- **निर्देशांक**–किसी बिन्दु की स्थिति को निर्धारित करने वाले अंक, समूह का कोई अंक।

14.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. प्रति व्यक्ति वास्तविक आय में वृद्धि कहाँ तक आर्थिक विकास का सन्तोषजनक माप प्रस्तुत करती है?
2. क्या राष्ट्रीय आय विकास का संतोषजनक माप प्रस्तुत करती है?
3. आर्थिक विकास के अभिसूचकों को स्पष्ट कीजिए?

नोट

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

1.	1. राष्ट्रीय आय	2. आय	3. द्योतक	4. भ्रामक
	5. उत्पादन			
2.	1. सत्य	2. गलत	3. सत्य	4. सत्य
	5. असत्य।			

14.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. *संवृद्धि एवं विकास का अर्थशास्त्र*: डॉ. पी. मिश्रा; साहित्य भवन पब्लिकेशन्स : आगरा
2. *विकास नियोजन एवं नीतियाँ*: वी. सी सिन्हा: साहित्य भवन पब्लिकेशन्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.) लि. रजिस्टर्ड कार्यालय नई दिल्ली
3. *विकास का अर्थशास्त्र एवं आयोजन*: डा. एस. एल. डिंगल: वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा. लि.

नोट

इकाई–15: जनसंख्या एवं आर्थिक विकास (Population and Economic Development)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

15.1 आर्थिक विकास का अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and Definition of Economic Development)

15.2 आर्थिक विकास में मानव संसाधन अथवा जनसंख्या का योगदान (Role of Human Resources of Population in Economic Development)

15.3 प्रो. कोल एवं हूवर के विचार (Views of A.J. Coale and E.M. Hoover)

15.4 एल्विन हैन्सेन के विचार (Views of Alvin Hansen)

15.5 अगस्ट लोश के विचार (Views of August Losch)

15.6 साइमन कुजनेट्स के विचार (Views of Simon Kuznets)

15.7 प्रो. जे.के. गैलब्रेथ के विचार (Views of Prof. John Kanneth Galbraith)

15.8 जनसंख्या वृद्धि : आर्थिक विकास में सहायक (Population Growth: Helpful in Economic Development)

15.9 आर्थिक विकास का जनसंख्या वृद्धि पर प्रभाव (Effect of Economic Development on Population Growth)

15.10 सारांश (Summary)

15.11 शब्दकोश (Keywords)

15.12 अभ्यास–प्रश्न (Review Questions)

15.13 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- आर्थिक विकास का अर्थ एवं परिभाषा को समझने में।
- आर्थिक विकास में मानव संसाधन के योगदान को जानने में।
- प्रो. कोल एवं हूवर, एल्विन हैन्सेन, अगस्त कोश, साइमन कुजनेट्स एवं गैलब्रेथ के विचारों विवेचन करने में।

प्रस्तावना (Introduction)

किसी देश के राष्ट्र निर्माण एवं आर्थिक विकास में वहाँ की जनसंख्या महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। साथ ही, किसी देश के आर्थिक विकास का उस देश की जनसंख्या पर भी महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। इस तरह, जनसंख्या तथा आर्थिक विकास के स्तर में प्रत्यक्ष एवं परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। प्रत्येक देश का उत्पादन स्तर, आर्थिक विकास की दर,

नोट

राष्ट्रीय तथा प्रति व्यक्ति आय देश में उत्पादक क्रियाओं का संचालन, रहन-सहन का स्तर, आदि सभी दशाएँ उस देश की जनसंख्या के आकार, गठन एवं वितरण पर निर्भर करती हैं। यद्यपि मानव ही वह शक्ति है जो इन संसाधनों को अपनी कार्यकुशलता तथा बौद्धिक दक्षता द्वारा वांछित दिशा में गतिशील कर इनका अनुकूलतम उपयोग करती है तथा विकास का मार्ग प्रशस्त करती है। इस तरह, जनसंख्या एवं आर्थिक विकास दोनों प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। इस सम्बन्ध में **प्रो. रिचार्ड गिल** का कथन है कि आर्थिक विकास एक यन्त्रीकृत प्रक्रिया के साथ-साथ मानवीय उपक्रम भी है। इसका प्रतिफल अन्ततः इसे कार्यान्वित करने वाले मनुष्यों की कुशलता, गुण, दूरदर्शिता एवं प्रवृत्तियों पर निर्भर करता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि वास्तव में मनुष्य उत्पादन का साधन है, जो कि अपनी शारीरिक, मानसिक आदि योग्यताओं एवं क्षमताओं को सतत प्रयोग में लाकर संसार के जीवन को ऊँचा उठाने के लिए प्रयासरत रहता है। **मार्क्स** का इसके सम्बन्ध में यहां तक कहना है कि आर्थिक विकास के सभी प्रयासों का केन्द्र बिन्दु मानव विकास होता है तथा मनुष्य ही समस्त उत्पादन का कारण है। वह ही केवल उत्पादक साधन है। परन्तु उसी क्षण यह बात भी उतनी ही महत्वपूर्ण है कि मानव-साधन में क्या गुण हैं तथा इनका प्रयोग किस प्रकार से किया जा रहा है। अन्य शब्दों में, श्रमिक कुशल है अथवा अकुशल? **प्रो. कार्बर** के अनुसार, "सम्पन्न वातावरण के मध्य भी समुदाय एवं राष्ट्र निर्धन रहे हैं अथवा मिट्टी की उर्वरता तथा प्रचुर प्राकृतिक साधनों के होते हुए भी पतन की ओर अथवा गरीबी की ओर चले गए हैं मात्र इस कारण कि वहाँ मानवीय तत्व निम्न कोटि का रहा है, अथवा उसे बिगड़ जाने के लिए छोड़ दिया गया है।" इस तरह, मनुष्य आर्थिक विकास का साधन तथा साध्य दोनों ही है जो कि आर्थिक विकास के चरों के साथ-साथ परिवर्तित होता रहता है। इस सम्बन्ध में **पेपलिसिस, गियर्स** तथा **एडलेयन** का कथन है कि, "साधन के रूप में मनुष्य उत्पादन की प्रक्रिया में अन्य साधनों के साथ संयुक्त होने के लिए उत्पादन के उपादान के रूप में उपलब्ध रहता है। उपभोक्ता के रूप में आर्थिक विकास का उद्देश्य उसकी आकांक्षाओं और अभिलाषाओं की अधिकतम प्राप्ति है। अतः किसी भी विश्लेषण में मानवीय तत्व पर इसके उत्पादन और उपभोक्ता दोनों रूपों में विचार किया जाना चाहिए।" इस तरह, यह आवश्यक हो जाता है कि आर्थिक विकास तथा जनसंख्या विकास के आपसी सम्बन्धों एवं प्रभावों का अध्ययन किया जाये।

जनसंख्या और आर्थिक विकास के परस्पर सम्बन्धों की व्याख्या से पूर्व आर्थिक विकास के अर्थ को भी समझना आवश्यक है।

क्या आप जानते हैं आर्थिक विकास में प्राकृतिक संसाधनों तथा पूँजी की मात्रा का भी विशिष्ट योगदान होता है परन्तु ये आर्थिक विकास के निर्जीव साधन हैं।

15.1 आर्थिक विकास का अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and Definition of Economic Development)

आर्थिक विकास वह प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत मानवीय प्रयत्नों द्वारा कोई देश अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों में उत्पादन एवं उत्पादकता में वृद्धि कर अपनी वास्तविक प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि करते हुए देश में गरीबी और आर्थिक विषमता को समाप्त कर जीवन-स्तर में सुधार लाने का प्रयास करता है। विभिन्न अर्थशास्त्रियों द्वारा दी गयी आर्थिक विकास की प्रमुख परिभाषाएँ निम्नलिखित हैं–

1. **मायर** एवं **बाल्डविन** (Meier and Baldwin) के अनुसार, "आर्थिक विकास एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें दीर्घकाल में किसी अर्थव्यवस्था की वास्तविक राष्ट्रीय आय में वृद्धि होती है।"[1]
2. **प्रो. डब्ल्यू. डब्ल्यू. रोस्टोव** (W. W. Rostow) के अनुसार, "आर्थिक विकास एक ओर पूंजी व कार्यशील शक्ति में वृद्धि की दरों के मध्य और दूसरी तरफ जनसंख्या वृद्धि की दर के मध्य एक ऐसा सम्बन्ध है जिससे कि प्रति व्यक्ति उत्पादन में वृद्धि होती है।"[2]

नोट

3. **प्रो. यंगसन** (Youngson) के अनुसार, "आर्थिक प्रगति का तात्पर्य किसी समाज से सम्बन्धित आर्थिक उद्देश्यों को प्राप्त करने की शक्ति में वृद्धि करना है।"[3]
4. **डब्ल्यू. ए. लेविस** (W. A. Lewis) के अनुसार, "आर्थिक विकास प्रति व्यक्ति उत्पादन की मात्रा में वृद्धि को बताता है। प्रति व्यक्ति उत्पादन वृद्धि एक ओर उपलब्ध प्राकृतिक संसाधनों पर एवं दूसरी ओर मानवीय व्यवहार पर निर्भर होता है।"[4]
5. **प्रो. विलियमसन** (Williamson) के अनुसार, "आर्थिक विकास अथवा संवृद्धि से तात्पर्य उस प्रक्रिया से है जिसमें किसी देश अथवा क्षेत्र के निवासी उपलब्ध संसाधनों का उपयोग प्रति व्यक्ति वस्तुओं एवं सेवाओं के उत्पादन में निरन्तर वृद्धि के लिए करते हैं।"[5]
6. **हार्वे लीबिन्सटीन** (Harvey Leibenstein) के अनुसार, "विकास में किसी अर्थव्यवस्था के प्रति व्यक्ति, वस्तुओं एवं सेवाओं का उत्पादन करने की शक्ति में वृद्धि करना निहित है।"[6]
7. **डी. ब्राइट सिंह** (D. Bright Singh) के अनुसार, "यह (आर्थिक विकास) एक बहु आयामी घटना है जिसके अन्तर्गत केवल मौद्रिक आय में होने वाली वृद्धि ही शामिल नहीं होती बल्कि वास्तविक आदतें, शिक्षा, सार्वजनिक स्वास्थ्य, अधिक आराम के साथ-साथ एक पूर्ण एवं सुखी जीवन का निर्माण करने वाले समस्त सामाजिक एवं आर्थिक सुधार भी शामिल रहते हैं।"[7]
8. **संयुक्त राष्ट्र संघ** की एक रिपोर्ट के अनुसार, "विकास, मानव की केवल भौतिक आवश्यकताओं से ही नहीं, बल्कि उसके जीवन की सामाजिक दशाओं की उन्नति से भी सम्बन्धित होना चाहिए। इस तरह, विकास में सामाजिक, सांस्कृतिक, संस्थागत तथा आर्थिक परिवर्तन भी शामिल होने चाहिए।"

उपरोक्त परिभाषाओं की मूल धारणाओं को मिलाकर आर्थिक विकास की एक उपयुक्त परिभाषा इस प्रकार दी जा सकती है–

"आर्थिक विकास वह सतत प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत देश में उपलब्ध समस्त संसाधनों का कुशलतापूर्वक विदोहन होता है, जिसके परिणामस्वरूप राष्ट्रीय आय एवं प्रति व्यक्ति आय में निरन्तर एवं दीर्घकालीन वृद्धि होती है, आर्थिक विषमता में कमी आती है, सामान्य जनता के जीवन स्तर एवं कल्याण में बढ़ोतरी होती है।"

---

1. "Economic Development is a process whereby an economy's real national income increases over a long period of time." —Meier and Baldwin : *Economic Development*, p.3.
2. "Economic growth is a relation between in rates of increases in the capital and working force on the one hand and in population on the other, so that per capita output is rising." —W.W. Rostow : *Problems of Economic Growth,* p.10.
3. "Economic progress is an increase of the powers to achieve economic aims of the community concerned." —*Youngson.*
4. "Economic development refers to the growth of output per head. The growth of output per head depends on the one hand on natural resources and on the other hand on human behaviour." —*W.A. Lewis.*
5. "Economic development or growth refers to the process whereby the people of the country of region come to utilize the resources available to bring about a sustained increase in per capita production of goods and services." —Williamson : *Principles of Economic Development*, p.7.
6. "Development implies the enhancement of an economy's power to produce goods and services per capita".
   -Hervery Leibenstein : *Economic Backwardness and Economic Growth,* p. 10.
7. "It is multi-dimensional phenomenon, it involves not only increase in money incomes, but also improvement in real habits, education, public health, greater leisure and in fact all the social and economic circumstances that make for a fuller and happier life". —B. D. Bright Singh : *Economic Development,* p.5.

नोट

आर्थिक विकास की विभिन्न परिभाषाओं के अध्ययन से इसकी निम्नलिखित विशेषताएँ परिलक्षित होती हैं–

1. आर्थिक विकास एक सतत प्रक्रिया है–आर्थिक विकास एक सतत एवं निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है जिसके परिणामस्वरूप राष्ट्रीय आय में क्रमश: वृद्धि होती रहती है। विकास की इस प्रक्रिया में वस्तुओं की मांग एवं संसाधनों की पूर्ति में निरन्तरता बनी रहती है। विकास की प्रक्रिया में जनता की आय में परिवर्तन, वस्तु के वितरण की विधियों में परिवर्तन, जनसंख्या की संरचना में परिवर्तन तथा उपभोक्ताओं की रुचियों में परिवर्तन होता रहता है जिससे वस्तुओं की मांग में परिवर्तन की निरन्तरता बनी रहती है। इसी प्रकार उत्पादन के साधनों की पूर्ति यथा–जनसंख्या, उत्पादन के साधनों, पूंजी, उत्पादन की तकनीक तथा अन्य संस्थागत परिवर्तनों में भी निरन्तरता बनी रहती है। इस तरह, जैसे-जैसे किसी देश के आर्थिक विकास की प्रक्रिया आगे बढ़ती जाती है वैसे-वैसे पूर्ति के साधनों एवं मांग में परिवर्तन होता जाता है।

2. वास्तविक राष्ट्रीय आय एवं प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि होती है–आर्थिक विकास के फलस्वरूप वास्तविक राष्ट्रीय आय एवं प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि होती है। वास्तविक राष्ट्रीय आय में वृद्धि से अभिप्राय किसी राष्ट्र द्वारा एक वर्ष में उत्पादित समस्त वस्तुओं एवं सेवाओं के विशुद्ध मूल्य में होने वाली वृद्धि से लगाया जाता है न कि मौद्रिक आय में वृद्धि से। चूंकि आर्थिक विकास मापने का आधार राष्ट्रीय आय को ही माना जाता है, अत : किसी देश का आर्थिक विकास तभी समझा जाएगा जब उस देश में वस्तुओं एवं सेवाओं के उत्पादन में निरन्तर वृद्धि होती रहे। कुल राष्ट्रीय उत्पादन में से मूल्य ह्रास को घटाने के उपरान्त जो बचता है, उसे विशुद्ध राष्ट्रीय उत्पादन कहा जाता है। जब राष्ट्रीय आय में कुल जनसंख्या से भाग दिया जाता है तब भागफल प्रति व्यक्ति औसत आय कहलाता है। आर्थिक विकास की प्रक्रिया में वास्तविक राष्ट्रीय आय के साथ-साथ प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि होती रहती है।

3. दीर्घकालीन प्रक्रिया–आर्थिक विकास की यह प्रक्रिया निरन्तरता लिए दीर्घकाल तक चलनी चाहिए। यदि किन्हीं विशिष्ट कारणों से कुछ समय के लिए राष्ट्रीय आय में वृद्धि हो जाती है तो उसे आर्थिक विकास नहीं कहा जा सकता है। उदाहरण के लिए, यदि किसी वर्ष ठीक समय और अच्छी वर्षा हो जाती है तो कृषि उत्पादन बढ़ जाता है जिससे राष्ट्रीय आय भी बढ़ जाती है परन्तु उसे आर्थिक विकास नहीं समझना चाहिए क्योंकि विकास आकस्मिक न होकर एक दीर्घकालीन प्रक्रिया है।

4. संसाधनों का समुचित विदोहन–आर्थिक विकास की प्रक्रिया में देश में उपलब्ध संसाधनों का कुशलतापूर्वक विदोहन किया जाता है।

5. जीवन स्तर तथा सामान्य कल्याण में सुधार–आर्थिक विकास के फलस्वरूप जन साधारण के जीवन-स्तर में सुधार आता है, आर्थिक विषमता में कमी आती है तथा सरकार द्वारा शिक्षा, सार्वजनिक स्वास्थ्य आदि जन-कल्याण कार्यक्रमों में वृद्धि की जाती है जिससे लोगों के रहन-सहन का स्तर ऊंचा उठता है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

1. रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks)–

1. मायर एवं बाल्डविन के अनुसार, ''आर्थिक विकास एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें दीर्घकाल में किसी अर्थव्यवस्था की ..... में वृद्धि होती है।
2. ..... एक रिपोर्ट के अनुसार, ''विकास मानव की केवल भौतिक आवश्यकताओं से ही नहीं, बल्कि उसके जीवन की सामाजिक, सांस्कृतिक, संस्थागत तथा आर्थिक विकास से संबंधित भी होना चाहिए।
3. प्रो. यंगसन के अनुसार, ''आर्थिक प्रगति का तात्पर्य किसी समाज से संबंधित ..... को प्राप्त करने की शक्ति में वृद्धि करना है।
4. प्रो. रिचार्ड गिल के अनुसार, ''आर्थिक विकास एक यन्त्रीकृत प्रक्रिया के साथ-साथ ..... उपक्रम भी है।
5. आर्थिक विकास वह सतत् प्रक्रिया है, जिसके अंतर्गत देश में उपलब्ध समस्त संसाधनों का ..... होता है जिसके परिणामस्वरूप ..... में निरन्तर एवं दीर्घकालीन वृद्धि होती है।

नोट

15.2 आर्थिक विकास में मानव संसाधन अथवा जनसंख्या का योगदान (Role of Human Resources or Population in Economic Development)

किसी देश के आर्थिक विकास में मानव संसाधनों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। कुछ विद्वानों की धारणा है कि आर्थिक विकास के लिए मानव संसाधन प्राकृतिक संसाधनों की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण है। इस सम्बन्ध में निम्नलिखित विद्वानों के विचार उल्लेखनीय हैं :

हार्बिन्सन एवं **मायर्स** के अनुसार, "आधुनिक राष्ट्रों का निर्माण मनुष्यों के विकास एवं मानवीय क्रियाओं के संगठन पर निर्भर करता है। नि:संदेह पूंजी, प्राकृतिक संसाधन, विदेशी सहायता और अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार आर्थिक विकास में अपनी भूमिका निभाते हैं, परन्तु इनमें से कोई इतना महत्वपूर्ण नहीं जितना मानव शक्ति।"[1]

प्रो. ह्विपल (Whipple) के अनुसार, "एक राष्ट्र की वास्तविक सम्पत्ति उसकी भूमि, जल वनों, खानों, पशु-पक्षियों अथवा डालरों में निहित होती है, बल्कि उस राष्ट्र के समृद्ध तथा प्रसन्नचित पुरुषों, स्त्रियों एवं बच्चों में निहित है।"[2]

प्रो. रिचर्ड टी. गिल (R. T. Gill) के अनुसार, "आर्थिक विकास एक यन्त्रीकृत प्रक्रिया नहीं है। यह एक मानव उपक्रम है तथा अन्य समस्त मानवीय उपक्रमों की तरह इसका परिणाम उन व्यक्तियों की योग्यता, गुण एवं दृष्टिकोण पर निर्भर करता है जो इसे अपने हाथों में लेते हैं।"[3]

इस तरह, मानव संसाधन आर्थिक विकास के अन्य संसाधनों की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण है। आज आर्थिक विकास के नए-नए संसाधनों की खोज, गगनचुम्बी इमारतों व विशालकाय फैक्ट्रियों का निर्माण, पर्वतों का वक्ष छेदन, सागर एवं अन्तरिक्ष विजय, वेगवती नदियों के जल को नियन्त्रित करने वाले बांध, पृथ्वी के गर्भ से निकाली गयी विशाल खनिज सम्पदा आदि सब मानवीय प्रयासों एवं संकल्प शक्ति की देन हैं।

स्पष्टतया, जनसंख्या आर्थिक विकास को गतिशील बनाने में सहायक है। जनसंख्या वृद्धि प्रारम्भ में आर्थिक विकास पर अनुकूल प्रभाव डालती है। इससे श्रमशक्ति में वृद्धि होती है जिससे प्राकृतिक संसाधन का उचित विदोहन होने लगता है। देश के कुल उत्पादन एवं प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि होती है और देश आर्थिक विकास के पथ पर अग्रसर होता है। जनसंख्या आर्थिक विकास में सहायक है। इस मत को व्यक्त करने वालों में प्रमुख हैं–**(प्रो. हेन्सन, आर्थर लुइस, कोलिन क्लार्क** तथा **ई. एफ. पेनरोज** आदि) **प्रो. हेन्सन** के अनुसार, "जनसंख्या वृद्धि आर्थिक विकास की एक पूर्व शर्त है।" **प्रो. हर्ष मेन** के अनुसार, "जनसख्या का दबाव आर्थिक विकास को प्रोत्साहित करता है।"

किसी देश की समृद्धि में वहां की जनसंख्या सहायक होती है। परन्तु इस तस्वीर का दूसरा रुख भी है। यदि जनसंख्या आर्थिक विकास का एक प्रभावी स्रोत है तो कुछ दशाओं में वह आर्थिक विकास के मार्ग में आने वाली प्रमुख बाधा भी है। जब जनसंख्या तीव्र गति से बढ़ने लगती है तो अर्थव्यवस्था आर्थिक विकास के आदर्श अनुपात से दूर हट जाती है जिससे देश में नयी समस्याएं उत्पन्न हो जाती हैं तथा पूर्व की छोटी-छोटी समस्याएं बृहद् तथा जटिल हो जाती हैं इस तरह जनसंख्या आर्थिक विकास में सहायक तत्व के रूप में होने के स्थान पर बाधक तत्व बन जाती है। **रिचर्ड गिल** के अनुसार, "जनसंख्या वृद्धि का राष्ट्रीय उत्पादन तथा प्रति व्यक्ति आय पर अन्तिम प्रभाव धनात्मक, ऋणात्मक अथवा तटस्थ होगा, यह इस बात पर निर्भर करेगा कि जनसंख्या वृद्धि का स्वरूप क्या है और वह किन दशाओं में

1. "The building of modern nations depends upon the development of people and the organisation of human activity. Capital natural resources, foreign aid and international trade, of course, play important role in economic growth but none is more important than man power."

   —Harbinson and Myres : *Education, Manpower and Economic Growth.*

2. "A nation's true wealth is not its land and waters, not in its forests and mines, not in its flocks and brids, not in dollars,but in its wealthy and happy men, women and children."

3. "Economic Development is not a mechanical process. It is a human enterprise and like all human enterprises, its outcome will depend finally on the skill[quality and attutude of the men who undertake it." *–R. T. Gill.*

नोट

हो रही है।" यदि उच्च प्रजनन-दर के कारण जनसंख्या में तीव्र गति से वृद्धि हो रही है जिसके कारण देश में आश्रितों की संख्या बढ़ रही है तो इससे उत्पादक जनसंख्या की बजाय देश में उपभोक्ताओं की संख्या अधिक होगी और कुल मिलाकर प्रति व्यक्ति उत्पादन पर, ऋणात्मक प्रभाव पड़ेगा। इसके विपरीत, यदि जनसंख्या की आयु सरंचना अनुकूल है तो इसका आर्थिक विकास पर धनात्मक प्रभाव पड़ेगा। पुनः जनसंख्या वृद्धि का आर्थिक विकास पर प्रभाव इस बात पर भी निर्भर करता है कि देश में प्रौद्योगिकी स्तर, विकास की अवस्था, पूंजी निर्माण की दर, जनशक्ति का स्वरूप, नवप्रवर्तन के लिए प्रेरणा और बाजार का स्वरूप क्या है। तीव्र गति से बढ़ती हुई जनसंख्या आर्थिक विकास के मार्ग में एक प्रबल बाधा के रूप में खड़ी हो जाती है। **प्रो. सिंगर** (Singer) के अनुसार, "जनसंख्या वृद्धि आर्थिक विकास पर नकारात्मक प्रभाव डालती है, बचत की दर को कम करती है तथा विनियोजन की उत्पादकता को कम करती है।" प्रो. सिंगर यह मत व्यक्त करते हैं कि आर्थिक विकास तभी हो सकता है जबकि उत्पादन में वृद्धि की दर जनसंख्या विकास की दर से अधिक हो। उन्होंने आर्थिक विकास की दर, बचतों की दर, विनियोग की उत्पादकता और जनसंख्या वृद्धि की दर के बीच के सम्बन्ध को व्यक्त करने के लिए निम्न समीकरण को प्रस्तुत किया है–

$$D = S.P - r$$

उपरोक्त समीकरण में,

D = आर्थिक विकास की दर

S = शुद्ध बचतों की दर (अथवा बचत-आय अनुपात)

P = नए विनियोग की उत्पादकता

r = जनसंख्या वृद्धि की दर

इस तरह, आर्थिक विकास के लिए यह आवश्यक है कि बचतें बढ़ें विनियोग बढ़े, उत्पादन बढ़े तथा जनसंख्या में वृद्धि की दर घटे।

इसी तरह **प्रो. मायर** कहते हैं कि, "अल्प विकसित देशों में तीव्र दर से बढ़ती जनसंख्या, पूंजी को बढ़ाने वाले निवेशों और नव प्रवर्तनों को हतोत्साहित करती है, पूंजी संचय की दर को कम करती है, निस्सारक उद्योगों (Extractive Industries) में लागतों को बढ़ाती है, अर्द्ध बेरोजगारी के आकार में वृद्धि करती है और बहुत हद तक पूंजी को शिशुओं के भरण-पोषण की ओर ले जाती है जो उत्पादक आयु तक पहुंचने से पहले ही मर जाते हैं। इसी प्रकार, राष्ट्रीय संसाधन पूंजी निर्माण में न जाकर जनसंख्या निर्माण में स्वाहा हो जाते हैं। इस तरह जनसंख्या वृद्धि आर्थिक विकास में बाधक है।

इस तरह, जनसंख्या की वृद्धि और आर्थिक विकास के सम्बन्ध में अर्थशास्त्रियों ने परस्पर विरोधी विचार व्यक्त किए हैं। कुछ अर्थशास्त्री बढ़ती हुई जनसंख्या को आर्थिक विकास में सहायक मानते हैं तो कुछ इसे आर्थिक विकास में बाधक बताते हैं। इस सम्बन्ध में कुछ प्रमुख विद्वानों के विचार निम्नलिखित हैं :

15.3 प्रो. कोल एवं हूवर के विचार (Views of A. J. Coale and E. M. Hoover)

प्रो. कोल एवं हूवर ने जनसंख्या एवं आर्थिक विकास के परस्पर सम्बन्धों का अध्ययन निम्न दो शीर्षकों के अन्तर्गत किया है–

(अ) आर्थिक विकास का जनसंख्या वृद्धि पर प्रभाव (The Effects of Economic Development on Population Growth)

आर्थिक विकास के जनसंख्या वृद्धि पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन जन्म, मृत्यु तथा प्रवास के माध्यम से किया जा सकता है। भारत जैसे विकासशील देशों में आय का स्तर निम्न होता है अतः अन्तर्राष्ट्रीय प्रवास इन देशों में कोई महत्वपूर्ण भूमिका नहीं निभा पाता है। माल्थस का जनसंख्या सिद्धान्त (जिसे जनसंख्या का क्लासिकल सिद्धान्त भी कहा जाता है) इस बात का पक्षधर है कि आय में वृद्धि के साथ-साथ जन्म दर में वृद्धि होती है जबकि मृत्य दर घट जाती है।

नोट

माल्थस के उपरान्त जन्म दर तथा मृत्यु दर का आर्थिक विकास से सम्बन्ध की व्याख्या जनसंख्या के संक्रमण सिद्धान्त के माध्यम से की गयी। इसके अनुसार परम्परागत कृषि प्रधान देशों में मृत्यु दर ऊंची होती है जो फसलों के उत्पादन में होने वाले उतार-चढ़ावों के साथ ही साथ महामारी आदि के द्वारा घटती-बढ़ती रहती है। जन्म दर प्राय: उच्च स्तर पर ही स्थिर रहती है। धार्मिक विश्वास, सामाजिक मान्यताएं एवं कृषि की आवश्यकता उच्च जन्म दर का कारण होती हैं। ऊंची जन्म दर तथा ऊंची मृत्यु दर के फलस्वरूप जनसंख्या वृद्धि की शुद्ध दर बहुत नीची होती है।

जनसंख्या संक्रमण सिद्धान्त के अनुसार आर्थिक विकास के साथ-साथ मृत्यु दर में गिरावट आती जाती है। आर्थिक विकास के फलस्वरूप श्रम विभाजन एवं विशिष्टीकरण में वृद्धि होती है, मशीनों तथा अन्य उपकरणों का प्रयोग बढ़ता है, यातायात व संचार के माध्यमों तथा नगरीकरण में वृद्धि होती है। स्वास्थ्य, सफाई एवं चिकित्सा सुविधाओं, शिक्षा, आवास, सन्तुलित भोजन, वस्त्र, आदि सुविधाओं का विकास होता है जिससे कार्यक्षमता में वृद्धि होती है। **कोल** एवं **हूवर** के शब्दों में, "संयुक्त राष्ट्र संघ के जनसंख्या विभाग के मतानुसार यूरोपीय संस्कृति वाले क्षेत्रों में अठारहवीं शताब्दी एवं उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में मृत्यु दर में कमी मुख्य रूप से आर्थिक सुधारों के प्रत्यक्ष प्रभावों के कारण हुई तथा उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध एवं बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में मृत्यु दर में कमी आयुर्विज्ञान एवं सार्वजनिक स्वास्थ्य सुविधाओं में सुधार के फलस्वरूप हुई।"[1]

नोट्स जनांकिकीय संक्रमण सिद्धान्त में निहित धारणा यह है कि आर्थिक विकास के साथ-साथ उत्पादन की एक इकाई के रूप में परिवार का महत्त्व समाप्त होता जाता है।

रोजगार वैयक्तिक होने लगता है, महिलाओं की गतिशीलता बढ़ जाती है, बच्चे अब सम्पत्ति न होकर दायित्व हो जाते हैं। इन सबके परिणामस्वरूप परिवार का छोटा होना आवश्यक हो जाता है। इस तरह, जन्म दर में धीरे-धीरे कमी होने लगती है।

इस सिद्धान्त की सार्थकता उन सभी देशों के आर्थिक इतिहास से पुष्ट हो जाती है जो प्राचीन से आज के आधुनिक औद्योगिक देशों में परिवर्तित हुए हैं। परन्तु यह सिद्धान्त जन्म एवं मृत्यु दरों में कब और कितनी कमी होगी, इसके बारे में कुछ नहीं कहता। यह सिद्धान्त इस तथ्य को स्पष्ट करने में भी असमर्थ है कि जन्म दर तथा मृत्य दर के बीच समयान्तर (Time lag) कितना होगा? जबकि इस अवधि में जनसंख्या वृद्धि सबसे अधिक होती है।

चूंकि विकासशील देशों को भी पिछड़ी हुई अर्थव्यवस्था से विकसित अर्थव्यवस्था में पदार्पण करना है, अत: इस दृष्टि से भारत के सन्दर्भ में जनांकिकीय संक्रमण सिद्धान्त की व्यावहारिकता एवं उपादेयता का अध्ययन करना उचित होगा। अनेक विकासशील देशों यथा–भारत, श्रीलंका, मलेशिया तथा कुछ दक्षिण अमेरिकी देशों ने अपनी कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था के स्वरूप को बनाए रखते हुए मृत्यु दर में कमी कर ली है। जबकि जनांकिकीय संक्रमण सिद्धान्त के अनुसार जब समाज कृषि अर्थव्यवस्था की अवस्था से औद्योगिक अर्थव्यवस्था की स्थिति में प्रवेश करता है तब मृत्यु दर घटती है। **प्रो. कोल एवं हूवर** का विचार है कि, "पर्याप्त मात्रा में आर्थिक सुधार मृत्यु दर में कमी के लिए एक महत्वपूर्ण शर्त है। परन्तु आधुनिक जगत में यह एक अनिवार्य शर्त नहीं है।"[1] उनकी धारणा है कि मृत्यु दर में भारी गिरावट के लिए तीन कारक उत्तरदायी हो सकते हैं–

(*i*) एण्टीबायोटिक एवं कीटनाशक दवाओं का विकास।

(*ii*) प्रभावशाली जन स्वास्थ्य संगठनों द्वारा पिछड़े देशों में भी कार्य करना।

(*iii*) सफाई के सस्ते तरीकों का उपलब्ध होना।

1. A. J. Coale and E. M. Hoover : *Population Growth and Economic Development in Low Income Countries,* Princetion University Press, p. 11.

नोट

विकसित देशों की अपेक्षा विकासशील देशों में मृत्यु दर में गिरावट अधिक तेजी से हुई है। यह गिरावट विकासशील देशों के आर्थिक ढांचे में परिवर्तन के बिना आई है। अत: यह कहा जा सकता है कि मृत्यु दर के सम्बन्ध में हमारा अनुभव विकासशील देशों पर लागू होना आवश्यक नहीं है। अब यहां यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि क्या विकसित देशों की प्रजनन-दर के अनुभवों की पुनरावृत्ति विकासशील देशों में सम्भव है? इस सम्बन्ध में **कोल** एवं **हूवर** का कथन है कि, "जनांकिकीय संक्रमण सिद्धान्त का कोई भी प्रकाशित रूपान्तरण ठीक ढंग से यह स्पष्ट नहीं करता है कि जन्म दर की कमी के लिए कौन सी दशाएं आवश्यक हैं, इसके अलावा क्या ये दशाएं सम्बन्धित क्षेत्र में विशेष अन्तराल में उपलब्ध होंगी।"[2]

सम्भावत: मृत्यु दर में कमी ही जन्म दर में कमी का कारण है। चूंकि अधिकांश मृत्यु, जन्म के प्रारम्भिक वर्षों में होती है अत: जब जन्म के पश्चात मृत्यु की सम्भावना अधिक होती है तो प्रसव भी अधिक होते हैं। इसके विपरीत यदि जन्म के पश्चात शिशु के जीवित रहने की सम्भावना अधिक होती है तो प्रसव भी कम होते हैं। इस तरह, जन्म दर में कमी के लिए न तो नगरीकरण आवश्यक है और न ही प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि ही जन्म दर में कटौती के लिए आवश्यक है।

इस तरह, निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि विकसित देशों के जन्म दर तथा मृत्यु दर सम्बन्धी अनुभवों की पुनरावृत्ति होने की सम्भावना विकासशील देशों में नहीं होती है। अब मृत्यु दर में कमी होने की सम्भावनाएं अधिक हैं क्योंकि स्वास्थ्य सेवाओं को सस्ती दरों पर जनसाधारण को सहजता से उपलब्ध कराया जा सकता है। यदि मृत्यु दर में तो पर्याप्त गिरावट आ जाए तो परन्तु जन्म दर में कमी न आए तो जनसंख्या बीस से पच्चीस वर्षों की अवधि में दुगनी हो जाएगी। यदि मृत्यु दर में कमी के साथ ही साथ आर्थिक विकास नहीं हुआ तब नीची मृत्यु दर को बनाए रखना सम्भव नहीं होगा। अत: मृत्यु दर को नीचा बनाए रखने के लिए आर्थिक विकास की दर को तीव्र करना होगा। इससे जन्म दर स्वत: कम हो जाएगी। **कोल एवं हूवर** के शब्दों में, "कम लागत पर उपलब्ध आधुनिक सार्वजनिक स्वास्थ्य की विधियों के माध्यम से निम्न मृत्यु दरों को प्राप्त कर सकने के साथ इस प्रकार की अर्थव्यवस्थाओं की जन्म दर सम्बन्धी विशेषताओं के रहते हुए जनसंख्या बीस से पच्चीस वर्षों में दुगनी हो जाएगी। यदि मृत्यु दर में कमी के पूर्व आर्थिक विकास नहीं हुआ है, तब यदि मृत्यु दर की कमी को बनाए रखना है तो अब आर्थिक विकास को होना आवश्यक है।"[3]

(ब) जनसंख्या वृद्धि का आर्थिक विकास पर प्रभाव (The Effects of Population Growth on Economic Development)

आज विकासशील देश तीव्र गति से आर्थिक विकास हेतु प्रयासरत हैं। इन देशों को अपने प्रयास में सफलता भी प्राप्त हो रही है। परन्तु इन देशों को तीव्र गति से बढ़ती हुई जनसंख्या का भी सामना करना पड़ रहा है। तीव्र गति से बढ़ती हुई जनसंख्या इन देशों के आर्थिक विकास के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा बनकर खड़ी हो गयी है। इस द्रुत गति से बढ़ती हुई जनसंख्या के फलस्वरूप इन देशों में आर्थिक विकास के प्रयास आशातीत सफलता नहीं प्राप्त कर पा रहे हैं। जनसंख्या वृद्धि आर्थिक विकास को किस तरह प्रभावित करती है, इसका अध्ययन करना आवश्यक है।

---

1. 'Coale and Hoover : *Population Growth and Economic Development in Low Income Countries,* p. 16.
2. "No published verson of the theory of Demographic Transition states precisely what conditions are essential for a fertility decline,much less is it possible to tell whether these conditions will be present in the areas in questions during a special interval."

   —*Coale and Hoover.*
3. "The death rates achievable at low cost by modern public health methods, combined with the birth rate characteristic of such an economy, imply a doubling of the population every twenty to twenty five years. If economic development does not precede the decline in mortality, it must still occur eventually if the ... is to be maintained."

   –*Coale and Hoover.*

नोट

सामान्य रूप से जनसंख्या के तीन पहलू यथा–जनसंख्या का आकार, जनसंख्या की वृद्धि दर तथा जनसंख्या का आयु-वितरण, प्रति व्यक्ति आय को प्रभावित करते हैं। जनसंख्या के आकार एवं प्रति व्यक्ति आय के बीच सम्बन्ध की विवेचना जनसंख्या के अनुकूलतम सिद्धान्त में की गयी है। इस सिद्धान्त के अनुसार यदि जनसंख्या वृद्धि के साथ-साथ प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि होती है तो आर्थिक विकास पर अनुकूल प्रभाव पड़ेगा। इसके विपरीत, यदि जनसंख्या वृद्धि के साथ-साथ प्रति व्यक्ति आय घटती जाती है तो आर्थिक विकास पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा। यहां यह उल्लेखनीय है कि पैमाने का प्रतिफल (Returns to scale) केवल श्रमपूर्ति की मात्रा पर ही निर्भर नहीं करता है बल्कि अन्य अनेक तत्वों के द्वारा प्रभावित होता है। यथा–पूर्णरूप से निरक्षर जनसंख्या की प्रति व्यक्ति आय कम होगी और इसके विपरीत यदि जनसंख्या साक्षर व शिक्षित हो जाये तो प्रति व्यक्ति आय बढ़ जायगी। इसी तरह, कार्यक्षमता, पूंजी की उपलब्धता, अनुसन्धान, अविष्कार तथा नवप्रवर्तन आदि अनेक ऐसे तत्व हैं जो प्रति व्यक्ति आय को प्रभावित करते हैं।

बढ़ती जनसंख्या के साथ प्रति व्यक्ति आय के स्तर को बनाए रखने के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि अब पहले से अधिक मात्रा में साधनों का विनियोग किया जाए। परन्तु जनसंख्या बढ़ने के साथ विनियोग के बढ़ने की अपेक्षा घटने की सम्भावना अधिक रहती है क्योंकि अब बचतों का प्रयोग उपयोग में किया जाने लगता है। कीन्स के विश्लेषण के अनुसार जनसंख्या में वृद्धि के फलस्वरूप मांग में वृद्धि होगी जिससे विनियोग प्रोत्साहित होंगे। परन्तु कीन्स का विश्लेषण विकासशील देशों में नहीं लागू होता है। विकासशील देशों में ऐसे अप्रयुक्त बचत कोष नहीं होते हैं जो कि प्रोत्साहन अथवा लाभ की ऊंची दरों की प्रतीक्षा कर रहे हों।

जनसंख्या वृद्धि से अर्थव्यवस्था में आवश्यक विनियोग की मात्रा में वृद्धि हो जाती है। आर्थिक दृष्टि से पिछड़े हुए देशों में जनसंख्या वृद्धि अर्थव्यवस्था में विनियोग की आवश्यकता को उसकी विनियोग करने की क्षमता से अधिक बढ़ाकर विकास की दर पर प्रतिकूल प्रभाव डालती है। तेजी से बढ़ती हुई जनसंख्या जनांकिकीय विनियोग की आवश्यकता को बढ़ाती है जबकि दूसरी ओर वह लोगों की बचत करने की क्षमता को कम करती है। **कोल एवं हूवर** के अनुसार, "जनसंख्या की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि जनसंख्या वृद्धि की ऊंची दर एक निश्चित प्रति व्यक्ति उत्पादन को प्राप्त करने के लिए आवश्यक विनियोग की मात्रा को बढ़ा देती है। जबकि विनियोग योग्य साधनों की पूर्ति में वृद्धि करने के लिए वह कुछ भी नहीं करती है।"[1]

इस तरह, आर्थिक दृष्टि से पिछड़ी अर्थव्यवस्थाओं में जनसंख्या वृद्धि के फलस्वरूप विनियोग योग्य कोष घट जाते हैं। वह निवेश जो बढ़ती हुई जनसंख्या के भरण पोषण अथवा उसके वर्तमान स्तर को बनाए रखने के लिए आवश्यक हैं उसे जनांकिकीय विनियोग के नाम से जाना जाता है। विनियोग की यह मात्रा जनसंख्या वृद्धि की दर से निर्धारित होती है। यदि जनसंख्या वृद्धि की दर बहुत ऊंची होती है तो कुल विनियोग का एक बहुत बड़ा भाग, जनांकिकीय विनियोग में लग जाता है तथा आर्थिक विनियोग के लिए बहुत कम बच पाता है जिससे लोगों के रहन-सहन के स्तर में बहुत सुधार होना सम्भव नहीं हो पाता।

अनुमान है कि यदि जनसंख्या में प्रति वर्ष एक प्रतिशत की दर से वृद्धि हो रही है तो प्रति व्यक्ति आय के वर्तमान स्तर को बनाए रखने के लिए 2.5 प्रतिशत पूंजी विनियोग आवश्यक होता है।

अधिक जनसंख्या प्रति व्यक्ति पूंजी की उपलब्धता को कम कर देती है। जनसंख्या का आकार जितना बड़ा होता है, प्रति व्यक्ति पूंजी की उपलब्धता उतनी ही कम हो जाती है। विकासशील देशों के सन्दर्भ में यह बात उचित प्रतीत होती है क्योंकि ऐसे देशों में पूंजी की कमी रहती है तथा उसकी पूर्ति प्रायः बेलोचदार होती है। **कोल एवं हूवर** के अनुसार, "यदि हम प्रभावपूर्ण मांग की समस्या की तरफ ध्यान न दें तब जनसंख्या की तीव्र वृद्धि श्रमशक्ति की औसत उत्पादकता को बढ़ाने तथा प्रति व्यक्ति औसत आय में वृद्धि करने के लिए उपलब्ध पूंजी की मात्रा को कम करने की प्रवृत्ति रखती है।"[1]

---

1. "The significant feature of population as such is that a higher rate of population growth implies a higher level of needed investment to achieve a given per capita output, while there is nothing about faster growth that generates a greater supply of investible resources." *–Coale and Hoover*

नोट

विकासशील देशों की आयु संरचना में बच्चों की संख्या अधिक होती है। इसके परिणामस्वरूप आश्रित अनुपात ऊंचा होता है जो विकास के मार्ग में बाधक होता है। यदि किसी देश में बच्चों की संख्या अधिक है तो वहां कार्यशील जनसंख्या कम होगी। इस प्रकार की जनसंख्या में बचतें कम तथा उपभोग अधिक होगा। इसके कारण पूंजी निर्माण कम होगा जिससे आर्थिक विकास की दर भी कम रहेगी।

इस तरह विकासशील देशों में जनसंख्या का आकार, वृद्धि की दर तथा जनसंख्या की आयु संरचना तीनों ही आर्थिक विकास में बाधक होते हैं।

टास्क जनसंख्या वृद्धि का आर्थिक विकास पर क्या प्रभाव पड़ता है?

15.4 एल्विन हैन्सेन के विचार (Views of Alvin Hansen)

जनसंख्या एवं आर्थिक विकास के सम्बन्ध में नवकेन्सवादी अर्थशास्त्री एल्विन हैन्सेन ने एडम स्मिथ के इस विचार का समर्थन किया कि बढ़ती हुई जनसंख्या ही विकसित देशों के लिए उपयुक्त है। एडम स्मिथ की धारणा थी कि जनसंख्या वृद्धि आर्थिक विकास को प्रभावित करती है तथा स्वयं आर्थिक विकास से प्रभावित भी होती है। उनके अनुसार बढ़ती जनसंख्या से श्रम विभाजन में वृद्धि होती है, उत्पादन व उत्पादकता बढ़ती है। आविष्कार करने की योग्यता बढ़ती है। देश में मजदूरी कोष में वृद्धि होती है तथा बाजार का विस्तार होता है। इस तरह एडम स्मिथ के विचार पूर्ण आशावादी थे। एल्विन हैन्सेन ने एडम स्मिथ की विचारधारा का समर्थन करते हुए माल्थस एवं रिकार्डो द्वारा जनसंख्या एवं आर्थिक विकास के सम्बन्ध में व्यक्त की गई निराशावादी धारणा ही आलोचना की तथा इनकी विचारधारा को आधारहीन बताया। हैन्सन का कथन है कि बढ़ती हुई जनसंख्या से मांग में वृद्धि होती है, श्रमपूर्ति में कमी नहीं आ पाती, विशिष्टता एवं कार्यक्षमता बढ़ती तथा विनियोजन एवं रोजगार के अवसरों में वृद्धि होती है। हैन्सेन ने अपने विचार को केन्द्रीय विचारधारा के आधार पर आगे बढ़ाया। कीन्स का तर्क था कि जनसंख्या के घट जाने से प्रभावपूर्ण मांग कम हो जाती है। इससे विनियोजकों को विनियोजन के अवसर कम मिलते हैं। विनियोजन में कमी आने से निराशा का वातावरण उत्पन्न हो जाता है। बेरोजगारी बढ़ती है जिससे लोगों की आय कम हो जाती है। आय कम होने से मांग घट जाती है तथा मन्दी का चक्र प्रारम्भ हो जाता है। यही विचार व्यक्त करते हुए हैन्सेन कहते हैं, "यह मेरा बढ़ता हुआ विश्वास है कि जनसंख्या के घटने का तथा साथ ही साथ नव प्रवर्तन न होने का सम्मिलित प्रभाव यह होता है कि मन्दी की स्थिति पूर्णतया समाप्त होकर, पूर्ण रोजगार की स्थिति तक नहीं पहुंच पाती है.....आज विकसित देशों में घटती हुई विनियोजन की सम्भावनाओं का मुख्य कारण घटती हुई जनसंख्या व बसने के लिए नए क्षेत्रों का पता लगाने की सम्भावनाओं की समाप्ति है।" हैन्सेन की धारणा है कि 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में संयुक्त राज्य अमेरिका में 60 प्रतिशत पूंजी निर्माण जनसंख्या वृद्धि के ही कारण हुआ। इसी तरह यूरोप में भी 40 प्रतिशत पूंजी निर्माण जनसंख्या वृद्धि के कारण हुआ। इस आधार पर हैन्सेन इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि विकास के लिए जनसंख्या में वृद्धि होना आवश्यक है। **हैन्सेन** ने बताया कि अमेरिका में 1930 की महान आर्थिक मन्दी घटती हुई जनसंख्या के फलस्वरूप ही आई थी। घटती हुई जनसंख्या से ही मन्दी की तीव्रता बढ़ गयी थी तथा तेजी आने में देर हुई थी।

हैन्सेन का विचार था कि घटती हुई जनसंख्या से नए-नए आविष्कार करने तथा विनियोजन करने की प्रेरणा कम हो जाती है। इसके फलस्वरूप रोजगार के अवसर तथा आय कम हो जाती है अथवा धीमी गति से बढ़ती है। इस तरह, बेरोजगारी स्थायी रूप से बनी रहती है। आय कम होने से मांग पुनः कम हो जाती है। इस तरह का चक्र चल पड़ता

1. "If we assume away the problem of effective demand, rapid growth does tend to diminish the amount of capital available for increasing average productivity of the work force and increasing the average per capita income" —*Coale and Hoover, op. cit.,* p. 22.

नोट

है जिसके कारण आर्थिक विकास अवरुद्ध हो जाता है। इसे *"Acceleration-decelaration Principle"* कहा जाता है।

हैन्सेन तथा उनके अन्य समर्थकों का तर्क है कि नए मकानों का निर्माण भी प्रत्यक्षत: जनसंख्या वृद्धि पर निर्भर करता है। इसके विपरीत, जनसंख्या के घटने से इस कार्य में विनियोजन कम हो जाता है। जनसंख्या के कम होने पर न केवल मकानों का निर्माण अवरुद्ध हो जाता है बल्कि अन्य सार्वजनिक निर्माण के कार्यों पर भी विनियोजन कम होने लगता है। जनसंख्या कम होने पर आवश्यक उपभोग्य वस्तुओं का उत्पादन भी घट जाता है। इसके अतिरिक्त, स्कूलों, कारखानों, अस्पतालों, आदि पर भी विनियोजन कम होने लगता है। सबसे गम्भीर बात यह होती है कि घटती जनसंख्या से मांग में कमी हो जाने के कारण लोगों में निराशा तथा अवसाद की भावना उत्पन्न हो जाती है। जनसंख्या घटने से अथवा जनसंख्या पर नियन्त्रण लगाने से समाज में जवानों की संख्या कम तथा बूढ़े लोगों की संख्या बढ़ने लगती है। इस तरह, बूढ़े आश्रितों की संख्या बढ़ने से देश की कार्यक्षमता घट जाती है जिससे पूंजी निर्माण की प्रक्रिया बाधित होती है।

हैन्सेन का विचार है कि यह बात बहुत ही सहज है कि जिस देश में जनसंख्या वृद्धि हो रही होती है उस देश में आवास, यातायात, संदेशवाहन, जीवन–यापन की आधुनिक सुख–सुविधाओं तथा सार्वजनिक सेवाओं एवं अन्य वस्तुओं की सुविधाओं में वृद्धि के लिए बहुत अधिक मात्रा में पूंजी की आवश्यकता होती है। 19वीं शताब्दी में इतनी अधिक पूंजी का निर्माण केवल तकनीकी प्रगति के कारण ही नहीं हुआ बल्कि इसके लिए जनसंख्या में होने वाली वृद्धि ही अधिक उत्तरदायी थी। जनसंख्या के आकार एवं वृद्धि से ही देश में उत्पादित वस्तुओं की मात्रा व प्रकृति निर्भर करती है। स्थिर जनसंख्या अथवा धीमी गति से बढ़ती जनसंख्या की तुलना में बढ़ती हुई तीव्र गति से जनसंख्या अधिक उत्पादन के लिए प्रेरणा प्रदान करती है। इस तरह, बढ़ती हुई जनसंख्या सदैव आर्थिक विकास को गति प्रदान करती है।

बेन्जामिन हिगिन्स (B. Higgins) भी हैन्सेन के विचारों का समर्थन करते हैं। उनका कथन है कि औद्योगिक क्रान्ति के दौरान जनसंख्या में होने वाली प्रत्येक वृद्धि से प्रति व्यक्ति आय में बढ़ोतरी हुई क्योंकि उस दौरान तकनीकी प्रगति तथा नवीन साधनों की खोज के फलस्वरूप जनसंख्या अनुकूलतम स्तर से कम ही रही। जनसंख्या वृद्धि के साथ विनियोजन, रोजगार एवं आय में वृद्धि हुई। जनसंख्या वृद्धि से बाजार का विस्तार होता है, यातायात सेवाओं एवं उच्च स्तर की वस्तुओं की पूर्ति में वृद्धि होती है। इसी तरह अपना मत व्यक्त करते हुए **डी. एच. हैण्डरसन** (D. H. Handerson) कहते हैं कि घटती हुई जनसंख्या आने वाले समय में गम्भीर सामाजिक एवं आर्थिक कठिनाइयां उत्पन्न करेगी। इससे विशिष्टता प्राप्त श्रमिकों की पूर्ति में कमी आएगी जिससे प्रगति तथा विकास की प्रक्रिया धीमी पड़ जाएगी तथा बाधित होगी। घटती हुई जनसंख्या के प्रति चिन्ता व्यक्त करते हुए **जी. मिर्डल** (G. Myrdal) कहते हैं कि, "विकासशील पूंजीवादी प्रणाली में प्रगतिशील जनसंख्या विकास की प्रथम आवश्यकता है। घटती हुई जनसंख्या से सभी तरफ विनियोगन का जोखिम बढ़ जाता है।"[1]

इसी तरह, Jones, Dalay, Ardart, Barbar Mathews, Kurihara, Gorbett आदि अर्थशास्त्रियों का भी स्पष्ट मत था कि बढ़ती हुई जनसंख्या आर्थिक विकास के लिए आवश्यक प्रावैगिक शक्ति तथा उत्प्रेरक घटक है। घटती हुई जनसंख्या के फलस्वरूप तकनीकी प्रगति, विनियोजन, रोजगार, राष्ट्रीय आय तथा राष्ट्र की कार्यक्षमता सब घट जाती है। इस तरह हैन्सेन के अनुसार जनसंख्या वृद्धि तथा आर्थिक विकास के मध्य धनात्मक सह–सम्बन्ध पाया जाता है।

15.5 अगस्ट लोश के विचार (Views of August Losch)

जर्मन अर्थशास्त्री अगस्ट लोश ने अपनी घटती जनसंख्या पर अपने विचार व्यक्त करते हुए स्पष्ट किया कि घटती जन्म दर मन्दी का सबसे बड़ा कारण है। उन्होंने मत व्यक्त किया कि जनसंख्या के बढ़ने से आर्थिक विकास में तेजी आती है। एक बार तेजी की दशा उत्पन्न हो जाने पर यदि जनसंख्या बढ़ती रहती है तो तेजी की स्थिति बनी रहती है। यदि जनसंख्या में वृद्धि होती रहती है तो तकनीक प्रगति एवं नव प्रवर्तन के अभाव में भी विकास की प्रक्रिया चलती रह

1. G. Myrdal : *Population* : *A Problem for Democracy*, p. 164.

नोट

सकती है। बढ़ती जनसंख्या तो स्वयं में ही बाजार के विस्तार की गारण्टी है। जनसंख्या बढ़ने से बाजार में संकुचन का भय नहीं रहता है। ऐसी दशा में अकुशल साहसी भी उत्पादन कार्य में डटे रहते हैं क्योंकि उन्हें भी विस्तृत बाजार के कारण कुछ न कुछ लाभ अवश्य प्राप्त हो जाने की उम्मीद रहती है। **लोश** (Losch) के शब्दों में, "मैं इस बात का पक्षधर हूँ कि जर्मनी में अधिकांश व्यापार चक्रों के समय तथा आकार का निर्धारण मुख्य रूप से श्रम की पूर्ति में आए उच्चावचनों से हुआ है। किसी देश के आर्थिक जीवन में सर्वाधिक निर्णयात्मक कारक उसकी जनसंख्या का आकार, उसके लोग तथा उसकी संख्या है।"[1]

आर्थिक विकास की जनसंख्या पर भले ही कुछ कम प्रभाव पड़े परन्तु जनसंख्या का आर्थिक विकास पर सकारात्मक प्रभाव अवश्य ही पड़ता है। लोश का विचार है कि जन्म-दर के बढ़ने से भौतिक वस्तुओं के निर्माण की क्रियाएं बढ़ जाती हैं जिससे रोजगार की सम्भावनाएं भी बढ़ जाती हैं। जनसंख्या जब बढ़ेगी भवन निर्माण, मशीनों एवं वस्तुओं के निर्माण में वृद्धि होगी। इन क्रियाओं से समाज में आशावादी विचारधारा उत्पन्न होती है। इसके विपरीत, यदि जन्म दर में कमी आ जाती तो उक्त लाभों की सम्भावना समाप्त हो जाएगी तथा समाज में निराशा की भावना व्याप्त हो जाएगी और इस तरह सर्वप्रथम पूंजीगत वस्तुओं–मशीनों आदि के निर्माता और इसके उपरान्त उपभोग्य वस्तुओं के निर्माता मन्दी का शिकार हो जाते हैं।

विकसित देशों में घटती हुई जनसंख्या से न केवल चक्रीय बेरोजगारी फैलती है वरन् संरचनात्मक बेरोजगारी भी फैलती है। घटती जनसंख्या से कुछ उद्योगों में अति उत्पादन की स्थिति उत्पन्न हो जाती है जिससे उनमें सरंचना सम्बन्धी असाम्य (Structural disequilibrium) के कारण बेरोजगारी फैल जाती है।

15.6 साइमन कुजनेट्स के विचार (Views of Simon Kuznets)

जनसंख्या और आर्थिक विकास के सम्बन्ध में अपने मत व्यक्त करते हुए साइमन कुजनेट्स स्पष्ट करते हैं कि 18वीं शताब्दी के अन्त तक जनसंख्या के सम्बन्ध में जो भी जानकारी प्राप्त हुई है, उससे यह पता नहीं चल पाता है कि जनसंख्या में वृद्धि के साथ-साथ प्रति व्यक्ति आय अथवा राष्ट्रीय आय में कमी आयी है। विकसित देशों में राष्ट्रीय आय में कमी अथवा वृद्धि का प्रमुख कारण कीमतों में उतार-चढ़ाव अथवा निराशावाद या आशावाद या व्यापार चक्र का प्रभाव है तथा पिछड़े देशों में राष्ट्रीय आय अथवा प्रति व्यक्ति आय में कमी का प्रमुख कारण सूखा, बाढ़, आदि प्राकृतिक आपदाएं हैं। **प्रो. कुजनेट्स** के शब्दों में, "सबूतों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि आधुनिक काल में जनसंख्या वृद्धि के साथ ही अनेक देशों में समग्र उत्पादन में भी वृद्धि हुई है। इस वृद्धि के फलस्वरूप प्रति व्यक्ति आय में भी चक्रीय वृद्धि हुई है।"[1] साइमन कुजनेट्स का विचार है कि बढ़ती हुई जनसंख्या प्राकृतिक संसाधनों एवं मानवकृत पूंजी पर दबाव बढ़ाती है। इसके अतिरिक्त भिन्न-भिन्न जनसंख्या घनत्व वाले देशों में आर्थिक विकास की दर भी भिन्न-भिन्न है परन्तु आंकड़े इस बात की पुष्टि नहीं कर पाते कि जहां जनसंख्या का दबाव अधिक है वहां विकास की दर कम है तथा जहां दबाव कम है वहां विकास की दर अधिक है यद्यपि जनसंख्या वृद्धि के कुप्रभावों की चर्चा बहुत की जा रही है परन्तु जनसंख्या वृद्धि के आर्थिक विकास पर पड़ने वाले सकारात्मक प्रभाव, कुप्रभावों की अपेक्षा अधिक प्रभावकारी होते हैं। जनसंख्या वृद्धि के कुछ महत्वपूर्ण धनात्मक प्रभाव निम्नवत हैं–

1. जनसंख्या का उत्पादन में योगदान–जनसंख्या में वृद्धि से श्रम-शक्ति बढ़ती है, श्रम-विभाजन बढ़ता है तथा श्रमिकों की गतिशीलता बढ़ जाती है। इससे कुल उत्पादन तथा प्रति श्रमिक उत्पादन में वृद्धि होती है। परन्तु यह सब तभी सम्भव है जबकि श्रमिकों के लिए रोजगार के अवसर उपलब्ध हों, अशोषित पूंजी पड़ी हो तथा पूंजी-उत्पाद अनुपात स्थिर रहे। जनसंख्या बढ़ने से उन प्राकृतिक संसाधनों का भी विदोहन होने लगता है जो अब तक अछूते पड़े थे। नए-नए क्षेत्रों के शोषण के लिए श्रमिकों को पहले की अपेक्षा अधिक क्षमतावान तथा कार्यकुशल होना पड़ेगा।

1. "I maintain that the timing and the form of most of our German business cycles have been determined primarily by waves in labour supply. Among the most decisive factors in the economic life of a country is its population-its people, their number and quantity."

नोट

घाटे में चलने वाली आर्थिक इकाइयों को लाभ की स्थिति में लाने के लिए अधिक कार्यकुशल तथा दक्ष श्रमिकों की आवश्यकता होती है। जनसंख्या में वृद्धि होने से शिक्षण एवं प्रशिक्षण सुविधाओं में वृद्धि होगी, तकनीकी क्षेत्र में प्रगति होगी समाज में वैज्ञानिकों, इंजीनियरों प्रबन्धकों तथा अन्य बुद्धिजीवियों की संख्या में वृद्धि हो जाएगी। साइमन कुजनेट्स का विचार है कि जिस अनुपात में जनसंख्या बढ़ती है उसी अनुपात में बुद्धिमान व्यक्तियों की संख्या भी बढ़ती है, नए-नए आविष्कार होते हैं। अनुसन्धान एवं ज्ञान किसी कारखाने या राष्ट्र सीमाओं से बंधा नहीं रह सकता। अत: एक प्रतिभा द्वारा किए गए आविष्कार से जो लागत घटती है उसे विश्व के कुछ श्रमिकों से गुणा करके हम कुल लागत में कमी मालूम कर सकते हैं। अत: जनसंख्या को किसी देश के उत्पादन को बढ़ाने, लागत को कम करने तथा प्रति व्यक्ति आय को बढ़ाने के साधन के रूप में देखना चाहिए, बाधक के रूप में नहीं।

2. जनसंख्या वृद्धि एवं पूंजी निर्माण–कुजनेट्स की धारणा है कि जनसंख्या वृद्धि के फलस्वरूप नवीन आविष्कार, प्रतिभा तथा ज्ञान में वृद्धि तभी हो सकती है जबकि उस बढ़ी हुई जनसंख्या के लिए शिक्षा की व्यवस्था किया जाना सम्भव हो सके। साधारणतया एक 10 बच्चों वाला पिता अपने सभी बच्चों को उचित शिक्षा नहीं दे पाएगा। वह अपनी आय में से बचत नहीं कर पाएगा। अत: वह उतना विनियोग नहीं कर पाएगा जितना कि एक कम बच्चे वाला पिता कर सकता है। यह तर्क एक विकासशील अर्थव्यवस्था के सम्बन्ध में तो सही जान पड़ता है परन्तु विकसित देश में इस तरह की कमी को राजकोषीय नीति द्वारा पूरा किया जा सकता है। जहां तक पूंजी निमार्ण का प्रश्न है, बढ़ती हुई जनसंख्या बचत व विनियोग को घटा देती है परन्तु विकसित देशों में आय एवं व्यय सम्बन्धी आंकड़ों का अध्ययन करने से यह पता चलता है कि जब परिवार का खर्च बढ़ जाता है तो लोग आराम को कम करके खाली समय का सदुपयोग करते हैं, बचतों का अपव्यय नहीं करते हैं, विलासिताओं पर व्यय न करके बच्चों की आवश्यकताओं पर होने वाले व्यय को प्राथमिकता देते हैं। इस तरह, बच्चों की संख्या में वृद्धि, कार्य करने, बचत तथा विनियोग करने की इच्छा में वृद्धि करती है। कुछ बचतें ऐसी होती हैं जिन्हें अनिवार्य रूप से करना पड़ता है, जैसे भविष्य निधि, अनिवार्य बचत, भविष्य की अनिश्चितता तथा वृद्धावस्था के लिए जमा आदि, ये बचतें रोजगार की मात्रा में वृद्ध के साथ बढ़ती जाएंगी। **प्रो. कुजनेट्स** का मत है कि जनसंख्या बढ़ने से प्रारम्भ में पूंजी की पूर्ति घटती है। पूंजी दुर्लभ तथा महंगी हो जाने से ऐसे नवीन आविष्कार होने लगते हैं जिससे कम पूंजी पर ही अधिक उत्पादन होने लगता है। इस तरह, पूंजी का प्रतिफल बढ़ने पर, पूंजी निर्माण में स्वत: वृद्धि होने लगती है। अत: यह कहना उचित नहीं है कि जनसंख्या वृद्धि का पूंजी निर्माण पर सदैव प्रतिकूल प्रभाव ही पड़ता है।

3. जनसंख्या वृद्धि का उपभोग पर प्रभाव–कुजनेट्स का विचार है कि जब जनसंख्या बढ़ती है तब पूंजी निर्माण में कमी नहीं आती है तथा प्रति व्यक्ति उत्पादन भी नहीं घटता है। इससे श्रमिकों की मांग में वृद्धि होती है। जब अधिक लोग उत्पादन कार्य में भाग लेंगे तो स्वभावत: वे अपनी अर्जित आय को उपभोग पर व्यय करेंगे। इस तरह उपभोक्ता वस्तुओं की मांग में वृद्धि होगी। इस दशा में उपभोक्ता वस्तुओं की मांग उस स्थिति से अधिक होगी जब जनसंख्या स्थिर रहती है अथवा घटने लगती है। **साइमन कुजनेट्स** के शब्दों में, "तेजी से बढ़ती हुई जनसंख्या की उपभोक्ता वस्तुओं की मांग, स्थिर जनसंख्या अथवा धीमी गति से बढ़ती हुई जनसंख्या की अपेक्षा अधिक होती है।"[1]

बढ़ती हुई जनसंख्या से नवयुवक उपभोग के बाजार में सम्मिलित हो जाते हैं। उनकी व्यय प्रवृत्ति अधिक होती है। वे नवीन वस्तुओं तथा फैशन के प्रति सहजता से आकर्षित हो जाते हैं तथा बचत के प्रति वे अधिक ध्यान नहीं देते हैं। इसके परिणामस्वरूप, उपभोग में भारी वृद्धि होती है। जिस समाज में जनसंख्या तेजी से बढ़ती है वहां बच्चों का अनुपात अधिक होने से उपभोग्य वस्तुओं की मांग में तेजी से वृद्धि होती है।

1. "The evidence thus suggests that in modern times growth in population has been accompanied by growth in aggregate output for many countries so large that there was also a marked secular rise in per capital product."

–Simon Kuznets : *Economic Growth and Structure,* 1965, p. 123.

नोट

उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि बढ़ती हुई जनसंख्या के फलस्वरूप उत्पादन, बचत तथा उपभोग में वृद्धि होती है। इस प्रकार, मांग एवं पूर्ति दोनों में वृद्धि होती है तथा आर्थिक सन्तुलन आगे बढ़ता जाता है। इसे आर्थिक विकास होना कहा जा सकता है। प्रो. लेविस आदि विचारकों को मानना है कि ऐसी अर्थव्यवस्था में जिसमें एक तरफ पूंजीवादी क्षेत्र तथा दूसरी और जीवन निर्वाह क्षेत्र अर्थात ग्रामीण क्षेत्र है तब, प्रथम क्षेत्र के विकसित होने पर सम्पूर्ण क्षेत्र का विकास स्वत: ही होता है। पूंजीवादी क्षेत्र में होने वाला विकास सदैव ऊंची मजदूरी तथा ऊंचा प्रतिफल देता रहेगा तथा जीवन निर्वाह क्षेत्र (ग्रामीण कृषि क्षेत्र) उन्हीं मूल्यों को धीरे-धीरे अपनाता रहेगा। इस तरह जनसंख्या में होने वाली वृद्धि से ग्रामीण क्षेत्रों में मजदूरी की दरें नीची रहती हैं जिसके परिणामस्वरूप नगरों में विकास की दर ग्रामीण क्षेत्रों की तुलना में कुछ अधिक होती है।

15.7 प्रो. जे. के. गैलब्रेथ के विचार (Veiws of Prof. John Kanneth Galbraith)

प्रो. जे. के. गैलब्रेथ ने आर्थिक विकास की समस्याओं तथा आर्थिक विकास में जनसंख्या की भूमिका की विवेचना की तथा मत व्यक्त किया कि किसी देश की निर्धनता के लिए निम्न आठ प्रमुख कारक उत्तरदायी हैं–

(1) किसी देश के नागरिकों की निर्धनता का प्रथम कारण यह है कि वे प्राय: अपने को गरीब व्यक्ति के रूप में ही प्रदर्शित करते हैं और अपनी तुलना सदैव अपने से धनी व्यक्ति से ही करते हैं। वे अपनी प्रगति के लिए निरन्तर प्रयास करते रहते हैं, इस तरह के प्रयास महत्वाकांक्षी व्यक्ति ही कर सकते हैं। स्वय को निर्धन मानना तथा धनी बनने की इच्छा रखना ही लोगों को महत्वाकांक्षी बनााता है।

(2) किसी देश के निर्धन होने का दूसरा कारण उस देश में प्राकृतिक संसाधनों को अभाव है। प्राकृतिक संसाधनों का अभाव समृद्ध बनने का अवसर कम कर देता है। परन्तु स्विटजरलैण्ड तथा इजरायल ऐसे देश हैं जिनकी कर्तव्यपरायण एवं परिश्रमी जनता ने इस बात को झुठला दिया है कि वे ही देश सम्पन्न हो सकते हैं जिन देशों में प्राकृतिक संसाधनों की प्रचुरता है। वास्तव में किसी देश को समृद्धशाली बनाने में दो घटक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं–प्रथम प्राकृतिक संसाधन तथा द्वितीय मानव संसाधन। इनमें मानव संसाधन घटक अधिक महत्वपूर्ण होता है। यदि किसी देश के नागरिक आर्थिक विकास के लिए कृत संकल्प हैं तथा त्याग एवं परिश्रम के लिए सदैव तत्पर हैं तो उसका विकास अवश्यम्भावी है।

(3) औपनिवेशिक शोषण भी किसी देश की निधर्नता का एक प्रमुख कारण होता है। विश्व के अनेक राष्ट्र जो आज आर्थिक दृष्टि से पिछड़े तथा गरीब हैं, उनकी निर्धनता का सबसे प्रमुख कारण उनकी सैकड़ों वर्षों की विदेशी दासता रही है। विदेशी शासन काल में उन देशों के नागरिकों की निरन्तर उपेक्षा, तिरस्कार तथा शोषण होता रहा जिससे वहां की जनसंख्या का नैतिक एवं आत्मबल समाप्त हो गया।

(4) इन देशों में गरीबी, वर्ग-शोषण का परिणाम भी हो सकती है। कुछ व्यक्तियों की सम्पन्नता अन्य व्यक्तियों की निर्धनता का कारण हो सकती है।

(5) इन देशों की निर्धनता का एक प्रमुख कारण पूंजी की अपर्याप्तता भी है। यदि किसी देश में प्रति व्यक्ति आय कम है तो बचत भी कम होगी, बचत कम होने से विनियोग कम होगा जिसके परिणामस्वरूप विकास भी कम होगा। परन्तु ईरान, इराक, सऊदी अरब तथा वैनेजुएला, आदि देशों में खनिज तेलों की अधिकता से वहां पूंजी की कमी नहीं है फिर भी इन देशों के अधिकांश निवासी निर्धन हैं।

(6) निर्धन देशों की निर्धनता का छठा प्रमुख कारण इन देशों में उपयुक्त आर्थिक नीति का अभाव होना है। निर्धन देशों में उपयुक्त आर्थिक नीति के अभाव में इन देशों में कीमतों में तो तेजी से वृद्धि हो जाती है परन्तु उसी अनुपात में उत्पादन में वृद्धि नहीं हो पाती है। इन देशों में परिश्रमी व्यक्तियों को कार्य करने के लिए किसी तरह का प्रोत्साहन नहीं मिलता है तथा आय का एक बड़ा भाग उन लोगों द्वारा हड़प लिया जाता है तो उत्पादन में किसी तरह का योगदान नहीं करते।

नोट

(7) निर्धनता का सातवां कारण इन देशों में व्याप्त अज्ञानता है। सामान्यतया विश्व के निर्धन देशों में साक्षरता का प्रतिशत बहुत नीचा रहता है जबकि विकसित देशों में साक्षरता का प्रतिशत बहुत ऊंचा रहता है। **प्रो. गैलब्रेथ** के शब्दों में, "यह तथ्यपूर्ण एवं स्वयं सिद्ध है कि विश्व में कहीं भी साक्षर जनसंख्या वास्तव में गरीब नहीं है तथा निरक्षर जनसंख्या कहीं भी सम्पन्न नहीं है।"[1]

(8) अति जनसंख्या भी गरीबी का कारण है। भारत तथा एशिया के अधिकांश देशों में, गांवों में, रोजगार के उपयुक्त अवसरों का अभाव है। जिस कार्य को पूरा करने में परिवार के सभी सदस्य लगे रहते हैं उसे वास्तव में केवल दो लोग ही पूरा कर सकते हैं। अन्य शब्दों में, यदि व्यक्ति कम होते तो प्रति व्यक्ति उत्पादन अधिक होता। इसके विपरीत, पश्चिम के विकसित देशों में प्रत्येक व्यक्ति अपनी योग्यता के अनुरूप उत्पादन करता है तथा जब वह व्यक्ति उत्पादन कार्य से विरत हो जाता है तब उत्पादन भी उतनी मात्रा में कम हो जाता है। भारत जैसे देशों में यदि व्यक्ति गांव छोड़कर शहर चले जाते हैं तो गांव के उत्पादन में कोई कमी नहीं आती है। इस तरह, गांवों में ऐसे लोगों के श्रम की सीमान्त उत्पादकता शून्य है।[2]

उपरोक्त विवेचना से यह स्पष्ट है कि किसी देश के आर्थिक पिछड़ेपन के लिए कोई एक कारण जिम्मेदार न होकर सम्मिलित रूप से अनेक कारण जिम्मेदार हैं। अत: किसी एक कारक को हल करने से समस्या का समाधान नहीं हो सकता। यदि किसी देश में अज्ञानता व्याप्त हो, तकनीकी ज्ञान का अभाव हो तो पूंजी की कमी न होने पर भी वहां आर्थिक पिछड़ेपन को दूर करना सहज नहीं होगा। इसी तरह, यदि भूमि व्यवस्था में जमींदारी, पूंजी व्यवस्था में महाजनी तथा श्रम व्यवस्था में ठेकेदारी प्रथा लागू है तो क्रमश: कृषकों, व्यापारियों तथा श्रमिकों में अधिक परिश्रम करने की प्रेरणा नहीं विकसित हो पाएगी। इसका कारण यह है कि कृषि सुधारों के प्रतिफल कृषकों, व्यापारियों तथा श्रमिकों की न प्राप्त होकर क्रमश: जमींदारों, महाजनों तथा ठेकेदारों को प्राप्त होंगे।

अत: यदि हमें यह जानना है कि किसी देश के तीव्र आर्थिक विकास हेतु किन-किन घटकों एवं तत्वों में परिवर्तन लाया जाना है तो इसके लिए यह पता लगाना महत्वपूर्ण होगा कि उस देश के पिछड़ेपन के लिए कौन-कौन से कारक जिम्मेदार हैं। इन कारकों को जान लेने के उपरान्त ही उन्हें दूर करने के उपाय किए जा सकते हैं। सामान्यतया भौतिक साधनों (यथा–खाद, बीज, सिंचाई के साधन, बांध बनाना, उद्योगों हेतु मशीनों का प्रबन्ध करना) की व्यवस्था करना सहज होता है। परन्तु मानवीय मूल्यों में परिवर्तन लाकर उसे विकास के अनुकूल बनाना अपेक्षाकृत कठिन कार्य है। मानवीय मूल्यों के अन्तगर्त वैज्ञानिक दृष्टिकोण, महत्वाकांक्षी, परिश्रमी, संघर्षशील एवं ईमानदार श्रम शक्ति तथा कुशल प्रशासन आदि का समावेश किया जाता है।

इस तरह, आर्थिक विकास के लिए मानवीय मूल्यों का विकास किया जाना आवश्यक होता है। **प्रो. गैलब्रेथ** के अनुसार, "न केवल जनसंख्या की योग्यता में सुधार (स्वास्थ्य, शिक्षा आदि) वरन् उसकी संख्यात्मक वृद्धि को रोकना भी उतना ही महत्वपूर्ण है। सन् 1963 में भारत को चीन से आक्रमण का बड़ा खतरा था। यद्यपि यह खतरा साधारण नहीं था, परन्तु इससे भी बड़ा खतरा भारत को आन्तरिक था, जिसका कारण बढ़ती हुई जनसंख्या थी"[3]

भारतीय अर्थव्यवस्था अपने कठोर प्रयत्न से वर्ष में जितनी आय में वृद्धि कर पाती है वह सब नए आगन्तुकों में समाप्त हो जाती है। अत: देश के व्यक्तियों के औसत जीवन स्तर में कोई वृद्धि नहीं हो पाती है। **प्रो. गैलब्रेथ** पुन: लिखते हैं कि, "प्रगति के लिए लोगों का होना आवश्यक है। अत: संक्षेप में, जनसंख्या में सुधार के बिना किसी भी तरह की उन्नति सम्भव नहीं है तथा मुक्त एवं शिक्षित व्यक्ति अवश्य प्रगति करेंगे।"[4]

नोट

15.8 जनसंख्या वृद्धि : आर्थिक विकास में सहायक (Population Growth: Helpful in Economic Development)

जनसंख्या वृद्धि आर्थिक विकास को प्रोत्साहित करती है। इस सम्बन्ध में निम्न तर्क प्रस्तुत किए जा सकते हैं–

(1) **श्रमशक्ति आपूर्ति का स्त्रोत**–आर्थिक विकास प्राकृतिक संसाधनों, पूंजी की मात्रा, तकनीकी ज्ञान तथा श्रमशक्ति पर निर्भर करता है। आर्थिक विकास के निर्धारक घटकों में श्रमशक्ति सबसे महत्वपूर्ण एवं सक्रिय घटक है। इस सम्बन्ध में **साइमन कुजनेट्स** का कथन है कि, "अन्य बातों के यथावत रहने पर जनसंख्या की प्रत्येक वृद्धि श्रमशक्ति को बढ़ाती है।

हां, इसका श्रमशक्ति के लिए निश्चित योगदान इस बात पर निर्भर करेगा कि क्या जनसंख्या वृद्धि मृत्यु दर गिरने के कारण अथवा शुद्ध देशान्तरण के कारण या जन्म दर में वृद्धि के फलस्वरूप हुई है।" इस तरह, कार्यकारी श्रमशक्ति की पूर्ति के स्त्रोत के रूप में जनसंख्या वृद्धि आर्थिक विकास की उत्प्रेरक है और अन्ततः इसका प्रभाव उत्पादन की मात्रा को बढ़ावा देने वाला होता है।

(2) **विस्तृत बाजार**–जनसंख्या वृद्धि उपभोक्ताओं के रूप में वस्तुओं के लिए मांग पैदा करती है जिससे बाजारों का विस्तार होता है। इससे उत्पादन के स्वरूप में विविधता आती है। उत्पादन बढ़ने से रोजगार के अवसर एवं आय में वृद्धि होती है। इस तरह, जनसंख्या वृद्धि बाजार का विस्तार कर आर्थिक विकास को बढ़ावा देती है।

(3) **उत्पादन में वृद्धि**–जनसंख्या बढ़ने से श्रम शक्ति एवं विशिष्टीकरण को बढ़ावा मिलता है जिससे श्रम की उत्पादकता में वृद्धि होती है जो अन्ततः उत्पादन को बढ़ाती है। **डा. ब्राइट सिंह** का मत है कि, "जनसंख्या वृद्धि गहन श्रम विभाजन तथा व्यापक विशिष्टीकरण को जन्म देती है, पैमाने की बचतों को सम्भव बनाती है, जिससे तकनीकी प्रगति तथा संगठनात्मक सुधारों को बढ़ावा मिलता है।" परन्तु जनसंख्या वृद्धि से उत्पादन मात्रा में तभी वृद्धि सम्भव है जब जनसंख्या को आकार देश में उपलब्ध पूंजी और भूमि की तुलना में छोटा रहता है।

(4) **मानव पूंजी निर्माण में सहायक**–जनसंख्या वृद्धि के फलस्वरूप उपलब्ध अतिरिक्त श्रमशक्ति पूंजी निर्माण का एक सुलभ साधन माना जाता है। **रैगनर नर्क्स** का मत है कि अतिरिक्त श्रम शक्ति एक तरह की अदृश्य बचत है और अर्द्ध-बेरोजगारी के रूप में इन अदृश्य सम्भाव्य बचतों के पूंजी-निर्माण के लिए प्रयोग की जा सकती है।

जब देश में उपलब्ध जनशक्ति के ज्ञान में वृद्धि करके उसकी कार्यकुशलता एवं योग्यता में सुधार किया जाता है जब मानव पूंजी का निर्माण होता है जिसका अन्तिम प्रभाव यह होता है कि देश में प्रति व्यक्ति उत्पादन बढ़ता है और देश का आर्थिक विकास होता है। **डा. कैन्ड्रिक** का कथन है कि, "श्रम उत्पादकता में वृद्धि, औद्योगिक अर्थव्यवस्थाओं के आर्थिक विकास की एक पूर्व शर्त रही है जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण अमेरिका तथा जापान का द्रुतगामी विकास है जो पूरी तरह से श्रम की उत्पादकता में वृद्धि के कारण ही हो सका है।"

(5) **दक्षता एवं निपुणता को बढ़ावा**–नए ज्ञान की खोज व उसका विकास कर दक्षता एवं निपुणता को बढ़ावा देना मानव का स्वभाव है, जो स्वयं जनसंख्या का परिणाम है। इस तरह, वृद्धिशील जनसंख्या सृजनात्मक मस्तिष्कों का सृजन करती है जिससे कौशल को बढ़ावा मिलता है, नए ज्ञान का भण्डार बढ़ता है, फलस्वरूप राष्ट्रीय उत्पादन में वृद्धि होने लगती है।

---

1. "The demand of a rapidly growing population for consumer goods would be greater than of a constant of slowly growing population."
   —Simon Kuznets : *Economic Growth and Structure,* p. 134.
2. "It is pausible axiom that no literate population in the world is really poor and no illiterate population is otherwise." —J. K. Galbraith, *Economic Development,* 1964, p. 12.
3. "J.K. Galbraith, *Economic Development*, 1964, p. 21.
4. "People are the common denominator of progress. So, paucis veribus no improvement is possible with unimproved people and advence is certain when people are liberated and educated." *–J.K. Galbraith.*

नोट

15.9 आर्थिक विकास का जनसंख्या वृद्धि पर प्रभाव (Effect of Economic Development on Population Growth)

किसी देश के आर्थिक विकास का उस देश की जनसंख्या वृद्धि पर जो प्रभाव पड़ता है उसे जनांकिकीय संक्रमण सिद्धान्त द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। जनसंख्या संक्रमण सिद्धान्त के अनुसार आर्थिक विकास के दौरान किसी देश की जनसंख्या को निम्नलिखित पांच अवस्थाओं से होकर गुजरना पड़ता है–

(1) **प्रथम अवस्था** (First Stage)–इस अवस्था में लोगों का सामाजिक व आर्थिक दृष्टिकोण संकुचित होता है। सन्तुलित भोजन, स्वास्थ्य व चिकित्सा सम्बन्धी सुविधाओं का अभाव होता है, फलतः मृत्यु दर, विशेषकर शिशु मृत्यु दर ऊँची रहती है। व्यापक निरक्षरता, परिवार नियोजन के ज्ञान का अभाव, छोटी आयु में विवाह, बच्चों के प्रति लगाव, आदि के कारण जन्म दर ऊंची होती है। इस अवस्था में आय का प्रमुख स्रोत कृषि क्षेत्र होता है बच्चों के पालन-पोषण पर व्यय बहुत कम होता है। वे बहुत कम आयु में ही परिवार की आय का स्रोत हो जाते हैं जिससे बच्चे दायित्व न होकर सम्पत्ति समझे जाते हैं। ऐसे आदिमकालीन समाज में जनसंख्या वृद्धि दर, वास्तव में ऊंची नहीं होती क्योंकि उच्च जन्म दर को उच्च मृत्यु दर सन्तुलित कर देती है। यह अवस्था 'ऊंची जन-वृद्धि की सम्भाव्य अवस्था' (high Population Growth Potential Stage) है अर्थात, इसमें वास्तविक वृद्धि तो कम होती है किन्तु जन-वृद्धि की पर्याप्त क्षमता पाई जाती है।

(2) **द्वितीय अवस्था** (Second Stage)–इस अवस्था में आर्थिक क्रियाओं का विस्तार होता है। आय में वृद्धि होने लगती है। बैंक, बीमा, परिवहन, शिक्षा, स्वास्थ्य व चिकित्सा सुविधाओं का क्षेत्र व्यापक हो जाता है। फलस्वरूप मृत्यु दर में गिरावट आ जाती है और जन्म दर या तो स्थिर रहती है अथवा उसमें मामूली गिरावट आ पाती है। जन्म दर को प्रभावित करने वाली धार्मिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक परिस्थितियों में परिवर्तन नहीं होता। इस तरह, द्वितीय अवस्था में जन्म दर ऊंची तथा मृत्यु दर नीची रहती है जिससे जनसंख्या वृद्धि दर अधिक होती है। इसे जनसंख्या विस्फोट की अवस्था भी कहा जाता है। अर्थव्यवस्था के विकास की दृष्टि से यह स्थिति घातक होती है। मृत्यु दर में कमी और जन्म दर में वृद्धि के कारण देश में जनाधिक्य की स्थिति उत्पन्न हो जाती है जिसके फलस्वरूप जीवन स्तर की उन्नत बनाने के सभी प्रयास निरर्थक सिद्ध होने लगते हैं और आर्थिक विकास के बावजूद, आर्थिक स्थिरता की दशा उत्पन्न हो जाती है।

(3) **तृतीय अवस्था** (Third Stage)–इस अवस्था में आर्थिक विकास की गति और अधिक तीव्र हो जाती है। शिक्षा तथा स्वास्थ्य एवं चिकित्सा सुविधाओं में और अधिक सुधार होता है जिसके परिणामस्वरूप मृत्यु दर में और अधिक गिरावट आती है। शिक्षा के प्रसार एवं आर्थिक विकास के परिणामस्वरूप सामाजिक दृष्टिकोण बदलते हैं, छोटे परिवार को वरीयता दी जाने लगती है, परिवार नियोजन ऐच्छिक रूप ले लेता है जिसके कारण जन्म दर गिरने लगती है। परन्तु इस अवस्था में भी जन्म दर एवं मृत्यु दर में अन्तर बहुत अधिक होता है जिससे जनसंख्या की शुद्ध वृद्धि दर अधिक होती है। यह अवस्था भी जनसंख्या विस्फोट की ही अवस्था है।

(4) **चतुर्थ अवस्था** (Fourth Stage)–इस अवस्था में आर्थिक विकास बहुत तेजी से होता है। अर्थव्यवस्थाओं का स्वरूप कृषि प्रधान न होकर प्रधान हो जाता है। प्रति व्यक्ति आय व जीवन-स्तर में आशातीत वृद्धि होती है। सामाजिक वृद्धि होती है। सामाजिक दृष्टिकोण बदलते हैं। रीति-रिवाजों के बन्धन और रूढ़ियों की कड़ियाँ कमजोर होने लगती हैं। विवाह की आयु में पर्याप्त वृद्धि हो जाती है जिससे सन्तानोत्पादन अवधि घट जाती है। सुविधाओं एवं विलासताओं में वृद्धि होती है जिससे सन्तानोत्पादन की इच्छा कम हो जाती है। इन सबका परिणाम यह होता है कि जन्म तथा मृत्यु दरें दोनों ही कम होकर एक निम्न स्तर पर स्थिर हो जाती हैं जिसमें जनसंख्या में शुद्ध वृद्धि नहीं होती है अथवा नगण्य होती है।

(5) **पंचम अवस्था** (Fifth Stage)–आर्थिक विकास की यह उच्चतम अवस्था है। इस अवस्था में सन्तानोत्पादन पर विशेष ध्यान नहीं दिया जाता है। लोगों को मनोरंजन के आधुनिक साधन सहजता से उपलब्ध हो जाते हैं। अपने शारीरिक सौन्दर्य को बनाए रखने के लिए स्त्रियां सन्तानोत्पादन के प्रति बहुत इच्छा नहीं रखती हैं। वे

नोट

अपनी स्वतन्त्रता को बनाए रखने के लिए शिशुओं के पालन-पोषण के झंझट में नहीं पड़ना चाहती हैं। सामाजिक सुरक्षा की सुविधाओं का पर्याप्त विस्तार होता है जिससे बुढ़ापे के सहारे के रूप में बच्चों का महत्व घट जाता है। पारिवारिक सम्बन्धों में शिथिलता आने लगती है। मां-बाप का बच्चों के प्रति लगाव कम होने लगता है। इन सबका प्रभाव यह होता है कि जन्म दर में पर्याप्त गिरावट आ जाती हैं। जन्म दर, मृत्यु दर से भी कम रहती है जिससे जनसंख्या का आकार घटने लगता है। समाज में वृद्ध व्यक्तियों की संख्या अधिक हो जाती है। आज फ्रांस इस अवस्था में पहुंच चुका है।

उपरोक्त बातों के आधार पर निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि जनसंख्या तथा आर्थिक विकास एक दूसरे से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित हैं। दोनों ही एक दूसरे के साध्य, कारण तथा पर्याय कहे जा सकते हैं।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

2. सही विकल्प चुनिए–

1. विकसित देशों में राष्ट्रीय आय में कमी का प्रमुख कारण कीमतों में उतार-चढ़ाव, आशा व निराशावाद एवं व्यापार चक्र का प्रभाव होता है, यह विचार है–
   (क) अगस्ट लोश का (ख) कुजनेट्स का
   (ग) हैन्सेन का (घ) गैलब्रेथ का।
2. ''घटती हुई जनसंख्या आने वाले समय में गम्भीर समस्या उत्पन्न करेगी''। कथन है–
   (क) जी मिर्डल (ख) बेंजामिन हिगिन्स
   (ग) डी. एच. हैण्डरसन (घ) अगस्ट लोश।
3. यह कथन किस विचारक का है–तेजी से बढ़ती हुई जनसंख्या की उपभोक्ता वस्तुओं की माँग, स्थिर जनसंख्या अथवा धीमी गति से बढ़ती जनसंख्या की अपेक्षा अधिक होती है।''
   (क) अगस्ट लोश (ख) जी मिर्डल
   (ग) कुजनेट्स (घ) हैन्सेन।
4. ''प्रगति के लिए लोगों का होना आवश्यक है। जनसंख्या में सुधार के बिना किसी भी तरह की उन्नति सम्भव नहीं है।'' यह विचार किसका है–
   (क) कुजनेट्स (ख) डी. एच. हैण्डरसन
   (ग) प्रो. गैलब्रेथ (घ) जी. मिर्डल।
5. जनसंख्या संक्रमण सिद्धांत के अनुसार आर्थिक विकास के दौरान किसी देश की जरसंख्या कितनी अवस्थाओं से गुजरना पड़ता है–
   (क) एक (ख) दो
   (ग) तीन (घ) पाँच।

15.10 सारांश (Summary)

- प्रत्येक देश का उत्पादन स्तर, आर्थिक विकास की दर, राष्ट्रीय तथा प्रति व्यक्ति आय देश में उत्पादक क्रियाओं का संचालन, रहन-सहन का स्तर, आदि सभी दशाएँ उस देश की जनसंख्या के आकार, गठन एवं वितरण पर निर्भर करती हैं।
- आर्थिक विकास वह प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत मानवीय प्रयत्नों द्वारा कोई देश अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों में उत्पादन एवं उत्पादकता में वृद्धि कर अपनी वास्तविक प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि करते हुए देश में गरीबी और आर्थिक विषमता को समाप्त कर जीवन-स्तर में सुधार लाने का प्रयास करता है।

नोट

- आर्थिक विकास वह सतत प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत देश में उपलब्ध समस्त संसाधनों का कुशलतापूर्वक विदोहन होता है, जिसके परिणामस्वरूप राष्ट्रीय आय एवं प्रति व्यक्ति आय में निरन्तर एवं दीर्घकालीन वृद्धि होती है, आर्थिक विषमता में कमी आती है, सामान्य जनता के जीवन स्तर एवं कल्याण में बढ़ोतरी होती है।
- **रिचर्ड गिल** के अनुसार, "जनसंख्या वृद्धि का राष्ट्रीय उत्पादन तथा प्रति व्यक्ति आय पर अन्तिम प्रभाव धनात्मक, ऋणात्मक अथवा तटस्थ होगा, यह इस बात पर निर्भर करेगा कि जनसंख्या वृद्धि का स्वरूप क्या है और वह किन दशाओं में हो रही है।
- औपनिवेशिक शोषण भी किसी देश की निधर्नता का एक प्रमुख कारण होता है। विश्व के अनेक राष्ट्र जो आज आर्थिक दृष्टि से पिछड़े तथा गरीब हैं, उनकी निर्धनता का सबसे प्रमुख कारण उनकी सैकड़ों वर्षों की विदेशी दासता रही है। विदेशी शासन काल में उन देशों के नागरिकों की निरन्तर उपेक्षा, तिरस्कार तथा शोषण होता रहा जिससे वहां की जनसंख्या का नैतिक एवं आत्मबल समाप्त हो गया।
- निर्धन देशों की निर्धनता का छठा प्रमुख कारण इन देशों में उपयुक्त आर्थिक नीति का अभाव होना है। निर्धन देशों में उपयुक्त आर्थिक नीति के अभाव में इन देशों में कीमतों में तो तेजी से वृद्धि हो जाती है परन्तु उसी अनुपात में उत्पादन में वृद्धि नहीं हो पाती है।
- अति जनसंख्या भी गरीबी का कारण है। भारत तथा एशिया के अधिकांश देशों में, गांवों में, रोजगार के उपयुक्त अवसरों का अभाव है। जिस कार्य को पूरा करने में परिवार के सभी सदस्य लगे रहते हैं उसे वास्तव में केवल दो लोग ही पूरा कर सकते हैं।

15.11 शब्दकोश (Keywords)

- **विदोहन–** प्रयोग
- **असाम्य–** असमानता, अंतर

15.12 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. आर्थिक विकास से आप क्या समझते हैं? आर्थिक विकास के अर्थ एवं परिभाषा को समझाइए।
2. आर्थिक विकास में जनसंख्या अथवा मानव संसाधन का क्या योगदान है? विश्लेषणात्मक विवेचन कीजिए।
3. जनसंख्या वृद्धि आर्थिक विकास में किस प्रकार सहायक है? विवेचन कीजिए।
4. आर्थिक विकास का जनसंख्या वृद्धि पर क्या प्रभाव पड़ता है? विश्लेषण कीजिए।
5. जनसंख्या और आर्थिक विकास के पारस्परिक संबंधों के बारे में प्रो. कोल एवं हूवर के विचारों का वर्णन कीजिए।
6. आर्थिक विकास एवं जनसंख्या के संबंध में नवकेन्सवादी अर्थशास्त्री एल्विन हैन्सने के विचारों का विवेचन कीजिए।
7. जर्मन अर्थशास्त्री अगस्ट लोश के द्वारा घटती जनसंख्या पर दिए गए विचारों का विश्लेषण कीजिए।
8. साइमन कुजनेट्स और प्रो. जे.के. गैलब्रेथ के जनसंख्या एवं आर्थिक विकास से संबंधित विचारों का वर्णन करें।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

1. 1. वास्तविक राष्ट्रीय आय 2. संयुक्त राष्ट्र संघ की
3. आर्थिक उद्देश्यों 4. मानवीय
5. कुशलतापूर्वक विदोहन, राष्ट्रीय आय एवं प्रतिव्यक्ति आय।

नोट

2. 1. (ख) 2. (ग)
3. (ग) 3. (ग)
5. (घ)

15.13 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. *संवृद्धि एवं विकास का अर्थशास्त्र*: डॉ. पी. मिश्रा; साहित्य भवन पब्लिकेशन्स : आगरा
2. *विकास नियोजन एवं नीतियाँ*: वी. सी सिन्हा: साहित्य भवन पब्लिकेशन्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.) लि. रजिस्टर्ड कार्यालय नई दिल्ली
3. *विकास का अर्थशास्त्र एवं आयोजन*: डा. एस. एल. डिंगल: वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा. लि.

नोट

इकाई–16: संस्थाएँ और आर्थिक विकास (Institutions and Economics Development)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

16.1 संस्थाएँ और आर्थिक विकास (Institutions and Economics Development)

16.2 सारांश (Summary)

16.3 शब्दकोश (Keywords)

16.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

16.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- संस्थाएं और आर्थिक विकास की विवेचना करने में।

प्रस्तावना (Introduction)

प्रस्तुत इकाई में बाजार की असफलता, कल्याण अर्थशास्त्र के मूलभूत प्रमेय, सूचना असफलता, अपूर्ण बाजार, सरकार की असफलता, संस्थाएँ और प्रशासन, आर्थिक विकास में सामाजिक मानदंडों और समुदाय की भूमिका, अंत:क्षेत्रीय पूरकताएँ, समन्वय की असफलताएँ और ऐतिहासिक जकड़न आदि विषयों पर चर्चा की गई है। संसाधनों को कुशलतापूर्वक तथा संवृद्धि के लिए प्रोत्साहन प्रदान करने में बाजार महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकते हैं। बाजार की असफलता के विभिन्न कारणों पर भी चर्चा की गई है।

16.1 संस्थाएँ एवं आर्थिक विकास (Institutions and Economic Development)

प्रतियोगी बाजार कुशलतापूर्वक प्रोन्नति करते हैं तथा ऐसी स्थितियाँ भी हो सकती है जहाँ प्रतियोगी बाजार अच्छे से नहीं चलते। 1776 में प्रकाशित एडम स्मिथ की कृति में यह तर्क दिया गया था कि प्रतिस्पर्द्धा द्वारा अपने निजी प्रयोजनों को पूरा करने के लिए लोग लोकहित तक के लिए आगे बढ़ जाते हैं।

कल्याण अर्थशास्त्र के मूलभूत प्रमेय–इस मूलभूत प्रमेय में कुशलता का अर्थ है–पैरेटो-कुशल आबंटन तथा पैरेटो-दृष्टमता की स्थिति है। पेरेटो-दृष्टतमता का अर्थ है कि किसी को गरीब बनाए बिना किसी को धनी बनाना असंभव होता है। दूसरे प्रमेय का कथन है कि उपयोगिता संभाव्यता वक्र को किसी भी बिंदु पर प्राप्त किया जा सकता है। परन्तु बिन्दु से नीचे नहीं।

नोट

नोट्स बाजार असफलता की स्थितियाँ वह होती हैं जब कुछ शर्तों को पूरा करने पर अर्थव्यवस्था पैरेटो-दृष्टतम या पैरेटो-कुशल नहीं होता है।

बाजार जो प्रतियोगी नहीं हैं (बाजार एकाधिकारी हैं)–केवल पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में ही पैरेटो-दृष्टतमता को प्राप्त किया जा सकता है। सभी फर्में प्रतियोगी ढंग से व्यवहार कर सकती हैं यदि बाजार में प्रवेश लागत रहित और आसान हो। एकाधिकार के अन्दर निष्फल हानि वह होता है जिसमें क्रेता तथा विक्रेता दोनों को ही संतुलित उत्पादन का भाग प्राप्त नहीं होता। कुछ ऐसे ही कारण हैं जिनकी वजह से एकाधिकार के अंतर्गत बाजार पैरेटो-दृष्टमता प्राप्त नहीं करते तथा बाजार असफल हो जाते हैं।

सार्वजनिक वस्तुएँ–वह दो विशिष्ट विशेषताओं वाली वस्तुएँ जिनका उपभोग करने से किसी को रोका नहीं जा सकता तथा उपभोग करने से किसी को रोका नहीं जा सकता तथा जिसके उपभोग में कोई प्रतिद्वन्द्विता नहीं होती, सार्वजनिक वस्तुएँ कहलाती हैं।

बाह्यताएं–ऐसी स्थितियाँ जिनमें व्यक्ति या फर्म की क्रियाएं दूसरी फर्मों या व्यक्तियों को प्रभावित करती हैं, बाह्यता कहलाती है।

अपूर्ण बाजार–ऐसी स्थिति जब किसी वस्तु या सेवा को बाजार प्रदान करने में असफल हो जाते हैं, जबकि उपभोक्ता उसका भुगतान उपभोक्ता लागत से अधिक करने को तैयार होता है, अपूर्ण बाजार कहलाती है।

सूचना असफलता

कभी-कभी बाजारों में अपूर्ण जानकारी उपस्थित होती है तथा सरकारी हस्तक्षेप भी अनुपस्थित होता है जिससे बाजार की जानकारी कम मिलेगी जिससे जानकारी का एकत्रीकरण तथा प्राप्ति महँगी भी हो सकती है। बाजार में सरकारी हस्तक्षेप के दो क्षेत्र हैं–पहला आय वितरण सुधारना तथा दूसरा लोगों को वस्तुओं का उपभोग करने के लिए बाध्य करना।

सरकार की असफलता

सरकार बहुत से कार्यों में जनता को सेवा प्रदान करती है, परंतु कुछ परिस्थितियों में सरकार अपने प्रयोजनों को कार्यों में परिणत नहीं कर पाती हैं, जिसका कारण कुछ राजनैतिक कारक होते हैं। सरकार की यह असफलता सरकारी असफलता कहलाती है। सरकार की असफलता के कई कारण हैं–

1. सरकार के पास सूचना सीमित होती है।
2. सरकार का एजेंटों पर सीमित नियंत्रण होता है।
3. सरकार का नौकरशाही पर भी सीमित नियंत्रण होता है।
4. राजनैतिक प्रक्रिया द्वारा आरोपित प्रतिबंध भी सरकार की असफलता के कारण होते हैं।

सरकार द्वारा अपने अभिकथित नीति उद्देश्यों को भी पूरा न कर पाने के कई कारण हो सकते हैं–

1. सरकारी कार्यकर्ता कई स्थितियों में स्वहित की पूर्ति करते हैं।

क्या आप जानते हैं निर्वाचन के दबाव सरकार को अकुशल नीतियाँ अपनाने के लिए बाध्य करते हैं।

2. सरकार अल्प-कालिक परिप्रेक्ष्य के साथ कार्य करती है।
3. कई बार सरकार की विशिष्ट नीति उद्देश्यों के भी दृष्टतम समाधान नहीं निकलते।

नोट

4. समन्वय की समस्या के समाधान के लिए सरकार के पास सूचना का अभाव होता है।
5. कुछ दबाव समूह निर्णय लेने की प्रक्रिया को बलपूर्वक हथिया लेते हैं तथा स्वहित में निर्णय लेते हैं।

संस्थाएँ और प्रशासन

बाजार कभी-कभी दक्षता से प्रयास करने पर असफल हो जाते हैं तथा जब सरकार उन्हें सुधारने के प्रयत्न में और भी खराब बना देती है। अत: संस्थानिक ढाँचे जिनके अंतर्गत बाजार कार्य करते हैं हमें उन पर विचार अवश्य करना चाहिए। भिन्न देशों में भिन्न संस्था ढाँचों के कारण आर्थिक संवृद्धि भी भिन्न है। डंगलस नॉर्थ के अनुसार "सामाजिक या औपचारिक मानवीय रूप अभिकल्पित रुकावटें जो मानवीय अंत:क्रियाओं को गढ़ती हैं, संस्थाएँ कहलाती हैं।" संस्थाएँ महत्त्वपूर्ण होने के साथ-साथ अंतर्जात भी होती हैं। आर्थिक विश्लेषण की दो धाराएँ हैं–

1. भू-संपत्ति अधिकारों तथा लेन-देन की लागतों में परिवर्तन जिनका आर्थिक विकास पर बृहत प्रभाव होता है।
2. सूचना अर्थशास्त्र में दूसरी धारा हाल की घटनाओं को उपयोग करने की चेष्टा करती हैं।

आर्थिक विकास में सामाजिक मानदंडों और समुदाय की भूमिका

व्यष्टि आर्थिक सिद्धांत में बाधा होने पर आर्थिक चयनकर्ता, निर्णय फलन को अधिकतम कर देते हैं। मानदंड या प्रथाएँ बाधा उत्पन्न कर सकते हैं या विकास को प्रौन्नत कर सकते हैं। सरकारी या बाजारी असफलता को सही करना आसान नहीं होता। श्रम विभाजन की समस्याओं को हमेशा समुदाय नहीं हल कर सकता परंतु ऐच्छिक रूप से सहयोग करने में मार्गदर्शन करता है। संसाधन समुदाय की सामूहिक संपत्ति होते हैं।

टास्क पेरेटो- दुष्टमता किसे कहते है

अंत:क्षेत्रीय पूरकताएँ, समन्वय की असफलताएँ और ऐतिहासिक जकड़न

विकास प्रक्रिया पथ आश्रित होता है। इस प्रक्रिया के संपूर्ण इतिहास को देखने की आवश्यकता होती है। पथ आश्रित सिद्धांत विभिन्न स्थितियों को संबोधित करता है। जैसे–संतुलन सामान्यत: आर्थिक एजेंटों का परिणाम होता है जो क्रियाएँ चुनते हैं तथा निर्णय लेते हैं। **नेटवर्क** बाह्यताओं का अर्थ है कि प्रौद्योगिकी को अपनाने का लाभ इस पर निर्भर करता है कि कितने लोगों ने उसी प्रौद्योगिकी को पहले ही अपना लिया है। उप दृष्टतम विकल्प लेने में पूरकताएँ तथा **नेटवर्क/नेटवर्क बाह्यताएँ** स्थिति उत्पन्न करती हैं। पूरकताओं तथा **नेटवर्क/नेटवर्क बाह्यताओं** की वजह से अनेक संतुलन हो सकते हैं, परंतु चुने गये संतुलन की कोटि निम्य या उच्च चुने गए पथ पर निर्भर करती है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

1. रिक्त स्थानों की पूर्ती करें (Fill in blanks)

1. पैरेटो-दुष्टमता का अर्थ है किसी को गरीब बनाए बिना किसी को ..... बनाना असंभव होता है।
2. केवल ..... की स्थिति में ही पैरेटो दुष्टमाता को प्राप्त किया जा सकता है।
3. ..... में सरकारी हस्तक्षेप के दो क्षेत्र हैं।
4. सेकार का ..... पर सीमित नियंत्रण होता है
5. ..... महत्त्वपूर्ण होने के साथ-साथ अंतर्जात भी होती हैं।
6. विकासा प्रक्रिया पथ ..... होता है।

नोट

16.2 सारांश (Summary)

●प्रतियोगी बाजार कुशलतापूर्वक प्रोन्नति करते हैं तथा ऐसी स्थितियाँ भी हो सकती है जहाँ प्रतियोगी बाजार अच्छे से नहीं चलते।

- पेरेटो-दृष्टतमता का अर्थ है कि किसी को गरीब बनाए बिना किसी को धनी बनाना असंभव होता है।
- केवल पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में ही पैरेटो-दृष्टतमता को प्राप्त किया जा सकता है।
- एकाधिकार के अन्दर निष्फल हानि वह होता है जिसमें क्रेता तथा विक्रेता दोनों को ही संतुलित उत्पादन का भाग प्राप्त नहीं होता।
- ऐसी स्थितियाँ जिनमें व्यक्ति या फर्म की क्रियाएं दूसरी फर्मों या व्यक्तियों को प्रभावित करती हैं, बाह्यता कहलाती है।
- बाजार में सरकारी हस्तक्षेप के दो क्षेत्र हैं–पहला आय वितरण सुधारना तथा दूसरा लोगों को वस्तुओं का उपभोग करने के लिए बाध्य करना।
- सरकार बहुत से कार्यों में जनता को सेवा प्रदान करती है, परंतु कुछ परिस्थितियों में सरकार अपने प्रयोजनों को कार्यों में परिणत नहीं कर पाती हैं, जिसका कारण कुछ राजनैतिक कारक होते हैं।
- बाजार कभी-कभी दक्षता से प्रयास करने पर असफल हो जाते हैं तथा जब सरकार उन्हें सुधारने के प्रयत्न में और भी खराब बना देती है।
- डंगलस नॉर्थ के अनुसार "सामाजिक या औपचारिक मानवीय रूप अभिकल्पित रुकावटें जो मानवीय अंत:क्रियाओं को गढ़ती हैं, संस्थाएँ कहलाती हैं।"
- व्यष्टि आर्थिक सिद्धांत में बाधा होने पर आर्थिक चयनकर्ता, निर्णय फलन को अधिकतम कर देते हैं। मानदंड या प्रथाएँ बाधा उत्पन्न कर सकते हैं या विकास को प्रौन्नत कर सकते हैं।
- पूरकताओं तथा **नेटवर्क/नेटवर्क बाह्यताओं** की वजह से अनेक संतुलन हो सकते हैं, परंतु चुने गये संतुलन की कोटि निम्य या उच्च चुने गए पथ पर निर्भर करती है।

16.3 शब्दकोश (Keywords)

- **दक्षता–** निपुणता
- **परिणत–** चारों ओर से झुका हुआ, झुकाया हुआ

16.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. आर्थिक विकास एवं संस्थाएं किस प्रकार एक दूसरे से संबंधित हैं?

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

1. धनी
2. पूर्व प्रतियोगिता
3. बाजार
4. एजेंटों
4. संस्थाएँ
6. आश्रित

16.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Reading)

पुस्तकें

1. *संवृद्धि एवं विकास का अर्थशास्त्र*: डॉ. पी. मिश्रा; साहित्य भवन पब्लिकेशन्स : आगरा
2. *विकास नियोजन एवं नीतियाँ*: वी. सी सिन्हा: साहित्य भवन पब्लिकेशन्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.) लि. रजिस्टर्ड कार्यालय नई दिल्ली
3. *विकास का अर्थशास्त्र एवं आयोजन*: डा. एस. एल. डिंगल: वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा. लि.

नोट

इकाई–17: विकास के आयाम : गरीबी का दुष्चक्र एवं श्रम की असीमित पूर्ति (Approaches to Development: Vicious Circle of Poverty and Unlimited Supply of Labour)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

17.1 विकास के आयाम (Approaches to Development)

17.2 निर्धनता का दुष्चक्र (Vicious Circle of Poverty)

17.3 निर्धनता के दुष्चक्र का अर्थ (Meaning of Vicious Circle of Poverty)

17.4 निर्धनता के दुष्चक्र के प्रमुख पक्ष (Main Aspects of Vicious Circle of Poverty)

17.5 दुष्चक्र को तोड़ने के तरीके (Methods of Breaking the Vicious Circle)

17.6 निर्धनता के दुष्चक्र की आलोचनाएँ (Criticisms of Vicious Circle of Poverty)

17.7 सारांश (Summary)

17.8 शब्दकोश (Keywords)

17.9 अभ्यास–प्रश्न (Review Questions)

17.10 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- आर्थिक विकास के आयाम को समझने में।
- निर्धनता के दुष्चक्र को समझने में।
- निर्धनता के दुष्चक्र के प्रमुख पक्ष को समझने में।
- निर्धनता के दुष्चक्र को तोड़ने के तरीकों को समझने में।
- निर्धनता के दुश्चक्र की आलोचनाओं को समझने में।

प्रस्तावना (Introduction)

आर्थिक विकास की जटिल प्रक्रिया जोकि अल्पविकसित देशों के लिए अपरिहार्य है। किसी एक घटक का परिणाम नहीं होती है, अपितु बहुत से घटकों की अन्तर क्रिया को सामूहिक परिणाम होती है। अर्द्ध–विकसित राष्ट्रों की प्रमुख विशेषताओं के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि ये देश सामान्यत: निर्धन होते हैं तथा ऐसे राष्ट्रों में, निर्धनता के चिरस्थायी बँधे रहने की प्रवृत्ति पायी जाती है। इस तथ्य को **प्रो. नर्क्स** (Naurks) ने निर्धनता का दुश्चक्र कहा है।

नोट

17.1 विकास के आयाम (Approaches to Development)

अल्पविकसित देशों मे जिन प्रमुख विशिष्टताओं की चर्चा की गई है, उन्हें आर्थिक विकास में बाधाएँ भी माना जा सकता है। यद्यपि अल्पविकसित देशों की समान्य विशिष्टताएँ सब अल्पविकसित देशों में समान रूप से नहीं मिलती फिर भी इन विशिष्टताओं में इस प्रश्न का स्पष्ट उत्तर विद्यमान है कि कोई देश दरिद्र क्यों है ? इन विशिष्टताओं में से अनेक दरिद्रता का कारण और परिणाम दोनों हैं। वास्तव में, चक्रीय संबंध होते हैं। जिन्हें दरिद्रता के दुष्चक्र कहा जाता है, जो ऐसे देशों में विकास के निम्न स्तर को चिरस्थायी बनाने का प्रयत्न करते हैं।

विकसित देशों के आर्थिक वृद्धि के सैद्धान्तिक मॉडलों के साथ-साथ उनकी अत्यधिक आर्थिक वृद्धि के अनेक अनुभविक अध्ययन भी किए गए हैं। इन अध्ययनों में प्रयत्न किया गया है कि विभिन्न वृद्धि कारकों के अवलोकित अन्त: संबंध सुलझाकर आर्थिक वृद्धि के स्रोतों का पता लगाया जाए। वे वृद्धि कारक इस तरह के हैं, जैसे कि उत्पादन की वृद्धि-दर, श्रम शक्ति की मात्रा एवं गुणवत्ता में वृद्धि की दर पूँजी का स्टॉक तथा तकनीकी प्रगति की दर जो इन साधनों की उत्पादकता को निर्धारित करती है।

17.2 निर्धनता का दुष्चक्र (Vicious Circle of Poverty)

निर्धनता का दुश्चक्र विभिन्न तत्वों के वृत्तीय सम्बन्ध का द्योतक है जो एक-दूसरे से मिलकर इस प्रकार क्रिया तथा प्रतिक्रिया करते हैं कि देश गरीबी की स्थिति में जकड़ा रहता है।

पूर्ति पक्ष की ओर निर्धनता के दुश्चक्र के उत्पन्न होने का प्रमुख कारण बचत की अपर्याप्तता है तथा **माँग पक्ष** की ओर निर्धनता के दुश्चक्र के उत्पन्न होने का प्रमुख कारण माँग की कमी या बाजार का सीमित आकार है।

(1) **प्रौद्योगिकीय-द्वैतवाद** (Technology Dualism)—इसका अर्थ है—एक अर्द्ध-विकसित अर्थव्यवस्था में उत्पादन की उन्नति और पिछड़ी हुई तकनीकों का साथ-साथ प्रयोग किया जाना।

(2) **व्यापार की शर्तें** (Terms of Trade)—व्यापार की शर्तें उस दर से सम्बन्धित है जिस पर किसी देश के निर्यात और आयात में विनिमय होता है।

(3) **प्रदर्शन प्रभाव** (Demonstration Effect)—समाज में रहने वाले अन्य व्यक्तियों के श्रेष्ठ उपभोग व्यवहार की नकल करने को प्रदर्शन प्रभाव कहते हैं। इसे एक सिद्धान्त के रूप में प्रस्तुत करने का श्रेय **जेम्स एस. ड्यूजनबरी** (James S. Dussenberry) को है।

(4) **संकुचन प्रभाव व विस्तारक प्रभाव** (Backwash Effect and Spread Effect)—संकुचन प्रभाव आर्थिक विकास के प्रतिकूल होते हैं, जबकि विस्तार प्रभाव आर्थिक विकास के अनुकूल होता है। मिर्डल के अनुसार अन्तर्राष्ट्रीय असमानताओं का मुख्य कारण **प्रबल संकुचन प्रभाव व दुर्बल विस्तारक प्रभाव है।**

प्रश्न यह उठता है कि अर्द्ध-विकसित देश किन कारणों से आर्थिक दृष्टि से पिछड़े हुए हैं। इनके विकास के रास्ते में क्या मुख्य बाधाएँ हैं जिनके कारण इनका विकास नहीं हो पा रहा है।

यद्यपि अर्द्ध-विकसित देशों की सामान्य विशेषताएँ ही उनके पिछड़े हुए आर्थिक विकास की कहानी कहती हैं, फिर भी इन देशों के आर्थिक पिछड़ेपन के विभिन्न कारणों का कोई ऐसा सामान्य तत्वों का समूह नहीं है जिसे सभी अर्द्ध-विकसित देशों के पिछड़ेपन के लिए उत्तरदायी कहा जा सके।

नोट

आर्थिक विकास में बाधाएँ या अल्पविकास के कारण

- (I) राष्ट्रीय बाधाएँ
  - (A) आर्थिक बाधाएँ
    - (1) पूँजी निर्माण की समस्या
    - (2) बाजार की अपूर्णताएँ
    - (3) आर्थिक संरचना का अभाव
    - (4) जनसंख्या सम्बन्धी बाधाएँ
    - (5) योग्य साहसी का अभाव
    - (6) औद्योगिकीय या तकनीकी पिछड़ापन
  - (B) गैर आर्थिक बाधाएँ
    - (1) सामाजिक बाधाएँ
    - (2) धार्मिक बाधाएँ
    - (3) राजनीतिक बाधाएँ
    - (4) प्रशासनिक बाधाएँ
- (II) अन्तर्राष्ट्रीय बाधाएँ
  1. द्वैत अर्थव्यवस्था
  2. व्यापार की शर्तों में दीर्घकालीन प्रतिकूलता
  3. मिर्डल का चक्रीय कार्यकारण दृष्टिकोण

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

1. रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks)–

1. दरिद्रता का कारण और परिणाम ..... है।
2. आर्थिक वृद्धि के लिए आर्थिक ..... का पता लगाया जाना चाहिए।
3. निर्धनता का दुश्चक्र विभिन्न तत्वों के वृत्तीय संबंध का ..... है।
4. संकुचन प्रभाव आर्थिक विकास के ..... होते है।
5. ..... ने निर्धनता के दुश्चक्र का प्रतिपादन किया है।

17.3 निर्धनता के दुष्चक्र का अर्थ (Meaning of Vicious Circle of Poverty)

निर्धनता के दुश्चक्र से आशय यह है कि निर्धनता स्वयं ही निर्धनता को जन्म देती है। दूसरे शब्दों में, निर्धनता का दुश्चक्र ऐसी वृत्ताकार (Circular) क्रिया है जिसका प्रारम्भ भी निर्धनता है तथा अन्त भी निर्धनता है। संक्षेप में, निर्धनता का दुश्चक्र से अभिप्राय उस चक्रीय या वृत्ताकार सम्बन्ध से है जिसका कारण और परिणाम की अलग-अलग व्याख्या करना सम्भव नहीं है। प्रो. हिंगिंस इसी बात को 'पहले मुर्गी या अण्डा' के प्रश्न के रूप में उठाते हुए कहते हैं, "आर्थिक विकास का पथ अनेक दुश्चक्रों से भरा है।"

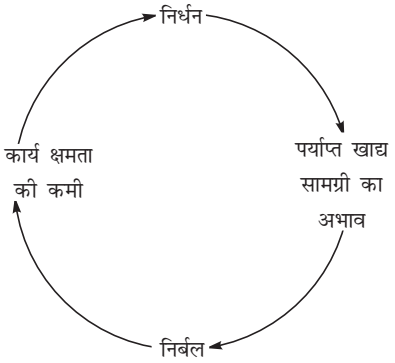

चित्र 17.1

दुश्चक्र की व्याख्या (Explanation of the Vicious Circle)–निर्धनता के दुश्चक्र की कार्यविधि को स्पष्ट करने के लिए हम एक सामान्य व्यक्ति का उदाहरण लेते हैं। उदाहरण के लिए, एक निर्धन व्यक्ति को पर्याप्त खाद्य नहीं मिल पाता। कम खाद्य मिलने के कारण वह निर्बल हो जाता है। निर्बल हो जाने के कारण उसकी कार्यक्षमता कम हो जाती है जिसका अर्थ यह है कि वह निर्धन है अर्थात् उसकी आय कम है जिसका फिर अर्थ यह है कि उसे पर्याप्त खाद्य सामग्री नहीं मिलती और इस प्रकार यह क्रम आगे भी चलता रहता है जैसा कि चित्र 17.1 में दर्शाया गया है। चित्र 17.1 में प्रदर्शित स्थिति को हम इस प्रकार व्यक्त कर सकते हैं कि "व्यक्ति इसलिए निर्धन है कि वह निर्धन है।"

नोट

जो बात एक व्यक्ति पर लागू होती है, वह सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था पर लागू होती है। इसलिए कहा जाता है कि एक देश इसलिए निर्धन है कि वह निर्धन है।

प्रो. नर्क्स ने भी लिखा है कि निर्धनता के दुश्चक्र का अर्थ नक्षत्र-मण्डल के समान शक्तियों का इस प्रकार से घूमना है कि वे परस्पर क्रिया-प्रतिक्रिया करती हुई निर्धन देश को निर्धनता की अवस्था में ही रखें।

टास्क क्या विकास का मार्ग विषैली वृत्तों से अवरूद्ध हो चुका है।

निर्धनता के दुश्चक्र की विशेषताएँ (Characteristics of Vicious Circle of Poverty)–उपर्युक्त विश्लेषण से हमें निर्धनता के दुश्चक्र की निम्नलिखित विशेषताओं का अभास होता है–

(1) निर्धनता का कारण व परिणाम स्वयं निर्धनता है।

(2) निर्धनता अपने प्रारम्भिक बिन्दु से अन्तिम बिन्दु तक चक्रीय या वृत्ताकार ढंग से क्रिया व प्रतिक्रिया करती हुई बढ़ती है।

(3) इसका प्रभाव संचयी होता है अर्थात् एक स्तर पर पायी जाने वाली निर्धनता अगले स्तर पर और भी अधिक घातक होने लगती है।

(4) यह एक ऐसी अनवरत प्रक्रिया है जो सम्बन्धित घटकों को सदैव नीचे की ओर धकेलती है।

(5) निर्धनता के दुश्चक्र का प्रारम्भ एक ऋणात्मक घटक की उपस्थिति से होता है और यह घटक अगले ऋणात्मक घटक का कारण व परिणाम दोनों होता है।

17.4 निर्धनता के दुष्चक्र के प्रमुख पक्ष (Main Aspects of Vicious Circle of Poverty)

निर्धनता के दुश्चक्र का मुख्य कारण अर्द्ध-विकसित देशों में पूँजी की **पूर्ति** व **माँग** का अभाव है। किसी देश में **पूँजी की पूर्ति** बचत करने की इच्छा व शक्ति पर निर्भर करती है, जबकि **पूँजी की माँग विनियोग** की प्रेरणाओं पर निर्भर करती है। विश्व के अधिकांश निर्धन देशों में जनता के इस कुचक्र में माँग और पूर्ति दोनों ही पक्ष हैं। इस प्रकार **निधनता के दुश्चक्र** के मुख्य पक्ष निम्नलिखित दो हैं–

(1) दुश्चक्र का पूर्ति पक्ष अथवा कम बचत का दुश्चक्र (Supply side of Vicious Circle or Vicious Circle of Low Saving)–निर्धनता के दुश्चक्र के पूर्ति पक्ष से यह मालूम होता है कि अर्द्ध-विकसित देशों में लोगों की आय इतनी कम होती है कि वे बचत करके पूँजी निर्माण करने में असमर्थ रहते हैं। इस प्रक्रिया को एक चित्र की सहायता से स्पष्ट किया जा सकता है। चित्र 17.2 में दर्शाया गया है कि आर्थिक पिछड़ापन और पूँजी की कमी के कारण उत्पादकता का स्तर नीचा बना रहता है जिसके फलस्वरूप आय का स्तर नीचा हो जाता है। नीची आय के स्तर पर लोगों की बचत करने की क्षमता और इच्छा कम हो जाती है। बचत में कमी विनियोग के स्तर को भी कम बना देती है जिसके कारण पूँजी निर्माण की दर कम होती है और अर्थव्यवस्था आर्थिक पिछड़ेपन में फँसी रहती है क्योंकि इस विवरण में हम कम विनियोग का कारण पूँजी को न्यूनतम बताते हैं, इसलिए इसे निर्धनता का चक्र का पूर्ति पक्ष का नाम देते हैं। दुश्चक्र के पूर्ति पक्ष को नीचे चार्ट में दर्शाया गया है–

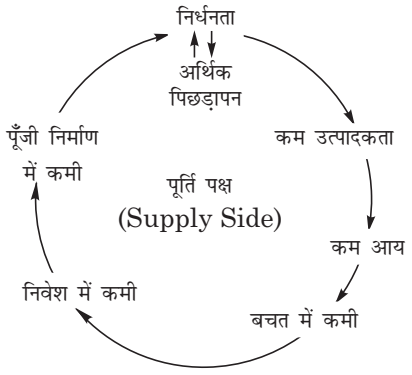

चित्र 17.2

नोट

नोट्स अर्थव्यवस्था की आर्थिक निर्माण संरचना एक मंच के रूप में होती है जिस पर विकास का नाटक संचालित होता है जब तक यह उपयुक्त आकार प्रकार का नहीं होगा, तब तक नाटक का कुशल संचालन नहीं हो सकेगा।

दुश्चक्र का पूर्ति पक्ष (Supply Side of Vicious Circle of Poverty)

कम आय → कम बचत → कम विनियोग → कम पूँजी निर्माण → कम उत्पादकता → कम आय →

निर्धनता दुश्चक्र का माँग पक्ष अथवा कम माँग का दुश्चक्र (Demand Side of Vicious Circle or Vicious Circle of Low Demand)–निर्धनता के दुश्चक्र का माँग पक्ष यह है कि अर्द्ध-विकसित राष्ट्रों में पूँजी की माँग सीमित होती है। अर्द्ध-विकसित अर्थव्यवस्थाएँ पर्याप्त मात्रा में निवेश को प्रोत्साहित करने में असमर्थ रहती हैं जिसके कारण गरीबी का दुश्चक्र क्रियाशील रहता है। इस चक्र को हम चित्र 17.3 की सहायता से स्पष्ट कर सकते हैं।

चित्र में बताया गया है कि आर्थिक पिछड़ेपन के कारण लोगों की उत्पादकता कम होती है तथा आय का स्तर भी नीचा रहता है। इसलिए लोगों की क्रय-शक्ति भी कम होती है जिसके कारण बाजार का आकार सीमित हो जाता है। सीमित बाजार के कारण विनियोग की प्रेरणा नहीं मिल पाती। विनियोग का स्तर कम होने के कारण पूँजी निर्माण की मात्रा कम हो जाती है जो आर्थिक पिछड़ेपन को जन्म देती है।

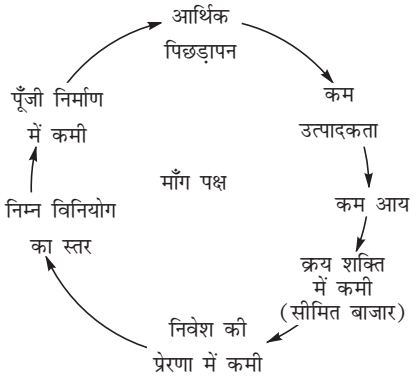

चित्र 3.3

निर्धनता के दुश्चक्र का माँग पक्ष (Demand Side of Vicious Circle of Poverty)

कम आय → कम माँग या कम क्रय शक्ति → कम निवेश → कम पूँजी निर्माण → कम उत्पादकता → कम आय

निर्धनता के दुश्चक्र के समीकरण (Equations of Vicious Circle of Poverty)–निर्धनता के दुश्चक्र को निम्न समीकरणों की सहायता से व्यक्त किया जा सकता है–

(1) आय निर्भर करती है विनियोग (पूँजी निर्माण) पर अर्थात् आय विनियोग का फलन है–

$$y = f(I) \quad ...(i)$$

(2) विनियोग बचत पर निर्भर करती है अर्थात् विनियोग बचत का फलन है–

$$I = f(S) \quad ...(ii)$$

(3) बचत आय पर निर्भर करती है अर्थात् बचत आय का फलन है–

$$S = f(Y) \quad ...(iii)$$

इस प्रकार (*i*) आय में होने वाली वृद्धि पूँजी (विनियोग) पर निर्भर करती है। (*ii*) पूँजी में होने वाली वृद्धि बचत पर निर्भर करती है और (*iii*) बचत में होने वाली वृद्धि स्वयं आय पर निर्भर करती है। फलतः निर्धनता का दुश्चक्र चलता है और अर्द्ध-विकसित देशों में आर्थिक विकास की दर लगभग शून्य (Zero) होती है।

नोट

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

2. सही विकल्प चुनिए– (Choose the correct option)

1. गरीबी के दुश्चक्र में निम्न में से किन के बीच संबंध की व्याख्या है–
   (क) उत्पादकता एवं आय (ख) आय एवं जनसंख्या
   (ग) बचत एवं उपभोग (घ) इनमें से कोई नहीं।
2. माँग पक्ष की ओर निर्धनता के दुश्चक्र उत्पन्न होने का प्रमुख कारण है–
   (क) सीमित माँग (ख) कम बचत
   (ग) कम विनियोग (घ) इनमें से कोई नहीं।
3. आर्थिक पिछड़ापन और पूँजी की कमी के कारण उत्पादकता का स्तर हमेशा बना रहता है।
   (क) नीचा (ख) ऊँचा
   (ग) सन्तुलन में (घ) इनमें से कोई नहीं।
4. निर्धनता का कारण और परिणाम है–
   (क) स्वयं निर्धनता (ख) अल्पविकास
   (ग) (क) और (ख) दोनों (घ) इनमें से कोई नहीं।
5. निर्धनता के दुश्चक्र का समीकरण है–
   (क) $y = f(I)$ (ख) $I = f(S)$
   (ग) $S = f(y)$ (घ) इनमें से कोई नहीं।

दुश्चक्र को तोड़ने की आवश्यकता (Need to Break the Vicious Circle)–"निर्धनता एक शाप है किन्तु इससे भी बड़ा अभिशाप यह है कि यह स्वयं को चिरस्थायी बनाये रखती है।" यह राष्ट्र को निर्धनता एवं अल्पविकास में जकड़ लेती है। निर्धन देशों के अनुभव ने यह प्रमाणित कर दिया है कि यह **"निर्धनता का दूषित चक्र स्वतः सुधारक न होकर स्वतः स्थायी है"** (Poverty is not self-correcting but self-perpetuating) इसीलिए इसे दूषित (Vicious) कहा जाता है किन्तु इसका अभिप्राय यह नहीं है कि निर्धन राष्ट्र सदैव निर्धन बने रहेंगे। आज विकसित कहलाने वाले देश, जैसे–रूस, अमेरिका, इंग्लैण्ड आदि भी कुछेक दशाब्दियों पूर्व निर्धन और अर्द्ध-विकसित देश थे। एशिया महाद्वीप के ही दो बड़े देश जापान और चीन आर्थिक प्रगति के ज्वलन्त उदाहरण हैं। इसी प्रकार अन्य विकासशील देश भी निर्धनता के अभिशाप से मुक्ति प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील हैं। इन विकासशील देशों के निवासी यह स्वीकार करने के लिए तत्पर नहीं हैं कि गरीबी और पिछड़ापन सदा के लिए उनके भाग्य में लिखा है। अतः निर्धनता के दलदल से बाहर निकलने के लिए यह आवश्यक है कि विकासशील देश निर्धनता के दुष्चक्र को प्रभावशाली ढंग से तोड़ें।

17.5 दुष्चक्र को तोड़ने के तरीके (Methods of Breaking the Vicious Circle)

प्रो. नर्क्स का कथन है, "हम जानते हैं कि विश्व के कुछ भागों में आर्थिक विकास हुआ है। अतः स्पष्ट है कि इन देशों ने किसी न किसी प्रकार इस दुष्चक्र को तोड़ा होगा। इसलिए गतिहीनता के सिद्धान्त के बाद अब विकास-सिद्धान्त का प्रतिपादन किया जाना चाहिए जिसमें यह विवेचन किया जाना चाहिए कि अर्थव्यवस्था के इस स्थिर पिछड़ेपन से मुक्ति पाने में कौन-सी शक्तियाँ सहायक रही हैं या हैं।"

संक्षेप में, आर्थिक विकास को प्राप्त करने के लिए इस दुष्चक्र को तोड़ना अर्द्ध-विकसित देशों का प्राथमिक कार्य होता है परन्तु इस दरिद्रता के दुश्चक्र को समाप्त करना सहज कार्य नहीं है। इसके समाधान के लिए एक प्रभावशाली आन्दोलन की आवश्यकता है।

नोट

क्या आप जानते हैं विकासशील देश भी निर्धनता के अभिशाप से मुक्ति प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील हैं। इन विकासशील देशों के निवासी यह स्वीकार करने के लिए तत्पर नहीं हैं कि गरीबी और पिछड़ापन सदा के लिए उनके भाग्य में लिखा है।

सर्वप्रथम पूँजी के पूर्ति पक्ष में **दूषित चक्र** को तोड़ना होगा, ताकि पूँजी के अभाव की समस्या से मुक्ति पायी जा सके। इसके लिए हमें–(अ) बचत तथा विनियोग के प्रत्येक सम्भव उपाय का प्रयत्न करना होगा; (ब) समारोहों, उत्सवों, वैभवपूर्ण उपभोग, आभूषणों आदि अनुत्पादक कार्यों पर किये जाने वाले व्यय को कम कर, इसे उत्पादक कार्यों में लगाना होगा; (स) जनता के आर्थिक विकास की प्रारम्भिक अवस्था में उपभोग में कटौती करनी होगी; (द) अर्द्ध-विकसित देशों में व्याप्त अदृश्य बेरोजगारी के रूप में छिपी हुई बचत सम्भावनाओं का प्रयोग किया जा सकता है; (य) अन्त में, पूँजी की आवश्यकता का कुछ भाग विदेशी सहायता से भी पूरा किया जा सकता है। इन सभी आन्तरिक तथा बाह्य उपायों के द्वारा पूँजी के पूर्ति पक्ष के दूषित चक्र को तोड़कर बचत एवं विनियोग को प्रोत्साहन दिया जा सकता है।

इसी प्रकार **माँगपक्षीय दूषित चक्र** को भी तोड़ा जा सकता है। इसके लिए पूँजी की माँग-वृद्धि तथा बाजार के आकार में वृद्धि करनी होगी। बाजार के विस्तार के लिए सन्तुलित तथा असन्तुलित विकास के मार्ग अपनाये जा सकते हैं। **सन्तुलित विकास** की स्थिति में एक साथ कई प्रकार के विभिन्न उद्योगों में पूँजी का विनियोग किया जाता है जिनके कारण माँग में वृद्धि होती है और बाजार का विस्तार होता है। असन्तुलित विकास की स्थिति में उद्योगों की स्थापना का भार निजी उद्योगपतियों को सौंपा जाता है।

17.6 निर्धनता के दुश्चक्र की आलोचनाएँ (Criticisms of Vicious Circle of Poverty)

प्रो. गुन्नार मिर्डल ने निर्धनता के दुश्चक्र की संचयी प्रक्रिया व एकतरफा नकारात्मक स्वरूप की आलोचना करते हुए कहा है कि यह आवश्यक नहीं है कि निर्धनता का यह दुश्चक्र सदैव एक ही दिशा अर्थात् नीचे की ओर अग्रसर होता रहे अर्थात् एक निर्धन देश उत्तरोत्तर निर्धन ही होता जायेगा। तृतीय विश्व के देशों के अनुभविक तथ्य भी इस बात की पुष्टि नहीं करते।

पी. टी. बौर का विचार है कि 'निर्धनता के दुश्चक्र ' का सिद्धान्त सत्य नहीं है। कारण यह है कि यदि यह सत्य होता तो धनी व गरीब देशों में बहुत-से व्यक्ति व समुदाय गरीबी से अमीरी की ओर नहीं जा सकते थे। आज के विकसित राष्ट्रों ने अवश्य ही निर्धनता व निम्न प्रति व्यक्ति आय व अल्प पूँजी से ही प्रारम्भ किया था। इन्हें बाह्य पूँजी व अनुदान भी अधिक प्राप्त नहीं हुए लेकिन इसके बाद भी इन्होंने अपना विकास किया। तात्पर्य यह है कि 'निर्धनता के दुश्चक्र ' की बात सत्य नहीं मानी जा सकती। अर्द्ध-विकसित राष्ट्रों में स्वत: बहुत तीव्रता से प्रगति हुई।

संक्षेप में, निर्धनता के दुश्चक्र का सिद्धान्त तर्क, अनुभव एवं विश्लेषण की दृष्टि से अल्पविकास की उचित व्याख्या नहीं मानी जा सकती। इस सिद्धान्त का **केवल यह योगदान है कि इसने आर्थिक विकास के लिए बचत व पूँजी निर्माण के महत्त्व की व्याख्या की है।**

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

3. निम्नलिखित कथनों में सत्य तथा असत्य की पहचान करें–

1. आर्थिक विकास को प्राप्त करने के लिए दुश्चक्र को तोड़ना अर्द्धविकसित देश का प्राथमिक कार्य है।
2. माँग-पक्षीय दूषित चक्र को तोड़ने के लिए पूँजी की माँग वृद्धि तथा बाजार के आकार में वृद्धि नहीं करनी पड़ती।

नोट

3. संतुलित विकास की स्थिति में एक साथ विभिन्न उद्योगों में पूँजी का विनियोग किया जाता है।
4. निर्धनता का दुश्चक्र सदैव एक ही दिशा में होता है।

17.7 सारांश (Summary)

- अल्पविकसित देशों में जिन प्रमुख विशिष्टताओं की चर्चा की गई है, उन्हें आर्थिक विकास में बाधाएँ भी माना जा सकता है।
- विकसित देशों के आर्थिक वृद्धि के सैद्धान्तिक मॉडलों के साथ-साथ उनकी अत्यधिक आर्थिक वृद्धि के अनेक अनुभविक अध्ययन भी किए गए हैं।
- निर्धनता का दुश्चक्र विभिन्न तत्वों के वृत्तीय सम्बन्ध का द्योतक है जो एक-दूसरे से मिलकर इस प्रकार क्रिया तथा प्रतिक्रिया करते हैं कि देश गरीबी की स्थिति में जकड़ा रहता है।
- संकुचन प्रभाव आर्थिक विकास के प्रतिकूल होते हैं, जबकि विस्तार प्रभाव आर्थिक विकास के अनुकूल होता हैं।
- अर्द्ध-विकसित देशों की सामान्य विशेषताएँ ही उनके पिछड़े हुए आर्थिक विकास की कहानी कहती हैं।
- निर्धनता का दुश्चक्र ऐसी वृत्ताकार (Circular) क्रिया है जिसका प्रारम्भ भी निर्धनता है तथा अन्त भी निर्धनता है।
- प्रो. नर्क्स ने भी लिखा है कि निर्धनता के दुश्चक्र का अर्थ नक्षत्र-मण्डल के समान शक्तियों का इस प्रकार से घूमना है कि वे परस्पर क्रिया-प्रतिक्रिया करती हुई निर्धन देश को निर्धनता की अवस्था में ही रखें।
- निर्धनता के दुश्चक्र का मुख्य कारण अर्द्ध-विकसित देशों में पूँजी की **पूर्ति** व **माँग** का अभाव है।
- निर्धनता के दुश्चक्र के पूर्ति पक्ष से यह मालूम होता है कि अर्द्ध-विकसित देशों में लोगों की आय इतनी कम होती है कि वे बचत करके पूँजी निर्माण करने में असमर्थ रहते हैं।
- आर्थिक पिछड़ेपन के कारण लोगों की उत्पादकता कम होती है तथा आय का स्तर भी नीचा रहता है। इसलिए लोगों की क्रय-शक्ति भी कम होती है।
- आर्थिक विकास को प्राप्त करने के लिए इस दुष्चक्र को तोड़ना अर्द्ध-विकसित देशों का प्राथमिक कार्य होता है परन्तु इस दरिद्रता के दुश्चक्र को समाप्त करना सहज कार्य नहीं है। इसके समाधान के लिए एक प्रभावशाली आन्दोलन की आवश्यकता है।
- **सन्तुलित विकास** की स्थिति में एक साथ कई प्रकार के विभिन्न उद्योगों में पूँजी का विनियोग किया जाता है जिनके कारण माँग में वृद्धि होती है और बाजार का विस्तार होता है।

17.8 शब्दकोश (Keywords)

- **संकुचन–** सिकुड़ना, संकोचना।
- **दुश्चक्र –** साज़िश, षड्यंत्र।
- **कटौती–** काटना, काटा हुआ धन।

17.9 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. अर्द्ध-विकसित देशों के आर्थिक पिछड़ेपन का प्रमुख कारण क्या है ? स्पष्ट कीजिए।
2. निर्धनता के दुश्चक्र की अवधारणाओं को स्पष्ट कीजिए।
3. निर्धनता के दुश्चक्र को किस प्रकार तोड़ा जा सकता है ?

नोट

4. कोई देश इसलिए गरीब है क्योंकि वह गरीब है। टिप्पणी लिखिए।
5. निर्धनता के दुष्चक्रों से आप क्या समझते हैं ? एक अर्थव्यवस्था को इन चक्रों से निकालने के लिए आप किन उपायों का सुझाव देंगे ?

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

1.	1. दरिद्रता	2. स्त्रोतों	3. द्योतक	4. प्रतिकूल
	5. प्रो. नर्क्स			
2.	1. (क)	2. (क)	3. (क)	4. (क)
	5. (ग)			
3.	1. सत्य	2. असत्य	3. सत्य	4. असत्य।

17.10 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. *संवृद्धि एवं विकास का अर्थशास्त्र*: डॉ. पी. मिश्रा; साहित्य भवन पब्लिकेशन्स : आगरा
2. *विकास नियोजन एवं नीतियाँ*: वी. सी सिन्हा: साहित्य भवन पब्लिकेशन्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.) लि. रजिस्टर्ड कार्यालय नई दिल्ली
3. *विकास का अर्थशास्त्र एवं आयोजन*: डा. एस. एल. डिंगल: वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा. लि.

नोट

इकाई–18: लुइस मॉडल (Lewis Model)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)
प्रस्तावना (Introduction)
18.1 लुइस मॉडल (Lewis Model)
18.2 लुइस मॉडल की व्याख्या (Explanation of Lewis Model)
18.3 लुइस मॉडल की आलोचनाएँ (Criticisms of Lewis Model)
18.4 सारांश (Summary)
18.5 शब्दकोश (Keywords)
18.6 अभ्यास–प्रश्न (Review Questions)
18.7 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्याय के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- लुइस के मॉडल को जानने में।
- लुइस मॉडल की व्याख्या करने में में।
- लुइस मॉडल की आलोचनाओं को समझने में।

प्रस्तावना (Introduction)

प्रोफेसर लुइस ने श्रम की सीमित पूर्तियों से आर्थिक विकास (Economic development with unlimited supplies of labour) का बहुत व्यवस्थित सिद्धांत प्रस्तुत किया है। रिकार्गो की तरह लुईसू ने भी कृष्ि क्षेत्र में श्रम की अधिकता की मान्यता को लेकर आधुनिक औद्योगिक क्षेत्र के विकास की व्याख्या की है।

18.1 लुइस मॉडल (Lewis Model)

लुइस का मॉडल श्रम की असीमित पूर्ति से आर्थिक विकास (Economic Development with Unlimited Supplies of Labour, 1954) एक द्वैत अर्थव्यवस्था की मान्यता पर आधारित करते हैं जिनमें दो क्षेत्र हैं– (अ) पूँजीवादी क्षेत्र एवं (ब) जीवन निर्वाह क्षेत्र। लुइस मॉडल के अनुसार जीवन निर्वाह क्षेत्र में प्रचलित जीवन निर्वाह स्तरीय मजदूरी दर पर श्रम की पूर्ति श्रम की माँग से अधिक है और इस श्रम अतिरेक को जीवन निर्वाह स्तरीय मजदूरी दर पर दूसरी जगह लगाया जा सकता है। व्यवहार में पूँजीवादी क्षेत्र में मजदूरी निर्वाह मजदूरी से 50% अधिक होती है। चूँकि "पूँजीवादी क्षेत्र में श्रम की सीमान्त उत्पादकता मजदूरी की तुलना में अधिक होती है जिसमें इस क्षेत्र में अतिरेक पैदा होता है। इस अतिरेक को कोई परिसम्पत्तियों में निवेश करने पर पूँजी का निर्माण होता और आर्थिक

नोट

विकास की यह प्रक्रिया उस समय रुक जायेगी जब जीवन निर्वाह क्षेत्र में श्रम अतिरेक शेष नहीं रह जायेगा जिसे रोजगार पर लगाया जा सके।"

सन् 1954 में प्रकाशित एक प्रसिद्ध लेख श्रम की असीमित पूर्ति से आर्थिक विकास (Economic Development with Unlimited Supplies of Labour) में लुइस ने प्रतिष्ठित आर्थिक विकास के मॉडल को भारत जैसे श्रम की अधिकता वाले देशों की विकास प्रक्रिया पर लागू किया और रिकार्डो के **दो-क्षेत्रीय विकास मॉडल** को वर्तमान विकासशील देशों की स्थिति में सार्थक बताया। लुइस मॉडल को **दो-क्षेत्रीय द्वैत अर्थव्यवस्था मॉडल** (Dualistic Economy Model) भी कहा जाता है क्योंकि उसका मॉडल द्वैत अर्थव्यवस्था–(अ) **जीवन निर्वाह क्षेत्र** कृषि तथा (ब) **पूँजीवादी क्षेत्र** उद्योग पर आधारित है। **रिकार्डो** की तरह लुइस ने भी कृषि क्षेत्र में श्रम की अधिकता की मान्यता लेकर आधुनिक औद्योगिक क्षेत्र के विकास की व्याख्या की है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

1. रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks)–

1. लुइस का मॉडल एक ..... अर्थव्यवस्था की मान्यता पर आधारित है।
2. जीवन निर्वाह स्तर पर मजदूरी देने पर ..... श्रमिकों की माँग से अधिक होती है।
3. ..... ने प्रतिष्ठित आर्थिक विकास के मॉडल को भारत जैसे विकासशील देश की विकास प्रक्रिया पर लागू किया।
4. रिकार्डो की तरह लुइस ने भी कृषि क्षेत्र में श्रम की अधिकता की मान्यता लेकर ..... की व्याख्या की है।

18.2 लुइस मॉडल की व्याख्या (Explanation of Lewis Model)

लुइस मॉडल का अध्ययन हम निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत कर सकते हैं :

(1) केन्द्रीय समस्या : श्रम-शक्ति को एकत्र करना (Central Problem : Collection of Labour Force)–लुइस अपना मॉडल इस मान्यता से प्रारम्भ करते हैं कि अल्प-विकसित देशों में प्रचलित मजदूरी की दरों पर श्रम की पूर्ति पूर्णतया लोचदार होती है। श्रम की यह असीमित पूर्ति अर्थव्यवस्था के निर्वाह क्षेत्र में आवश्यकता से अधिक मात्रा में लगे श्रमिकों, कृषि पर बढ़ती हुई निर्भरता एवं अदृश्य बेराजगारी के रूप में देखी जा सकती है।

श्रम-शक्ति को एकत्र करने के लिए निम्न उपाय किये जाते हैं–

(अ) सर्वप्रथम अर्द्ध-विकसित देशों में काम न करने वाली महिलाओं को श्रमिकों की पूर्ति में सम्मिलित करना होगा। बहुत-सी महिलाएँ गृह-कार्य में लगी रहती हैं परन्तु उनकी क्षमता का पूर्ण उपयोग नहीं हो पाता है।

(ब) हमें उन व्यक्तियों को भी रोजगार में लगाना होगा जो अदृश्य रूप से बेरोजगार हैं या अर्द्ध-बेरोजगारी से पीड़ित हैं तथा जो छोटे व्यापारियों, घरेलू और वाणिज्यिक सेवकों के रूप में कार्य कर रहे हैं।

(स) इसी श्रम-शक्ति में देश की बढ़ती हुई जनसंख्या से फलित अतिरिक्त श्रम-शक्ति को भी सम्मिलित किया जा सकता है।

परन्तु ये सभी उपर्युक्त व्यक्ति अकुशल श्रम की श्रेणी में आते हैं, जबकि आर्थिक विकास और पूँजीवादी क्षेत्र के लिए कुशल श्रमिकों की आवश्यकता होती है। इस सम्बन्ध में लुइस का कथन है कि कुशल श्रमिकों का अभाव एक **अस्थायी गतिरोध** ही होता है जिसे अकुशल श्रमिकों की शिक्षा और प्रशिक्षण आदि से दूर किया जा सकता है।

(2) समस्या का समाधान : श्रम शक्ति का उचित उपयोग (Solution of Problem : Proper Utilisation of Labour Force)–अत: अर्द्ध-विकसित देशों की प्रमुख समस्या इस फालतू श्रम-शक्ति का उचित ढंग से उपयोग करने की है।

प्रो. लुईस ने एक अर्थव्यवस्था को दो भागों में बाँटा है–**पूँजीवादी क्षेत्र** और **जीवन-निर्वाह क्षेत्र। पूँजीवादी क्षेत्र** अर्थव्यवस्था का वह भाग होता है जो पुनरुत्पादकीय पूँजी का प्रयोग करता है तथा पूँजीपति को उसके प्रयोग के लिए

नोट

भुगतान करता है। इसकी दूसरी ओर **जीवन-निर्वाह क्षेत्र** अर्थव्यवस्था का वह क्षेत्र होता है जो पुनरुत्पादकीय पूँजी का प्रयोग नहीं करता है। जीवन-निर्वाह क्षेत्र में पूँजीवादी क्षेत्र की अपेक्षा प्रति व्यक्ति उपज कम होती है।

अत: लुइस के मतानुसार आवश्यकता इस बात की है कि जीवन-निर्वाह क्षेत्र से श्रमिकों को हटाकर और उन्हें पूँजीवादी क्षेत्र में लगाकर, नये उद्योगों की स्थापना की जाये या वर्तमान उद्योगों का विस्तार किया जाये, ताकि आर्थिक विकास की गति तीव्र हो सके। इस प्रकार निर्वाह-क्षेत्र से बाहर इस फालतू श्रम-शक्ति के लिए रोजगार की व्यवस्था करना, राष्ट्रीय आय के बढ़ाने का अचूक साधन है।

टास्क लुइस मॉडल की केन्द्रिय समस्या क्या है?

(3) पूँजीवादी अतिरेक (Capitalist Surplus) **(पूँजीवादी-मजदूरी तथा जीवन-निर्वाह मजदूरी के अन्तर के रूप में)**–यहाँ पर एक स्वाभाविक प्रश्न यह उठता है कि "जीवन निर्वाह मजदूरी दर" (जिस पर 'पूँजीवादी क्षेत्र' में अतिरिक्त श्रम उपलब्ध होता है) का निर्धारण किस प्रकार होता है? संक्षिप्त रूप में हम कह सकते हैं कि यह जीवन-निर्वाह के लिए न्यूनतम आवश्यकताओं के आधार पर निर्धारित होती है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि पूँजीवादी क्षेत्र में मजदूरी का स्तर निर्वाह क्षेत्र से प्राप्त होने वाली आय पर निर्भर करता है। सामान्यत: मजदूरी का यह स्तर निर्वाह क्षेत्र में श्रमिक की औसत उपज से कम नहीं हो सकता लेकिन कुछ परिस्थितियों में (जब किसान को लगान देना हो या खाने पर अधिक व्यय होता हो या उनकी दृष्टि में कर के प्रति अधिक मोह हो) मजदूरी दर श्रम की औसत उत्पादन से भी अधिक हो सकती है। **प्रो. लुईस** के अनुसार, 'जीवन-निर्वाह' क्षेत्र में श्रमिकों को प्राप्त होने वाली आय पूँजीवादी क्षेत्र में मजदूरी की न्यूनतम सीमा को निर्धारित करती है किन्तु व्यवहार में मजदूरियों का इससे अधिक होना आवश्यक है और पूँजीवादी मजदूरी तथा जीवन-निर्वाह आय में सामान्यत: 30 प्रतिशत या उससे अधिक का अन्तर होता है। पूँजीवादी क्षेत्र में मजदूरी की दर के ऊँचे होने के अग्रलिखित कारण हो सकते हैं–

(अ) निर्वाह क्षेत्र या पिछड़े प्राथमिक क्षेत्र के उत्पादन में पर्याप्त वृद्धि होने के परिणामस्वरूप वास्तविक आय में वृद्धि होने के कारण श्रमिकों के द्वारा पूँजीवादी क्षेत्र में काम करने के लिए अधिक मजदूरी का माँगा जाना।

(ब) निर्वाह क्षेत्र से श्रमिकों को हस्तान्तरित करने पर यदि उत्पादन की मात्रों में कमी नहीं होती है तो उस क्षेत्र में बचे कार्यरत श्रमिकों की औसत वास्तविक आय में वृद्धि के कारण पूँजीवादी क्षेत्र में हस्तान्तरित होने वाले श्रमिक वर्ग द्वारा भी अधिक मजदूरी पर जोर दिया जाना।

(स) जीवन-स्तर की बढ़ती हुई लागतों और मानवतावादी दृष्टिकोण के कारण सेवाकर्ताओं द्वारा वास्तविक मजदूरी में वृद्धि कर देना।

(द) राज्य द्वारा श्रम-संघों को प्रोत्साहन देना जिसके परिणामस्वरूप श्रमिक वर्ग की सौदा करने की शक्ति में वृद्धि हो जाना।

इस प्रकार पूँजीवादी मजदूरी की तुलना में पूँजीवादी क्षेत्र की ऊँची सीमान्त उत्पादकता का परिणाम होता है पूँजीवादी अतिरेक का उत्पन्न होना।

(4) पूँजी निर्माण पूँजीवादी अतिरेक पर निर्भर करता है : विकास प्रक्रिया (Capital Formation depends upon Capitalists Surplus : Development Process)–पूँजीवादी क्षेत्र में अतिरेक श्रम की सीमान्त उत्पादकता उसकी जीवन निर्वाह मजदूरी एवं पूँजीवादी मजदूरी दोनों से अधिक होती है जिसके परिणामस्वरूप पूँजीवादी क्षेत्र में अतिरिक्त आय या अतिरेक उदय होती है। इस अतिरेक को नई परिसम्पत्तियों में निवेश करने पर पूँजी का निर्माण होता है जिससे अधिक लोगों को रोजगार पर लगाया जाता है। इस क्षेत्र में जैसे-जैसे रोजगार बढ़ता जाता है, वैसे-वैसे पूँजीवादी अतिरेक भी बढ़ता जाता है। और उसके साथ ही साथ पूँजी निर्माण अर्थात् आर्थिक विकास का चक्र शुरू हो जाता

नोट

है। यह प्रक्रिया उस समय तक चलती रहती है जब तक कि कुल अतिरेक श्रम को रोजगार प्राप्त नहीं हो जाता अर्थात् पूँजी–श्रम अनुपात नहीं बढ़ जाता और श्रम की पूर्ति लोचरहित नहीं बन जाती। इस प्रकार लुइस के अनुसार **आर्थिक विकास का मूल सार पूँजी निर्माण के लिए आवश्यक पूँजीवादी अतिरेक के उत्पन्न होने और उसके पुनर्निवेश में निहित है।** इस प्रक्रिया को रेखाचित्र द्वारा भी स्पष्ट किया गया है।

चित्र 18.1 में–

(*i*) OX-अक्ष पर श्रमिक की संख्या व OY-अक्ष पर मजदूरी की दर व सीमान्त उत्पादकता को दर्शाया गया है।

(*ii*) बड़ी मात्रा में कृषि क्षेत्र में बेरोजगारी व अदृश्य बेराजगारी पाये जाने के कारण पूँजीवादी या औद्योगिक क्षेत्र के लिए श्रम की पूर्ति **पूर्णतया लोचदार** होती है। अत: औद्योगिक क्षेत्र के लिए श्रम पूर्ति वक्र WW_1 है जो Y-अक्ष के समानान्तर एक सीधी रेखा के रूप में निरूपित किया जाता है।

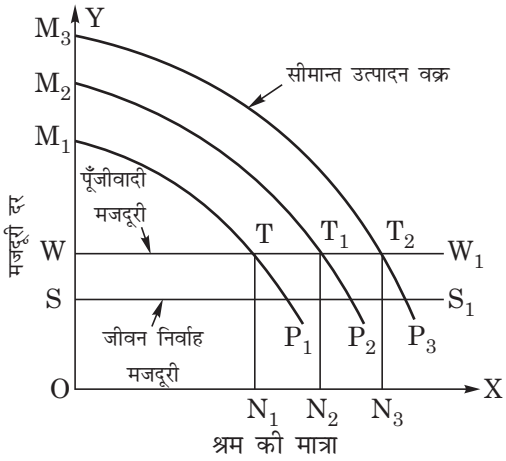

चित्र 18.1

(*iii*) मजदूरी की प्रचलित दर (पूँजीवादी मजदूरी) मजदूरी OW कृषि में प्रचलित जीवन निर्वाह स्तरीय मजदूरी OS से थोड़ी अधिक है।

(*iv*) उद्योगों में पूँजीपति लाभ अधिकतम करने के उद्देश्य से कार्य करते हैं और इस प्रकार से दी हुई मजदूरी OW को **श्रम की सीमान्त उत्पादकता के बराबर करेंगे।**

(*v*) जब मजदूरी की दर OW है तो सीमान्त उत्पादकता वक्र (M_1P_1) उसे T बिन्दु पर काटती है जो यह प्रदर्शित करती है कि इस बिन्दु पर मजदूरों की सीमान्त उत्पादकता मजदूरी दर के बराबर है। अत: जब मजदूरी की दर OW है तो पूँजीपति OW_1 श्रमिकों की माँग करेंगे और रोजगार उपलब्ध करायेंगे।

(*vi*) श्रमिकों की ON_1 मात्रा से कुल औद्योगिक उत्पादन OM_1TN_1 के बराबर है तथा मजदूरी का भुगतान $OWTN_1$ के बराबर होगा। अत: WM_1T क्षेत्र के बराबर पूँजीपतियों को लाभ प्राप्त होगा। इन लाभों के विनियोग से अधिक पूँजी निर्माण होगा।

(*vii*) अधिक पूँजी के उपलब्ध होने पर श्रम का सीमान्त उत्पाद (MP) वक्र दायीं ओर विवर्तित होकर M_2P_2 हो जायेगा परन्तु मजदूरी की दर पूर्ववत् OW रहने पर श्रमिकों की प्रयुक्त मात्रा बढ़कर ON_2 हो जायेगी और पूँजीपतियों का लाभ बढ़कर WM_2T_1 के बराबर हो जायेगा। इन लाभों को पूँजीपति अधिक पूँजी निर्माण के लिए प्रयोग करेंगे।

क्या आप जानते हैं "लुइस मॉडल, विकास सिद्धान्तों के ऐसे परिवार का प्रतिनिधि है जो असीमित श्रमशक्ति की मान्यता पर आधारित है।"

इस प्रकार आगे भी लाभों के विनियोग से अधिक पूँजी निर्माण होगा। MP वक्र दायीं ओर विवर्तित होता जायेगा जिससे रोजगार व उत्पादन में वृद्धि होती जायेगी। यह क्रम तब तक चलता रहेगा जब तक कि श्रम–अतिरेक (Labour Surplus) समाप्त नहीं हो जायेगा। श्रम–अतिरेक की समाप्ति के पश्चात् मजदूरी दर बढ़ने लगेगी जिससे उद्योगों में अर्जित लाभ घटने लगेंगे और लाभ की दर कम होती जायेगी। फलत: विकास की गति घट जायेगी परन्तु लुइस के अनुसार तब तक विकासशील देशों में खुली बेराजगारी तथा अदृश्य बेरोजगारी समाप्त हो चुकी होगी।

नोट

(5) राज्य तथा निजी पूँजीपतियों की भूमिका (Role of State and Private Capitalists)—लुइस के अनुसार अर्द्ध-विकसित देशों में बचतें दो कारणों से कम होती हैं—

(*i*) पूँजीवादी लाभ का राष्ट्रीय अनुपात कम होता है, वेतन एवं मजदूरियाँ प्राप्त करने वाले कठिनाई से राष्ट्रीय आय का 3 प्रतिशत बचाते हैं।

(*ii*) समाज का मुख्य वर्ग भूमिपति, व्यापारी, राजे-महाराजे, पुरोहित आदि उत्पादक विनियोगों की अपेक्षा व्यर्थ में उपभोग में लगे रहते हैं।

अत: आवश्यकता इस बात की है कि उस वर्ग की बचत क्षमता बढ़ाई जाये जो अधिक बचत कर सकते हैं। इस दृष्टि से राज्य पूँजीपति अर्थात् सार्वजनिक उपक्रमों और देशी निजी पूँजीपतियों को बढ़ावा दिया जाना चाहिए क्योंकि पूँजी निर्माण का कार्य केवल इनके द्वारा अर्जित लाभों में से ही हो सकता है।

यह उल्लेखनीय है कि राज्य पूँजीपति की पूँजी संचय की क्षमता निजी पूँजीपति की अपेक्षा अधिक होती है। कारण यह है कि राज्य पूँजीवादी क्षेत्र के लाभ का उपयोग करने के अतिरिक्त निर्वाह क्षेत्र में से कुछ न कुछ अतिरेक कराधान के रूप में प्राप्त करने में सफल रहता है। इस प्रकार **लुईस** का मत है कि जब पूँजी के उत्पादकीय उपयोग के अवसर तीव्र गति से बढ़ते हैं तो अतिरेक भी तेजी से बढ़ता है और उसके साथ-साथ पूँजीपति वर्ग का भी विकास होने लगता है।

(6) बैंक साख द्वारा पूँजी निर्माण (Capital Formation through Bank Credit)—लुइस का कथन है कि यद्यपि अर्द्ध-विकसित देशों में पूँजीवादी क्षेत्र में उपर्युक्त प्रक्रिया द्वारा पूँजी-निर्माण हो सकता है किन्तु साख-सृजन (मुद्रा-स्फीति) द्वारा भी पूँजी-निर्माण में योगदान लिया जा सकता है और उत्पादन तथा रोजगार का स्तर बढ़ाया जा सकता है। लुइस का मत है कि यद्यपि इससे मुद्रा प्रसारिक प्रवृत्तियों को जन्म मिल सकता है परन्तु दीर्घकाल में इससे कोई हानि नहीं होगी क्योंकि पूँजी-निर्माण के लिए मुद्रा-प्रसार स्वयं विनाशक या समाप्त हो जाने वाला (Self Liquidating) होता है। इसके उन्होंने निम्न कारण बताए—(अ) प्रारम्भिक अवस्था में आय तो बढ़ेगी किन्तु उपभोग वस्तुओं का उत्पादन प्रारम्भ कर देंगी, मूल्य गिरने प्रारम्भ हो जायेंगे; (ब) राज्य की करारोपण से आय बढ़ जायेगी और सरकार को बाद में हीनार्थ प्रबन्धन नहीं करना पड़ेगा।

(7) विकास प्रक्रिया का अन्त (End of Growth Process)—इसी प्रकार ज्यों-ज्यों पूँजी-निर्माण होता जाता है, उत्पादन और रोजगार में वृद्धि होती जाती है जिसके परिणामस्वरूप लाभ की मात्रा में वृद्धि होती है जिन्हें विनियोजित करके पुन: पूँजी निर्माण को बढ़ाया जा सकता है। इसी प्रकार आर्थिक विकास का क्रम भी चलता रहता है परन्तु विकास की यह प्रक्रिया अनिश्चित काल तक नहीं चल सकती है। लुइस के अनुसार विकास की यह प्रक्रिया निम्न परिस्थितियों में रुक जाती है—

(*i*) जब पूँजी-निर्माण के परिणामस्वरूप अतिरिक्त श्रम नहीं बचते।

(*ii*) जबकि पूँजीवादी क्षेत्र का विस्तार इतनी तीव्र गति से हो जिससे 'पिछड़े प्राथमिक क्षेत्र या निर्वाह क्षेत्र' में जनसंख्या बहुत कम रह जाने से इसकी सीमान्त उत्पादकता बढ़ जाय जिसके फलस्वरूप निर्वाह क्षेत्र और पूँजीवादी क्षेत्र दोनों में मजदूरी का स्तर ऊँचा हो जाय।

(*iii*) जबकि निर्वाह क्षेत्र में उत्पादन की नई प्रविधि अपनायी जाये जिससे पूँजीवादी क्षेत्र में भी वास्तविक मजदूरी बढ़ जाये।

(*iv*) जबकि पूँजीवादी क्षेत्र का निर्वाह क्षेत्र की तुलना में तेजी से विस्तार होने पर खाद्यान्नों आदि की कीमतें बढ़ जाने के कारण व्यापार की शर्तें पूँजीवादी क्षेत्र में प्रतिकूल हो जायें और उन्हें श्रमिकों को अधिक मजदूरी देनी पड़े।

(*v*) निर्वाह क्षेत्र में श्रम की औसत उत्पादकता इतनी बढ़ जाय (क्योंकि इस क्षेत्र की उपज के हिस्सेदार कम हो चुके हैं) कि पूँजीवादी क्षेत्र में भी मजदूरी बढ़ानी पड़ जाय और फलस्वरूप लाभ की मात्रा कम हो जाय।

नोट

(*vi*) इस क्षेत्र में श्रमिक पूँजीवादी जीवन व्यतीत करने का ढंग अपना ले तो इन सभी परिस्थितियों में पूँजी अतिरेक कम हो जायेगा जिसके फलस्वरूप पूँजी निर्माण व आर्थिक विकास का कार्य रुक जायेगा।

उपर्युक्त परिस्थितियों में पूँजीवादी क्षेत्र का आधिक्य जो अर्द्ध-विकसित देशों में श्रम की असीमित पूर्ति के कारण उत्पन्न होता है, समाप्त हो जाता है और पूँजी-निर्माण की दर कम हो जाती है। **लुइस** के शब्दों में, "विकास की यह प्रक्रिया उस समय समाप्त हो जायेगी और यह नीति उस समय प्रभावपूर्ण नहीं होगी जबकि पूँजी-निर्माण की वृद्धि, मात्रा व दर, जनसंख्या की वृद्धि दर के बराबर हो जायेंगी। अगर मजदूरी बढ़ने दी गयी तो यह नीति और पहले ही प्रभावहीन हो जायेगी।"

प्रो. लुइस का मत है कि यदि उपर्युक्त परिस्थितियों के कारण पूँजी-निर्माण की दर कम हो और विकास की प्रक्रिया में गतिरोध उत्पन्न हो जाये तो निम्न दो तरीकों से **पूँजी-निर्माण** की प्रक्रिया को बनाये रखा जा सकता है–

(अ) **बड़े पैमाने पर श्रमिकों का आवास** (Mass Immigration of Labour) किया जाय परन्तु ऐसी स्थिति में सभी प्रकार के श्रमिकों की मजदूरी का स्तर नीचे गिरता है। अत: श्रमिक संघों द्वारा इसका कड़ा विरोध किया जाता है।

(ब) दूसरा उपाय यह है कि ऐसे देशों को पूँजी का निर्यात किया जाए जहाँ जीवन-निर्वाह मजदूरी के स्तर पर पर्याप्त मात्रा में श्रम शक्ति उपलब्ध हो। इससे पूँजी-निर्यात करने वाले देश में श्रम की माँग कम हो जाती है और मजदूरी की दर गिरने लगती है।

नोट्स आर्थिक विकास तब होता है जब श्रम को निर्वाह क्षेत्र से हटाकर पूँजीवादी क्षेत्र में लगाने के परिणाम स्वरूप पूँजी संचय होता है।

लुइस मॉडल की श्रेष्ठता (Superiorty of Lewis Model)–लुइस के अनुसार उनका मॉडल प्रतिष्ठित मॉडल से श्रेष्ठ है, इस सम्बन्ध में वे निम्नलिखित तर्क देते हैं–

(*i*) उनका मॉडल प्रयोग करने पर उपभोग को कम करने की आवश्यकता नहीं पड़ती (जैसा कि नवप्रतिष्ठित मॉडलों में किया गया है) और न ही उपभोग को बढ़ाने की आवश्यकता है (जैसा कि कीन्स का मत है) इस प्रकार लुइस बलात् बचतों के स्थान पर पुन: वितरण के विकल्प को स्वीकार करते हैं।

(*ii*) लुइस के मॉडल में मुद्रा-स्फीति स्वयं समाप्त होने वाली है क्योकि वह हीनार्थ प्रबन्धन रहित और उत्पादन प्रेरित है।

(*iii*) लुईस के मॉडल में लाभ-वित्त-व्यवस्था और साख-वित्त-व्यवस्था दोनों ही विकास प्रेरक हैं।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

2. सही विकल्प चुनिए (Multiple Choice Questions)–

1. "जो आज साधनों में निर्धन माना जाता है कुछ समय पश्चात् समृद्ध माना जा सकता है।" यह कथन किसका है–

   (क) प्रो. लुइस (ख) मार्शल

   (ग) रॉबिन्सन (घ) इनमें से कोई नहीं।

2. लुइस ने 'पूँजी निर्माण' का निर्धारक तत्व माना जाता है–

   (क) पूँजी बचत को (ख) बैंक को

   (ग) क और ख दोनों (घ) इनमें से कोई नहीं।

नोट

3. लुइस के अनुसार पूँजी वृद्धि होने से श्रम का जीवन निर्वाह क्षेत्र से पूँजीगत क्षेत्र में स्थानान्तरण होता है और इससे प्रति व्यक्ति उत्पाद में होती है –

(क) कमी होती है (ख) वृद्धि होती है

(ग) कोई परिवर्तन नहीं होता (घ) इनमें से कोई नहीं।

4. आर्थर लुइस द्वारा प्रतिपादित विकास मॉडल में 'असीमित श्रम पूर्ति' का आशय है–

(क) जीवन निर्वाह स्तर पर मजदूरी देने पर भी श्रम पूर्ति श्रमिकों की माँग से अधिक होती है।

(ख) अर्थव्यवस्था में मजदूरी कितनी ही कम क्यों न हो, श्रम पूर्ति अनन्त होती है।

(ग) श्रम पूर्ति हमेशा श्रम माँग से अधिक होती है।

(घ) अर्थव्यवस्था में श्रम सघन प्रविधि अपनायी गयी है।

18.3 लुइस मॉडल की आलोचनाएँ (Criticisms of Lewis Model)

प्रो. लुइस की उपर्युक्त विचारधारा की निम्न आलोचनाएँ की जाती हैं–

1. **सीमित क्षेत्र** (Limited Scope)–इस सिद्धान्त का क्षेत्र सीमित है क्योंकि यह सिद्धान्त अर्द्ध-विकसित देशों से असीमित मात्रा में श्रम की पूर्ति पर आधारित है किन्तु दक्षिण अमेरिका ओर अफ्रीका के कई देशों में ऐसी परिस्थितियाँ नहीं पायी जाती हैं।

2. **पूँजीवादी क्षेत्र में अतिरिक्त श्रम का हस्तान्तरण आसान नहीं है** (Transfer of Surplus Labour to Capitalist Area is not easy)–लुइस के मॉडल को कार्यान्वित करने में जो महत्वपूर्ण कठिनाई आयेगी, वह यह है कि निर्वाह-क्षेत्र में पूँजीवादी क्षेत्र में अतिरिक्त श्रम-शक्ति का हस्तान्तरण आसान नहीं है क्योंकि अर्द्ध-विकसित देशों में जाति व धर्म बन्धनों के कारण एक ओर तो व्यावसायिक गतिशीलता कम रहती है और दूसरी ओर, भाषा, आवास की समस्या, उत्साह की कमी, स्थान की कमी, स्थान व वातावरण से प्रेम आदि के कारण भौगोलिक गतिशीलता भी कम रहती है।

3. **जीवन-निर्वाह के बराबर मजदूरी सम्भव नहीं है** (Wage equal to Subsistance level is not possible)–आज जब हम कल्याणकारी समाज की स्थापना की बात करते हैं और श्रम आन्दोलन व श्रम संघ सुदृढ़ होते जा रहे हैं, सम्पूर्ण विकास क्रिया काल में श्रमिक-जीवन-निर्वाह मजदूरी पर कार्य नहीं करेगा। वह भी बढ़ती हुई महँगाई के तदनुरूप अपनी मजदूरी बढ़ाने की माँग करेगा और बढ़ते हुए लाभ में अपना हिस्सा माँगेगा। इन परिस्थितियों में 'जीवन-निर्वाह' के बराबर मजदूरी देते रहकर पूँजी-निर्माण करके विकास करना सम्भव नहीं होगा।

4. **उचित प्रशिक्षण** (Proper Training)–प्रो. लुइस के सिद्धान्त का आधार यह है कि अर्द्ध-विकसित देशों में पर्याप्त मात्रा में अकुशल श्रम-शक्ति होती है और कुशल श्रमिकों का अभाव एक अस्थायी गतिरोध उपस्थित करता है जिसे श्रमिकों के **प्रशिक्षण** आदि के द्वारा किया जा सकता है। वास्तव में, पर्याप्त मात्रा में श्रम-शक्ति के उचित प्रशिक्षण आदि में काफी समय लगता है। इसलिए कुशल और तकनीकी श्रमिकों का अभाव एक बहुत बड़ी कठिनाई उपस्थित करता है।

5. **साहवी वर्ग का अभाव** (Lack of Entrepreneur Class)–इस सिद्धान्त में यह मान लिया गया है कि इन विकसित देशों में पर्याप्त मात्रा में पूँजीपति वर्ग और साहसी वर्ग मौजूद रहते हैं परन्तु अर्द्ध-विकसित देशों में इनका सर्वथा अभाव रहता है। जब ये साहसी नहीं होंगे तो अतिरेक श्रम-शक्ति का उपयोग करके विकास करना सम्भव नहीं होगा।

6. **विनियोग गुणक का क्रियाशील न होना** (Not Functioning of Multiplier)–लुइस ने अपने मॉडल में ऐसे पूँजीपतियों की कल्पना की है जो अधिक लाभ कमाकर उसे पुन: विनियोजित करके पूँजी का संचय

नोट

करते हैं। इसका अर्थ यह है कि यहाँ विनियोग गुणक क्रियाशील रहता है किन्तु वस्तुत: अर्द्ध-विकसित देशों के सम्बन्ध में ऐसा नहीं कहा जा सकता।

7. **बचतकर्ताओं की गलत व्याख्या** (Wrong Intrepretation of Savers)–लुइस की यह धारणा है कि बचत केवल अधिक आय वाले लोग (पूँजीवादी क्षेत्र के लोग) ही करते हैं, गलत है। कम आय वाले लोग भी बचत करते हैं। भारत में योजना आयोग के एक अध्ययन के अनुसार 53% भाग घरेलू बचत से प्राप्त होता है। कम आय वाले लोग भी बचत करते हैं।
8. **पूँजीवादी स्फीतिकारी प्रभाव की अस्थायी प्रकृति** (Temporary Nature of Capitalist Inflationary Effect)–लुईस ने यह माना कि पूँजीवादी क्षेत्र में मूल्य वृद्धि अस्थायी होती है और इसका अन्त स्वजनित घटकों से स्वत: होता है, गलत है।
9. **श्रम की सीमान्त उत्पादकता का शून्य न होना** (Marginal Productivity of Labour not Zero)–यह कहना ठीक नहीं है कि जीवन-निर्वाह क्षेत्र में श्रमिकों की सीमान्त उत्पादकता शून्य अथवा नहीं के बराबर होती है। यदि ऐसा होता तो जीवन निर्वाह मजदूरी भी शून्य होनी चाहिए थी किन्तु ऐसा नहीं है इसलिए शून्य सीमान्त उत्पादकता की मान्यता अवास्तविक है।
10. **विषमताओं को बढ़ावा** (Encouragement of Disparity)–**प्रो. कुजनेट्स** का विचार है कि लुइस का मॉडल स्वीकार करने पर अर्द्ध-विकसित देशों में आय का वितरण और भी असमान हो जायेगा। **मायर** एवं **बाल्डविन** का भी कथन है कि आय की असमानाता, उत्पादक विनियोग में प्रत्याशा से कहीं कम वृद्धि कर पाता है। अत: आय वितरण की असमानता उपयोगी सिद्ध नहीं हो सकती।
11. **अकुशल कर-प्रशासन** (Inefficient Tax Administration)–लुइस का यह कथन कि कराधान बढ़ती हुई आय को इकट्ठा करेगा, माना नहीं जा सकता क्योंकि अल्पविकसित देशों में कर-प्रशासन इतना कुशल और विकसित नहीं होता कि वह पूँजी-संचय के लिए पर्याप्त मात्रा में इकट्ठा कर सकता है।
12. **मॉडल की अव्यावहारिकता** (Inpraticalability of Model)–**प्रो. ए. एन. खुसरो** का मत है कि लुइस ने अदृश्य बेरोजगारी के रूप में सम्भाव्य बचतों का उपयोग करके औद्योगीकरण की जो नीति तैयार की है, वह पूर्णतया अव्यावहारिक है क्योंकि इस प्रक्रिया में अनेक ऐसे रिसाव हैं जो सदैव रिसते रहते हैं, जैसे–पूर्ति का मूल्य बेलोच होना, कृषकों व व्यापारियों द्वारा स्टॉक जमा करने की प्रवृत्ति का पाया जाना इत्यादि।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

3. निम्नलिखित कथनों में सत्य/असत्य की पहचान करें–

1. पूँजीवादी क्षेत्र में अतिरिक्त श्रम का हस्तान्तरण आसान नहीं है।
2. लुइस ने अपने मॉडल में ऐसे पूँजिपतियों की कल्पना की है जो उसे पुन: विनियोजित नहीं करते हैं।
3. लुइस के अनुसार बचत केवल अधिक आय वाले लोग ही करते हैं।
4. लुइस के विचार में जीवन निर्वाह क्षेत्र में पुनरुत्पादकीय पूँजी का प्रयोग नहीं होता।

18.4 सारांश (Summary)

- लुइस का मॉडल श्रम की असीमित पूर्ति से आर्थिक विकास (Economic Development with Unlimited Supplies of Labour, 1954) एक द्वैत अर्थव्यवस्था की मान्यता पर आधारित करते हैं
- रिकार्डो के **दो-क्षेत्रीय विकास मॉडल** को वर्तमान विकासशील देशों की स्थिति में सार्थक बताया।
- **रिकार्डो** की तरह लुइस ने भी कृषि क्षेत्र में श्रम की अधिकता की मान्यता लेकर आधुनिक औद्योगिक क्षेत्र के विकास की व्याख्या की है।

नोट

- लुइस अपना मॉडल इस मान्यता से प्रारम्भ करते हैं कि अल्प-विकसित देशों में प्रचलित मजदूरी की दरों पर श्रम की पूर्ति पूर्णतया लोचदार होती है।
- कुशल श्रमिकों का अभाव एक **अस्थायी गतिरोध** ही होता है जिसे अकुशल श्रमिकों की शिक्षा और प्रशिक्षण आदि से दूर किया जा सकता है।
- **प्रो. लुईस** ने एक अर्थव्यवस्था को दो भागों में बाँटा है–**पूँजीवादी क्षेत्र** और **जीवन-निर्वाह क्षेत्र।**
- पूँजीवादी क्षेत्र में मजदूरी का स्तर निर्वाह क्षेत्र से प्राप्त होने वाली आय पर निर्भर करता है।
- 'जीवन-निर्वाह' क्षेत्र में श्रमिकों को प्राप्त होने वाली आय पूँजीवादी क्षेत्र में मजदूरी की न्यूनतम सीमा को निर्धारित करती है।
- पूँजीवादी क्षेत्र में अतिरेक श्रम की सीमान्त उत्पादकता उसकी जीवन निर्वाह मजदूरी एवं पूँजीवादी मजदूरी दोनों से अधिक होती है जिसके परिणामस्वरूप पूँजीवादी क्षेत्र में अतिरिक्त आय या अतिरेक उदय होती है।
- **आर्थिक विकास का मूल सार पूँजी निर्माण के लिए आवश्यक पूँजीवादी अतिरेक के उत्पन्न होने और उसके पुनर्निवेश में निहित है।**
- राज्य पूँजीपति की पूँजी संचय की क्षमता निजी पूँजीपति की अपेक्षा अधिक होती है। कारण यह है कि राज्य पूँजीवादी क्षेत्र के लाभ का उपयोग करने के अतिरिक्त निर्वाह क्षेत्र में से कुछ न कुछ अतिरेक कराधान के रूप में प्राप्त करने में सफल रहता है।
- साख-सृजन (मुद्रा-स्फीति) द्वारा भी पूँजी-निर्माण में योगदान लिया जा सकता है और उत्पादन तथा रोजगार का स्तर बढ़ाया जा सकता है।
- ज्यों-ज्यों पूँजी-निर्माण होता जाता है, उत्पादन और रोजगार में वृद्धि होती जाती है जिसके परिणामस्वरूप लाभ की मात्रा में वृद्धि होती है जिन्हें विनियोजित करके पुनः पूँजी निर्माण को बढ़ाया जा सकता है।
- पूँजीवादी क्षेत्र का आधिक्य जो अर्द्ध-विकसित देशों में श्रम की असीमित पूर्ति के कारण उत्पन्न होता है, समाप्त हो जाता है और पूँजी-निर्माण की दर कम हो जाती है।
- लुइस के मॉडल में मुद्रा-स्फीति स्वयं समाप्त होने वाली है क्योकि वह हीनार्थ प्रबन्धन रहित और उत्पादन प्रेरित है।
- आज जब हम कल्याणकारी समाज की स्थापना की बात करते हैं और श्रम आन्दोलन व श्रम संघ सुदृढ़ होते जा रहे हैं, सम्पूर्ण विकास क्रिया काल में श्रमिक-जीवन-निर्वाह मजदूरी पर कार्य नहीं करेगा।
- लुइस ने अपने मॉडल में ऐसे पूँजीपतियों की कल्पना की है जो अधिक लाभ कमाकर उसे पुनः विनियोजित करके पूँजी का संचय करते हैं।
- भारत में योजना आयोग के एक अध्ययन के अनुसार 53% भाग घरेलू बचत से प्राप्त होता है। कम आय वाले लोग भी बचत करते हैं।
- **मायर** एवं **बाल्डविन** का भी कथन है कि आय की असमानाता, उत्पादक विनियोग में प्रत्याशा से कहीं कम वृद्धि कर पाता है। अतः आय वितरण की असमानता उपयोगी सिद्ध नहीं हो सकती।
- **प्रो. ए. एन. खुसरो** का मत है कि लुइस ने अदृश्य बेरोजगारी के रूप में सम्भाव्य बचतों का उपयोग करके औद्योगीकरण की जो नीति तैयार की है, वह पूर्णतया अव्यावहारिक है

18.5 शब्दकोश (Keywords)

- **पुनरुत्पादकीय–** दोबारा मॉल या उपज तैयार करना।
- **अतिरेक–** आधिक्य, बढ़ोतरी।
- **विवर्तित–** विकास, घूमना।

नोट

18.6 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. श्रम की असीमित पूर्ति की दशा में ए. लुइस के वृद्धि मॉडल की विवेचना कीजिए। भारतीय अर्थव्यवस्था में इस मॉडल को लागू करने के लिए किन-किन कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है?
2. अतिरिक्त श्रम के सिद्धान्त को समझाइए और बताइए कि किस प्रकार इसे अविकसित देशों में पूँजी-निर्माण के लिए प्रयोग किया जाता है।
3. आर्थर लुइस द्वारा प्रस्तुत 'असीमित पूर्ति के द्वारा आर्थिक विकास के सिद्धान्त' की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।
4. आर्थर लुइस के विकास मॉडल का सार लिखिए तथा इस मॉडल की श्रेष्ठता बताइए।
5. द्वैत अर्थव्यवस्था से क्या तात्पर्य है।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

1.	1. द्वैत	2. श्रम-पूर्ति	3. लुइस	4. विकास
2.	1. (क)	2. (ग)	3. (ख)	4. (क)
3.	1. सत्य	2. असत्य	3. सत्य	4. असत्य

18.7 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. *संवृद्धि एवं विकास का अर्थशास्त्र*: डॉ. पी. मिश्रा; साहित्य भवन पब्लिकेशन्स : आगरा
2. *विकास नियोजन एवं नीतियाँ*: वी. सी सिन्हा: साहित्य भवन पब्लिकेशन्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.) लि. रजिस्टर्ड कार्यालय नई दिल्ली
3. *विकास का अर्थशास्त्र एवं आयोजन*: डा. एस. एल. डिंगल: वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा. लि.

नोट

इकाई–19: रेनिस एवं फाई मॉडल (Ranis and Fei Model)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

19.1 रेनिस एवं फाई मॉडल (Ranis and Fei Model)

19.2 रेनिस फाई मॉडल का आलोचनात्मक मूल्यांकन (Critical Appraisal of Fei Ranis Model)

19.3 सारांश (Summary)

19.4 शब्दकोश (Keywords)

19.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

19.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- रेनिस एवं फाइ मॅडल की व्याख्या करने में।

प्रस्तावना (Introduction)

फाई व रेनिस ने *'A Theory of Economic Development'*[1] शीर्षक वाले एक लेख में विश्लेषण किया है कि संक्रमण प्रक्रिया में एक विकासशील अर्थव्यवस्था गतिहीनता की स्थिति से आत्मजनक वृद्धि (self-sustained growth) की ओर जाने की आशा करती है। उनका यह सिद्धान्त लुइस (Lewis)[2] के असीमित श्रम पूर्ति सिद्धान्त से उत्तम है क्योंकि लुइस कृषि क्षेत्र में वृद्धि का सन्तोषजनक विश्लेषण कर पाने में असमर्थ रहा है।

19.1 रेनिस एवं फाई मॉडल (Ranis and Fei Model)

इस सिद्धान्त का संबंध विकासशील श्रम-अतिरेक (labour surplus) तथा संसाधनहीन अर्थव्यवस्था से है जिसमें अधिकतर जनसंख्या विस्तृत बेरोजगारी और जनसंख्या की ऊँची वृद्धि दरों के बीच कृषि में कार्यरत है। कृषि अर्थव्यवस्था गतिहीन है। लोग पारम्परिक कृषि व्यवसायों में संलग्न हैं। कृषि-रहित व्यवसाय पाए जाते हैं किन्तु उनमें पूँजी का कम उपयोग होता है, इसमें एक सक्रिय तथा गत्यात्मक औद्योगिक क्षेत्र भी है। विकास से अभिप्राय कृषि अतिरेक श्रमिकों का औद्योगिक क्षेत्र को पुनः आवंटन करना है, जिनका कृषि उत्पादन में योगदान शून्य अथवा नगण्य है, जहां वे कृषि में संस्थानिक मजदूरी के बराबर मजदूरी पर उत्पादक बन जाते हैं।

मान्यताएं (Assumptions)

आर्थिक विकास के सिद्धान्त को प्रस्तुत करते हुए फाई तथा रेनिस ने निम्नांकित मान्यताएं दी हैं–

नोट

1. यह एक दोहरी अर्थव्यवस्था है, जिसमें प्रथम परम्परागत तथा गतिहीन कृषि क्षेत्र है और द्वितीय एक सक्रिय औद्योगिक क्षेत्र।
2. कृषि क्षेत्र का उत्पादन केवल भूमि तथा श्रम का फलन है।
3. भूमि के सुधार के अतिरिक्त कृषि में पूँजी का संचय नहीं होता है।
4. भूमि की पूर्ति स्थिर है।
5. यदि जनसंख्या उस मात्रा से अधिक होती है जहां श्रम की सीमांत उत्पादकता शून्य बन जाती है तो श्रम को कृषि उत्पादन में हानि के बिना औद्योगिक क्षेत्र में स्थानान्तरण किया जा सकता है।
6. कृषि-कार्य में पैमाने के स्थिर प्रतिफल पाए जाते हैं जिनमें श्रम एक परिवर्ती साधन है।
7. औद्योगिक क्षेत्र का उत्पादन केवल पूँजी तथा श्रम का फलन है। भूमि की उत्पादन के साधन के रूप में कोई भूमिका नहीं है।
8. जनसंख्या की वृद्धि को एक वहिर्जात (Exogenous) तत्त्व के रूप में माना गया है।
9. औद्योगिक क्षेत्र में वास्तविक मजदूरी स्थिर रहती है। यह कृषि क्षेत्र की प्रारम्भिक वास्तविक आय के बराबर होती है। वे इसे संस्थानिक (Institutional) मजदूरी कहते हैं।
10. दोनों क्षेत्रों में श्रमिक केवल कृषि वस्तुओं का उपभोग करते हैं।

ये मान्यताएं दी जाने पर फाई तथा रेनिस श्रम अतिरेक अर्थव्यवस्था के विकास को तीन अवस्थाओं में प्रस्तुत करते हैं। **प्रथम** अवस्था में, अदृश्य बेरोजगार श्रमिक जो कृषि उत्पादन में कोई वृद्धि नहीं करते, को निरन्तर संस्थानिक मजदूरी पर औद्योगिक क्षेत्र में स्थानान्तरित कर दिया जाता है। **द्वितीय** अवस्था में, कृषि श्रमिक जो कृषि उत्पादन में वृद्धि तो करते हैं किन्तु प्राप्त संस्थानिक मजदूरी से कम उत्पादन करते हैं, ऐसे श्रमिक भी औद्योगिक क्षेत्र में भेज दिए जाते हैं। यदि श्रमिकों का औद्योगिक क्षेत्र में निरन्तर स्थानान्तरण किया जाता रहता है तो अन्ततः ऐसी स्थिति उत्पन्न होती है जबकि खेतीहर श्रमिक संस्थानिक मजदूरी के बराबर उत्पादन करते हैं। इसी से **तृतीय** अवस्था प्रारम्भ होती है, जो कि उत्कृष (take off) की अन्तिम स्थिति है और आत्मजनक वृद्धि का प्रारम्भ है, जबकि खेतीहर मजदूर संस्थानिक मजदूरी से अधिक उत्पादन करने लगते हैं। इस अवस्था में श्रम अतिरेक समाप्त हो जाता है और कृषि का व्यापारीकरण हो जाता है।

चित्र 19.1 (A) कृषि की प्रक्रिया को प्रस्तुत करता है जहां श्रम (L) तथा भूमि (Z) द्वारा वस्तुओं का उत्पादन किया जाता है। श्रम का माप अनुलम्ब अक्ष तथा भूमि को क्षैतिज अक्ष पर दर्शाया गया है। किरण OR उत्पादन की अवस्था दर्शाती है। वक्र ABC कृषि वस्तुओं की उत्पादन परिधि रेखा है। भूमि को OZ पर स्थिर मानकर, श्रम ON_1 अधिकतम उत्पादन करता है। चित्र 19.1 (B) में TP वक्र श्रम की कुल उत्पादकता को प्रस्तुत करता है। यदि भूमि OZ के साथ N_1 के बाद अधिक श्रम लगाया जाता है तो उत्पादन में कोई वृद्धि नहीं होगी, क्योंकि वक्र TP पर M बिन्दु के बाद श्रम की कुल उत्पादकता स्थिर हो जाती है। यदि यह मान लें कि ON_2 कृषि में लगी कुल श्रम शक्ति है तथा ON_1 कार्यरत श्रमिक है तथा N_1N_2 अतिरिक्त बेरोजगार श्रमिक, तो N_1N_2 श्रमिकों की संख्या उत्पादन पर कोई प्रभाव नहीं डालती तथा उनका सीमांत भौतिक उत्पादकता वक्र TP बिन्दु M के आगे शून्य की ओर चला जाता है। इस प्रकार के श्रमिक अदृश्य बेरोजगार हैं।

इन मजदूरों को कृषि क्षेत्र से औद्योगिक क्षेत्र में तीन अवस्थाओं में स्थानान्तरित कर दिए जाने पर आर्थिक विकास होता है। यह चित्र 19.2 (A), (B) तथा (C) में दर्शाया गया है। वहां भाग (A) औद्योगिक क्षेत्र को और भाग (B) तथा (C) कृषि क्षेत्र को दर्शाते हैं। पहले हम भाग (C) पर विचार करते हैं। वहां श्रम शक्ति को दाईं ओर से बाईं ओर क्षैतिज अक्ष ON पर तथा कृषि उत्पादन को O से नीचे की ओर अनुलम्ब अक्ष OY पर मापा गया है। वक्र OCX कृषि क्षेत्र की कुल भौतिक उत्पादकता का वक्र (TPP) है। CX वक्र का सामान्तर भाग यह दर्शाता है कि इस क्षेत्र में कुल उत्पादकता स्थिर है, अतः MN श्रम की सीमांत उत्पादकता शून्य है। इस प्रकार MN अतिरेक श्रम है तथा इसे औद्योगिक क्षेत्र में लाने पर कृषि उत्पादन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। यद्यपि यह मान लिया जाता है कि सम्पूर्ण श्रम-शक्ति ON

नोट

कृषि क्षेत्र में लगी हुई है तो यह कृषि उत्पादन उत्पादित करती है। यह चित्र 19.1 (B) का उलटा किया हुआ OTP वक्र है। यह मानते हुए कि समस्त उत्पादन NX कुल श्रम शक्ति ON द्वारा उपभोग कर लिया जाता है, तो वास्तविक मजदूरी NX/ON अथवा किरण OX की ढाल है। यह संस्थानिक मजदूरी है।

उत्कृष के दौरान आवंटन प्रक्रिया को तीन अवस्थाओं में चित्र 19. 2 के भाग (B) में दर्शाया गया है, जहाँ कुल श्रम शक्ति को दाईं ओर से बाईं ओर अनुलम्ब अक्ष ON पर तथा औसत उत्पादन को क्षैतिज अक्ष NV पर मापा गया है। वक्र NMRU श्रम की सीमांत भौतिक उत्पादकता (MPP) को दर्शाता है। NW संस्थानिक मजदूरी है जिस पर कि मजदूरों को इस क्षेत्र में लगाया जाता है। अवस्था I में NM श्रमिक अदृश्य बेरोजगार हैं। उनकी सीमांत उत्पादकता शून्य है जिसे भाग (B) में NMRU वक्र के अंश NM अथवा TPP वक्र के अंश CX द्वारा भाग (C) में दर्शाया गया है अतिरिक्त श्रम शक्ति NM जिसे भाग (A) के OM में दर्शाया गया है, उसी संस्थानिक मजदूरी OW (= NW) पर स्थानान्तरित की गई है।

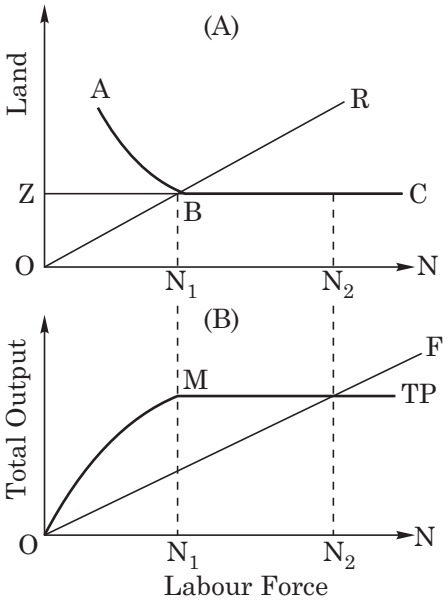

चित्र 19.1

अवस्था II में, MPP वक्र NMRU पर MK कृषि मजदूरों की सीमांत भौतिक उत्पादकता MR रेंज में धनात्मक है लेकिन यह संस्थानिक मजदूर KR (= NW) जो वे प्राप्त करते हैं उससे कम है जैसाकि भाग (B) में दिखाया गया है। इसलिए वे कुछ सीमा तक अदृश्य बेरोजगार हैं जिनको औद्योगिक क्षेत्र में स्थानान्तरित किया जा सकता है, किन्तु इस अवस्था में सामान्य मजदूरी औद्योगिक क्षेत्र में संस्थानिक मजदूरी के बराबर नहीं होगी। यह इस कारण से कि श्रम के औद्योगिक क्षेत्र में स्थानान्तरण से कृषि उत्पादन कम होता है। परिणामस्वरूप, कृषि वस्तुओं की कमी हो जाती है जिसमें औद्योगिक वस्तुओं की सापेक्षता में उनकी कीमतें बढ़ जाती हैं। इससे औद्योगिक क्षेत्र की व्यापार की शर्तें खराब हो जाती हैं, उससे औद्योगिक क्षेत्र में सामान्य मजदूरी में वृद्धि की आवश्यकता पड़ती है। सामान्य मजदूरी OW से LH तथा KQ तक संस्थानिक मजदूरी से अधिक बढ़ जाती है। यह श्रम के पूर्ति वक्र WT से H तथा Q से ऊपर W_1 तक जाते हुए भाग (A) में दर्शाया गया है, जब ML तथा LK मजदूरी धीरे-धीरे औद्योगिक क्षेत्र में स्थानान्तरित हो जाते हैं। T से ऊपर की ओर श्रम के पूर्ति वक्र WTW_1 पर गति ही **लुइस का मोड़ बिन्दु** (Lewis turning point) है।

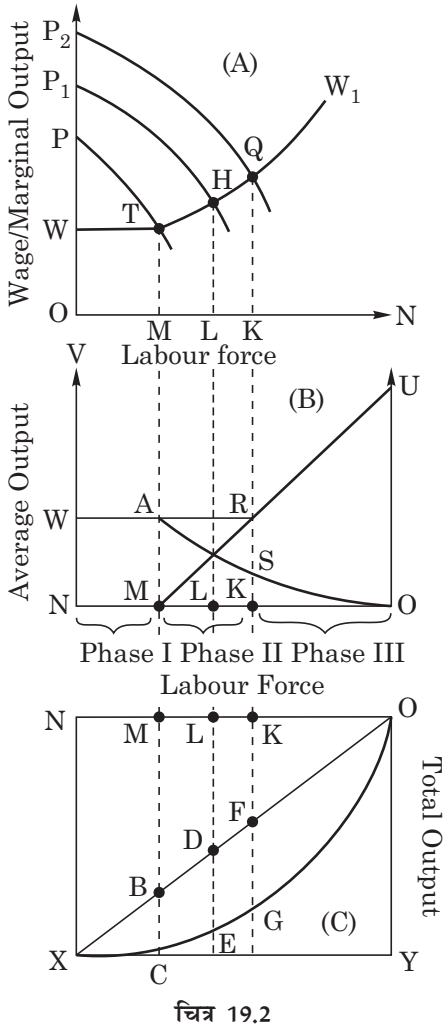

चित्र 19.2

जब अवस्था III प्रारम्भ होती है, तो कृषि मजदूर कृषि उत्पादन को संस्थानिक मजदूरी के बराबर उत्पादित करना शुरू कर देते

नोट

हैं और अन्ततः संस्थानिक मजदूरी से अधिक प्राप्त करते हैं। यह उत्कृष का अन्त है तथा आत्मजनक वृद्धि का प्रारम्भ है। वह भाग (B) में वक्र MPP के बढ़ रहे भाग RU से दर्शाया गया है, जो कि संस्थानिक मजदूरी KR (= NW) से ऊंचा है। परिणामस्वरूप KO श्रम को चित्र के भाग (A) में KQ से ऊपर बढ़ती हुई सामान्य मजदूरी पर कृषि क्षेत्र से औद्योगिक क्षेत्र में भेज दिया जाएगा। यह कृषि क्षेत्र में अतिरिक्त श्रम को समाप्त करता है जिसका पूरी तरह व्यापारिककरण हो जाता है। इस अतिरेक श्रम की समाप्ति को श्रम शक्ति की भौतिक कमी की अपेक्षा मुख्य तौर से बाजार का तत्त्व माना जाना चाहिए। यह पूर्ति के स्रोत पर वास्तविक मजदूरी में वृद्धि द्वारा व्यक्त किया जाता है।

संस्थानिक मजदूरी पर कृषि शक्ति की उपभोग आवश्यकता से अधिक कुल कृषि उत्पादन का अतिभाग TAS कहा जाता है। TAS की मात्रा विकास प्रक्रिया की प्रत्येक अवस्था में औद्योगिक क्षेत्र में भेजे गए श्रमिकों की संख्या का फलन है। TAS को चित्र के भाग (C) में रेखा OX तथा TPP वक्र OCX के बीच की अनुलम्ब दूरी से मापा गया है। अवस्था I में जब NM श्रम को स्थानान्तरित किया जाता है तो TAS है BC. अवस्था II में जब ML तथा LK श्रमिकों को औद्योगिक क्षेत्र में स्थानान्तरित किया जाता है तो TAS की DE तथा FG राशियां उत्पन्न होती हैं। TAS को कृषि मजदूरों के पुनः आवंटन द्वारा बाजार में छोड़े गए कृषि संसाधनों के रूप में देखना चाहिए। ऐसे संसाधनों को भूमिपति वर्ग की निवेश क्रियाओं अथवा/और सरकारी कर नीति द्वारा निकालकर नई औद्योगिक वस्तुओं के लिए उपयोग किया जा सकता है।

नोट्स फाई तथा रेनिस का मत है कि जब कृषि श्रमिकों को औद्योगिक क्षेत्र में भेज दिया जाता है तो कृषि वस्तुओं का अतिरेक प्रारंभ हो जाता है। इससे कृषि क्षेत्र में कुल कृषि अतिरेक (total agricultural surplus or TAS) हो जाता है।

इसके अलावा औसत कृषि अतिरेक (AAS) भी होता है। औद्योगिक क्षेत्र को आवंटित प्रति श्रमिक को उपलब्ध कुल कृषि अतिरेक ही औसत कृषि अतिरेक (AAS) है। यह ऐसे है जैसाकि प्रत्येक आवंटित श्रमिक अपने निर्वाह का बोझ अपने साथ उठाता है। AAS वक्र को WASO वक्र के रूप में चित्र के भाग (B) में दर्शाया गया है। अवस्था I में (AAS) वक्र संस्थानिक मजदूरी के वक्र (WA) के साथ समरूप है। अवस्था II में जब (MK) श्रमिकों को औद्योगिक क्षेत्र में भेज दिया जाता है, तब AAS चित्र के भाग (B) में A से S तक गिरने लगता है, जबकि TAS भाग (C) में BC से DE से FG तक बढ़ता जाता है।

अवस्था III में AAS अधिक तेजी से भाग (B) में S से O तक कम होता है और भाग (C) में क्षेत्र FG से O तक सुकड़ने से TAS भी कम हो जाता है। AAS तथा TAS दोनों में कमी कृषि श्रमिकों की MPP संस्थानिक मजदूरी से अधिक बढ़ने के कारण है जो कि अन्ततः बचे हुए अतिरिक्त श्रमिकों को औद्योगिक क्षेत्र में ले जाती है।

फाई तथा रेनिस अवस्था I तथा अवस्था II के बीच की सीमा को "दुर्लभता बिन्दु" (shortage point) कहते हैं, जब कृषि वस्तुओं की कमियां प्रारम्भ होती हैं जो कि AAS (WASO वक्र का AS भाग) के न्यूनतम संस्थानिक मजदूरी (NW) से नीचे गिरने द्वारा दिखाया गया है। अवस्था II तथा अवस्था III के बीच की सीमा व्यापारिककरण बिन्दु (commercialisation point) है जो कि कृषि में संस्थानिक मजदूरी तथा MPP के बीच समानता के प्रारम्भ को प्रकट करता है। इस प्रकार लुइस का मोड़ बिन्दु फाई तथा रेनिस के दुर्लभता बिन्दु के समान होता है तथा व्यापारीककरण बिन्दु पर औद्योगिक मजदूरी की वृद्धि तीव्र होती है।

फाई तथा रेनिस प्रदर्शित करते हैं कि यदि कृषि उत्पादकता बढ़ती है तो दुर्लभता बिन्दु तथा व्यापारिककरण बिन्दु मिल जाते हैं। यह इसलिए होता है कि कृषि की उत्पादकता की वृद्धि के कारण MPP में वृद्धि उत्पादन को संस्थानिक मजदूरी के स्तर तक अधिक शीघ्रता से बढ़ने के योग्य बनाती है। चित्र 19.2 (B) में इसे MRU वक्र के ऊपर बाईं तरफ स्थानान्तरित होते समझा जा सकता है। दूसरी ओर कुल भौतिक उत्पादकता में वृद्धि के साथ AAS में भी वृद्धि होती है। इसका अभिप्राय यह है कि चित्र 19.2 (B) में वक्र ASO दाईं ओर ऊपर स्थानान्तरित हो जाता है। यदि उत्पादकता में वृद्धि पर्याप्त है तो चित्र 19.2 (B) में MRU तथा ASO वक्र के ऊपर की ओर इस प्रकार से स्थानान्तरित हो जाएंगे

नोट

कि दुर्लभता बिन्दु A तथा व्यापारिककरण बिन्दु R मिल जाएंगे तथा अवस्था II समाप्त हो जाएगी। जहां तक औद्योगिक क्षेत्र का प्रश्न है, कृषि उत्पादकता की वृद्धि का प्रभाव यह होता है कि मोड़ बिन्दु के बाद औद्योगिक पूर्ति वक्र को ऊपर उठा देगी। चित्र 19.2 (A) में इसे WTW_1 के नीचे दाईं ओर बिन्दु T के नीचे दिखाया जा सकता है।

फाई तथा रेनिस के अनुसार, द्वितीय अवस्था के समाप्त होने का आर्थिक महत्त्व यह है कि यह अर्थव्यवस्था को आत्मजनक वृद्धि में सरलता से चलने की योग्यता प्रदान करती है।

टास्क लुइस का मोड़ बिन्दु क्या है?

संतुलित वृद्धि (Balanced Growth)

फाई तथा रेनिस ने दर्शाया है कि उनका मॉडल उत्कृष प्रक्रिया के दौरान की शर्तों को पूरा करता है। संतुलित वृद्धि में व्यवस्था के कृषि तथा औद्योगिक दोनों क्षेत्रों में एक साथ निवेश आवश्यक है। इसे चित्र 19.3 में दर्शाया गया है जहाँ श्रम का PP प्रारम्भिक माँग वक्र तथा S_1S_1 श्रम का प्रारम्भिक पूर्ति वक्र है। ये दोनों *a* बिन्दु पर काटते हैं जहां OM श्रम शक्ति औद्योगिक श्रेत्र में काम में लगी है। रोजगार के इस स्तर पर औद्योगिक क्षेत्र S_1aP क्षेत्र के बराबर लाभ कमाता है। यह लाभ उत्कृष प्रक्रिया के दौरान अर्थव्यवस्था का उपलब्ध कुल निवेश कोष है। इस कोष का एक भाग कृषि क्षेत्र को आवंटित किया जाता है जिससे कृषि उत्पादकता में वृद्धि होती है तथा श्रम पूर्ति वक्र औद्योगिक क्षेत्र में नीचे दाईं ओर S_1S_1 से S_2S_2 तक स्थानान्तरित होता है। निवेश कोष का बचा हुआ भाग औद्योगिक क्षेत्र को आवंटित किया जाता है जो औद्योगिक माँग वक्र को ऊपर दाईं ओर PP से P_1P_1 तक स्थानान्तरिक करता है। संतुलित वृद्धि पथ S_1a_3 पर स्थित बिन्दु a_1 पर वक्र S_2S_2 तथा P_1P_1 काटते हैं। कृषि क्षेत्र को निवश कोष के आवंटन के कारण कृषि उत्पादकता में वृद्धि होने से जो कृषि क्षेत्र द्वारा श्रम शक्ति ML छोड़ी गई है वह a_1 पर औद्योगिक क्षेत्र द्वारा काम में लगाई जाती है। चित्र 19.3 में दिखाई गई औद्योगिक क्षेत्र में लगाई गई श्रमशक्ति ML चित्र 19.2 (B) में कृषि क्षेत्र द्वारा छोड़ी गई श्रमशक्ति ML बिल्कुल बराबर दिखाई गई है।

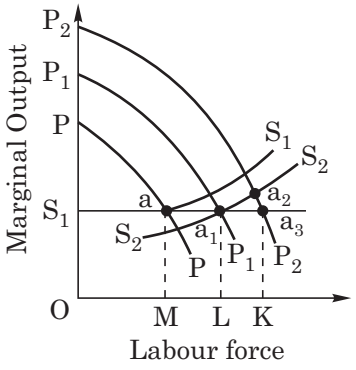

चित्र 19.3

इस प्रकार, जब काल पर्यन्त निवेश कोष दोनों क्षेत्रों को लगातार आवंटित किए जाते हैं, तो अर्थव्यवस्था संतुलित वृद्धि पथ पर चलेगी, किन्तु प्राय: यह संभावना रहती है कि समय-समय पर वास्तविक वृद्धि पथ संतुलित पथ से विचलित हो जाता है। फिर भी, इस प्रकार का विचलन बराबर करने वाली संतुलन शक्तियां लाएगा जो इसे संतुलित वृद्धि पर लाने की प्रवृत्ति रखती है। वास्तव में, यह पथ संतुलित वृद्धि पथ के इर्द-गिर्द घूमने की संभावना रखता है। उदाहरणार्थ, यदि औद्योगिक क्षेत्र में अति निवेश के फलस्वरूप श्रम-माँग-वक्र P_2P_2 पर स्थानान्तरित हो जाता है तथा a_2 पर श्रम पूर्ति वक्र S_2S_2 को काटता है तो वास्तविक वृद्धि पथ संतुलित वृद्धि पथ से ऊपर होगा। इससे कृषि वस्तुओं में कमी आएगी तथा औद्योगिक क्षेत्र की व्यापार शर्तों में गिरावट आएगी तथा इस क्षेत्र में मजदूरी की दर में बढ़ोत्तरी होगी। इससे औद्योगिक क्षेत्र में निवेश हतोत्साहित होगा तथा कृषि क्षेत्र में निवेश प्रोत्साहित होगा। इसके द्वारा वास्तविक पथ संतुलित वृद्धि पथ a_3 के स्तर पर आ जाएगा।

नोट

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

1. सही विकल्प चुनिए (Choose the Correct Option)

1. फाई-रेनिस क्षम अतिरिक्त अर्थव्यवस्थाओं में प्रस्तुत करते हैं-
   (क) दो (ख) तीन
   (ग) चार (घ) इनमें से कोई नहीं।
2. फाई-रेनिस मॉडल से यदि कृषि उत्पादकता बढ़ती है तो दुर्लभता बिन्दु तथा व्यापारिककरण बिन्दु एक-दूसरे से–
   (क) दूर जाते हैं (ख) निकट आते हैं
   (ग) मिल जाते हैं (घ) इनमें से कोई नहीं।
3. फाई-रेनिस मॉडल की द्वितीय अवस्था समाप्त होने का आर्थिक महत्व है कि यह अर्थव्यवस्था वृद्धि में–
   (क) सहायता करता है (ख) अवरोध पैदा करता है
   (ग) यथास्थिति बनाए रखता है (घ) इनमें से कोई नहीं।
4. जब काल पर्यन्त निवेश कोष दोनों क्षेत्रों को आवंटित किए जाते हैं तो अर्थव्यवस्था–
   (क) सामान्य रूप से चलती है (ख) असंतुलित हो जाती है
   (ग) संतुलित पथ पर चलती है (घ) संतुलित पथ से थोड़ा विचलित होती है।

19.2 रेनिस-फाई मॉडल का समीक्षात्मक मूल्यांकन (Critical Appraisal of Ranis and Fei Model)

लुइस का मॉडल कृषि क्षेत्र के विकास को ध्यान में न रखते हुए केवल औद्योगिक क्षेत्र पर ही केन्द्रित रहता है। फाई तथा रेनिस का मॉडल विकास को प्रारम्भ तथा तीव्र करने में दोनों क्षेत्रों के परस्पर प्रभाव को दर्शाता है। फिर, लुइस के मोड़ बिन्दु को समझाने का इसका ढंग अधिक वास्तविक है। इस सिद्धान्त की मुख्य श्रेष्ठता यह है कि यह अल्पविकसित देशों में पूँजी के संचय के लिए कृषि वस्तुओं के महत्त्व को प्रकट करता है।

क्या आप जानते हैं फाई तथा रेनिस का मॉडल लुइस के मॉडल का एक सुधरा हुआ रूप है।

इन श्रेष्ठताओं के बावजूद यह मॉडल भी आलोचना से अछूता नहीं है, जिनकी नीचे विवेचना की गई है।

1. **भूमि की पूर्ति का स्थिर न होना** (Supply of land not fixed)–फाई तथा रेनिस यह धारणा लेकर चलते हैं कि विकास प्रक्रिया के दौरान भूमि की पूर्ति स्थिर होती है। दीर्घ अवधि में, फसल एकड़ उत्पत्ति का अध्ययन करने पर यह पाया गया है कि भूमि की मात्रा स्थिर नहीं रहती है। उदाहरणार्थ, भारत में फसल क्षेत्र का सूचकांक (आधार 1961-62) 1950-51 में 82 था जो बढ़कर 1970-71 में 107.3 हो गया।
2. **संस्थानिक मजदूरी का MPP से अधिक न होना** (Institutional wage not above the MPP)–यह मॉडल इस धारणा पर आधारित है कि विकास प्रक्रिया की अवस्था I तथा II के दौरान संस्थानिक मजदूरी स्थिर होती है तथा MPP से ऊंची होती है। इस मान्यता के पक्ष में कोई आनुभविक प्रमाण नहीं है। वास्तव में श्रम अतिरेक अल्पविकसित देशों में कृषि श्रमिकों को दी जाने वाली मजदूरी MPP से काफी कम होती है।
3. **कृषि क्षेत्र में संस्थानिक मजदूरी का स्थिर न होना** (Institutional wages not constant in the agricultural sector)–इस सिद्धान्त की धारणा है कि कृषि उत्पादकता में वृद्धि होने के बावजूद पहली दो

नोट

अवस्थाओं में संस्थानिक मजदूरी स्थिर रहती है। यह अत्यधिक अवास्तविकता है क्योंकि कृषि उत्पादकता में सामान्य वृद्धि के कारण फार्म मजदूरी का बढ़ना सुनिश्चित है। उदाहरणार्थ, पंजाब में हरित-क्रांति (1967-72) के दौरान किए गए फार्म सर्वेक्षण से यह प्रमाणित होता है कि विभिन्न कृषि वर्गों के लिए श्रमिकों की दैनिक वास्तविक मजदूरी (1966 की कीमतों पर) की दरें 41.7 प्रतिशत से 55.2 प्रतिशत हो गई थीं।

4. **बंद मॉडल** (Closed model) – फाई तथा रेनिस के अनुसार व्यापार की शर्तें दूसरी अवस्था में औद्योगिक क्षेत्र के विरुद्ध कार्य करती हैं, जब कृषि उत्पादन घटता है और कृषि वस्तुओं की कीमतें बढ़ती हैं। यह विश्लेषण बंद अर्थव्यवस्था की धारणा पर आधारित है जहां विदेशी व्यापार नहीं होता। यह मान्यता इस कारण से अयथार्थ है क्योंकि अल्पविकसित देश बंद अर्थव्यवस्थाएँ न होकर खुली अर्थव्यवस्थाएँ हैं जहां कमी आने पर कृषि वस्तुओं को आयातित किया जाता है।

5. **कृषि का व्यापारिककरण स्फीति को उत्पन्न करता है** (Commercialisation of agriculture leads to inflation) – इस सिद्धान्त के अनुसार, जब कृषि क्षेत्र तृतीय अवस्था में प्रवेश करता है तो व्यापारिकृत हो जाता है। किन्तु अर्थव्यवस्था की सरल आत्मजनक वृद्धि की ओर जाने की संभावनाएँ नहीं रहती क्योंकि स्फीतिकारी दबाव प्रारम्भ हो जाते हैं। जब अनेक श्रमिक औद्योगिक क्षेत्र में स्थानान्तरित हो जाते हैं तो कृषि क्षेत्र श्रमिकों की कमी को महसूस करता है। इसी दौरान संस्थानिक मजदूरी श्रमिकों की MPP के बराबर होती है तथा इस प्रकार कृषि वस्तुओं की कमी हो जाती है। ये सभी तथ्य अर्थव्यवस्था में स्फीतिकारी दबाव पैदा करते हैं।

6. **एम.पी.पी. शून्य नहीं है** (MPP not zero) – फाई तथा रेनिस मानते हैं कि भूमि की स्थिर मात्रा के साथ जनसंख्या का एक बहुत बड़ा आकार होगा जो कि MPP को शून्य बनाएगा। शुल्ज इस मत से सहमत नहीं है कि श्रम-अतिरेक अर्थव्यवस्थाओं में MPP शून्य है। उसके अनुसार यदि ऐसा होता तो संस्थानिक मजदूरी भी शून्य होती। वास्तविकता यह है कि प्रत्येक मजदूर को न्यूनतम मजदूरी मिलती है जो भले ही वस्तु के रूप में हो यदि नकदी के रूप में नहीं। अत: यह कहना नितान्त असत्य है कि कृषि क्षेत्र में MPP शून्य होती है।

निष्कर्ष (Conclusion)

फिर भी श्रम-अतिरेक देशों के आर्थिक विकास के लिए फाई तथा रेनिस के इस मॉडल की ये कमियाँ किसी भी प्रकार इसके महत्त्व को कम नहीं करती है, अपितु यह सिद्धान्त अल्पविकसित देशों के कृषि तथा औद्योगिक क्षेत्रों के परस्पर प्रभावों की विकास प्रक्रिया का उत्कृष से आत्मजनक वृद्धि तक व्यवस्थित ढंग से विश्लेषण करता है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

2. रिक्त स्थानों की पूर्ती करें (Fill in the Blanks)-

1. लुइस का मॉडल कृषि क्षेत्र के विकास को ध्यन में रखते हुए केवल ..... पर ही केन्द्रित रहता है।
2. फाई तथा रेनिस यह धारणा लेकर चलते हैं कि विकास प्रक्रिया के दौरान ..... की पूर्ति स्थिर होती है।
3. ..... बंद अर्थव्यवस्था न होकर खुली अर्थव्यवस्थाएँ हैं।

19.3 सारांश (Summary)

- फाई तथा रेनिस श्रम अतिरेक अर्थव्यवस्था के विकास को तीन अवस्थाओं में प्रस्तुत करते हैं। **प्रथम** अवस्था में, अदृश्य बेरोजगार श्रमिक जो कृषि उत्पादन में कोई वृद्धि नहीं करते, को निरन्तर संस्थानिक मजदूरी पर औद्योगिक क्षेत्र में स्थानान्तरित कर दिया जाता है। **द्वितीय** अवस्था में, कृषि श्रमिक जो कृषि उत्पादन में वृद्धि तो करते हैं किन्तु प्राप्त संस्थानिक मजदूरी से कम उत्पादन करते हैं, ऐसे श्रमिक भी औद्योगिक क्षेत्र में भेज दिए जाते हैं। यदि श्रमिकों का औद्योगिक क्षेत्र में निरन्तर स्थानान्तरण किया जाता रहता है तो अन्तत: ऐसी स्थिति उत्पन्न होती है जबकि खेतीहर श्रमिक संस्थानिक मजदूरी के बराबर उत्पादन करते

नोट

हैं। इसी से **तृतीय** अवस्था प्रारम्भ होती है, जो कि उत्कृष (take off) की अन्तिम स्थिति है और आत्मजनक वृद्धि का प्रारम्भ है।

- फाई तथा रेनिस प्रदर्शित करते हैं कि यदि कृषि उत्पादकता बढ़ती है तो दुर्लभता बिन्दु तथा व्यापारिककरण बिन्दु मिल जाते हैं। यह इसलिए होता है कि कृषि की उत्पादकता की वृद्धि के कारण MPP में वृद्धि उत्पादन को संस्थानिक मजदूरी के स्तर तक अधिक शीघ्रता से बढ़ने के योग्य बनाती है।
- फाई तथा रेनिस के अनुसार, द्वितीय अवस्था के समाप्त होने का आर्थिक महत्त्व यह है कि यह अर्थव्यवस्था को आत्मजनक वृद्धि में सरलता से चलने की योग्यता प्रदान करती है।
- फाई तथा रेनिस ने दर्शाया है कि उनका मॉडल उत्कृष प्रक्रिया के दौरान की शर्तों को पूरा करता है। संतुलित वृद्धि में व्यवस्था के कृषि तथा औद्योगिक दोनों क्षेत्रों में एक साथ निवेश आवश्यक है।

19.4 शब्दकोश (Keywords)

- **उत्कृष्ट–** श्रेष्ठ।
- **स्फीति–** विस्तार।

19.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. फाई-रेनिस के दोहरे अर्थव्यवस्था सिद्धांत का विवेचन कीजिए।
2. फाई-रेनिस मॉडल की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।
3. फाई-रेनिस मॉडल का समीक्षात्मक विवेचन कीजिए।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

1. 1. (ख) 2. (ग) 3. (क) 4. (घ)

2. 1. औद्योगिक क्षेत्र 2. भूमि 3. अल्पविकसित देश

19.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. *संवृद्धि एवं विकास का अर्थशास्त्र*: डॉ. पी. मिश्रा; साहित्य भवन पब्लिकेशन्स : आगरा
2. *विकास नियोजन एवं नीतियाँ*: वी. सी सिन्हा: साहित्य भवन पब्लिकेशन्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.) लि. रजिस्टर्ड कार्यालय नई दिल्ली
3. *विकास का अर्थशास्त्र एवं आयोजन*: डा. एस. एल. डिंगल: वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा. लि.

नोट

इकाई–20: वृद्धि के बड़े धक्के का सिद्धान्त (Big Push Theory of Growth)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

20.1 बड़े धक्के का सिद्धांत (The Big Push Theory)

20.2 सिद्धान्त की मान्यताएँ (Assumptions of Theory)

20.3 सिद्धान्त का आधार या तार्किक औचित्य (Base of Theory or Logical Justification)

20.4 सिद्धान्त के प्रमुख तत्त्व (Main Elements of the Theory)

20.5 रोडन के सिद्धान्त के गुण (Merits of Rodan Theory)

20.6 रोडन के सिद्धान्त का आलोचनात्मक विश्लेषण (Critical Appraisal of Rodan's Theory)

20.7 सारांश (Summary)

20.8 शब्दकोश (Keywords)

20.9 अभ्यास–प्रश्न (Review Questions)

20.10 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- बड़े धक्के सिद्धान्त और सिद्धान्त की मान्यताओं को समझने में।
- सिद्धान्त के आधार या तार्किक औचित्य और सिद्धान्त के प्रमुख तत्व को जानने में।
- सिद्धान्त के गुण की सिद्धान्त के आलोचनात्मक विश्लेषण क विवेचन करने में।

प्रस्तावना (Introduction)

"बड़ा धक्का अथवा प्रयास" सिद्धान्त प्रो. पाल एन. रेजिस्टीन रोडान के नाम से संबद्ध है। थीसिस यह है कि अल्पविकसित अर्थव्यवस्था में विकास की बाधाओं को पार करने और उसे प्रगति के पथ पर चलाने के लिए "बड़ा धक्का" या बड़ा व्यापक प्रोग्राम आवश्यक है जो न्यूनतम किन्तु उच्च मात्रा के निवेश के रूप में हो।

उत्पादन फलन की अविभाज्यताएँ (Indivisibilities in the Production Function)–इस प्रकार की अविभाज्यताएँ उत्पादन प्रक्रिया व उत्पादन ढाँचे से सम्बन्धित होती हैं जिनमें सामाजिक–आर्थिक उपरि पूँजी अर्थात् सड़क, रेल, संचार, शिक्षा, स्वास्थ्य, शक्ति आदि क्षेत्रों के विकास पर निवेश करना पड़ता है।

20.1 बड़े धक्के का सिद्धान्त (The Big Push Theory)

प्रो. पाल एन. रेजिन्स्टीन रोडान ने 'बड़े धक्के का सिद्धान्त' का प्रतिपादन सन्तुलित विकास पद्धति की मान्यता पर किया है। इस सिद्धान्त के अनुसार आर्थिक विकास का सूत्रपात करने के लिए अविभाज्यताओं को कम करना तथा बाहरी बचतों को प्राप्त करना जरूरी है जिसके लिए विनियोग की निश्चित न्यूनतम मात्रा का होना आवश्यक है।

नोट

रोडन ने सन्तुलित विकास के तीन सन्तुलनों की चर्चा की है। इस दृष्टि से–

(*i*) विभिन्न उपभोक्ता वस्तु उद्योगों में उनकी सापेक्षिक माँग के अनुसार समतल सन्तुलन (Horizontal Equilibrium) होना चाहिए।

(*ii*) पूँजी उद्योगों, मध्यम उद्योगों तथा उपभोक्ता वस्तु उद्योगों में लम्बवत् सन्तुलन (Vertical Equilibrium) होना चाहिए।

(*iii*) पूँजीगत उद्योगों, उपभोक्ता उद्योगों तथा सामाजिक उपरिव्यय पूँजी (Social Overhead Capital) तथा प्रत्यक्ष उत्पादक प्रक्रियाओं (Directly Productive Activities) के बीच सामान्य सन्तुलन (General Equilibrium) बना रहना चाहिए।

अन्त में, रोडन ने अर्द्ध-विकसित देशों के आर्थिक विकास का प्रक्रिया में बहुत बड़े पैमाने पर विनियोग के लिए राज्य की भूमिका को महत्वपूर्ण माना है।

प्रो. पाल एन. रोजेन्स्टीन रोडान ने 'बड़े धक्के' या 'प्रबल प्रयास का सिद्धान्त' का प्रतिपादन किया है। उनके अनुसार अर्द्ध-विकसित देशों में धीरे-धीरे नीति के आधार पर विकासात्मक कार्यों को क्रियान्वित करने पर कोई विशेष लाभ नहीं होता, यहाँ आवश्यकता बड़े पैमाने पर विनियोग की है। उसने M.I.T. अध्ययन से अपने तर्क पर बल देने के लिए एक सादृश्य (analogy) प्रस्तुत किया है। "यदि विकास प्रोग्राम को थोड़ा भी सफल बनाना है तो संसाधनों का एक न्यूनतम स्तर उस प्रोग्राम में लगाना ही पड़ेगा। किसी देश को वृद्धि की आत्मनिर्भरता की अवस्था में लाना ठीक वैसा ही है, जैसा हवाई जहाज को धरती से हवा में उड़ाना। भूमि पर एक ऐसी कांतिक-गति होती है, जिसे विमान को वायुवाहित बनने के लिए धरती पर ही पार करना पड़ता है।" यह सिद्धान्त कहता है कि धीरे-धीरे चलने से अर्थव्यवस्था को सफलतापूर्वक विकास-पथ पर नहीं लाया जा सकता बल्कि इसके लिए आवश्यक स्थिति यह है कि एक न्यूनतम मात्रा में निवेश किया जाए। इसके लिए उन बाह्य मितव्ययिताओं को प्राप्त करना आवश्यक हो जाता है, जो तकनीकी रूप में स्वतंत्र उद्योगों की एक-साथ स्थापना से उत्पन्न होती हैं। इस प्रकार निवेश की न्यूनतम मात्रा से प्रवाहित होने वाली अविभाज्यताएँ तथा बाह्य मितव्ययिताएँ आर्थिक विकास का सफलतापूर्वक सूत्रपात करने के लिए आवश्यक हैं। रोडान का सिद्धान्त सन्तुलित विकास पद्धति की मान्यता पर आधारित है।

20.2 सिद्धान्त की मान्यताएँ (Assumptions of Theory)

(1) स्थिर अर्थव्यवस्था की प्रारम्भिक जड़ता तोड़ने के लिए न्यूनतम प्रयास का बड़ा धक्का आवश्यक है।

(2) निर्धन या अर्द्ध-विकसित देशों में एक सुनिश्चित न्यूनतम स्तर विद्यमान रहता है।

(3) विकास को आवश्यक प्रबल गति देने के लिए न्यूनतम आवश्यक विनियोग जरूरी है।

(4) बड़े धक्के से बाह्य बचतें प्राप्त होती हैं।

(5) सरकार को आर्थिक संरचना का निर्माण करने के लिए पर्याप्त मात्रा में एक बार पूँजी विनियोग कर देना चाहिए।

(6) अर्द्ध-विकसित देशों में बाह्य मितव्ययिताओं का अभाव पाया जाता है।

(7) अर्थव्यवस्थाओं में अविभाज्यताएँ, असंगतताएँ तथा अपूर्णताएँ पायी जाती हैं।

(8) आर्थिक विकास के लिए सन्तुलित आर्थिक विकास व्यूह रचना आवश्यक है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

1. निम्नलिखित कथनों में सत्य/असत्य की पहचान करें–

1. बड़े धक्के में उत्पादन फलन संबंधी अविभाज्य तारों जिसके लिए बड़ी मात्रा में विनियोग की आवश्यकता होती है, की अविभाज्यताएँ अथवा मितव्ययिताएँ बतायी गई हैं।
2. बड़े धक्के सिद्धांत का प्रतिपादन लुइस ने किया है।

नोट

3. बड़े धक्के से बाह्य बचतें प्राप्त होती हैं।
4. आर्थिक विकास के लिए सन्तुलित आर्थिक विकास व्यूह रचना की आवश्यकता नहीं होती।

20.3 सिद्धान्त का आधार या तार्किक औचित्य (Base of Theory or Logical Justification)

बाह्य बचतों को प्राप्त करने की सम्भावना विनियोग के बड़े धक्के सिद्धान्त का प्रमुख आधार है। **रोजेन्स्टीन रोडान** के अनुसार, ''बाह्य बचतों पर जोर देना ही विकास सिद्धान्त को स्थैतिक सिद्धान्त से अलग करता है। स्थैतिक सिद्धान्त में बाह्य बचतें अपेक्षाकृत कम महत्वपूर्ण होती हैं किन्तु आर्थिक विकास के सिद्धान्त में वे विशेष महत्व रखती हैं। 'बड़े धक्के' के सिद्धान्त के अनुसार 'एक विकास कार्यक्रम' कम से कम एक आवश्यक न्यूनतम आकार का होना चाहिए जिससे कि अर्थव्यवस्था में अविभाज्यताओं तथा असमानताओं को कम किया जा सके, पैमाने की अबचतों को निष्प्रभावित किया जा सके तथा कुछ अन्य ऐसी शक्तियों का मुकाबला किया जा सके जो एक बार विकास प्रारम्भ हो जाने पर उसे दबाने के लिए प्रारम्भ होती हैं।'' अत: सार रूप में आर्थिक विकास का सूत्रपात करने के लिए अविभाज्यताओं को कम करना तथा बाह्य विनियोग को प्राप्त करना जरूरी है जिसके लिए विनियोग की निश्चित न्यूनतम मात्रा का होना आवश्यक है।

20.4 सिद्धान्त के प्रमुख तत्व (Main Elements of the Theory)

(1) बड़े धक्के से बाह्य मितव्ययिताओं का विकास (Big Push to Creation of External Economies)– अर्द्ध-विकसित देशों में सहायक आर्थिक व सामाजिक संरचना का अभाव रहता है, फलत: निजी विनियोग प्रेरणाहीन और प्रभावविहीन होते हैं। चूँकि आर्थिक व सामाजिक संरचना के निर्माण में विनियोग अनुत्पादक और लाभरहित होता है इसलिए निजी व्यक्तियों की रुचि इस ढाँचे के विस्तार में नहीं रहती है। आवश्यक आर्थिक संरचना के अभाव में सन्तुलित विकास सम्भव नहीं हो पाता।

टास्क संतुलित विकास के लिए अविभाज्यताओं की भूमिका क्या है ?

आर्थिक एवं सामाजिक संरचना के निर्माण अर्थात् बाह्य मितव्ययिताओं के निर्माण के लिए बड़ी मात्रा में पूँजी विनियोग की आवश्यकता होती है इसलिए सरकार को स्वयं ही इस ओर ध्यान देना चाहिए।

यदि अर्थव्यवस्था में बाह्य मितव्ययिताएँ विद्यमान हों तो–(*i*) नये साहसी उपक्रम लगाना प्रारम्भ कर देंगे। (*ii*) कई नये स्थानों पर साहसी अपने उपक्रमों का विस्तार करेंगे। (*iii*) लाभ की मात्रा अधिक होने के कारण विदेशी एवं घरेलू विनियोगकर्ता पूँजी लगाना प्रारम्भ कर देंगे। यदि कुछ उद्योग समानान्तर स्थापित होंगे तो एक-दूसरे पर तकनीकी निर्भरता भी बढ़ सकेगी। इस अनुपूरकता के आधार पर दुष्चक्रों को तोड़ा जा सकेगा।

(2) बाजार विस्तार एवं प्रबल प्रयास (बड़े धक्के) (Big Push and Enlarging the Market)–विनियोग के बड़े धक्के के कारण पूर्ति पक्ष में विस्तार होगा। पूर्ति को आवश्यक स्तर पर बनाये रखने के लिए उत्पादित वस्तुओं एवं सेवा के लिए माँग में विस्तार एवं वृद्धि आवश्यक है। इसके लिए कई सहायक एवं पूरक उद्योगों की स्थापना होने से अन्तर उद्योग माँग का भी विस्तार होगा और प्रत्येक उद्योग एक-दूसरे के लिए माँगकर्ता होंगे। फलत: विकास पक्ष में गति उत्पन्न होगी।

सहायक एवं पूरक उद्योगों की बड़े पैमाने पर स्थापना होने से (*i*) आय-प्रभाव का सृजन होता है; (*ii*) आय में वृद्धि से माँग में वृद्धि होती है; (*iii*) उद्योगों की उत्पादन क्षमता का पूर्ण उपयोग होने लगता है तथा (*iv*) लागत न्यूनतम-बिन्दु पर आ जाती है।

नोट

(3) अविभाज्यताओं तथा बाह्य बचतों के रूप (Forms of Indivisibility and External Saving)–**रोडान** ने चार प्रकार की अविभाज्यताओं तथा बाह्य बचतों का उल्लेख किया है–

(*i*) उत्पादन फलन में अविभाज्यता (Indivisibility of Production Function)–अर्द्ध-विकसित देशों में उत्पादन फलन में बहुत-सी अविभाज्यताएँ पाई जा सकती हैं किन्तु **सामाजिक उपरि पूँजी की अविभाज्यता उनमें सबसे अधिक महत्वपूर्ण है।** अपनी अविभाज्यता के कारण इस प्रकार का विनियोग बाह्य बचतों तथा बढ़ते हुए प्रतिफल का एक बड़ा स्रोत हो सकता है। अविभाज्यता का एक मुख्य कारण सामाजिक उपरिव्यय पूँजी है। सामाजिक उपरिव्यय से सम्बन्धित सेवाएँ, जैसे–जल व्यवस्था, संवादवाहन, शक्ति व्यवस्था, यातायात का प्रबन्ध आदि ऐसी सेवाएँ हैं जो अप्रत्यक्ष रूप से अत्यधिक उत्पादक होती हैं और इनकी आयु भी अधिक होती है। इनका आयात भी सामान्यत: सम्भव नहीं होता। इन सामाजिक उपरिव्यय सेवाओं के विकास के लिए काफी बड़ी मात्रा में विनियोजन की आवश्यकता पड़ती है। यह हो सकता है कि अर्द्ध-विकसित देशों में उनकी पूरी क्षमताओं का प्रयोग कुछ समय तक न हो सके किन्तु अन्य उद्योगों के विकास के लिए इनका समुचित प्रबन्ध आवश्यक होता है। इस प्रकार के विनियोग से प्रतिफल काफी लम्बे समय के बाद मिलता है।

प्रो. रोजेन्स्टीन रोडन के अनुसार सामाजिक उपरिव्यय पूँजी के साथ निम्नलिखित अविभाज्यताओं को सम्बन्धित किया जा सकता है–

(*i*) इस व्यय का ऐतिहासिक क्रम नहीं बदला जा सकता है अर्थात् इस व्यय का सबसे पहले ही किया जाना आवश्यक होता है।

(*ii*) एक न्यूनतम मात्रा आर्थिक तथा सामाजिक उपरिव्यय पर व्यय किये बिना मनोवांछित प्रगति अथवा विकास प्राप्त नहीं किया जा सकता।

(*iii*) यह विनियोग बड़ी मात्रा में ही करना पड़ता है अन्यथा इसे 'तकनीकी लाभ' प्राप्त नहीं हो सकते।

(*iv*) इन विकास सेवाओं का आयात नहीं किया जा सकता इसलिए उनका निर्माण देश के अन्दर ही करना पड़ता है।

(*v*) आदान-प्रदान प्रक्रियाओं के कारण सामाजिक उपरिव्यय मदों पर किया गया प्रत्येक विनियोग अन्य उद्योगों में विनियोग की सम्भावना को बढ़ा देता है।

(*ii*) माँग की अविभाज्यता (Indivisibility of Demand)–'बड़े धक्के' के सिद्धान्त के पक्ष में दूसरा महत्वपूर्ण तर्क माँग अथवा पूरक माँग की अविभाज्यता है। माँग की अविभाज्यता के कारण ही परस्पर निर्भर उद्योगों का एक साथ विकास करने की आवश्यकता होती है। व्यक्तिगत अथवा एकाकी विनियोजनों के साथ यहाँ अधिक मात्रा में जोखिम इसलिए पाया जाता है कि इस बात की सम्भावना नहीं होती कि सीमान्त माँग के कारण उनके द्वारा उत्पादित वस्तुएँ बिक भी सकेंगी अथवा नहीं। इसलिए यह अत्यन्त आवश्यक हो जाता है कि पारस्परिक निर्भरता वाले अनेक उद्योग-धन्धों में एक साथ विनियोजन किया जाए, ताकि माँग की कमी के कारण किसी समस्या का सामना न करना पड़े। एक साथ अनेक उद्योग-धन्धों में विनियोजन किये जाने से माँग बढ़ेगी, रोजगार के स्तरों में भी वृद्धि होगी अथवा अधिक वस्तुओं के उत्पादन के साथ-साथ उनकी खपत भी बढ़ेगी। **प्रो. रोडन** ने स्वयं लिखा है, ''जब तक इस बात का निश्चय न हो कि विनियोजन पूरक होगा, तब तक विनियोजन एकाकी कार्यक्रम अत्यधिक जोखिमपूर्ण ही समझा जायेगा किन्तु एक बड़ा विनियोजन कार्यक्रम जो एक इकाई के रूप में हो, राष्ट्रीय आय में काफी वृद्धि प्राप्त कर सकता है।''

उदाहरण (Example)–**रोजेन्स्टीन रोडन** ने अपनी बात स्पष्ट करने के लिए जूता कारखाने का प्रसिद्ध उदाहरण दिया है। शुरू में बन्द अर्थव्यवस्था लेकर, मान लीजिए कि एक जूता कारखाने में सौ प्रच्छन्न बेरोजगार श्रमिक काम पर लगाये जाते हैं जिनकी मजदूरी अतिरिक्त आय का निर्माण करती है। यदि ये श्रमिक अपनी समस्त आय उन जूतों पर व्यय करें जिनका वे निर्माण करते हैं तो जूता-बाजार में निरन्तर माँग रहेगी और इस प्रकार उद्योग सफल हो जायेगा परन्तु वे समस्त अतिरिक्त आय जूतों पर व्यय नहीं करेंगे क्योंकि मानवीय आवश्यकताएँ विभिन्न प्रकार की होती हैं।

नोट

कारखाने के बाहर के लोग भी इन अतिरिक्त जूतों को नहीं खरीदेंगे क्योंकि वे दरिद्र हैं और उनके पास इतना धन नहीं है कि वे अपनी न्यूनतम आवश्यकताओं को भी पूरा कर सकें। इस प्रकार बाजार के अभाव के कारण नया कारखाना बन्द हो जायेगा।

रोडन की जूता फैक्टरी का उदाहरण चित्र 20.1 की सहायता से स्पष्ट किया गया है–

(*i*) मान लीजिए, जूता फैक्टरी जिस प्लाण्ट पर कार्य कर रही है, उसका औसत लागत वक्र AC और सीमान्त लागत वक्र MC है। यह प्लाण्ट अनुकूलतम प्रकार के प्लाण्ट से कुछ छोटा है।

(*ii*) चित्र में AR_1 या D_1 जूता फैक्टरी की माँग तथा MR_1 उसकी सीमान्त आय प्रदर्शित करती है, जबकि अर्थव्यवस्था में विनियोग केवल जूता की फैक्टरी द्वारा किया जाता है।

(*iii*) इस स्थिति में MC तथा MR_1 के कटान के आधार पर सन्तुलन उत्पादन OQ_1 (या 10,000) जूते हैं जिन्हें वह OP कीमत पर बेचती है।

(*iv*) OP कीमत पर माँग की कमी के कारण फैक्टरी अपनी औसत लागत (AC) नहीं निकाल पा रही है और उसे PCAB की हानि उठानी पड़ रही है।

(*v*) अब मान लीजिए, एक साथ अनेक विभिन्न उद्योगों में विनियोग किया जाता है तो जूतों के बाजार का विस्तार होता है जिससे जूतों की माँग वक्र (चार गुना) बढ़कर D_2 हो जाती है और उससे सम्बन्धित सीमान्त आय MR_2 हो जाती है।

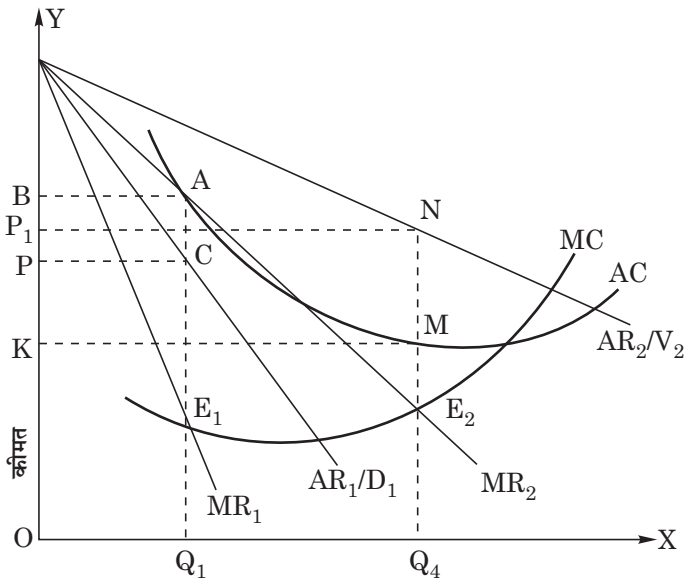

चित्र 20.1

(*vi*) इस स्थिति में अब MR_2 तथा MC वक्रों के आधार पर निर्धारित उत्पादन OQ_1 (या 40,000 उत्पादन में चार गुना वृद्धि) OP_1 कीमत पर होगी। फलतः फैक्टरी अपनी लागत पूरी कर लेगी और P_1NMK लाभ भी अर्जित करेगी।

उपर्युक्त उदाहरण से स्पष्ट है कि माँग की परिपूरकता के कारण सीमित माँग की समस्या विभिन्न उद्योगों में एक साथ विनियोजन करने के उपरान्त दूर हो जाती है और विनियोजन के क्षेत्र में पाया जाने वाला जोखिम भी काफी कम हो जाता है। इस प्रकार की अविभाज्यता के कारण भी यह आवश्यक हो जाता है कि बड़ी मात्रा में अनेक उद्योग-धन्धों में एक साथ विनियोजन किया जाये।

(*iii*) बचत की पूर्ति में अविभाज्यता (Invisibility in Supply of Savings)–अर्द्ध-विकसित देशों में 'बड़े धक्के' के पक्ष में बचतों की पूर्ति की अविभाज्यता का तर्क भी दिया जाता है। यह अविभाज्यता इसलिए पैदा होती है क्योंकि आय के एक निश्चित स्तर पर पहुँच जाने के पश्चात् ही बचतों में सार्थक वृद्धि करना सम्भव होता है।

विशेष रूप से अर्द्ध-विकसित देशों में निम्न आय स्तर के कारण बचतों का स्तर भी अत्यन्त निम्न रहता है। फलतः यह और भी आवश्यक हो जाता है कि जब विनियोग वृद्धि के फलस्वरूप आय में वृद्धि हो तो बचत की औसत दर की अपेक्षा बचत की सीमान्त दर अधिक तीव्र गति से बढ़नी चाहिए अन्यथा विनियोग निष्क्रिय सिद्ध होगा और पुनर्विनियोग अत्यन्त कम होगा।

नोट

क्या आप जानते हैं आर्थिक विकास का सूत्रपात करने के लिए अविभाज्यताओं को कम करना तथा बाह्य विनियोग को प्राप्त करना जरूरी है जिसके लिए विनियोग की निश्चित न्यूनतम मात्रा का होना आवश्यक है।

रोजेन्स्टीन के शब्दों में, ''एक न्यूनतम ऊँची मात्रा के विनियोग के लिए ऊँची मात्रा में बचत की आवश्यकता होती है जिसे निम्न आय वाले अर्द्ध-विकसित राष्ट्र में प्राप्त करना कठिन है। इस दुष्चक्र से बाहर आने का रास्ता है कि सर्वप्रथम आय में वृद्धि की जाय और ऐसी तांत्रिकता का प्रबन्ध किया जाय जो यह आश्वासन दे कि द्वितीय अवस्था में बचत की सीमान्त दर औसत बचत दर से बहुत ऊँची होगी।'' अन्य शब्दों में, प्रो. रोडन का मत है कि आय के नीचे स्तर वाली अर्द्ध-विकसित अर्थव्यवस्थाओं में बचत की ऊँची दरों को प्राप्त करने का एकमात्र तरीका विनियोगों में वृद्धि है जिसे इन देशों में यहाँ के अविकसित और अप्रयुक्त मानवीय संसाधन व अन्य साधनों को गतिशील कर प्राप्त किया जा सकता है।

***(iv)* मनोवैज्ञानिक अविभाज्यता** (Psychological Indivisibility)–मनोवैज्ञानिक आधार पर भी प्रो. रोडन ने भारी मात्रा में विनियोजन का सुझाव प्रस्तुत किया है। उन्हीं के शब्दों में, छोटे-छोटे प्रयास विकास पर पर्याप्त प्रभाव नहीं डालते। विकास के लिए अनुकूल वातावरण उतना ही आवश्यक है जितना कि एक न्यूनतम गति अथवा मात्रा। सफल आर्थिक विकास नीति में बल एवं प्रेरणा की अविभाज्यता का विशेष महत्व है।

तीन सन्तुलन (Three Balance)–रोडन ने सन्तुलित विकास के **तीन सन्तुलनों** के समूह की चर्चा की है–

(अ) उपभोक्ताओं द्वारा माँग में वृद्धि के क्रमानुसार विभिन्न उपभोग पदार्थ उद्योगों में क्षैतिज सन्तुलन (Horizontal Balance) लाना, ताकि माँग में वृद्धि के साथ-साथ इन वस्तुओं की पूर्ति अबाध गति से होती रहे।

(ब) सभी औद्योगिक क्षेत्रों में सामाजिक उपरिव्यय पूँजी (Social Overhead Capital) तथा प्रत्यक्ष उत्पादक प्रक्रियाओं (Directly Productive Activities) के बीच सन्तुलन बनाये रखना, ताकि एक-दूसरे के अभाव में विकास का कार्यक्रम ढीला न पड़ सके।

(स) पूँजीगत उद्योगों व उपभोक्ता पदार्थ उद्योगों के बीच उनकी तकनीकी निर्भरता के अनुसार अदग्रीय सन्तुलन (Vertical Balance) बनाये रखना जिससे बड़े पैमाने पर बाह्य बचतें प्राप्त हो सकें।

इस सिद्धान्त के अनुसार आर्थिक गतिविधि में इस प्रकार का व्यापक सन्तुलन बनाये बिना अर्द्ध-विकसित देशों में आर्थिक विकास करना लगभग असम्भव है।

राज्य की भूमिका (Role of the State)–रोडन ने अर्द्ध-विकसित देशों के आर्थिक विकास की प्रक्रिया में बहुत बड़े पैमाने पर प्रयास तथा विनियोग के लिए **राज्य की भूमिका को महत्त्वपूर्ण** माना है। अत: रोडन ने व्यक्तिगत निर्णयों के स्थान पर केन्द्रीकृत विनियोग नियोजन (Centralised Investment Planning) या निर्णय पर जोर दिया है जिससे एक साथ अर्थव्यवस्था में अनेक पूरक उद्योगों में विनियोग हो और बड़े पैमाने पर अर्थव्यवस्था को बाह्य बचतों का लाभ मिल सके।

(स) पूँजीगत उद्योगों व उपभोक्ता पदार्थ उद्योगों के बीच उनकी तकनीकी निर्भरता के अनुसार उदग्रीय या लम्बवत् सन्तुलन (Vertical Balance) बनाये रखना जिससे बड़े पैमाने पर बाह्य बचतें प्राप्त हो सकें।

इस सिद्धान्त के अनुसार आर्थिक गतिविधि में इस प्रकार का व्यापक सन्तुलन बनाये बिना अर्द्ध-विकसित देशों में आर्थिक विकास करना लगभग असम्भव है।

नोट

क्या आप जानते हैं भारतीय नियोजकों ने भी भारत की अवरुद्ध अर्थव्यवस्था के निम्न स्तरीय सन्तुलन-जाल से मुक्त कराने के लिए बड़े धक्के की आवश्यकता को स्वीकार किया है।

इसी कारण प्रथम योजना में स्पष्ट किया गया कि ''चूँकि नियोजन का उद्देश्य वस्तुतः द्रुत विकास को प्रोत्साहित करना है, इसलिए समस्या विनियोग दर की निश्चित अवस्थाओं में बढ़ाने की है, ताकि आरम्भिक काल में कष्ट कम किया जा सके परन्तु साथ ही साथ यह भी ध्यान रखा जाय कि समाज अपेक्षित दृष्टि से अल्पकाल में वांछित महान प्रयास अवश्य जुटाये।''

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

2. सही विकल्प चुनिए (Choose the Correct Option)

1. रोडन ने निम्न अविभाज्यताओं को अपने सिद्धान्त में शामिल किया है–
   (क) माँग की अविभाज्यताएँ (ख) उत्पादन फलन की अविभाज्यताएँ
   (ग) बचतों की पूर्ति में अविभाज्यताएँ (घ) उपर्युक्त सभी।
2. उत्पादन फलन की अविभाज्यताओं में प्रमुख हैं–
   (क) कृषि में विनियोग (ख) उद्योग में विनियोग
   (ग) सामाजिक उपरिव्ययों में विनियोग (घ) उपर्युक्त सभी।
3. परस्पर-निर्भर उद्योगों का एक साथ विकास करने की आवश्यकता पड़ती है–
   (क) उत्पादन फलन की अविभाज्यताओं के कारण (ख) माँग की अविभाज्यता के कारण
   (ग) मनोवैज्ञानिक अविभाज्यता के कारण (घ) इनमें से कोई नहीं।
4. रोडन ने अपने सिद्धांत में कितने प्रकार की अविभाज्यताओं तथा बाह्य बचतों का उल्लेख किया है–
   (क) चार प्रकार की (ख) दो प्रकार की
   (ग) छः प्रकार की (घ) इनमें से कोई नहीं।

20.5 रोडन के सिद्धान्त के गुण (Merits of Rodan Theory):

इस सिद्धान्त के निम्नलिखित गुण हैं–

(*i*) प्रो. रोजेन्स्टीन रोडन का सिद्धान्त अपेक्षाकृत अधिक **व्यावहारिक मान्यताओं** पर आधारित है। उन्होंने 'अविभाज्यताओं' तथा 'सम्भावनाओं एवं असम्भावनाओं' का एक अच्छा उल्लेख प्रस्तुत किया है।

(*ii*) उनका सिद्धान्त सन्तुलन की दशाओं मात्र की ही उल्लेख प्रस्तुत नहीं करता बल्कि **सन्तुलन के मार्ग** का भी विश्लेषण प्रस्तुत करता है।

(*iii*) यह सिद्धान्त कुछ बातों में स्थैतिक सन्तुलन के परम्परागत सिद्धान्त से भी श्रेष्ठ है। रोडन महोदय का यह कहना है कि यह विकास प्रक्रिया अनेक असतत् छलांगों का परिणाम है, पूर्णतया सत्य जान पड़ता है। उनकी उत्पादन फलन की अविभाज्यताओं की मान्यता भी आर्थिक जगत की एक वास्तविकता है।

(*iv*) यह सिद्धान्त अर्द्ध-विकसित देशों में पायी जाने वाली बाजार अपूर्णताओं से सम्बन्धित विनियोग का एक मार्गदर्शक सिद्धान्त है जो हमें यह बताया है कि ऐसे देशों में कीमत यन्त्र की अपेक्षा विनियोग की एक आवश्यक न्यूनतम मात्रा ही आर्थिक विकास को गति प्रदान कर सकती है।

नोट

नोट्स अर्थव्यवस्था में सामाजिक उपरिव्यय सेवाओं का प्रबन्ध दीर्घकालीन विकास के लिए पहली शर्त है और इनके प्रबन्ध के लिए बड़े पैमाने पर विनियोजन (बड़े धक्के) की आवश्यकता पड़ती है।

20.6 रोडान के सिद्धांत का आलोचनात्मक विश्लेषण (Critical Appraisal of Rodan's Thory)

आर्थिक विकास के बड़े धक्के की कई अर्थशास्त्रियों ने कटु आलोचना की है जिनमें जेकाब, विनार, एलिस, हावर्ड एवं एडलर प्रमुख हैं। कुछ आलोचनाएँ इस प्रकार हैं:

(1) **नगण्य मितव्ययिताएँ** (Negligible Economies)–बड़े धक्के के सिद्धान्त के प्रतिपादन का मुख्य आधार यह है कि इससे बाह्य मितव्ययिताएँ प्राप्त होती हैं परन्तु (*i*) बाह्य मितव्ययिताएँ तो विदेशी व्यापार से उपलब्ध की जा सकती हैं जिसके लिए इतनी अधिक मात्रा में विनियोग की आवश्यकता न होगी। (*ii*) चूँकि बाह्य मितव्ययिताएँ लागत अधिक घटाती हैं और तदनुरूप उत्पादन नहीं बढ़ातीं, इसलिए यह नीति अर्द्ध-विकसित देशों में अधिक उपयुक्त न होगी। इसका कारण यह है कि अर्द्ध-विकसित देशों में प्राथमिक वस्तुओं के उत्पादनकर्ता ही अधिक होते हैं। इसलिए बाह्य मितव्ययिताएँ बढ़ने से इन वस्तुओं के उत्पादन में महत्वपूर्ण परिवर्तन नहीं होगा।

(2) **कृषि-क्षेत्र की उपेक्षा** (Neglect of Agriculture Sector)–यह सिद्धान्त इस मान्यता पर आधारित है कि आर्थिक विकास औद्योगिक उन्नति के द्वारा ही हो सकता है, कृषि की उन्नति से नहीं परन्तु अर्द्ध-विकसित देशों में राष्ट्रीय आय का लगभग 75% कृषि से ही प्राप्त होता है, इसलिए कृषि के विकास से कुल अर्थव्यवस्था का विकास सम्भव है। ऐसी अर्थव्यवस्थाओं में कृषि-क्षेत्र की उपेक्षा उनके विकास को तेज करने के बजाय मन्द कर देगी।

(3) **पूँजी-निर्माण का अभाव** (Lack of Capital Formation)–अर्द्ध-विकसित देशों में इस बड़े धक्के के सिद्धान्त के कार्यक्रमों में पर्याप्त मात्रा में बचतों व पूँजी निर्माण का अभाव रहता है जिसका इस सिद्धान्त में ध्यान नहीं दिया गया है।

(4) **ऐतिहासिक तथ्य नहीं है** (Not a Historical Fact)–अगर हम विकसित देशों के इतिहास पर दृष्टिपात करें तो हमें विदित होगा कि उन देशों का विकास किसी बड़े धक्के के कारण नहीं हुआ था। **प्रो. हेगन** के अनुसार, ''ऐतिहासिक दृष्टि से बड़े धक्के की उपस्थिति या अनुपस्थिति कहीं भी विकास की प्रमुख विशेषता नहीं रही है।''

(5) **कम विनियोजन से अधिक उत्पादन** (More Production with Less Investment)–**प्रो. जान एडलर** ने भारत, पाकिस्तान व अन्य एशियाई व दक्षिणी अमेरिका के देशों में निम्न पूँजी उत्पाद अनुपातों के अध्ययन के उपरान्त यह निष्कर्ष निकाला कि ''विनियोजन का सापेक्षतम निम्न स्तर अतिरिक्त उत्पादन के रूप में अच्छी तरह हिसाब चुकता कर देता है।'' अत: इस बात का कोई निश्चित प्रमाण नहीं है कि अर्द्ध-विकसित देशों के आर्थिक विकास के लिए विनियोजन के बड़े धक्के की आवश्यकता है।

(6) **प्रशासकीय कठिनाइयाँ** (Administrative Difficulties)–रोडन का सिद्धान्त इस मान्यता पर आधारित है कि राज्य द्वारा बड़े पैमाने पर विनियोजन किया जाता है। चूँकि अर्द्ध-विकसित देशों में प्रशासकीय मशीनरी दुर्बल व अदक्ष होती है, इसलिए राज्य विनियोजन पर निर्भरता स्वयं अनेक समस्याएँ उत्पन्न कर देती है। सांख्यिकीय सूचना, तकनीकी ज्ञान, प्रशिक्षित व्यक्तियों की कमी के कारण न केवल विविध परियोजनाओं की योजना बनाने में कठिनाई होती है बल्कि इनके क्रियान्वयन में भी कठिनाई होती है।

(7) **स्फीतिकारी दबाव** (Inflationary Pressure)–जब सरकार आर्थिक संरचना के निर्माण के लिए भारी मात्रा में विनियोजन करती है तो उपभोक्ता वस्तुओं की कमी के कारण स्फीतिकारी परिस्थितियाँ उत्पन्न हो जाती हैं जो आर्थिक विकास में गतिरोध उत्पन्न कर सकती हैं।

नोट

(8) **सामाजिक उपरि पूँजी की अविभाज्यता का अतार्किक दृष्टिकोण** (Unlogical Approach towards Indivisibility of Social Overheads)–सामाजिक उपरि पूँजी की अविभाज्यताएँ रोडन के सिद्धान्त का सबसे प्रबल तर्क हैं परन्तु अर्द्ध-विकसित देशों के सम्बन्ध में यह तर्क ठीक नहीं बैठता। बहुत-से अर्द्ध-विकसित देशों में पहले से ही सामाजिक उपरि सुविधाओं का नये सिरे से विकास करने की समस्या नहीं है बल्कि वर्तमान सुविधाओं का विस्तार तथा उनमें सुधार करने की समस्या है। इसलिए यह सम्भव हो सकता है कि समाजिक उपरि पूँजी के निर्माण में बहुत अधिक विनियोग करना इन देशों के लिए बहुत अधिक उपयुक्त न हो।

(9) **मिश्रित अर्थव्यवस्था** (Mixed Economy)–अधिकांश अर्द्ध-विकसित देश मिश्रित अर्थव्यवस्था को अपनाये हुए हैं। मिश्रित अर्थव्यवस्था में सार्वजनिक-निजी क्षेत्रों में सहयोग एवं सामंजस्य के स्थान पर प्रतियोगिता एवं संघर्ष ही दिखायी देता है। ऐसी स्थिति में बड़े धक्के के सिद्धान्त को व्यावहारिक रूप देने पर यह प्रतियोगिता तथा संघर्ष और अधिक बढ़ जाता है।

(10) **प्रो. इलिस की आलोचनाएँ** (Criticisms of Prof. Ellis)–**प्रो. इलिस** ने रोडन के सिद्धान्त की आलोचना करते हुए यह कहा है कि इस सिद्धान्त को व्यावहारिक रूप में अपनाने में निम्नलिखित समस्याओं का सामना करना पड़ेगा–

(*i*) अर्द्ध-विकसित देश प्राथमिक वस्तुओं का उत्पादन करने वाले देश हैं। इन देशों में बाह्य मितव्ययिताओं के बढ़ने के बाद भी इन वस्तुओं के उत्पादन में कोई विशेष परिवर्तन नहीं आयेगा।

(*ii*) प्रो. रोडन के सिद्धान्त में अर्द्ध-विकसित देशों में बचत समस्या पर समुचित रूप से बल नहीं दिया गया है।

(*iii*) विकसित देशों का आर्थिक विकास यह स्पष्ट कर देता है कि इनका आर्थिक विकास 'बड़े धक्के' के सिद्धान्त को अपनाने के पश्चात् नहीं हुआ है।

(*iv*) इस सिद्धान्त की यह मान्यता भी सही नहीं है कि आर्थिक विकास कृषि उन्नति के बजाय औद्योगीकरण की सहायता से हो सकता है। अर्द्ध-विकसित देश अपनी राष्ट्रीय आय या विदेशी व्यापार आय का लगभग दो-तिहाई भाग कृषि से ही प्राप्त करते हैं। अत: कृषि के विकास को इन देशों में अपेक्षाकृत अधिक महत्व देना होगा।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

3. रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks)–

1. प्रो. रोजेन्स्टीन रोडन का सिद्धांत ..... मान्यताओं पर आधारित है।
2. रोडन के अनुसार विकास प्रक्रिया अनेक ..... छलांगों का परिणाम है।
3. सामाजिक उपरिपूँजी की ..... रोडन के सिद्धांत का सबसे प्रबल तर्क है।
4. अर्द्ध-विकसित देश अपनी राष्ट्रीय आय का लगभग ..... भाग कृषि से प्राप्त करते हैं।

20.7 सारांश (Summary)

- "बड़ा धक्का अथवा प्रयास" सिद्धान्त प्रो. पाल एन. रेजिस्टीन रोडन के नाम से संबद्ध है।
- **उत्पादन फलन की अविभाज्यताएँ** (Indivisibilities in the Production Function)–इस प्रकार की अविभाज्यताएँ उत्पादन प्रक्रिया व उत्पादन ढाँचे से सम्बन्धित होती हैं जिनमें सामाजिक-आर्थिक उपरि पूँजी अर्थात् सड़क, रेल, संचार, शिक्षा, स्वास्थ्य, शक्ति आदि क्षेत्रों के विकास पर निवेश करना पड़ता है।
- **प्रो. पाल एन. रेजिन्स्टीन रोडान** ने 'बड़े धक्के का सिद्धान्त' का प्रतिपादन सन्तुलित विकास पद्धति की मान्यता पर किया है।
- अर्द्ध-विकसित देशों में धीरे-धीरे नीति के आधार पर विकासात्मक कार्यों को क्रियान्वित करने पर कोई विशेष लाभ नहीं होता, यहाँ आवश्यकता बड़े पैमाने पर विनियोग की है।

नोट

- स्थिर अर्थव्यवस्था की प्रारम्भिक जड़ता तोड़ने के लिए न्यूनतम प्रयास का बड़ा धक्का आवश्यक है।
- अर्थव्यवस्थाओं में अविभाज्यताएँ, असंगतताएँ तथा अपूर्णताएँ पायी जाती हैं।
- बाह्य बचतों को प्राप्त करने की सम्भावना विनियोग के बड़े धक्के सिद्धान्त का प्रमुख आधार है। **रोजेन्स्टीन रोडान** के अनुसार, ''बाह्य बचतों पर जोर देना ही विकास सिद्धान्त को स्थैतिक सिद्धान्त से अलग करता है।
- अर्द्ध-विकसित देशों में सहायक आर्थिक व सामाजिक संरचना का अभाव रहता है, फलत: निजी विनियोग प्रेरणाहीन और प्रभावविहीन होते हैं।
- आर्थिक एवं सामाजिक संरचना के निर्माण अर्थात् बाह्य मितव्ययिताओं के निर्माण के लिए बड़ी मात्रा में पूँजी विनियोग की आवश्यकता होती है इसलिए सरकार को स्वयं ही इस ओर ध्यान देना चाहिए।
- अर्द्ध-विकसित देशों में उत्पादन फलन में बहुत-सी अविभाज्यताएँ पाई जा सकती हैं किन्तु **सामाजिक उपरि पूँजी की अविभाज्यता उनमें सबसे अधिक महत्वपूर्ण है।**
- आदान-प्रदान प्रक्रियाओं के कारण सामाजिक उपरिव्यय मदों पर किया गया प्रत्येक विनियोग अन्य उद्योगों में विनियोग की सम्भावना को बढ़ा देता है।
- 'बड़े धक्के' के सिद्धान्त के पक्ष में दूसरा महत्वपूर्ण तर्क माँग अथवा पूरक माँग की अविभाज्यता है।
- **रोजेन्स्टीन रोडन** ने अपनी बात स्पष्ट करने के लिए जूता कारखाने का प्रसिद्ध उदाहरण दिया है।
- अर्द्ध-विकसित देशों में 'बड़े धक्के' के पक्ष में बचतों की पूर्ति की अविभाज्यता का तर्क भी दिया जाता है।
- अर्द्ध-विकसित अर्थव्यवस्थाओं में बचत की ऊँची दरों को प्राप्त करने का एकमात्र तरीका विनियोगों में वृद्धि है जिसे इन देशों में यहाँ के अविकसित और अप्रयुक्त मानवीय संसाधन व अन्य साधनों को गतिशील कर प्राप्त किया जा सकता है।
- मनोवैज्ञानिक आधार पर भी प्रो. रोडन ने भारी मात्रा में विनियोजन का सुझाव प्रस्तुत किया है।
- रोडन ने अर्द्ध-विकसित देशों के आर्थिक विकास की प्रक्रिया में बहुत बड़े पैमाने पर प्रयास तथा विनियोग के लिए **राज्य की भूमिका को महत्त्वपूर्ण** माना है।
- पूँजीगत उद्योगों व उपभोक्ता पदार्थ उद्योगों के बीच उनकी तकनीकी निर्भरता के अनुसार उदग्रीय या लम्बवत् सन्तुलन (Vertical Balance) बनाये रखना जिससे बड़े पैमाने पर बाह्य बचतें प्राप्त हो सकें।
- प्रो. रोजेन्स्टीन रोडन का सिद्धान्त अपेक्षाकृत अधिक **व्यावहारिक मान्यताओं** पर आधारित है। उन्होंने 'अविभाज्यताओं' तथा 'सम्भावनाओं एवं असम्भावनाओं' का एक अच्छा उल्लेख प्रस्तुत किया है।
- आर्थिक विकास के बड़े धक्के की कई अर्थशास्त्रियों ने कटु आलोचना की है जिनमें जेकाब, विनार, एलिस, हावर्ड एवं एडलर प्रमुख हैं।
- अगर हम विकसित देशों के इतिहास पर दृष्टिपात करें तो हमें विदित होगा कि उन देशों का विकास किसी बड़े धक्के के कारण नहीं हुआ था। **प्रो. हेगन** के अनुसार, ''ऐतिहासिक दृष्टि से बड़े धक्के की उपस्थिति या अनुपस्थिति कहीं भी विकास की प्रमुख विशेषता नहीं रही है।''
- जब सरकार आर्थिक संरचना के निर्माण के लिए भारी मात्रा में विनियोजन करती है तो उपभोक्ता वस्तुओं की कमी के कारण स्फीतिकारी परिस्थितियाँ उत्पन्न हो जाती हैं जो आर्थिक विकास में गतिरोध उत्पन्न कर सकती हैं।
- अधिकांश अर्द्ध-विकसित देश मिश्रित अर्थव्यवस्था को अपनाये हुए हैं। मिश्रित अर्थव्यवस्था में सार्वजनिक-निजी क्षेत्रों में सहयोग एवं सामंजस्य के स्थान पर प्रतियोगिता एवं संघर्ष ही दिखायी देता है।
- अर्द्ध-विकसित देश अपनी राष्ट्रीय आय या विदेशी व्यापार आय का लगभग दो-तिहाई भाग कृषि से ही प्राप्त करते हैं। अत: कृषि के विकास को इन देशों में अपेक्षाकृत अधिक महत्व देना होगा।

नोट

20.8 शब्दकोश (Keywords)

- **परिपूरक**–परिपूर्ण करने वाला।
- **अनुपूरक**–बाद में जोड़ा या बढ़ाया हुआ अंश।

20.9 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. रोजेन्स्टीन रोडन के विकास सिद्धान्त की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।
2. बड़े धक्के का सिद्धांत लीबेन्स्टीन के आवश्यक न्यूनतम प्रयास सिद्धान्त से किस प्रकार भिन्न है।
3. आर्थिक समृद्धि के 'अधिक प्रयास सिद्धांत' के पक्ष एवं विपक्ष में तर्क दीजिए।
4. बड़े धक्के के सिद्धांत का तार्किक औचित्य क्या है?

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

1.	1. सत्य	2. असत्य	3. सत्य	4. असत्य
2.	1. (घ)	2. (ग)	3. (ख)	4. (क)
3.	1. व्यावहारिक	2. असतत्	3. अविभाज्यताएँ	4. दो-तिहाई

20.10 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. *संवृद्धि एवं विकास का अर्थशास्त्र*: डॉ. पी. मिश्रा; साहित्य भवन पब्लिकेशन्स : आगरा
2. *विकास नियोजन एवं नीतियाँ*: वी. सी सिन्हा: साहित्य भवन पब्लिकेशन्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.) लि. रजिस्टर्ड कार्यालय नई दिल्ली
3. *विकास का अर्थशास्त्र एवं आयोजन*: डा. एस. एल. डिंगल: वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा. लि.

नोट

इकाई–21: सन्तुलित विकास और असन्तुलित विकास (Balance Growth and Unbalanced Growth)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

21.1 सन्तुलित विकास (Balanced Growth)

21.2 सन्तुलित विकास की विशेषताएँ (Characteristics of Balanced Growth)

21.3 सन्तुलित विकास के सिद्धान्त (Theories of Balanced Growth)

21.4 सन्तुलित विकास का सिद्धान्त–एक दृष्टि में (Theory of Balanced Growth At a Glance)

21.5 सन्तुलित विकास के लाभ अथवा सन्तुलित विकास के प्रभाव (Advantages of Balanced Growth or Effects of Balanced Growth)

21.6 सन्तुलित विकास सिद्धान्त की आलोचनाएँ (Criticisms of the Doctrine of Balanced Growth)

21.7 असन्तुलित विकास (Unbalanced Growth)

21.8 असन्तुलित विकास के लाभ (Advantages of Unbalanced Growth)

21.9 असन्तुलित विकास सिद्धान्त की आलोचनाएँ (Criticisms of the Principle of Unbalanced Growth)

21.10 सन्तुलित एवं असन्तुलित विकास सिद्धान्त में विकास की निरर्थकता (A Barren Controversy Between the Theory of Balanced and Unbalanced Growth)

21.11 सारांश (Summary)

21.12 शब्दकोश (Keywords)

21.13 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

21.14 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- संतुलित विकास को समझने में।
- संतुलित विकास के सिद्धान्त की च्याख्या करने में।
- संतुलित विकास के लाभ अथवा प्रभाव का विवेचन करने में।
- असंतुलित विकास तथा इसके लाभ को जानने में ।
- संतुलित एवं असंतुलित विकास सिद्धान्त में विकास को सफलता पूर्वक जानने में।

प्रस्तावना (Introduction)

सन्तुलित विकास का अभिप्राय अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों में एक साथ तथा एक-सा विकास करना है, ताकि राशि क्षेत्र समानता लिए हुए विकसित हों।

नोट

असन्तुलित वृद्धि का सिद्धान्त सन्तुलित वृद्धि की धारणा के बिल्कुल विपरीत है। इसके अनुसार अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों में एक साथ निवेश न करके कुछ के क्षेत्रों में सर्वप्रथम निवेश करना चाहिए। किसी भी अल्पविकसित अर्थव्यवस्था के पास साधन और पूँजी इतने नहीं होते कि समस्त क्षेत्रों में निवेश एक साथ किया जा सके। इस कारण ऐसे देशों में कुछ चुने हुए प्रमुख क्षेत्रों या उद्योगों में निवेश करके उनमें विकास की गति तीव्र की जाती है और उनसे उत्पन्न होने वाली मितव्ययिताओं में वृद्धि होने से अन्य क्षेत्रों का भी विकास होता है। इस प्रकार धीरे-धीरे अर्थव्यवस्था असन्तुलित वृद्धि से सन्तुलित वृद्धि की ओर बढ़ती है।

21.1 सन्तुलित विकास (Balanced Growth)

अर्थ (Meaning)–सन्तुलित विकास का अर्थ यह है कि एक विकासोन्मुख अर्थव्यवस्था (Developing Economy) के विभिन्न अंगों को एक साथ विकसित करना चाहिए, ताकि विकास प्रक्रिया में कठिनाइयाँ उत्पन्न न हों। उदाहरण के लिए, कृषि, उद्योग, परिवहन आदि सभी का, एक ही समान विकास होना चाहिए।

स्पष्ट व्याख्या करने की दृष्टि से नीचे कुछ 'परिभाषाएँ' दी जा रही हैं–

(1) **ए. घोष–**"सन्तुलित विकास के साथ नियोजन इंगित करता है कि अर्थव्यवस्था के समस्त क्षेत्र एक ही अनुपात में विकास करेंगे जिससे कि उपभोग, विनियोग एवं आय समान दर से बढ़ सके।"[1]

(2) **रेडावे–**"सन्तुलित विकास से अर्थ अर्थव्यवस्था के विभिन्न अंगों में सन्तुलन स्थापित करने से है। इसमें उत्पादन व उपभोग के मध्य, उपभोग व पूँजी के मध्य तथा उत्पादन प्रणाली में समन्वय स्थापित किया जाता है जिससे कि कच्ची सामग्री, अर्द्ध-निर्मित सामग्री एवं औद्योगिक आवश्यकताओं में सन्तुलन स्थापित किया जा सके।"

(3) **नर्क्से–**"सन्तुलित विकास अन्त में सन्तुलित भोजन की आवश्यकता पर निर्भर करता है।"[2]

(4) **लेविस–**"विकास कार्यक्रमों में अर्थव्यवस्था के समस्त क्षेत्रों को एक साथ विकसित करना चाहिए जिससे कि उद्योग एवं कृषि तथा घरेलू उत्पादन तथा निर्यात के लिए उत्पादन में उचित सन्तुलन स्थापित किया जा सके।"

सरल शब्दों में, **"सन्तुलित विकास से आशय अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों का एक साथ तथा एक-सा विकास करना है, ताकि सभी क्षेत्र समानता लिये हुए विकसित हों।"**

सन्तुलित विकास के समर्थकों में **एडम स्मिथ, नर्क्से, आर्थर लुइस, फ्रैडरिक लिस्ट, रोजेन्स्टीन रोडान, हार्वे लीबिन्स्टीन** आदि अर्थशास्त्रियों के नाम प्रमुख रूप से शामिल किये जाते हैं।

21.2 सन्तुलित विकास की विशेषताएँ (Characteristics of Balanced Growth)

सन्तुलित विकास की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं–

(1) सन्तुलित विकास का अर्थ एक-साथ सभी उद्योगों में विनियोग करना है।

(2) यह सिद्धान्त बहुमुखी विकास के सिद्धान्त की धारणा पर आधारित है।

(3) सन्तुलित विकास में कृषि एवं उद्योगों में सन्तुलन बिठाने के लिए दोनों का विकास एक समन्वित योजना के अन्तर्गत किया जाता है।

(4) सन्तुलित विकासपूरक उद्योगों का विकास करके बाजार को विस्तृत करता है।

(5) इसके अन्तर्गत निजी उपक्रम प्रणाली पर जोर दिया जाता है।

(6) सन्तुलित विकास में पूँजी का सुव्यवस्थित उपयोग आवश्यक है।

1. "Planning with balanced growth indicates that all the sectors of economy will expand in the same proportion so that consumption, investment and income will grow at the same rates." –Alok Ghosh, *New Horizans in Planning* p. 68.
2. "The case balanced growth rests ultimately on the need for balanced diet." –*R. Nurkse.*

21.3 सन्तुलित विकास के सिद्धान्त (Theories of Balanced Growth)

नोट

सन्तुलित विकास के सिद्धान्त के कुछ प्रमुख विचारक निम्नलिखित हैं

1. रोजेन्स्टीन रोडोन का मत,
2. आर्थर लुइस के विचार,
3. रेगनर नर्क्स के विचार।

1. रोजेन्स्टीन रोडन के विचार (Rosentein Rodan's Views)–रोडन ने अर्द्ध-विकसित देशों के आर्थिक विकास के लिए सन्तुलित विकास पद्धति का समर्थन किया है। वे सन्तुलित विकास पद्धति को एक 'बड़े धक्के' के रूप में लागू करना चाहते हैं। बड़े धक्के से उनका अभिप्राय सभी क्षेत्रों में एक साथ और आवश्यक न्यूनतम मात्रा में विनियोग करना है।

रोडान ने सन्तुलित विकास अर्थात् कई उद्योगों में एक साथ विनियोग करने से सम्बन्धित अपने दृष्टिकोण के पक्ष में यह कहा कि इससे कई प्रकार की बाहरी बचतें प्राप्त होती हैं। यह विनियोग एक साथ कई पूरक उद्योगों की स्थापना, सामाजिक उपरि पूँजी के निर्माण तथा बचत की दर में वृद्धि करने के लिए आवश्यक होता है। इसके फलस्वरूप बाहरी बचतें प्राप्त होती हैं। इन बचतों के कारण उद्योग में बढ़ते प्रतिफल का नियम (Law of Increasing Returns) लागू होता है। इसके फलस्वरूप विकास की दर में वृद्धि होती है।

टास्क सन्तुलित तथा असन्तुलित विकास सिद्धान्त के मध्य क्या कोई विवाद है?

संक्षेप में, रोडान द्वारा विकास के पक्ष में किये गये तर्क निम्नलिखित हैं–

(*i*) सन्तुलित विकास पद्धति, बाहरी बचतों को पैदा करके अन्य क्षेत्रों में विनियोग के अवसर बढ़ा देती है।

(*ii*) तीव्र आर्थिक विकास के लिए जरूरी है कि परस्पर पूरक उद्योगों में एक आवश्यक न्यूनतम मात्रा में निवेश किया जाये।

(*iii*) विभिन्न प्रकार के उद्योगों में एक साथ विनियोग करने पर निजी क्षेत्र के लाभ कम हो जायेंगे और सामाजिक लाभ में वृद्धि हो जायेगी। यही आर्थिक विकास का मुख्य लक्ष्य है।

2. प्रो. आर्थर लुइस के विचार (Prof. Arthur Lewis' Views)–प्रो. लुइस ने आर्थिक विकास के सन्तुलित विकास की पद्धति के पक्ष में निम्नलिखित तर्क दिये हैं–

(*i*) सन्तुलित विकास के कारण सभी क्षेत्रों की तुलनात्मक कीमतों में समानता बनी रहती है तथा सभी क्षेत्रों का विकास होता रहता है।

(*ii*) सन्तुलित विकास के फलस्वरूप उत्पादन की माँग की लोच के अनुसार सम्भव हो जाता है जिसके फलस्वरूप विभिन्न क्षेत्रों में अवरोध उत्पन्न नहीं होते।

(*iii*) लुइस के अनुसार अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों का एक साथ विकास होना चाहिए जिससे उद्योगों तथा कृषि, घरेलू उपभोग के लिए उत्पादन तथा निर्यातों के लिए उत्पादन में सन्तुलन बना रहे।

(*iv*) लुइस विदेशी व्यापार पर निर्भरता के पक्ष में नहीं थे। उनके अनुसार घरेलू क्षेत्र में ही सन्तुलित विकास की कूटनीति (Strategy) अपनाई जानी चाहिए।

3. रेगनर नर्क्स के विचार (R. Nurkse's View)–नर्क्स के अनुसार अल्पविकसित देशों में दरिद्रता-दुश्चक्र कार्यशील रहते हैं जो आर्थिक विकास में बाधा डालते हैं। पूर्ति तथा माँग दोनों पक्षों में दरिद्रता के दुश्चक्र चलते हैं।

पूर्ति पक्ष की ओर निर्धनता के दुश्चक्र उत्पन्न होने का प्रमुख कारण बचत की कमी है, जबकि माँग पक्ष की ओर निर्धनता के दुश्चक्र के उत्पन्न होने का प्रमुख कारण माँग की कमी या बाजार का सीमित आकार का होना है।

नोट

नर्क्स के अनुसार निर्धनता के दुश्चक्र को तोड़कर आर्थिक प्रगति के लक्ष्य को सन्तुलित विकास द्वारा निम्न प्रकार से प्राप्त किया जा सकता है:

(1) **माँग की पूरकता** (Complementarity of Demand)—नर्क्स के अनुसार, माँग का विस्तार सन्तुलित विकास के द्वारा ही किया जा सकता है। "जिस प्रकार शरीर को सन्तुलित आहार की आवश्यकता है, उसी प्रकार देश के लिए सन्तुलित विकास आवश्यक है।" नर्क्स ने अपने इस सिद्धान्त में यह स्पष्ट किया कि एक साथ कई प्रकार के विभिन्न उद्योगों में पूँजी का प्रयोग (Synchronized Application of Capital to Wide Range of Different Industries) किया जाना चाहिए जिससे (अच्छे औजारों की सहायता से कार्य करने वाले) अनेक पूरक परियोजनाओं में लगे व्यक्ति एक-दूसरे के ग्राहक बन जायें। एक ही उद्योग में अत्यधिक पूँजी विनियोजित कर देने से उस उद्योग द्वारा उत्पादित वस्तु की माँग कम होने से उद्योग चलाना कठिन होगा। नर्क्स ने जूता उद्योग का उदाहरण लिया है। मान लीजिए, यदि देश की समस्त पूँजी जूता उद्योग में लगा दी जाती है तो इस उद्योग के श्रमिक अपनी सम्पूर्ण आय को जूते खरीदने में व्यय नहीं करेंगे बल्कि अन्य आवश्यक वस्तुओं की माँग करेंगे। इन्हें वे जूते बेचकर प्राप्त कर सकते हैं परन्तु यदि अर्थव्यवस्था के शेष क्षेत्रों में उत्पादन में वृद्धि हो ही नहीं रही होगी (क्योंकि समस्त पूँजी केवल जूते उद्योग में लगा दी गई है) तो लोगों की क्रय-शक्ति पहले जितनी ही रहेगी। जूतों का उत्पादन तो होगा, पर इनकी माँग नहीं होगी क्योंकि अन्य व्यक्तियों की आय में वृद्धि नहीं हो पाई है, वे जूते खरीदने में असमर्थ रहेंगे। अत: यदि वस्तुओं के उत्पादन में वृद्धि न हो तो जूते के उत्पादन में वृद्धि का गला भी घुट जायेगा।

नर्क्स ने बताया कि परिपूरक उद्योगों का एक साथ विकास किया जाना चाहिए। परिपूरक उद्योग वे हैं जो जन उपभोग की वस्तुएँ उत्पन्न करते हैं। **नर्क्स** के ही शब्दों में, "बहुत-से पूरक उद्योगों में पहले से अच्छे तथा अधिक औजारों की सहायता से काम करने वाले लोग एक-दूसरे के ग्राहक बन जाते हैं जो उद्योग जन उपभोग की वस्तुएँ उत्पन्न करके एक-दूसरे के सहायक होते हैं। मानवीय आवश्यकताओं की विविधता ही परिपूरक उद्योगों का आधार है। सन्तुलित विकास का पक्ष अन्तत: सन्तुलित भोजन पर निर्भर करता है।" चूँकि नर्क्स ने परिपूरक उद्योगों के एक साथ विकास पर बल दिया है, इसलिए उनके सन्तुलित विकास सम्बन्धी विचारों को एक साथ बहुमुखी सिद्धान्त की संज्ञा भी प्रदान की गयी है।

(2) **बाजार का विस्तार किस प्रकार किया जाए**—उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि इस दुश्चक्र को तोड़ने के लिए बाजार का विस्तार करना आवश्यक है। इसके लिए मौद्रिक प्रसार, विक्रय कला, व्यापार नियन्त्रण या विज्ञापन हटाकर अथवा आर्थिक अर्द्ध-संरचना का विकास करके बाजार का विस्तार किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त मौद्रिक आय बढ़ाकर अथवा कीमतें घटाकर भी वस्तुओं की माँग में वृद्धि की जा सकती है।

(3) **घरेलू तथा विदेशी व्यापार में सन्तुलन**—सन्तुलित विकास की नीति के द्वारा जब विभिन्न क्षेत्रों में विनियोग किया जाता है तो इससे एक ओर तो उत्पादन और रोजगार बढ़ने से आयातों को बढ़ावा मिलता है और दूसरी तरफ उद्योगों की पूरकता और विविधता के फलस्वरूप निर्यात व्यापार बढ़ने लगते हैं। इस प्रकार सन्तुलित विकास की नीति घरेलू तथा विदेशी व्यापार दोनों में सन्तुलन बनाये रखती है।

(4) **बाहरी बचतें** (External Economies)—सन्तुलित विकास के फलस्वरूप बचतें (External Economies) प्राप्त होती हैं। बाह्य बचतें वे हैं जो नये उद्योगों की स्थापना तथा वर्तमान उद्योगों के विस्तार के कारण अन्य उद्योगों को प्राप्त होती हैं। उद्योगों की ये बचतें अन्य उद्योगों की स्थापना तथा मार्केट के आकार तथा माँग में वृद्धि के रूप में प्राप्त होती हैं। वास्तव में, बाहरी बचतों के कारण उत्पादन पर बढ़ते हुए प्रतिफल का नियम लागू होता है। इसके फलस्वरूप लागत कम होती है। वस्तु की माँग बढ़ती है तथा आर्थिक विकास की प्रक्रिया तीव्र हो जाती है।

(5) **सरकार द्वारा हस्तक्षेप** (Intervention by the Government)—नर्क्स का यह विचार है कि यदि देश में प्रगतिशील निजी उद्यमकर्ता तथा उद्योगपति मौजूद हैं तो उन्हें विनियोग करने को प्रेरित किया जा सकता है तथा सरकार का सन्तुलित विकास के लक्ष्य को प्राप्त करने में बहुत ही सीमित योगदान होता है।

नोट

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

1. रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks)–

1. संतुलित विकास अन्त में सन्तुलित ..... की आवश्यकता पर निर्भर करता है।
2. संतुलित विकास का अर्थ एक साथ सभी उद्योगों में ..... करना है।
3. भारत में सन्तुलित विकास नीति का अनुकरण ..... योजना में किया गया।
4. संतुलित विकास सिद्धान्त के प्रमुख समर्थक ..... हैं।
5. ..... का सन्तुलित विकास का सिद्धान्त बाह्य मितव्ययिताओं पर आधारित है।

21.4 सन्तुलित विकास का सिद्धान्त–एक दृष्टि में (Theory of Balanced Growth at a Glance)

(1) सन्तुलित विकास का अर्थ है कि अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों का सन्तुलित विकास जिससे विभिन्न क्षेत्रों के उत्पादन की माँग तथा पूर्ति में सन्तुलन रहे।

(2) सन्तुलित विकास पूरक उद्योगों का विकास करके बाजार को विस्तृत करता है जिससे बाहरी बचतें प्राप्त होती हैं।

(3) सन्तुलित विकास के सिद्धान्त के अनुसार केवल उद्योगों में ही विशाल पैमाने पर विनियोग नहीं करना चाहिए बल्कि उद्योग तथा कृषि दोनों क्षेत्रों में इस प्रकार विनियोग किया जाना चाहिए कि दोनों का ही सन्तुलित विकास हो सके।

(4) इस सिद्धान्त के अनुसार अर्थव्यवस्था के घरेलू तथा विदेशी दोनों क्षेत्रों का सन्तुलित विकास किया जाना चाहिए।

(5) यह सिद्धान्त माँग की दृष्टि से प्रभावपूर्ण माँग एवं पूरक माँग को उत्पन्न करने और पूर्ति की दृष्टि से विभिन्न प्रकार के उद्योगों के बीच सन्तुलन बनाये रखने की आवश्यकता पर बल देता है।

(6) सन्तुलित विकास से बाहरी बचतें प्राप्त होती हैं और बाजार का भी विस्तार होता है।

(7) सन्तुलित विकास की पद्धति निजी उपक्रम अर्थव्यवस्था के लिए अधिक उपयोगी है (जैसा कि नर्क्स का विचार है) किन्तु नियोजित अर्थव्यवस्था में इसका महत्व कम है।

21.5 सन्तुलित विकास के लाभ अथवा सन्तुलित विकास के प्रभाव (Advantages of Balanced Growth) or (Effects of Balanced Growth)

सन्तुलित विकास के निम्नलिखित लाभ या प्रभाव हैं–

यदि किसी देश में सन्तुलित ढंग से आर्थिक विकास होता है तो इसका **अच्छा प्रभाव** पड़ता है और देश निम्न प्रकार लाभान्वित होता है–

(1) **मितव्ययिताओं की प्राप्ति** (Achievement of Economies)–सन्तुलित विकास नीति के परिणामस्वरूप बाजार का विस्तार होता है तथा उद्योगों में बड़े पैमाने पर उत्पादन किया जाता है जिससे उत्पादन के साधनों का अनुकूलतम प्रयोग सम्भव हो जाता है तथा बाह्य मितव्ययिताओं की प्राप्ति होती है।

(2) **कुशल श्रम-विभाजन** (Efficient Division of Labour)–बाजार के आकार में विस्तार पैमाने में वृद्धि को प्रोत्साहित करता है। पैमाने में वृद्धि के परिणामस्वरूप श्रम-विभाजन के अनेक लाभ तथा मितव्ययिताएँ प्राप्त हो सकती हैं।

(3) **उत्पादन तथा उत्पादकता में वृद्धि** (Increase in Production and Productivity)–सन्तुलित विकास नीति को अपनाये जाने पर जब श्रम-शक्ति, तकनीक तथा प्राकृतिक साधनों पर बड़ी मात्रा में विनियोजन किया जाता है तो उत्पादन तथा उत्पादकता में वृद्धि हो जाती है।

नोट

(4) **कृषि तथा उद्योग का सन्तुलित विकास** (Balanced Growth of Agriculture & Industry)—सन्तुलित विकास की नीति के कारण देश में कृषि तथा उद्योग का सन्तुलित विकास सम्भव होता है। यह दोनों एक-दूसरे की वस्तुओं की माँग उत्पन्न करते हैं जिससे देश का तेजी से विकास होता है।

(5) **रोजगार के अवसरों में वृद्धि** (Increase in Employment Opportunities)—जब विविध उद्योगों में एक साथ विनियोग किया जाता है, तब रोजगार के अवसरों में वृद्धि होना स्वाभाविक है। नर्क्स के अनुसार, सन्तुलित विकास के कारण ही कृषि-क्षेत्र की अतिरिक्त जनसंख्या को उद्योगों में रोजगार की प्राप्ति होती है।

(6) **मूल्य स्थिरता** (Price Stability)—सन्तुलित विकास नीति को अपनाये जाने के परिणामस्वरूप अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों में उत्पादन बढ़ता है अर्थात् वस्तुओं की पूर्ति बढ़ती है जिससे मूल्यों में स्थिरता की प्रवृत्ति होती है।

क्या आप जानते हैं संतुलित विकास के लिए साधन-सम्पन्नता आवश्यक है जो एक सामान्य अल्पविकसित अर्थव्यवस्था के पास नहीं होती है। इसलिए इनके विकास के लिए आयोजित सन्तुलन ही एक आवश्यक शर्त है।

(7) **सामाजिक लाभों में वृद्धि** (Increase in Social Benefits)—सन्तुलित विकास नीति को अपनाते समय सामाजिक लाभ की भावना को ध्यान में रखकर ही विनियोजन किया जाता है। अत: समाज के लाभों में वृद्धि होना स्वाभाविक होता है।

(8) **सन्तुलित विदेशी व्यापार** (Balanced Foreign Trade)—प्रो. नर्क्स का कहना है कि सन्तुलित विकास अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की सुदृढ़ आधारशिला है। इसके कारण देश के विदेशी व्यापार में सन्तुलन बना रहता है।

(9) **विनियोग प्रेरणाओं में वृद्धि** (Increase in Investment Incentives)—सन्तुलित विकास नीति को अपनाने पर बाजार सम्बन्धी अपूर्णताएँ समाप्त हो जाती हैं। माँग की कमी की कोई समस्या नहीं रहती है इसलिए पूँजीपति विनियोग करने के लिए प्रोत्साहित होते हैं।

21.6 सन्तुलित विकास सिद्धान्त की आलोचनाएँ (Criticisms of the Doctrine of Balanced Growth)

अनेक अर्थशास्त्रियों ने सन्तुलित विकास की नीति की आलोचना की है। इन अर्थशास्त्रियों में प्रो. हर्शमैन, प्रो. सिंगर, प्रो. फ्लेमिंग, प्रो. कुरिहारा आदि के नाम प्रमुख हैं। इस सिद्धान्त की प्रमुख आलोचनाएँ या सीमाएँ निम्नलिखित हैं–

(1) **अर्द्ध-विकसित देशों की सामर्थ्य से बाहर** (Beyond the Means of Under-developed Countries)—सन्तुलित विकास की तकनीक को लागू करने के लिए पर्याप्त पूँजी, तकनीकी ज्ञान, प्रबन्धकीय क्षमता व कुशल श्रम-शक्ति की आवश्यकता होती है, जबकि इन सभी साधनों का अर्द्ध-विकसित देशों में अभाव होता है।

(2) **इतिहास के विरुद्ध** (Against History)—विभिन्न देशों का आर्थिक इतिहास यह प्रदर्शित करता है कि प्राय: आर्थिक विकास का स्वरूप असन्तुलित हो रहा है। उदाहरण के लिए, इंग्लैण्ड में पहले-पहल कपड़ा उद्योग, अमेरिका में रेल तथा जापान में लोहा एवं इस्पात उद्योग का विकास हुआ और इनसे अन्य उद्योगों के विकास को प्रोत्साहन मिला।

(3) **अव्यावहारिक** (Unrealistic)—प्रो. हर्शमैन के अनुसार, अर्थव्यवस्था में सदैव साम्य की स्थिति का पाया जाना वांछनीय नहीं है। प्रत्येक अर्थव्यवस्था पहले असाम्य की दशा में होती है फिर साम्य की ओर अग्रसर होती है। विकास का यही सही क्रम है।

(4) **मुद्रा-स्फीति की स्थिति उत्पन्न होना** (Emergence of Inflation)—जब दुर्लभ साधनों पर एक साथ ही खिंचाव पड़ेगा अर्थात् जब एक साथ अनेक दिशाओं से उनकी माँग की जायेगी और अर्थव्यवस्था में मुद्रा-प्रसार की स्थिति उत्पन्न हो जायेगी जो अर्द्ध-विकसित राष्ट्रों के आर्थिक विकास में घातक सिद्ध होगी।

नोट

(5) **अति-विनियोग** (Over-investment)–इस पद्धति से विनियोग की अति भी हो सकती है जिसके घातक परिणाम निकल सकते हैं।

(6) **लागतें घटाने की ओर कोई ध्यान नहीं** (No Attention towards Reduction of Costs)–'किण्डलबर्गर' का विचार है कि 'नर्क्स' का सिद्धान्त नये उद्योग प्रारम्भ करने के अतिरिक्त वर्तमान उद्योग में लागतें कम होने की सम्भावना पर ध्यान नहीं देता जिसमें वे अधिक माँग उत्पन्न करके अन्य उद्योगों के प्रसार में सहायक भी हों।

(7) **साधनों का अपव्यय** (Wastages of Resources)–जब सभी क्षेत्रों का विकास किया जाता है तो सम्भव है कि कुछ क्षेत्र सन्तोषजनक प्रगति न कर सकें। इससे साधनों का अपव्यय ही होता है।

(8) **सन्तुलित विकास निजी उपक्रम प्रणाली में सम्भव नहीं** (Balanced Growth is not Possible in Private Enteprise System)–श्री नर्क्स का कहना है कि सन्तुलित विकास निजी उपक्रम प्रणाली में सम्भव नहीं है।

(9) **सन्तुलित विकास का सिद्धान्त अधूरा** (Balanced Theory of Development is Incomplete)–इस सिद्धान्त की आलोचना इस आधार पर भी की जाती है कि यह सिद्धान्त अधूरा है। इसमें विकास मार्ग में आने वाली कठिनाइयों, अभावों तथा क्षमताओं को ध्यान में नहीं रखा गया है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

2. निम्नलिखित कथनों में सत्य असत्य की पहचान करें–

1. सन्तुलित विकास व्यक्तिगत उद्योगों के लिए आन्तरिक बचतें उत्पन्न करता है।
2. सन्तुलित विकास का सिद्धान्त बाजार के छोटे आकार को अल्पविकसित का मुख्य कारण मानता है।
3. सन्तुलित विकास की पद्धति निजी उपक्रम अर्थव्यवस्था के लिए आर्थिक उपयोगी नहीं है।
4. सन्तुलित विकास की नीति के कारण देश में कृषि तथा उद्योगों का सन्तुलित विकास संभव होता है।
5. प्रो. नर्क्स का कहना है कि सन्तुलित विकास अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की सुदृढ़ आधारशिला नहीं है।

21.7 असन्तुलित विकास (Unbalanced Growth)

अर्थ (Meaning)–सन्तुलित विकास के विपरीत असन्तुलित विकास की धारणा इस बात पर आधारित है कि अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों का विकास एक ही साथ नहीं किया जाता है अपितु प्रारम्भिक अवस्था में विनियोग को किन्हीं चुने हुए क्षेत्रों तक ही सीमित रखा जाता है। इन क्षेत्रों के विकास के उपरान्त अन्य क्षेत्रों का भी विकास किया जाता है। शनैः-शनैः अर्थव्यवस्था असन्तुलित विकास की ओर से सन्तुलित विकास की ओर अग्रसर होती है।

असन्तुलित विकास सिद्धान्त की व्याख्या (Explanation of Unbalanced Theory of Growth)

असन्तुलित विकास की पद्धति का समर्थन करने वालों में **प्रो. हर्शमैन, रोस्टोव, प्रो. सिंगर, मार्क्स, फ्लेमिंग, वौयर** एवं **यामी, प्रो. रुजीना, जे. शोहान** और **प्रो. किण्डलबर्गर** जैसे अर्थशास्त्रियों के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। असन्तुलित विकास प्रक्रिया की पूर्ण व्याख्या प्रस्तुत करने का श्रेय प्रो. हर्शमैन को है, अतः हम उन्हीं के सिद्धान्त की पूर्ण व्याख्या करेंगे।

हर्शमैन की असन्तुलित विकास सम्बन्धी व्याख्या (Harshmen's Theory of Unbalanced Economic Growth)

हर्शमैन ने अपनी पुस्तक *'Strategy of Economic Development'* में यह एक तर्क प्रस्तुत किया है कि अर्थव्यवस्था को सुनिश्चित रूप से असन्तुलित बनाना ही आर्थिक विकास का सबसे अच्छा तरीका है। चूँकि अर्द्ध-विकसित राष्ट्रों में वित्त तथा कौशल इत्यादि की कमी रहती है इसलिए हर्शमैन कुछ चुने हुए विशिष्ट महत्त्वपूर्ण उद्योगों या क्षेत्रों को पर्याप्त प्रोत्साहन प्रदान करने का सुझाव प्रस्तुत करते हैं जिसका प्रभाव अन्य क्षेत्रों पर भी पड़ता है और धीरे-धीरे सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था में क्रिया-प्रतिक्रिया द्वारा शृंखलाबद्ध तरीके से आर्थिक विकास होता है। यही नहीं, यदि अर्द्ध-विकसित देशों के सीमित साधनों को सभी क्षेत्रों में फैला दिया जाय तो उनका प्रभाव नहीं पड़ेगा। जहाँ-जहाँ इस प्रकार की कोशिश

नोट

की गयी है, उसका कोई परिणाम नहीं निकला। इससे केवल कुछ उद्योगों के जमघट जहाँ-तहाँ अवश्य खड़े हो गये हैं। अत: हर्शमैन का मत है कि अर्थव्यवस्था के मुख्य-मुख्य क्षेत्रों या उद्योगों में विनियोग करने से विनियोग के नये अवसर उत्पन्न होंगे और इससे आर्थिक विकास का मार्ग प्रशस्त होगा।

हर्शमैन प्रारम्भिक विनियोजन को दो सम्बन्धित क्रियाओं में विभाजित करते हैं–(*i*) सामाजिक उपरिव्यय पूँजी (Social Overhead Capital or SOC) तथा (2) प्रत्यक्ष उत्पादक क्रियाएँ (Directly Productive Activities or DPA)। अर्द्ध-विकसित देश या तो सामाजिक उपरिव्यय पूँजी अर्थात् एस.ओ.सी. में या प्रत्यक्ष उत्पादक क्रियाओं अर्थात् डी. पी.ए. में अधिक मात्रा में विनियोग का निर्णय लेकर असन्तुलित विकास की नीति को अपना सकता है।

(1) सामाजिक उपरिव्यय पूँजी द्वारा निर्मित असन्तुलन (Imbalances created through SOC)–सामाजिक उपरिव्यय पूँजी में वे क्रियाएँ सम्मिलित की जाती हैं जिन पर अन्य औद्योगिक क्रियाएँ निर्भर रहती हैं, जैसे–सड़कें, सिंचाई, जल-विद्युत परियोजनाएँ, परिवहन, प्रशासन आदि।

हर्शमैन के अनुसार यदि पहले सामाजिक उपरिव्यय पूँजी को बढ़ावा दिया जाय तो इसके फलस्वरूप प्रत्यक्ष उत्पादक क्रियाओं में भी निजी विनियोग को प्रोत्साहन मिलेगा। उदाहरण के लिए, सस्ती बिजली से लघु एवं कुटीर उद्योगों का विकास होगा। सिंचाई की सुविधाओं में विस्तार से कृषि उद्योग का उचित विकास होगा। इसी प्रकार यदि देश में परिवहन के साधनों का विस्तार कर दिया जाये तो नवीन उद्योगों की स्थापना को प्रोत्साहन मिलेगा। इस प्रकार सामाजिक उपरिव्यय पूँजी में पर्याप्त विनियोग द्वारा जब असन्तुलन उत्पन्न कर दिया जाता है तो उसके सद्प्रभावों के कारण बाद में प्रत्यक्ष उत्पादक क्रियाओं में भी विनियोग अधिक होने लगता है और अर्थव्यवस्था का विकास होने लगता है। **प्रो. हर्शमैन** ने स्वयं लिखा है कि "सामाजिक उपरिव्यय पूँजी में विनियोग का समर्थन इसलिए किया जाता है क्योंकि यह प्रत्यक्ष उत्पादक क्रियाओं को आने का आमन्त्रण देती है।" इस प्रकार के कुछ विनियोग तो प्रत्यक्ष उत्पादक क्रियाओं में विनियोग की पूर्व-आवश्यकता है।

(2) प्रत्यक्ष-उत्पादक क्रियाओं से अर्थव्यवस्था को असन्तुलित बनाना (Unbalancing the Economy with Directly Productive Activity-DPA)–प्रत्यक्ष उत्पादक क्रियाओं (DPA) से आशय **निर्माणी उद्योगों के विस्तार से** है। **प्रो. हर्शमैन** के अनुसार सरकार D.P.A. की सहायता से भी असन्तुलन उत्पन्न कर सकती है। जब सरकार पहले D.P.A. में विनियोग करती है, तब S.O.C. सुविधाओं के अभाव में उत्पादन की लागतें बढ़ जाती हैं जिसके कारण सरकार को राजनीतिक दबावों तथा अन्य कारणों से S.O.C. में भी विनियोग करना पड़ता है। इसी कारण प्रत्यक्ष उत्पादक क्रियाओं (D.P.A.) द्वारा निर्मित असन्तुलन द्वारा विकास को **'अभावों के माध्यम से विकास'** (Development Via Shortages) कहते हैं।

अब यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि उपरोक्त विकास क्रमों में से किसे पहले अपनाया जाए? इस सम्बन्ध में **हर्शमैन** का कहना है कि जो विकास क्रम **सबसे अधिक स्वयं उद्यम-प्रेरित हो,** पहले उसे अपनाना चाहिए। इस दृष्टि से **अतिरिक्त क्षमता के माध्यम** से विकास अधिक श्रेष्ठ रहता है क्योंकि यह स्वयं उद्यमशीलता सिद्धान्त के अनुरूप है।

(3) अग्रगामी तथा अधोगामी सम्बन्ध (Forward and Backward Linkage)–**प्रो. हर्शमैन** के असन्तुलित विकास का प्रमुख आधार उद्योगों के **अग्रगामी** तथा **अधोगामी सम्बन्ध** (Forward and Backward Linkages) प्रभाव है।

अग्रगामी सम्बन्ध प्रभाव (Forward Linkages Effect) उत्पादन की आगामी अवस्थाओं में विनियोग को प्रोत्साहित करते हैं, जबकि **अधोगामी सम्बन्ध प्रभाव** (Backward Linkages Effect) उत्पादन की पिछली या प्रारम्भिक अवस्थाओं में विनियोग को प्रोत्साहित करते हैं। अत: **हर्शमैन** का कहना है कि हमारा उद्देश्य पहले उन उद्योगों का पता लगाना होना चाहिए जिनका **संयुक्त सम्बन्ध प्रभाव** (अग्रगामी सम्बन्ध प्रभाव + अधोगामी सम्बन्ध प्रभाव) अधिकतम हो। जिन उद्योगों में **संयुक्त सम्बन्ध प्रभाव** सर्वाधिक हो, उन्हें प्राथमिकता देनी चाहिए। **प्रो. हर्शमैन** का मत है कि लोहा एवं इस्पात उद्योग में **'संयुक्त सम्बन्ध प्रभाव'** बहुत अधिक होता है। इस उद्योग में विनिमय किये जाने पर अन्य क्षेत्र में भी विनियोग सम्भव होता है तथा अन्य अनेक उद्योगों का विकास होता है। इस उद्योग का विकास हो जाने पर निजी विनियोग भी प्रोत्साहित होता है।

नोट

हर्शमैन के सिद्धान्त का रेखाचित्र द्वारा निरूपण (Diagrammatic Representation of Hershmen's Theory)–**प्रो. हर्शमैन** के असन्तुलित विकास सिद्धान्त को अग्र रेखाचित्र द्वारा स्पष्ट किया गया है। चित्र में,

(*i*) X-अक्ष पर DPA विनिमय तथा Y-अक्ष पर SOC विनिमय को मापा गया है। वक्र *a, b, c, d* समोत्पादक वक्र (Isoquants) हैं जिनमें से प्रत्येक वक्र DPA और SOC की विविध मात्राओं को प्रकट करता है जिससे किसी भी बिन्दु पर राष्ट्रीय आय की मात्रा समान रहती है।

(*ii*) जब हम अपेक्षाकृत ऊँचे वक्र पर पहुँच जाते हैं तो राष्ट्रीय आय की मात्रा में वृद्धि हो जाती है।

(*iii*) मूल बिन्दु से गुजरती हुई 45° की रेखा DPA और SOC की सन्तुलित-वृद्धि को प्रकट करती है।

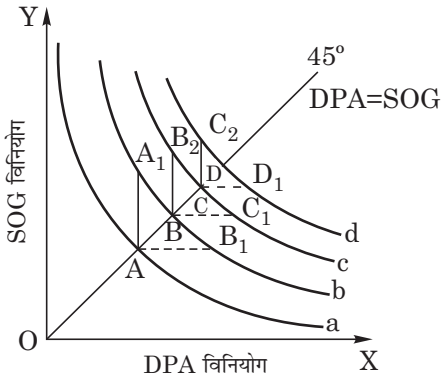

चित्र 21.1

(*iv*) जब SOC को पहले बढ़ाया जाता है तो अर्थव्यवस्था गहरी रेखा AA_1, BB_2, CC_2D का अनुसरण करती है।

(*v*) यदि अर्थव्यवस्था DPA को पहले बढ़ाती है तो यह बिन्दु खण्डित रेखा (Dottaged Line) AB_1, BC_1, CD_1, D_1 का अनुसरण करती है।

(*vi*) SOC में विनियोग ऐसे असन्तुलनों की कड़ियों (Linkages) को बढ़ावा देती है जो कि आर्थिक विकास की प्रेरक होती है। असन्तुलन की एक कड़ी विकास को प्रोत्साहित करती है, परिणामस्वरूप नवीन असन्तुलन की कड़ी उदित होती है, फिर आर्थिक विकास होता है और प्रक्रिया बराबर विकास को जन्म देती रहती है।

हर्शमैन के शब्दों में, "एक आदर्श स्थिति तब प्राप्त की जाती है जब एक असन्तुलन से विकास को गति मिलती है जोकि प्रतिफल में समान असन्तुलन को जन्म देती है और यही क्रिया अनन्तकाल तक चलती रहती है। यदि असन्तुलित विकास की ऐसी कड़ी को स्थापित किया जा सके तो आर्थिक नीति के निर्माता पुराने अनुभवों से क्रियाओं को देख सकते हैं।"

नोट्स सन्तुलित विकास एक प्रक्रिया तथा एक ध्येय दोनों ही हो सकता है, जबकि असन्तुलित विकास के समर्थक विकास को एक ध्येय के रूप में देखते हैं

असन्तुलित सिद्धान्त की मुख्य बातें
(Main Features of Unbalanced Growth)

असन्तुलित विकास सिद्धान्त की संक्षेप में कुछ प्रमुख बातें इस प्रकार हैं:

1. मुख्य क्षेत्रों में विनियोग (Investment in Core Sector)–इस सिद्धान्त के अनुसार तीव्र आर्थिक विकास के लिए विनियोग मुख्य क्षेत्रों में होना चाहिए।

2. प्रोत्साहन एवं दबाव पर आधारित (Based on Push & Pull)–यह सिद्धान्त प्रोत्साहन एवं दबाव पर आधारित है क्योंकि एक क्षेत्र में विशाल विनियोग होने पर दबाव व प्रोत्साहन के कारण अन्य उद्योगों का स्वत: विकास हो जाता है।

3. बड़े धक्के के सिद्धान्त को स्वीकार करना (Acceptance of Theory of Big Push)–इस सिद्धान्त में भी बड़े धक्के के सिद्धान्त को स्वीकार किया गया है जिसके आधार पर अन्य उद्योगों का विकास होता है।

नोट

4. भूतकालीन विकास तथ्य पर आधारित (Based on Post Growth Facts)—यह सिद्धान्त भूतकालीन विकास के तथ्यों पर आधारित है और उसी के आधार पर नवीन विनियोगों को प्रोत्साहन दिया जाता है।

5. असन्तुलनों की शृंखला (Series of Imbalances)—यह सिद्धान्त 'असन्तुलनों की शृंखला' पर आधारित है। असन्तुलन की एक कड़ी विकास का पथ प्रशस्त करती है, नवीन असन्तुलन की कड़ियाँ जन्म लेती हैं। फिर आर्थिक विकास होता है और यह प्रक्रिया बराबर विकास को जन्म देती रहती है।

6. सामाजिक उपरि-पूँजी का महत्व (Significance of Social Overhead Capital)—यद्यपि विकास के इस सिद्धान्त में सरकार के विनियोग के सम्बन्ध में कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं है, फिर भी सामाजिक ऊपरि-पूँजी के निर्माण में सार्वजनिक क्षेत्र का विशेष महत्व है।

7. मूल्यांकन (Evaluation)—इस सिद्धान्त के अनुसार आर्थिक विकास की योजना के मूल्यांकन को स्वतंत्र रूप से बाजार यन्त्र (Market Mechanism) पर नहीं छोड़ना चाहिए।

21.8 असन्तुलित विकास के लाभ (Advantages of Unbalanced Growth)

असन्तुलित विकास नीति के परिणामस्वरूप अर्थव्यवस्था को निम्नलिखित लाभ प्राप्त होते हैं—

1. तीव्र आर्थिक विकास (Rapid Economic Development)—असन्तुलित विकास के कारण उत्पन्न अभाव विनियोग, आविष्कार, नवप्रवर्तन आदि को प्रोत्साहित करते हैं। देश में औद्योगिक विकास दर ऊँची हो जाती है जिससे देश का तीव्र आर्थिक विकास सम्भव होता है।

2. आधारभूत उद्योगों की स्थापना (Establishment Basic Industries)—असन्तुलित विकास पद्धति के अन्तर्गत आधारभूत उद्योगों की स्थापना की जाती है। इस आधारभूत उद्योगों की स्थापना से ही देश का आर्थिक विकास तीव्र गति से होता है।

3. सहायक उद्योगों का विकास (Development of Secondary Industries)—इस पद्धति में भारी एवं आधारभूत उद्योगों की स्थापना पर अधिक ध्यान दिया जाता है। इसके फलस्वरूप देश में सहायक उद्योगों एवं उपभोक्ता-वस्तु उद्योगों का विकास तेजी से होने लगता है।

4. आधारिक संरचना का विकास (Development of Infra-structure)—असन्तुलित विकास नीति के अन्तर्गत परिवहन, संचार, विद्युत, बैंक आदि सुविधाओं का तेजी से विकास होता है क्योंकि इन्हीं पर अन्य क्षेत्रों का विकास निर्भर होता है।

5. व्यावहारिक सिद्धान्त (Empirical Theory)—हर्शमैन द्वारा प्रतिपादित असन्तुलित विकास का सिद्धान्त एक यथार्थ सिद्धान्त है और विकासवादी नियोजन से सब पहलुओं पर विचार करता है। विकास के लिए प्रेरणाओं और उसके बाद में आने वाली कठिनाइयों और बाधाओं का भी उचित रूप से विवेचन इस सिद्धान्त में किया गया है।

6. साधनों का अनुकूलतम उपयोग (Optimum Utilisation of Resources)—सन्तुलित विकास नीति के अन्तर्गत सीमित संसाधनों का प्रयोग सर्वप्रथम इन क्षेत्रों में किया जाता है जो सर्वाधिक आवश्यक, अधिक प्रतिफल देने वाले तथा अन्य क्षेत्रों के विकास को प्रेरित करने वाले होते हैं। अत: ऐसे साधनों का अनुकूलतम उपयोग सम्भव हो जाता है।

21.9 असन्तुलित विकास सिद्धान्त की आलोचनाएँ (Criticisms of the Principle of Unbalanced Growth)

असन्तुलित विकास पद्धति भी विकास की आदर्श पद्धति नहीं है। इसकी प्रमुख आलोचनाएँ निम्न हैं:

1. मुद्रा-स्फीति का भय (Danger of Inflation)—इस पद्धति में विशाल उद्योगों के विकास पर ही अधिक जोर दिया जाता है जिनमें उत्पादन में वृद्धि होने में काफी देर लग जाती है, अत: विशाल मुद्रा-स्फीति कायम रहती है।

नोट

2. अपव्यय में वृद्धि (Increase in Wastages)–असन्तुलित विकास में कुछ ही क्षेत्रों का अत्यधिक विकास किया जाता है। इससे प्रारम्भिक अवस्था में जब तक परिपूरक उद्योगों का विकास न हो, साधन अप्रयुक्त और निष्क्रिय रहते हैं। इस प्रकार 'आधिक्य क्षमता' के कारण अपव्यय में वृद्धि होने लगती है क्योंकि विनियोजित क्षेत्रों का तीव्रगति से विकास होने के फलस्वरूप इस क्षेत्र के साधन या तो निष्क्रिय पड़े रहते हैं या इनका पूर्ण उपयोग सम्भव नहीं होता है, जब तक कि अन्य क्षेत्र इस क्षेत्र के बराबर न पनप जायें।

3. अवरोध (Bottleneck)–पाल स्ट्रीटन के अनुसार, इस सिद्धान्त में केवल यह बताया गया है कि अर्थव्यवस्था के सक्रिय क्षेत्र निष्क्रिय क्षेत्रों को स्फूर्ति देते हैं किन्तु उन अवरोधों का उल्लेख नहीं किया गया है जो सुस्त क्षेत्र प्रस्तुत करेंगे। इस प्रकार समस्त क्षेत्रों का पूर्ण उल्लेख नहीं किया गया है।

4. असन्तुलन द्वारा विकास करना व्यर्थ है (Development by Imbalances is Useless)–कुछ अर्थशास्त्रियों का कहना है कि तकनीकों, अविभाज्यताओं, अनुमान की त्रुटियों तथा मांग एवं पूर्ति सारणियों के बेलोच स्वभाव के कारण अर्द्ध-विकसित अर्थव्यवस्थाओं में स्वाभाविक रूप से ही असन्तुलन उत्पन्न होते रहते हैं। अत: उसके लिए देश में असन्तुलन की स्थिति उत्पन्न करना आवश्यक नहीं है।

5. समाजवादी अर्थव्यवस्था के लिए सीमित महत्व (Limited Scope for Economy)–इस सिद्धान्त का समाजवादी अर्थव्यवस्थाओं के लिए सीमित महत्व है क्योंकि वहाँ विकास के कार्यक्रमों का निर्णय प्राय: राज्य द्वारा लिया जाता है एवं बाजार प्रेरणाएँ विनियोग के लिए महत्वपूर्ण नहीं होतीं।

6. अनिश्चितता में वृद्धि (Increase in Uncertainties)–यह सिद्धान्त विदेशी व्यापार एवं विदेशी पूँजी व सहायता पर अधिक निर्भर है। इस विदेशी निर्भरता से अनिश्चितता बढ़ जाती है।

7. राज्य का संदिग्ध कार्यक्षेत्र (Dubious Role of State)–असन्तुलित विकास के सिद्धान्त में राज्य के कार्य-क्षेत्र को संदिग्ध रखा गया है। इसमें राजकीय नियोजन का अभाव रहता है जिसके कारण विनियोग कार्यक्षेत्र धुँधला पड़ जाता है। केवल स्वतन्त्र बाजार प्रेरणाएँ ही विनियोजन के लिए पर्याप्त नहीं मानी जा सकतीं।

21.10 सन्तुलित एवं असन्तुलित विकास सिद्धान्त में विकास की निरर्थकता (A Barren Controversy Between the Theory of Balanced and Unbalanced Growth)

आर्थिक विकास की दोनों पद्धतियों का अध्ययन करने से प्रतीत होता है कि दोनों में ही गुण-दोष पाये जाने के कारण किसी एक को आदर्श पद्धति नहीं कहा जा सकता। वास्तव में, सन्तुलित विकास एक प्रक्रिया तथा एक ध्येय दोनों ही हो सकता है, जबकि असन्तुलित विकास के समर्थक विकास को एक ध्येय के रूप में देखते हैं परन्तु यह स्मरण रहे कि अपनी अर्थव्यवस्था के विकास के लिए प्रयत्नशील देश का असन्तुलनों का सामना करना ही पड़ेगा चाहे वे इसे चाहें या नहीं परन्तु अन्तत: दोनों ही पद्धतियों द्वारा एक निश्चित अवधि के उपरान्त सन्तुलन स्थापित करके देश का आर्थिक विकास किया जा सकता है। इस प्रकार दोनों पद्धतियाँ परस्पर-विरोधी न होकर एक-दूसरे की पूरक हैं। **श्री बलवीर साहनी** के शब्दों में, "आर्थिक विकास के आयोजन के लिए कोई एक पद्धति पूर्णरूपेण उपयुक्त नहीं है। विकास अर्थशास्त्र की प्रकृति ही ऐसी है कि कोई भी एक पद्धति स्थैतिक आय सिद्धान्त के विपरीत लागू नहीं होती।" इसी प्रकार **पाल स्ट्रीटन** ने लिखा है कि "असन्तुलित विकास विधि से विकास की दर निश्चित रूप से यद्यपि अधिक रहती है परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि समन्वय व पूरक विनियोजन पक्ष की बिल्कुल अवहेलना कर दी जाये। दोनों प्रकार की पद्धतियों के अपनाने पर वाह्य मितव्ययिताओं का सृजन होता है।"

वस्तुत: आर्थिक विकास की इन दोनों पद्धतियों में कुछ बातों पर आवश्यकता से अधिक बल दे दिया गया है और दोनों ही कतिपय महत्वपूर्ण प्रश्नों का उत्तर देने में असमर्थ रही हैं। जैसे राज्य का योगदान व आर्थिक नियोजन तथा साधनों की पूर्ति की सीमाएँ आदि।

नोट

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

3. सही विकल्प चुनिए (Choose the Correct Opction)

1. असन्तुलित विकास सिद्धान्त की पूर्ण व्याख्या की है–
   (क) रोजेन्स्टीन रोडान ने (ख) आर्थर लुइस ने
   (ग) हर्शमैन ने (घ) इनमें से कोई नहीं।
2. असन्तुलित विकास सिद्धान्त में दो प्रकार के निवेश माने गये हैं–
   (क) राष्ट्रीय निवेश एवं अन्तर्राष्ट्रीय निवेश
   (ख) पूँजीगत वस्तुओं तथा उपभोग वस्तुओं के निवेश (DPA)
   (ग) सामाजिक उपरि पूँजी निवेश तथा प्रत्यक्ष उत्पादक निवेश
   (घ) उपर्युक्त में से कोई नहीं।
3. हर्शमैन के अनुसार उन उद्योगों को प्राथमिकता देनी चाहिए जिनमें–
   (क) अग्रगामी संबंध प्रभाव सर्वाधिक हों (ख) अधोगामी संबंध प्रभाव सर्वाधिक हों
   (ग) संयुक्त संबंध प्रभाव सर्वाधिक हों (घ) अग्रगामी एवं अधोगामी संबंध प्रभाव न्यूनतम हों।
4. प्रत्यक्ष उत्पादक क्रियाओं से आशय है–
   (क) निर्माणी उद्योगों के विस्तार से (ख) सामाजिक उपरि-पूँजी से है
   (ग) तकनीकी विकास से है (घ) इनमें से कोई नहीं।
5. एस.ओ.सी. (S.O.C) में शामिल नहीं किया जाता है–
   (क) सिंचाई पर किया गया विनियोग (ख) शिक्षा एवं प्रशिक्षण पर किया गया विनियोग
   (ग) उद्योग पर किया गया निवेश (घ) परिवहन पर किया गया विनियोग।

21.11 सारांश (Summary)

- सन्तुलित विकास से अर्थ अर्थव्यवस्था के विभिन्न अंगों में सन्तुलन स्थापित करने से है। इसमें उत्पादन व उपभोग के मध्य, उपभोग व पूँजी के मध्य तथा उत्पादन प्रणाली में समन्वय स्थापित किया जाता है
- सन्तुलित विकास के समर्थकों में एडम स्मिथ, नर्क्से, आर्थर लुइस, फ्रैडरिक लिस्ट, रोजेन्स्टीन रोडान, हार्वे लीबिन्स्टीन आदि अर्थशास्त्रियों के नाम प्रमुख रूप में शामिल किये जाते हैं।
- सन्तुलित विकास में कृषि एवं उद्योगों में सन्तुलन बिठाने के लिए दोनों का विकास एक समन्वित योजना के अन्तर्गत किया जाता है।
- रोडोन ने अर्द्ध-विकसित देशों के आर्थिक विकास के लिए सन्तुलित विकास पद्धति का समर्थन किया है। वे सन्तुलित विकास पद्धति को एक 'बड़े धक्के' के रूप में लागू करना चाहते हैं।
- तीव्र आर्थिक विकास के लिए जरूरी है कि परस्पर पूरक उद्योगों में एक आवश्यक न्यूनतम मात्रा में निवेश किया जाये।
- सन्तुलित विकास के फलस्वरूप उत्पादन की माँग की लोच के अनुसार सम्भव हो जाता है जिसके फलस्वरूप विभिन्न क्षेत्रों में अवरोध उत्पन्न नहीं होते।
- नर्क्से के अनुसार अल्पविकसित देशों में दरिद्रता-दुश्चक्र कार्यशील रहते हैं जो आर्थिक विकास में बाधा डालते हैं। पूर्ति तथा माँग दोनों पक्षों में दरिद्रता के दुश्चक्र चलते हैं।
- माँग का विस्तार सन्तुलित विकास के द्वारा ही किया जा सकता है। "जिस प्रकार शरीर को सन्तुलित आहार की आवश्यकता है, उसी प्रकार देश के लिए सन्तुलित विकास आवश्यक है।"

नोट

- नर्क्स ने बताया कि परिपूरक उद्योगों का एक साथ विकास किया जाना चाहिए। परिपूरक उद्योग वे हैं जो जन उपभोग की वस्तुएँ उत्पन्न करते हैं।
- सन्तुलित विकास की नीति के द्वारा जब विभिन्न क्षेत्रों में विनियोग किया जाता है तो इससे एक ओर तो उत्पादन और रोजगार बढ़ने से आयातों को बढ़ावा मिलता है और दूसरी तरफ उद्योगों की पूरकता और विविधता के फलस्वरूप निर्यात व्यापार बढ़ने लगते हैं।
- सन्तुलित विकास के सिद्धान्त के अनुसार केवल उद्योगों में ही विशाल पैमाने पर विनियोग नहीं करना चाहिए बल्कि उद्योग तथा कृषि दोनों क्षेत्रों में इस प्रकार विनियोग किया जाना चाहिए कि दोनों का ही सन्तुलित विकास हो सके।
- सन्तुलित विकास नीति के परिणामस्वरूप बाजार का विस्तार होता है तथा उद्योगों में बड़े पैमाने पर उत्पादन किया जाता है जिससे उत्पादन के साधनों का अनुकूलतम प्रयोग सम्भव हो जाता है तथा बाह्य मितव्ययिताओं की प्राप्ति होती है।
- सन्तुलित विकास नीति को अपनाने पर बाजार सम्बन्धी अपूर्णताएँ समाप्त हो जाती हैं। माँग की कमी की कोई समस्या नहीं रहती है इसलिए पूँजीपति विनियोग करने के लिए प्रोत्साहित होते हैं।
- अनेक अर्थशास्त्रियों ने सन्तुलित विकास की नीति की आलोचना की है। इन अर्थशास्त्रियों में प्रो. हर्शमैन, प्रो. सिंगर, प्रो. फ्लेमिंग, प्रो. कुरिहारा आदि के नाम प्रमुख हैं।
- सन्तुलित विकास की तकनीक को लागू करने के लिए पर्याप्त पूँजी, तकनीकी ज्ञान, प्रबन्धकीय क्षमता व कुशल श्रम-शक्ति की आवश्यकता होती है, जबकि इन सभी साधनों का अर्द्ध-विकसित देशों में अभाव होता है।
- इस सिद्धान्त की आलोचना इस आधार पर भी की जाती है कि यह सिद्धान्त अधूरा है। इसमें विकास मार्ग में आने वाली कठिनाइयों, अभावों तथा क्षमताओं को ध्यान में नहीं रखा गया है।
- सन्तुलित विकास के विपरीत असन्तुलित विकास की धारणा इस बात पर आधारित है कि अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों का विकास एक ही साथ नहीं किया जाता है अपितु प्रारम्भिक अवस्था में विनियोग को किन्हीं चुने हुए क्षेत्रों तक ही सीमित रखा जाता है।
- असन्तुलित विकास की पद्धति का समर्थन करने वालों में प्रो. हर्शमैन, रोस्टोव, प्रो. सिंगर, मार्क्स, फ्लेमिंग, वौयर एवं यामी, प्रो. रुजीना, जे. शोहान और प्रो. किण्डलबर्गर जैसे अर्थशास्त्रियों के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।
- हर्शमैन ने अपनी पुस्तक *'Strategy of Economic Development'* में यह एक तर्क प्रस्तुत किया है कि अर्थव्यवस्था को सुनिश्चित रूप से असन्तुलित बनाना ही आर्थिक विकास का सबसे अच्छा तरीका है।
- हर्शमैन प्रारम्भिक विनियोजन को दो सम्बन्धित क्रियाओं में विभाजित करते हैं–(*i*) सामाजिक उपरिव्यय पूँजी (Social Overhead Capital or SOC) तथा (2) प्रत्यक्ष उत्पादक क्रियाएँ (Directly Productive Activities or DPA)।
- सामाजिक उपरिव्यय पूँजी में विनियोग का समर्थन इसलिए किया जाता है क्योंकि यह प्रत्यक्ष उत्पादक क्रियाओं को आने का आमन्त्रण देती है।" इस प्रकार के कुछ विनियोग तो प्रत्यक्ष उत्पादक क्रियाओं में विनियोग की पूर्व-आवश्यकता है।
- प्रत्यक्ष उत्पादक क्रियाओं (DPA) से आशय निर्माणी उद्योगों के विस्तार से है। प्रो. हर्शमैन के अनुसार सरकार D.P.A. की सहायता से भी असन्तुलन उत्पन्न कर सकती है।
- प्रो. हर्शमैन के असन्तुलित विकास का प्रमुख आधार उद्योगों के अग्रगामी तथा अधोगामी सम्बन्ध (Forward and Backward Linkages) प्रभाव है।
- उत्पादन की आगामी अवस्थाओं में विनियोग को प्रोत्साहित करते हैं, जबकि अधोगामी सम्बन्ध प्रभाव (Backward Linkages Effect) उत्पादन की पिछली या प्रारम्भिक अवस्थाओं में विनियोग को प्रोत्साहित करते हैं।

नोट

- यह सिद्धान्त प्रोत्साहन एवं दबाव पर आधारित है क्योंकि एक क्षेत्र में विशाल विनियोग होने पर दबाव व प्रोत्साहन के कारण अन्य उद्योगों का स्वत: विकास हो जाता है।
- यह सिद्धान्त 'असन्तुलनों की शृंखला' पर आधारित है। असन्तुलन की एक कड़ी विकास का पथ प्रशस्त करती है, नवीन असन्तुलन की कड़ियाँ जन्म लेती हैं। फिर आर्थिक विकास होता है और यह प्रक्रिया बराबर विकास को जन्म देती रहती है।
- असन्तुलित विकास पद्धति के अन्तर्गत आधारभूत उद्योगों की स्थापना की जाती है। इस आधारभूत उद्योगों की स्थापना से ही देश का आर्थिक विकास तीव्र गति से होता है।
- हर्शमैन द्वारा प्रतिपादित असन्तुलित विकास का सिद्धान्त एक यथार्थ सिद्धान्त है और विकासवादी नियोजन से सब पहलुओं पर विचार करता है। विकास के लिए प्रेरणाओं और उसके बाद में आने वाली कठिनाइयों और बाधाओं का भी उचित रूप से विवेचन इस सिद्धान्त में किया गया है।
- असन्तुलित विकास में कुछ ही क्षेत्रों का अत्यधिक विकास किया जाता है। इससे प्रारम्भिक अवस्था में जब तक परिपूरक उद्योगों का विकास न हो, साधन अप्रयुक्त और निष्क्रिय रहते हैं।
- आर्थिक विकास के आयोजन के लिए कोई एक पद्धति पूर्णरूपेण उपयुक्त नहीं है। विकास अर्थशास्त्र की प्रकृति ही ऐसी है कि कोई भी एक पद्धति स्थैतिक आय सिद्धान्त के विपरीत लागू नहीं होती।
- आर्थिक विकास की इन दोनों पद्धतियों में कुछ बातों पर आवश्यकता से अधिक बल दे दिया गया है और दोनों ही कतिपय महत्वपूर्ण प्रश्नों का उत्तर देने में असमर्थ रही हैं। जैसे राज्य का योगदान व आर्थिक नियोजन तथा साधनों की पूर्ति की सीमाएँ आदि।

21.12 शब्दकोश (Keywords)

- **परिपूरक–** परिपूर्ण करने वाला।
- **अप्रगामी–** अप्रगतिशील, यथापूर्वस्थितिवादी।

21.13 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. आर्थिक विकास के 'सन्तुलित विकास सिद्धान्त' का विवेचन कीजिए। किन तथ्यों के आधार पर इसकी अलोचना की गयी है।
2. आर्थिक विकास के लिए संतुलित वृद्धि की धारणा के पक्ष एवं विपक्ष में तर्क दीजिए।
3. 'संतुलित आर्थिक वृद्धि' की धारणा को समझाइए और अल्पविकसित देशों में इसकी रूकावटों को बताइए।
4. 'सन्तुलित आर्थिक वृद्धि' की असंतुलित आर्थिक वृद्धि से भिन्नता प्रकट कीजिए। इन दोनों में भारतीय स्थिति के लिए कौन-सी अधिक उपयुक्त है।
5. भारतीय अर्थव्यवस्था के सन्दर्भ में 'असन्तुलित विकास सिद्धान्त' की आलोचनात्मक समीक्षा कीजिए।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

1.	1. भोजन	2. विनियोग	3. प्रथम	4. रैगनर नर्क्स
	5. नर्क्स।			
2.	1. सत्य	2. सत्य	3. असत्य	4. सत्य
	5. असत्य			
3.	1. (ग)	2. (ग)	3. (ग)	4. (क)
	5. (घ)			

21.14 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

नोट

पुस्तकें

1. *संवृद्धि एवं विकास का अर्थशास्त्र*: डॉ. पी. मिश्रा; साहित्य भवन पब्लिकेशन्स : आगरा
2. *विकास नियोजन एवं नीतियाँ*: वी. सी सिन्हा: साहित्य भवन पब्लिकेशन्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.) लि. रजिस्टर्ड कार्यालय नई दिल्ली
3. *विकास का अर्थशास्त्र एवं आयोजन*: डा. एस. एल. डिंगल: वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा. लि.

नोट

इकाई–22: न्यूनतम आवश्यक प्रयत्न का सिद्धांत (Critical Minimum Efforts Thesis)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

22.1 महत्वपूर्ण अवधारणाएँ (Important Concepts)

22.2 सिद्धान्त की मान्यताएँ (Assumptions of Theory)

22.3 सिद्धान्त की मुख्य बातें (Main Features of Doctrine)

22.4 रोजेन्स्टीन रोडन बनाम हार्वे लेबेन्स्टीन (Rosenstein Rodan V/s. Leibenstein)

22.5 सारांश (Summary)

22.6 शब्दकोश (Keywords)

22.7 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

22.8 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- न्यूनतम आवश्यक प्रयत्न के महत्वपूर्ण अवधारणाओं को समझने में।
- न्यूनतम आवश्यक प्रयत्न सिद्धांत की मान्यताओं तथा सिद्धांत की मुख्य बातों को समझने में।
- रोजेन्स्टीन रोडन बनाम हार्वे लेबेन्स्टीन के सिद्धांत को एवं रोजेन्सटीन रोडन बनाम हार्वे लेबेन्स्टीन के सिद्धांत की व्याख्या करने में ।

प्रस्तावना (Introduction)

प्रो. हार्वे लेबन्स्टीन ने यह सिद्धान्त प्रस्तुत किया कि अल्पविकसित देशों में दरिद्रता का दुश्चक्र पाया जाता है, जो उन्हें प्रति व्यक्ति निम्न आय संतुलन स्थिति के गिर्द रखता है। इस दलदल से निकलने का मार्ग है एक निश्चित "क्रांतिक न्यूनतम प्रत्यन" (Critical minimum efforts), जो प्रति व्यक्ति आय को उस स्तर तक बढ़ा दे जिस पर सतत् विकास कायम रह सके।

22.1 महत्त्वपूर्ण अवधारणाएँ (Important Concepts)

(1) **न्यूनतम आवश्यक प्रयत्न** (Critical Minimum Efforts) – अर्द्ध-विकसित देशों में निर्धनता का कुचक्र पाया जाता है जो उन्हें प्रति व्यक्ति आय सन्तुलन (Low Income Equilibrium) की स्थिति में बनाए रखता है। अत: न्यूनतम आवश्यक प्रयास वह न्यूनतम विनियोग की मात्रा है जो इन देशों की प्रति व्यक्ति आय को उस स्तर तक बढ़ा दे जिस पर सतत् विकास कायम रह सके।

नोट

(2) **झटके तथा प्रोत्साहन** (Shocks and Stimulants)–लेबेन्स्टीन के अनुसार हर अर्थव्यवस्था 'झटकों' (Shocks) तथा 'प्रोत्साहनों' (Stimulants) के अधीन होती है। **झटका** मूलत: प्रति व्यक्ति आय कम करने का प्रभाव देता है, जबकि प्रोत्साहन उसे बढ़ाता है।

(3) **लेबेन्स्टीन का न्यूनतम आवश्यक प्रयत्न सिद्धान्त** (Harvey Leibenstein's Theory of Critical Minimum Effort)–यह सिद्धान्त इस मान्यता पर आधारित है कि अर्द्ध-विकसित देशों में जनसंख्या दबावों के कारण निर्धनता एवं निम्न पूँजी निर्माण का दुष्चक्र पाया जाता है। ये विषम वृत्त इसलिए अधिक विषम बने रहते हैं क्योंकि पर्याप्त मात्रा में विकास के लिए वांछित प्रोत्साहन या प्रयास उपलब्ध नहीं किये जा सकते। जब विनियोग आवश्यक न्यूनतम मात्रा से कम किये जाते हैं तो उससे आय में वृद्धि तो अवश्य होती है लेकिन बढ़ी हुई आय बढ़ी हुई जनसंख्या द्वारा हड़प ली जाती है। फलत: विकास का क्रम स्थिर बना रहता है अत: आवश्यकता इस बात की है कि विनियोग 'आवश्यक न्यूनतम मात्रा' में किया जाये, ताकि आर्थिक दुष्चक्र को तोड़कर आर्थिक विकास का मार्ग प्रशस्त किया जा सके।

प्रो. हार्वे लेबेन्स्टीन ने अपनी पुस्तक *'Economic Backwardness and Economic Growth'* (1957) में अर्द्ध-विकसित देशों के सम्बन्ध में एक वाद या थिसिस को जन्म दिया है जिसे **'न्यूनतम आवश्यक प्रयत्नवाद'** कहते हैं। अपने इस ग्रन्थ में लेबेन्स्टीन ने भारत, इंडोनेशिया आदि उन अर्द्ध-विकसित देशों की समस्याओं का अध्ययन किया है जिनमें जनसंख्या का घनत्व अधिक है।

लेबेन्स्टीन के विचार में प्रत्येक अर्थव्यवस्था में एक ओर **'आय बढ़ाने वाले'** (Stimulants) और दूसरी **ओर, 'आय घटाने वाले'** (Shocks) अनेक घटक पाये जाते हैं।

'आय बढ़ाने वाले' तथा 'आय घटाने वाले' अनेक घटक हो सकते हैं। विभिन्न अर्थव्यवस्थाओं में इनकी प्रवृत्ति में थोड़ा बहुत अन्तर पाया जा सकता है किन्तु अधिकांश स्थितियों में विनियोग में वृद्धि एक महत्वपूर्ण 'आय बढ़ाने वाला घटक' है, जबकि जनसंख्या में वृद्धि 'आय घटाने वाला घटक'। आर्थिक विकास के लिए यह आवश्यक है कि 'आय बढ़ाने वाले घटक' 'आय घटाने वाले घटकों' की तुलना में अधिक प्रभावशाली हों। केवल उसी स्थिति में अर्थव्यवस्था में स्थायी विकास की सम्भावनाएँ उत्पन्न हो सकती हैं। प्रो. लेबेन्स्टीन के विचार में ऐसा तभी सम्भव हो सकता है जबकि अर्थव्यवस्था एक **आवश्यक न्यूनतम प्रयास के बराबर विनियोग के साधन जुटाये।**

22.2 सिद्धान्त की मान्यताएँ (Assumptions of Theory)

लेबेन्स्टीन के सिद्धान्त की निम्नलिखित मान्यताएँ हैं :

(1) अर्द्ध-विकसित देशों में जनसंख्या दबावों के कारण निर्धनता एवं निम्न पूँजी निर्माण का दुष्चक्र पाया जाता है।

(2) साधनों एवं विनियोगों में अविभाज्यता पायी जाती है।

(3) आर्थिक विकास के लिए पर्याप्त मात्रा में वांछित प्रोत्साहन या प्रयास उपलब्ध नहीं होते हैं।

(4) पुरानी मान्यताओं, अवस्थाओं, विचारों एवं रीति-रिवाजों की उपस्थिति रहती है तथा उन पर अचानक एवं प्रभावी आक्रमण आवश्यक है।

(5) **'आय बढ़ाने वाले'** (Income Raising Forces) एवं **'आय घटाने वाले'** (Income Depressing Forces) में संघर्ष होता रहता है।

(6) आर्थिक विकास दर बढ़ने पर उर्वरता दर स्वत: घटने लगती है। आय एवं जनसंख्या के बीच प्रत्यक्ष सह-सम्बन्ध पाया जाता है तथा आवश्यक न्यूनतम आकार से कम का विनियोग होने पर जनसंख्या बढ़ती है।

(7) बन्द अर्थव्यवस्था के रूप में बचत, आय, विनियोग का ही समावेश है।

नोट

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

1. निम्नलिखित कथनों में सत्य/असत्य की पहचान करें–

1. लेबेन्स्टीन न्यूनतम आवश्यक प्रयत्न सिद्धांत के प्रतिपादक हैं।
2. लेबेन्स्टीन के अनुसार अर्द्ध-विकसित अर्थव्यवस्था में आय घटाने वाले अधिक प्रभावशाली होते हैं।
3. लेबेन्स्टीन की पुस्तक 'Economics Backwardness and Economics Growth' का प्रकाशन 1975 में हुआ था।
4. आर्थिक दुष्चक्र को तोड़कर आर्थिक विकास का मार्ग प्रशस्त किया जा सकता है।
5. लेबेन्स्टीन के अनुसार हर अर्थव्यवस्था 'झटकों' तथा 'प्रोत्साहनों' के आधीन नहीं होती।

22.3 सिद्धान्त की मुख्य बातें (Main Features of Doctrine)

इस सिद्धान्त की व्याख्या हम निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत कर सकते हैं :

(1) जनसंख्या-वृद्धि प्रति व्यक्ति आय का फलन (Population Growth is a Function of Per Capita Income) – **लेबेन्स्टीन** का सिद्धान्त इस मान्यता पर आधारित है कि जनसंख्या वृद्धि की दर प्रति व्यक्ति आय के स्तर का फलन (Function) है और यह विकास की विभिन्न अवस्थाओं से सम्बन्धित है।

प्रथम अवस्था (कम आय)–आय के जीवन-निर्वाह साम्य स्तर (Subsistence Level of Income Level) पर, जन्म और मृत्यु दरें दोनों ही अधिकतम होती हैं, अत: जनसंख्या में वृद्धि नहीं होती है।

द्वितीय अवस्था (अधिक आय)–जीवन-निर्वाह स्तर से प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि होने पर मृत्यु दरें गिरना प्रारम्भ करती हैं परन्तु जन्म दर तत्काल नहीं घटती और परिणामस्वरूप जनसंख्या वृद्धि की दर ऊँची हो जाती है। मृत्यु दर घटने के कारण बच्चों की अनुत्पादक आयु से, उनकी उत्पादक आयु बढ़ जाती है। फलत: बच्चे की 'उत्पादन उपयोगिता व सुरक्षा उपयोगिता' एकदम बढ़ जाती है, इसीलिए जन्म दर घटाने की कोई प्रेरणा नहीं रहती।

तृतीय अवस्था (और अधिक आय वृद्धि)–जब प्रति व्यक्ति आय में और अधिक वृद्धि होती है और अधिक बच्चे जिन्दा रहते हैं तो बच्चों की 'उपभोग उपयोगिता' घट जाती है। चूँकि धनी व्यक्ति के बच्चे जल्दी नहीं कमाते, इसलिए उनकी 'उत्पादन उपयोगिता' भी घट जाती है। साथ ही आय में वृद्धि हो जाने के कारण 'सुरक्षा उपयोगिता' भी महत्वपूर्ण नहीं रह जाती। इसके अतिरिक्त, विशिष्टीकरण, सामाजिक और आर्थिक गतिशीलता तथा नौकरी व्यवस्था आदि में प्रतिस्पर्द्धा में वृद्धि आदि अनेक कारणों से बड़े परिवार का पालन-पोषण कठिन हो जाता है व शिक्षा, स्वास्थ्य, कपड़े व अन्य खर्चों के कारण प्रत्यक्ष व परोक्ष लागतें भी बढ़ जाती हैं। ऐसी अवस्था में लागतें जब लाभ से अधिक हो जाती हैं तो फिर जन्म दर को कम रखने की इच्छा प्रबल हो जाती है।

चतुर्थ अवस्था (बहुत अधिक आय)–जब प्रति व्यक्ति आय बहुत अधिक हो जाती है तो मृत्यु दर व जन्म दर दोनों ही बिल्कुल कम हो जाती हैं और जनसंख्या में बहुत ही थोड़ी वृद्धि होती है।

वास्तव में, **लेबेन्स्टीन** की उपर्युक्त व्याख्या **ड्यूमोण्ट** के **सामाजिक केशालता थीसिस** पर आधारित है जो हमें यह बताता है कि प्रति व्यक्ति आय में होने वाली प्रत्येक वृद्धि, एक निश्चित सीमा के बाद, माता-पिताओं में अधिक बच्चे उत्पन्न करने की इच्छा को घटाती है क्योंकि बढ़ते हुए जीवन-स्तर के अनुरूप बड़े परिवार का पालन-पोषण अब महँगा हो जाता है। लेबेन्स्टीन का कहना है कि जनसंख्या के इस उभार को पार करने के लिए आवश्यक न्यूनतम प्रयत्न काफी बड़ी मात्रा में होना चाहिए। इस तथ्य को नीचे दिये चित्र द्वारा भी स्पष्ट किया गया है।

वक्र N प्रति व्यक्ति आय-स्तर को व्यक्त करता है जो राष्ट्रीय आय को जनसंख्या-वृद्धि दर के स्तर के बराबर बनाये रखता है। वक्र P प्रति व्यक्ति आय के प्रत्येक स्तर पर जन-वृद्धि की दर को दर्शाता है।

चित्र में A बिन्दु एक ऐसा बिन्दु है जो जीवन निर्वाह सन्तुलन को सूचित करता है। इस बिन्दु पर न तो जनसंख्या और न ही आय की अधिकता इत्यादि की समस्या है किन्तु यदि प्रति व्यक्ति आय बढ़कर Y_1 हो जाती है जो जनसंख्या और

नोट

आय दोनों एक समान ही रहते हैं, जैसा कि चित्र से स्पष्ट है। इसके पश्चात् Y_2 प्रति व्यक्ति आय स्तर पर जनसंख्या में वृद्धि आय की तुलना में अधिक है क्योंकि $Y_2D > Y_2B$।

ऐसी स्थिति में यह अनिवार्य हो जाता है कि प्रति व्यक्ति आय अथवा राष्ट्रीय आय को इस प्रकार से बढ़ाया जाय कि वह जनसंख्या में वृद्धि की अपेक्षा अधिक बढ़े लेकिन यह तभी सम्भव है जब प्रति व्यक्ति आय का स्तर Y_3 स्तर को पार कर जाय। E बिन्दु के पश्चात् जनसंख्या वृद्धि की दर में गिरावट आनी शुरू हो जाती है। अत: E बिन्दु ही प्रो. लेबेन्स्टीन द्वारा जनसंख्या वृद्धि की जीवन वैज्ञानिक रूप से निर्धारित सीमा है जिसे उन्होंने 3% माना है। इससे यह भी सिद्ध हो जाता है कि Y_3 प्रति व्यक्ति आय-स्तर को प्राप्त करने के बराबर 'आवश्यक न्यूनतम प्रयत्न' करने होंगे, तभी मनोवांछित विकास प्राप्त हो सकेगा।

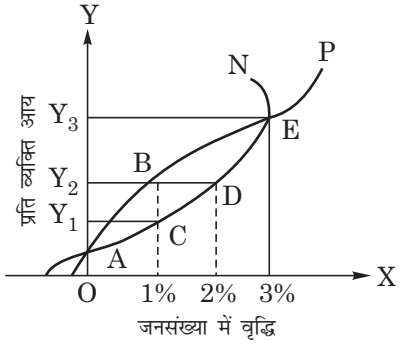

चित्र 22.1

टास्क गरीबी के दुष्चक्र को तोड़ने के लिए पूँजी संचय के 'आवश्यक न्यूनतम प्रयत्न' से आप क्या समझते हैं ?

(2) विषम चक्रों को तोड़ना–सिद्धान्त की व्याख्या एवं प्रक्रिया–यह सिद्धान्त इस मान्यता पर आधारित है कि अर्द्ध-विकसित देशों में जनसंख्या दबावों के कारण निर्धनता एवं निम्न पूँजी-निर्माण का दुष्चक्र पाया जाता है। ये विषम वृत्त इसलिए अधिक विषम बने रहते हैं क्योंकि पर्याप्त मात्रा में विकास के लिए वांछित प्रोत्साहन या प्रयास उपलब्ध नहीं किये जा सकते। जब विनियोग आवश्यक न्यूनतम मात्रा से कम किये जाते हैं तो उससे आय में वृद्धि तो अवश्य होती है लेकिन बढ़ी हुई आय बढ़ी हुई जनसंख्या द्वारा हड़प ली जाती है। फलत: विकास का क्रम स्थिर बना रहता है।

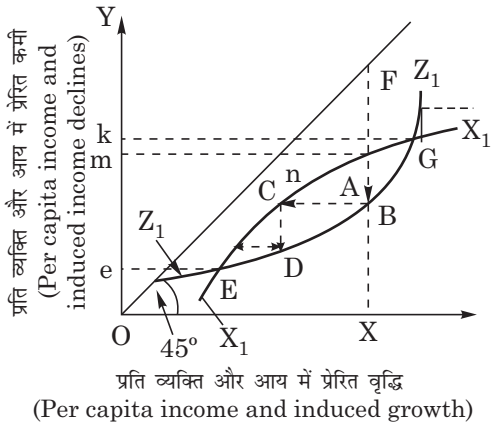

चित्र 22.2

अत: **जनसंख्या की इस ऊँची दर को नियन्त्रित करने और प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि करके जनसंख्या वृद्धि की दर को घटाने के लिए न्यूनतम आवश्यक प्रयत्नों की आवश्यकता है,** ताकि आर्थिक दुष्चक्र को तोड़कर आर्थिक विकास का मार्ग प्रशस्त किया जा सके। इस तथ्य को संलग्न रेखाचित्र द्वारा स्पष्ट किया गया है :

चित्र में (*i*) X_1X_1 रेखा उत्तेजक तत्व (Stimulant Factors) को प्रदर्शित करते हैं जो प्रति व्यक्ति आय को बढ़ाते हैं अर्थात् आय वृद्धि रेखा या विकासवर्द्धक रेखा है। (*ii*) Z_1Z_1 रेखा पीछे धकेलने वाले तत्व (Shocks) को प्रदर्शित करते हैं अर्थात् जनसंख्या-संख्या रेखा या विकास बाधक रेखा है। (*iii*) OE स्तर, जीवन-निर्वाह स्तर है अर्थात् E बिन्दु पर Z_1, वक्र और X_1 वक्र बराबर है अर्थात् जनसंख्या वृद्धि की दर और आय वृद्धि की दर बराबर है तथा अर्थव्यवस्था आर्थिक दुष्चक्र के चंगुल में फँसी रहती है। (*iv*) अगर आय में वृद्धि होती है जैसे OE से बढ़कर OM हो जाती है जो 'न्यूनतम आवश्यक प्रयत्न' के अनुरूप नहीं है तो जनसंख्या वृद्धि उस आय को समाप्त कर देगी और अर्थव्यवस्था पुन: जीवन-निर्वाह स्तर पर आ जायेगी क्योंकि यहाँ पर आय में वृद्धि करने वाली शक्तियों की अपेक्षा आय को घटाने वाली शक्तियाँ अधिक प्रभावपूर्ण हैं, जब प्रति व्यक्ति आय बढ़कर OM हो जाती है तो इस बिन्दु पर आय बढ़ाने वाली शक्ति (Income Raising) केवल AF है, जबकि आय घटाने वाली शक्तियाँ (Income Depressing) BF हैं। इसीलिए आय

नोट

पुन: घटकर E बिन्दु अर्थात् जीवन-निर्वाह साम्य बिन्दु पर पुन: आ जाती है। (*v*) इस समस्या के हल के लिए प्रति व्यक्ति आय की दर बढ़ाना चाहिए कि राष्ट्रीय आय में वृद्धि की दर जनसंख्या-वृद्धि दर को पीछे छोड़े दे। ऐसा प्रति व्यक्ति आय के स्तर को OK से अधिक होने पर ही हो सकता है। अत: अगर हम प्रथम बार में ही इतना न्यूनतम आवश्यक मात्रा में विनियोजन कर दें कि प्रति व्यक्ति आय OK स्तर तक पहुँच जाय तो हम आर्थिक दुष्चक्र के जाल से निकल जायेंगे। यहाँ से जनसंख्या में वृद्धि की दर कम होना शुरू हो जाती है अर्थात् G बिन्दु के बाद जनसंख्या रेखा पीछे की ओर मुड़ने (Backward Sloping) लगती है।

अत: निरन्तर आर्थिक विकास की स्थिति में अर्थव्यवस्था को पहुँचाने के लिए यह आवश्यक है कि प्रारम्भिक पूँजी विनियोग ही निश्चित न्यूनतम स्तर से अधिक हो जो स्वयं प्रेरित आय घटाने वाली शक्तियों पर काबू पाने योग्य प्रति व्यक्ति आय का उच्च स्तर प्रदान करे।

(3) आवश्यक विनियोग की मात्रा (Volume of Necessary Investment) – आवश्यक न्यूनतम प्रयास के सम्बन्ध में दो बातें उठती हैं–(अ) विनियोजन की मात्रा कितनी हो और (ब) विनियोजन एकमुश्त में किया जाये अथवा टुकड़ों में।

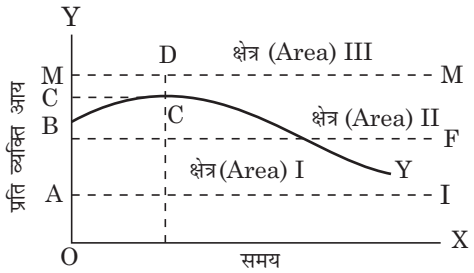

चित्र 22.3

प्रथम प्रश्न के उत्तर में लेबेन्स्टीन का मत है कि विनियोग की मात्रा इतनी अधिक अवश्य होनी चाहिए जो न केवल आय घटाने वाली शक्तियों का सामना करने के लिए पर्याप्त हो बल्कि आय वृद्धि की कुछ मात्रा पूँजी निर्माण के लिए भी उपलब्ध होती रहे। दूसरे प्रश्न के सम्बन्ध में लेबेन्स्टीन का सुझाव है कि यदि एक बार में अथवा एकमुश्त में विनियोजन न किया जा सके तो समयानुसार यह छोटी-छोटी किस्तों में भी किया जा सकता है। विनियोग का इंजेक्शन इस प्रकार से लगाया जाना चाहिए कि प्रथम इन्जेक्शन का प्रभाव समाप्त होते ही दूसरा इंजेक्शन लगा दिया जाय। इसी तत्व को साथ के चित्र 22.3 द्वारा समझाया गया है। यदि प्रथम बार में ही इतनी आवश्यक न्यूनतम मात्रा में ही विनियोजन कर दिया जाय कि प्रति व्यक्ति आय बढ़कर OM हो जाये तो अर्थव्यवस्था आर्थिक निर्धनता के जाल से निकल जायेगी और सतत् आर्थिक विकास की प्रक्रिया आरम्भ हो जायेगी परन्तु यदि अर्थव्यवस्था के पास एक ही मुश्त में विनियोजन के लिए पर्याप्त साधन न हो तो यह विनियोग रूपी इंजेक्शन दो अवस्थाओं में लगा सकता है। **प्रथम अवस्था** में 'इंजेक्शन' इतना पर्याप्त होना चाहिए कि प्रति व्यक्ति आय बढ़कर OB हो जाय और फिर दूसरी अवधि में इतना 'इंजेक्शन' लगाया जा सकता है कि प्रति व्यक्ति आय CD से बढ़ जाये। **लेबेन्स्टीन** यह मानते हैं कि एक बड़े इंजेक्शन के स्थान पर विनियोजन के छोटे-छोटे इंजेक्शन यदि उचित समय के अन्तर से लगाये जायें तो वे अधिक प्रभावशाली होंगे। लेबेन्स्टीन का यह भी कहना है कि यदि विनियोग की आवश्यक न्यूनतम मात्रा देश में वर्तमान आय-स्तर पर उपलब्ध नहीं है तो विदेशी सहायता का भी सहारा लिया जा सकता है।

नोट्स द्रुत आर्थिक विकास के लिए लेबेन्स्टीन ने प्रति व्यक्ति आय तथा जनसंख्या में संबंध स्थापित किया है।

(4) आवश्यक न्यूनतम प्रयत्न की आवश्यकता क्यों (Why Need for Critical Minimum Efforts?)- लेबेन्स्टीन ने न्यूनतम आवश्यक विनियोजन निम्नलिखित कारणों से आवश्यक बताया है :

(*i*) उत्पादन के घटकों एवं विनियोजन निर्णयों की अविभाज्यता के कारण बड़े स्तर पर विनियोजन करना आवश्यक होता है। यदि न्यूनतम आवश्यक विनियोजन से कम विनियोजन किया जाता है तो बाह्य मितव्ययिताएँ प्राप्त नहीं होती हैं।

नोट

(*ii*) लेबेन्स्टीन का कहना है कि आर्थिक विकास पुरानी मान्यताओं, आस्थाओं, विचारों तथा रीति-रिवाजों को तोड़ने से होता है। आवश्यक न्यूनतम प्रयत्न से कम विनियोग करने पर यह संस्थागत रुकावटें नहीं टूटतीं क्योंकि पुराने मूल्य और परम्पराएँ बदलने में अधिक समय लेती हैं। उन पर तो एक अचानक और वह भी बड़ी मात्रा में हमला करना चाहिए, ताकि "हर नया परिवर्तन स्वयं किसी नये परिवर्तन को जन्म दे सके।"

(*iii*) विकास के द्वारा विकास को अवरुद्ध करने वाले तत्व भी उदय होते हैं जिसके द्वारा आय घटाने की जो प्रवृत्ति उत्पन्न होती है, उसकी पूर्ति के लिए बड़ी मात्रा में प्रारम्भिक विनियोग की आवश्यकता होती है। उदाहरणार्थ, विकास के साथ जब स्वास्थ्य एवं कल्याण की सुविधाओं में वृद्धि की जाती है तो मृत्यु-दर कम हो जाती है और जन्म-दर में कोई विशेष परिवर्तन नहीं होता।

(*iv*) अर्थव्यवस्था में सन्तुलित विकास हेतु बड़े पैमाने पर विनियोजन की आवश्यकता होती है। अर्द्ध-विकसित देश अधिकतर पिछड़ी अवस्था में होते हैं और जब तक बड़े स्तर पर विनियोजन सभी क्षेत्रों पर नहीं किया जाता, एक क्षेत्र दूसरे क्षेत्र के विकास में बाधक हो सकता है।

(*v*) चूँकि विकास के साथ-साथ पूँजी-उत्पाद अनुपात (COR) घटता जाता है, इसलिए यदि विनियोग आवश्यक न्यूनतम मात्रा में किया जाये तो पूँजी-उत्पाद अनुपात अधिक घटेगा और आर्थिक विकास तेजी के साथ होगा।

(5) विकास के अभिकर्ता (Growth Agents)—लेबेन्स्टीन का मत है कि विकास, विकास के अभिकर्ता का कार्य है। विकास अभिकर्ता का अर्थ "जनसंख्या में निहित उन क्षमताओं से है जो विकास करती हैं। जब देश में इन क्षमताओं का परिमाणात्मक व गुणात्मक विकास होता है तो देश के इन विकास अभिकर्ताओं का विकास होता है।" **विकास अभिकर्ता ही विकास में योग देने वाली क्रियाओं** (Growth Contributing Activities) **को संचालित** करते हैं। उपक्रमी (Entrepreneur), विनियोजक (Investor), बचतकर्ता (Saver) एवं नवप्रवर्तक (Innovator) आदि उल्लेखनीय 'विकास अभिकर्ता' हैं। विकास अभिकर्ताओं का इस विकास में योगदान देने वाली क्रियाओं के कारण पूँजी-निर्माण, श्रम-शक्ति की कुशलता, ज्ञान और जोखिम की मात्रा में वृद्धि होती है।

(6) प्रेरणाएँ (Incentives)—**लेबेन्स्टीन** के अनुसार, विकास कारकों का विस्तार होगा या नहीं, इस बात पर निर्भर करता है कि ऐसी क्रियाओं के प्रत्याशित तथा वास्तविक परिणाम क्या होते हैं और विस्तार के लिए प्रेरणा उत्पन्न करती हैं या संकुचन के लिए। यह प्रेरणाएँ दो प्रकार की हो सकती हैं :

(*i*) **शून्य-राशि प्रेरणाएँ** (Zero-sum Incentives)—इनसे राष्ट्रीय आय में कोई वृद्धि नहीं होती। इनका केवल **'वितरणात्मक प्रभाव'** पड़ता है। लेबेन्स्टीन का कहना है कि अर्द्ध-विकसित देशों में उत्पादन कार्य की अपेक्षा वितरण कार्यों में अधिक लोग लगे रहते हैं। विवरणात्मक क्रियाओं में लगे रहने से देश की वास्तविक राष्ट्रीय आय में वृद्धि नहीं होती बल्कि केवल भाग्यहीन साहसियों से धन का हस्तान्तरण भाग्यशाली साहसियों को होता है। स्पष्टत: **शून्य-राशि प्रेरणाओं में व्यक्तिगत लाभ कम व अधिक हो सकता है परन्तु सामाजिक लाभ नहीं होता।**

यहाँ पर एक स्वाभाविक प्रश्न यह उठता है कि शून्य-राशि कार्य कौन-कौन-से हैं ? शून्य-राशि कार्य अनेक हैं, जैसे :

(अ) **अव्यापारात्मक कार्य** जो केवल अधिक से अधिक एकाधिकारी सत्ता प्राप्त करने के उद्देश्य मात्र से ही किये जाते हैं।

(ब) साधनों का लाभदायक ढंग से प्रयोग न किया जाना।

(स) एकमात्र राजनीतिक, आर्थिक अथवा सामाजिक सम्मान प्राप्त करने से सम्बन्धित कार्य तथा व्यय।

(द) सट्टे से सम्बन्धित कार्य।

(य) समस्त ऐसे विनियोजन जिनका सामाजिक मूल्य लगभग शून्य होता है।

(*ii*) **धनात्मक-राशि प्रेरणाएँ** (Positive-sum Incentives)—इनसे राष्ट्रीय आय में वृद्धि होती है और देश में उत्पादन बढ़ता है। धनात्मक राशि-प्रेरणाओं में न केवल व्यापारिक जोखिम निहित है बल्कि उत्पादन सम्बन्धी

नोट

जोखिम भी सम्मिलित है, जब देश में धनात्मक राशि-क्रियाओं का विकास होता है।

किन्तु अल्पविकसित देशों में प्रथम प्रकार की क्रियाओं में ही लोग संलग्न रहते हैं और दूसरे प्रकार की क्रियाएँ अत्यन्त कम मात्रा में संचालित की जाती हैं। अत: लेबेन्स्टीन का कहना है कि अल्पविकसित देशों में आवश्यकता इस बात की है कि (क) देश में शून्य-राशि प्रेरणाएँ व उपक्रम (Zero-sum Incentives and Enterprises) कम हों और (ख) **धनात्मक राशि-प्रेरणाएँ व उपक्रम** (Positive-sum Incentives and Enterprises) बढ़ें तथा धनात्मक राशि-उपक्रमों को बनाये रखा जाये।

(1) संगठित तथा असंगठित दोनों प्रकार के श्रमिकों के रूढ़िवादी कार्य भी विकास के क्षेत्र में प्रतिकूल ही साबित होते हैं।

(2) शून्य-राशि कार्यों की प्रधानता आर्थिक विकास के लिए उचित अवसरों का निर्माण नहीं होने देती।

(3) अनुत्पादक व्यय की प्रधानता भी एक कारण है।

(4) पूँजी निर्माण का निम्न स्तर विकास नहीं होने देता।

(5) शून्य-राशि कार्यों की प्रधानता के कारण न तो देश के साधनों का पूरा-पूरा विकास अथवा प्रयोग हो पाता है और न ही/विकास के लिए एक उचित वातावरण का निर्माण हो पाता है।

(6) प्राचीन विचारों एवं मान्यताओं की प्रधानता तथा नवीन विचारों, पद्धतियों आदि का प्रतिरोध भी विकास में आड़े आते हैं।

(7) ऊँचा पूँजी-उत्पादन अनुपात भी आय को नीचे रखता है।

(8) दिखावे को उपभोग की निजी तथा सरकारी दोनों क्षेत्रों में प्रधानता भी विकास को रोकती है।

(9) जनसंख्या तथा श्रम शक्ति में तीव्रगति में वृद्धि जो प्रति व्यक्ति पूँजी की उपलब्धि को कम करती है।

उपर्युक्त सब दृढ़ताओं एवं जटिलताओं पर नियन्त्रण प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि 'आवश्यक न्यूनतम प्रयत्न' इतनी मात्रा में अवश्य अपनाये जायें कि शून्य लोग कार्यों पर नियन्त्रण प्राप्त कर लिया जाये और धनात्मक राशि कार्यों को प्रत्येक सम्भव प्रोत्साहन प्राप्त हो सके।

CME के फलस्वरूप आय में वृद्धि होगी जिससे बचत एवं रोजगार का स्तर ऊँचा उठेगा और इसके अगले धनात्मक परिणाम इस प्रकार होंगे :

(1) जनसंख्या वृद्धि दर में कमी आयेगी।

(2) श्रमिकों की क्षमताओं एवं कुशलताओं में वृद्धि होगी।

(3) विशिष्टीकरण की मात्रा में वृद्धि होगी।

(4) ऊँचा पूँजी-उत्पादन अनुपात कम होगा।

(5) सामाजिक एवं आर्थिक गतिशीलता में वृद्धि होगी।

(6) उपभोग की मात्रा में वृद्धि होगी।

(7) द्वितीयक एवं तृतीयक क्षेत्रों का विकास होगा।

(8) उत्पादन क्षमता की मात्रा में वृद्धि होगी।

(9) विकास अभिकर्ताओं का विकास होगा।

(10) बचत एवं पूँजी निर्माण की मात्रा में वृद्धि होगी।

(11) विशिष्टीकरण की मात्रा में वृद्धि होगी।

(7) जनसंख्या एवं विकास (Population and Growth) – लेबेन्स्टीन ने जनसंख्या के सम्बन्ध में कुछ रोचक तत्वों पर प्रकाश डाला है। उनके विचार में अर्द्ध-विकसित राष्ट्रों में जनसाधारण विवेकशील नहीं होता और अधिक बच्चे पैदा करने की प्रवृत्ति का शिकार रहता है। निर्धन वर्ग के बच्चे के पालन-पोषण की लागत उसकी उपयोगिता से कम होती है।

नोट

लेबेन्स्टीन के अनुसार एक नवजात शिशु तीन प्रकार की उपयोगिता देता है :

(*i*) वह एक **उपभोग वस्तु** (Consumption Goods) है अर्थात् वह अपने माँ–बाप को खिलाने या प्यार करने का सुख देता है।

(*ii*) वह एक **उत्पादक अभिकर्ता** (Productive Agent) भी है अर्थात् वह स्वयं धन अर्जन करके अपने परिवार का भरण–पोषण कर सकता है। अर्द्ध–विकसित देशों में वह यह काम कम आयु में ही कर सकता है।

(*iii*) वह **सुरक्षा का स्त्रोत** (Source of Security) है अर्थात् बुढ़ापे का सहारा है।

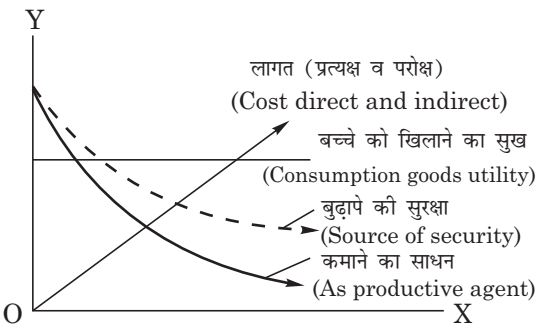

चित्र 22.4

लेबेन्स्टीन का विचार है कि अर्द्ध–विकसित देशों में भी बच्चे पैदा होना लाभ (माँग) व लागत पूर्ति के आधार पर निर्धारित होता है। इस तथ्य को उन्होंने संलग्न रेखाचित्र 22.4 द्वारा दर्शाया है :

चित्र में–

(*i*) लागत रेखा नीचे से ऊपर की ओर उठती हुई है जो यह प्रदर्शित करती है कि बच्चों के जन्म के साथ (लागतें) बढ़ती जाती हैं। लागत में प्रत्यक्ष व परोक्ष दोनों ही लागतें सम्मिलित हैं। प्रत्यक्ष लागत का अर्थ बच्चों के भरण–पोषण पर व्यय से है व परोक्ष लागत से तात्पर्य अवसर लागत से है। बच्चे पैदा होने के समय या बाद में प्राय: माता–पिता को छुट्टी लेनी पड़ती है अथवा उनकी आय व गतिशीलता कम हो जाती है। इसलिए लागत बढ़ती जाती है।

(*ii*) उपभोग वस्तु के रूप में बच्चे से प्राप्त होने वाली उपयोगिता समान रहती है क्योंकि प्रत्येक बच्चा समान सुख देता है और आय से इसका कोई सम्बन्ध नहीं है।

(*iii*) जहाँ तक बच्चे का उत्पादक–अभिकर्ता (अर्जन का साधन) के रूप में उपयोगिता अथवा बुढ़ापे के सहारे के रूप में उपयोगिता की बात है, यह माना गया है कि आय के बढ़ने से हर आने वाले बच्चे का इस सम्बन्ध में महत्व घटता जाता है।

उपर्युक्त मान्यताओं के आधार पर लेबेन्स्टीन का कथन है कि अर्द्ध–विकसित देशों में केवल प्रति व्यक्ति आय बढ़ने पर ही जन्म दर कम होगी अर्थात् पहले आर्थिक विकास होगा फिर जन्म दर घटेगी। **लेबेन्स्टीन** के शब्दों में, "बिना आर्थिक विकास के कोई भी प्रत्यक्ष तरीके जन्म दर नियन्त्रण में सफल नहीं हो सकते। वास्तव में, पहले तो आर्थिक विकास का कार्यक्रम शुरू करना होगा।" अत: लेबेन्स्टीन का सिद्धान्त इस मान्यता पर आधारित है कि जनसंख्या वृद्धि की दर प्रति व्यक्ति आय के स्तर का फलन (Function) है और यह **विकास की विभिन्न अवस्थाओं से सम्बन्धित है।**

क्या आप जानते हैं आर्थिक विकास पुरानी मान्यताओं, आस्थाओं, विचारों तथा रीति–रिवाजों को तोड़ने से होता है। आवश्यक न्यूनतम प्रयत्न से कम विनियोग करने पर यह संस्थागत रुकावटें नहीं टूटतीं क्योंकि पुराने मूल्य और परम्पराएँ बदलने में अधिक समय लेती हैं। उन पर तो एक अचानक और वह भी बड़ी मात्रा में हमला करना चाहिए, ताकि "हर नया परिवर्तन स्वयं किसी नये परिवर्तन को जन्म दे सके।"

(8) विनियोजन के गुण (Merits of Investment)–लेबेन्स्टीन के मतानुसार आर्थिक विकास के लिए पूँजी–प्रधान विनियोजन आवश्यक है क्योंकि इसके द्वारा ही आय में तीव्र गति से वृद्धि हो सकती है। लेबेन्स्टीन का यह भी मत है कि प्रारम्भिक विनियोजन औद्योगिक क्षेत्र में किया जाना चाहिए क्योंकि औद्योगिक क्षेत्र के विकास

नोट

से तकनीकी सुधार, आविष्कार, श्रम कुशलता आदि में वृद्धि होती है जो विकास का वातावरण उत्पन्न करती है। विनियोजन केवल भौतिक सम्पत्तियों को ही बढ़ाने के लिए नहीं किया जाना चाहिए बल्कि मानवीय गुणों में सुधार करने के लिए शिक्षा, स्वास्थ्य, प्रशिक्षण आदि पर भी विनियोजित करना आवश्यक होता है।

(9) निवेश मानदण्ड या नीति (Investment Criterian)—**प्रो. लेबेन्स्टीन** ने **प्रो. कॉन** तथा **प्रो. नर्क्स** के विनियोजन सम्बन्धी मापदण्डों को स्वीकार नहीं किया है। **प्रो. कॉन** ने सीमान्त अथवा सामाजिक सीमान्त उत्पादकता मापदण्ड अथवा सिद्धान्त प्रस्तुत किया है। इसको स्वीकार न करते हुए **प्रो. लेबेन्स्टीन** ने बताया कि इस मापदण्ड के अनुसार विनियोजन करने से न तो प्रति व्यक्ति आय और न ही राष्ट्रीय आय में वृद्धि सम्भव हो सकेगी। फिर SMP का पता लगाना भी कठिन है। नर्क्स के अधिकतम रोजगार या श्रम-प्रधान विकास नीति को लेबेन्स्टीन ने इसलिए अस्वीकार किया है क्योंकि यदि पूँजी-गहन निवेश को कम रखा गया तो इससे तीव्र विकास की सम्भावना घट जायेगी। लेबेन्स्टीन, **वाइनर** के इस मत से भी सहमत नहीं हैं कि अल्पविकसित देशों को अधिकाधिक विनियोग कृषि क्षेत्र में करना चाहिए।

लेबेन्स्टीन ने उपयुक्त विनियोग के सम्बन्ध में कहा है कि विनियोग भौतिक तथा मानवीय दोनों प्रकार की पूँजी में वृद्धि लाने के लिए किया जाना चाहिए और यह आवश्यक न्यूनतम मात्रा में होना चाहिए। विनियोग का ढाँचा ऐसा होना चाहिए जिससे उपक्रमियों को प्रोत्साहन मिले, अर्जित लाभों का पुनर्विनियोग हो, श्रम उत्पादकता बढ़े, बचतों को प्रोत्साहन मिले और जनसंख्या वृद्धि की दर घटने लगे। इस प्रकार से लेबेन्स्टीन 'पुनर्विनियोग उपलब्धि मानदण्ड' का समर्थन करते हैं जो कि उन्हीं के नाम से जाना जाता है।

(10) पूँजी-उत्पादन अनुपात (Capital-Output Ratio)—**प्रो. लेबेन्स्टीन** का मत है कि न्यूनतम आवश्यक प्रयत्न सफलतम रूप से हो जाने के बाद सर्वांगीण विकास की स्थिति उत्पन्न होती है जिनका अन्तिम प्रभाव यह पड़ता है कि पूँजी-उत्पाद अनुपात में भी कमी आती है। पूँजी-उत्पाद अनुपात का अर्थ यहाँ पर आय-वृद्धि का उत्पादन-वृद्धि (Incremental Capital Output Ratio, I.C.O.R.) के अनुपात से है। उदाहरणार्थ, यदि राष्ट्रीय आय का 20% भाग विनियोजित किया जाता है और इस विनियोजन द्वारा राष्ट्रीय आय में 5 : 1 के अनुपात (अर्थात् 5 रु. विनियोजन पर 1 रु. आय वृद्धि होती है) में वृद्धि होती है तो I.C.O.R. 40% समझा जायेगा अर्थात् 100 रुपये की राष्ट्रीय आय में वृद्धि होने पर 4 रुपये की आय में और वृद्धि होगी। लेबेन्स्टीन के विचार में यदि अर्थव्यवस्था में न्यूनतम आवश्यक विनियोजन कर दिया जाता है तो I.C.O.R. विकास के बढ़ने के साथ-साथ घटता जायेगा।

लेबेन्स्टीन ने विकास के साथ-साथ पूँजी-उत्पाद अनुपात के घटने की प्रवृत्ति के लिए कुछ तत्वों को विशेष रूप से महत्वपूर्ण बताया है जो इस प्रकार हैं :

(*i*) प्रति व्यक्ति अथवा राष्ट्रीय आय में वृद्धि,

(*ii*) श्रम विभाजन एवं विशिष्टीकरण का विस्तार,

(*iii*) श्रमिकों की कार्यकुशलता एवं उत्पादकता में वृद्धि,

(*iv*) मशीनों के प्रयोग में वृद्धि,

(*v*) प्रशिक्षण सुविधाओं में वृद्धि के उपरान्त प्रशिक्षित श्रमिकों की उपलब्धि,

(*vi*) व्यावसायिक संरचना में परिवर्तन, प्राथमिक उद्योगों से तृतीयक उद्योगों में कार्यशील जनसंख्या की वृद्धि तथा

(*vii*) भारी मशीनों की आवश्यकता का कम होना। विकास की प्रक्रियाएँ जैसे-जैसे पूरी होती जाती हैं, भारी मशीनों की आवश्यकता में कमी की स्थिति भी उत्पन्न हो सकती है।

निष्कर्ष के रूप में हम यह कह सकते हैं कि आवश्यक न्यूनतम मात्रा के अनुरूप विनियोजन किये जाने की स्थिति में एक ओर आर्थिक विकास की गति में तेजी आती है और पूँजी-उत्पाद अनुपात में कमी आती है। ये दोनों बातें दीर्घकालीन विकास के क्षेत्र में महत्वपूर्ण हैं।

नोट

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

2. सही विकल्प चुनिए (Choose the following True)–

1. लेबेन्स्टीन के अनुसार 'आवश्यक न्यूनतम प्रयास' की सफलता के पश्चात पूँजी-उत्पाद अनुपात–
   (क) बढ़ जाता है (ख) घट जाता है
   (ग) स्थिर हो जाता है (घ) इनमें से कोई नहीं।
2. लेबेन्स्टीन ने आर्थिक पिछड़ेपन में निम्न अवस्था को माना है–
   (क) स्थायी साम्य (ख) अर्द्ध-स्थायी साम्य
   (ग) दीर्घकालीन साम्य (घ) इनमें से कोई नहीं।
3. लेबेन्स्टीन के ही समान विचार निम्न में से किस अर्थशास्त्री ने दिए–
   (क) नेल्सन (ख) हर्शमैन
   (ग) रोस्टोव (घ) इनमें से कोई नहीं।
4. 'आवश्यक न्यूनतम प्रयास मॉडल किसकी देन है–
   (क) हर्शमैन (ख) लेबेन्स्टीन
   (ग) रोस्टोव (घ) इनमें से कोई नहीं।
5. लेबेन्स्टीन के अनुसार आर्थिक विकास की प्रक्रिया में आर्थिक वृद्धि के कारक निम्न में से कौन हैं–
   (क) आविष्कारक (ख) साहसी
   (ग) विनियोगकर्ता (घ) उपयुक्त सभी।

22.4 रोजेन्स्टीन रोडन बनाम हार्वे लेबेन्स्टीन (Rosenstein Rodan v/s. Leibenstein)

रोडन के 'बड़े धक्के के सिद्धान्त' और लेबेन्स्टीन के 'न्यूनतम आवश्यक प्रयत्न सिद्धान्त' दोनों का ही उद्देश्य अर्द्ध-विकसित अर्थव्यवस्था को दरिद्रता के दुष्चक्र से निकालकर सतत् विकास के मार्ग पर लाना है किन्तु तुलनात्मक रूप में लेबेन्स्टीन का सिद्धान्त रोडन के सिद्धान्त से कई बातों में श्रेष्ठ है।

(*i*) लेबेन्स्टीन का सिद्धान्त अधिक व्यावहारिक है क्योंकि अर्द्ध-विकसित देशों के औद्योगीकरण के लिए पूँजी की कमी के कारण एक बार ही 'बड़ा धक्का' देना कठिन होता है, जबकि लेबेन्स्टीन के 'न्यूनतम आवश्यक प्रयत्नों' को छोटे प्रयत्नों के रूप में टुकड़ों-टुकड़ों में विभाजित करके भी प्रयोग में लाया जा सकता है।

(*ii*) लेबेन्स्टीन के सिद्धान्त का एक गुण यह है कि वह लोकतन्त्रात्मक नियोजन से मेल खाता है जिससे अधिकांश अर्द्ध-विकसित देश सम्बद्ध हैं।

(*iii*) रोडन के विपरीत, लेबेन्स्टीन पूँजी-गहन तकनीक के समर्थक हैं इसलिए वे असन्तुलन से सन्तुलन की ओर जाते हैं।

(*iv*) अर्द्ध-विकसित देशों में औद्योगीकरण के कार्यक्रमों को एकदम से 'बड़े धक्के' के साथ कार्यान्वित करना अत्यन्त कठिन है, जबकि ऐसी अर्थव्यवस्था को सतत् आर्थिक विकास के मार्ग पर लाने के लिए आवश्यक न्यूनतम प्रयास समयानुसार और आवश्यकतानुसार करना अधिक युक्तिसंगत जान पड़ता है।

आलोचनाएँ (Criticisms)

परन्तु यह सिद्धान्त भी आलोचना रहित नहीं है। इसकी प्रमुख आलोचनाएँ इस प्रकार हैं :

(1) **जनसंख्या-वृद्धि मृत्यु-दर से सम्बन्धित** (Population Growth Rate related to Death Rate) – लेबेन्स्टीन के अनुसार शुरू में जनसंख्या आय के साथ-साथ बढ़ती जाती है परन्तु एक सीमा के बाद जनसंख्या आय की वृद्धि के साथ-साथ घट जाती है परन्तु शुरू में जनसंख्या वृद्धि की दर बढ़ने का कारण प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि नहीं है

नोट

अपितु चिकित्सा सुविधाओं में वृद्धि के कारण मृत्यु-दर में कमी होना है और जन्म-दर पूर्ववत् रहती है। फलतः जनसंख्या बढ़ती है। उदाहरण के लिए भारत में 1921 के बाद स्वास्थ्य सुविधाओं में विस्तार होने के कारण मृत्यु-दर में कमी आने और साथ ही जन्म-दर में कमी न होने के कारण जनसंख्या में वृद्धि हुई है।

(2) **जन्म-दर में कमी, प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि के कारण नहीं होती** (Decline in Birth Rate not due to increase in Per Capita Income)—लेबेन्स्टीन ने एक सीमा के बाद जन्म-दर में कमी का क्षेत्र जो न्यूनतम आवश्यक स्तर पर प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि को दिया है, उचित नहीं है। फ्रांस व जापान जैसे विकसित देशों में प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि जन्म-दर को घटा सकती है परन्तु अर्द्ध-विकसित देशों में जन्म-दर को घटाने के लिए हमें लोगों के दृष्टिकोण व सामाजिक संस्थाओं व मान्यताओं का परिवर्तन करना पड़ेगा व शिक्षा का प्रचार करना पड़ेगा। सच बात तो यह है कि कोई भी अर्द्ध-विकसित देश जन्म-दर को घटाने के लिए प्रति व्यक्ति आय में न्यूनतम आवश्यक स्तर से अधिक वृद्धि होने तक प्रतीक्षा नहीं कर सकता क्योंकि हो सकता है तब तक देश में **'जनसंख्या विस्फोट'** की स्थिति उत्पन्न हो जाए।

(3) **सीमित क्षेत्र** (Limited Scope)—प्रो. लेबेन्स्टीन ने राजकोषीय नीति, मौद्रिक नीति, विदेशी व्यापार व सहायता आदि नीतियों के विकास पर पड़ने वाले प्रभावों की उपेक्षा करके अपने मॉडल की व्यापकता को सीमित कर दिया है।

(4) **राज्य प्रयत्नों की उपेक्षा** (Neglect of State Efforts)—लेबेन्स्टीन ने जन्म-दर को कम करने में सरकार के प्रयत्नों की ओर कोई ध्यान नहीं दिया है। कोई भी अर्द्ध-विकसित देश इस बात की प्रतीक्षा नहीं कर सकता कि प्रति व्यक्ति आय न्यूनतम स्तर से अधिक हो, ताकि जन्म-दर अपने आप कम होनी शुरू हो जाए।

(5) **अवधि तत्व की उपेक्षा** (Neglect of Time Element)—यह सिद्धान्त अवधि तत्व पर ध्यान नहीं देता जो कि सतत् प्रयत्नों के लिए आवश्यक है।

(6) **प्रति व्यक्ति आय व विकास दर में जटिल सम्बन्ध** (Complex Relation between Per Capita Income and Growth Rate)—प्रो. मिन्ट का विचार है कि प्रति व्यक्ति आय के कुल स्तर व कुल आय में वृद्धि की दर के बीच फलनात्मक सम्बन्ध अपेक्षाकृत अधिक जटिल हैं और उतने सरल नहीं हैं जितने लेबेन्स्टीन ने प्रकट किए हैं।

(7) **अवास्तविक आधारभूत मान्यता** (Unreal Main Assumption)—**प्रो. मिन्ट** लेबेन्स्टीन की इस मान्यता से भी सहमत नहीं हैं कि यदि प्रारम्भिक विनियोग आवश्यक न्यूनतम आकार से कम हुआ तो जनसंख्या बढ़ जायेगी। उन्होंने कहा कि यह तो एक प्रकार से आय और जनसंख्या के मध्य प्रत्यक्ष सहसम्बन्ध स्थापित करने वाली बात है जिसे प्रयोगों द्वारा भी सिद्ध नहीं किया जा सकता।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

3. रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks)—

1. लेबेन्स्टीन का सिद्धांत ..... नियोजन से मेल खाता है।
2. लेबेन्स्टीन के अनुसार ..... आय के साथ-साथ बढ़ती है।
3. रोडन के विपरीत ..... पूँजी-गहन तकनीक के समर्थक हैं।
4. लेबेन्स्टीन का सिद्धान्त ..... तत्व पर ध्यान नहीं देता।

22.5 सारांश (Summary)

- अर्द्ध-विकसित देशों में निर्धनता का कुचक्र पाया जाता है जो उन्हें प्रति व्यक्ति आय सन्तुलन (Low Income Equilibrium) की स्थिति में बनाए रखता है।
- **प्रो. हार्वे लेबेन्स्टीन** ने अपनी पुस्तक *'Economic Backwardness and Economic Growth'* (1957) में अर्द्ध-विकसित देशों के सम्बन्ध में एक वाद या थिसिस को जन्म दिया है जिसे **'न्यूनतम आवश्यक प्रयत्नवाद'** कहते हैं।

नोट

- लेबेन्स्टीन के विचार में प्रत्येक अर्थव्यवस्था में एक ओर **'आय बढ़ाने वाले'** (Stimulants) और दूसरी **ओर, 'आय घटाने वाले'** (Shocks) अनेक घटक पाये जाते हैं।
- **लेबेन्स्टीन** का सिद्धान्त इस मान्यता पर आधारित है कि जनसंख्या वृद्धि की दर प्रति व्यक्ति आय के स्तर का फलन (Function) है और यह विकास की विभिन्न अवस्थाओं से सम्बन्धित है।
- जनसंख्या की इस ऊँची दर को नियन्त्रित करने और प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि करके जनसंख्या वृद्धि की दर को घटाने के लिए न्यूनतम आवश्यक प्रयत्नों की आवश्यकता है।
- निरन्तर आर्थिक विकास की स्थिति में अर्थव्यवस्था को पहुँचाने के लिए यह आवश्यक है कि प्रारम्भिक पूँजी विनियोग ही निश्चित न्यूनतम स्तर से अधिक हो जो स्वयं प्रेरित आय घटाने वाली शक्तियों पर काबू पाने योग्य प्रति व्यक्ति आय का उच्च स्तर प्रदान करे।
- लेबेन्स्टीन का सुझाव है कि यदि एक बार में अथवा एकमुश्त में विनियोजन न किया जा सके तो समयानुसार यह छोटी-छोटी किस्तों में भी किया जा सकता है।
- **लेबेन्स्टीन** यह मानते हैं कि एक बड़े इंजेक्शन के स्थान पर विनियोजन के छोटे-छोटे इंजेक्शन यदि उचित समय के अन्तर से लगाये जायें तो वे अधिक प्रभावशाली होंगे।
- लेबेन्स्टीन का मत है कि विकास, विकास के अभिकर्ता का कार्य है। विकास अभिकर्ता का अर्थ "जनसंख्या में निहित उन क्षमताओं से है जो विकास करती हैं।
- शून्य-राशि प्रेरणाओं में व्यक्तिगत लाभ कम व अधिक हो सकता है परन्तु सामाजिक लाभ नहीं होता।
- अर्द्ध-विकसित देशों में केवल प्रति व्यक्ति आय बढ़ने पर ही जन्म दर कम होगी अर्थात् पहले आर्थिक विकास होगा फिर जन्म दर घटेगी। **लेबेन्स्टीन** के शब्दों में, "बिना आर्थिक विकास के कोई भी प्रत्यक्ष तरीके जन्म दर नियन्त्रण में सफल नहीं हो सकते।
- **प्रो. लेबेन्स्टीन** ने **प्रो. कॉन** तथा **प्रो. नर्क्स** के विनियोजन सम्बन्धी मापदण्डों को स्वीकार नहीं किया है।
- **प्रो. लेबेन्स्टीन** का मत है कि न्यूनतम आवश्यक प्रयत्न सफलतम रूप से हो जाने के बाद सर्वांगीण विकास की स्थिति उत्पन्न होती है जिनका अन्तिम प्रभाव यह पड़ता है कि पूँजी-उत्पाद अनुपात में भी कमी आती है।
- आवश्यक न्यूनतम मात्रा के अनुरूप विनियोजन किये जाने की स्थिति में एक ओर आर्थिक विकास की गति में तेजी आती है और पूँजी-उत्पाद अनुपात में कमी आती है। ये दोनों बातें दीर्घकालीन विकास के क्षेत्र में महत्वपूर्ण हैं।
- रोडन के 'बड़े धक्के के सिद्धान्त' और लेबेन्स्टीन के 'न्यूनतम आवश्यक प्रयत्न सिद्धान्त' दोनों का ही उद्देश्य अर्द्ध-विकसित अर्थव्यवस्था को दरिद्रता के दुष्चक्र से निकालकर सतत् विकास के मार्ग पर लाना है।

22.6 शब्दकोश (Keywords)

- **अभिकर्ता–** संस्था की ओर से प्रतिनिधि के रूप में काम करने वाला, एजेंट।
- **विकासवर्द्धक–** विकास योग्य।

22.7 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. लेबेन्स्टीन के आवश्यक न्यूनतम प्रयास सिद्धान्त की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।
2. लेबेन्स्टीन न्यूनतम प्रयास का सिद्धान्त का वर्णन कीजिए। प्रबल प्रयास सिद्धान्त और इस सिद्धान्त में क्या अन्तर है?
3. आवश्यक न्यूनतम प्रयास विचारधारा की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए। विकास को अवरुद्ध करने वाली शक्तियों पर नियंत्रण कैसे प्राप्त किया जा सकता है? बतलाइये।

नोट

4. शून्य-राशि प्रेरणाएँ और धनात्मक राशि-प्रेरणाएँ की अवधारणाएँ स्पष्ट कीजिए।
5. जनसंख्या वृद्धि प्रति व्यक्ति आय का फलन है। स्पष्ट कीजिए।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

1.	1. सत्य	2. सत्य	3. असत्य	4. सत्य
	5. असत्य			
2.	1. (घ)	2. (ख)	3. (क)	4. (ख)
	5. (घ)			
3.	1. लोकतन्त्रात्मक	2. जनसंख्या	3. लेबेन्स्टीन	4. लेबेन्टीन

22.8 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. *संवृद्धि एवं विकास का अर्थशास्त्र*: डॉ. पी. मिश्रा; साहित्य भवन पब्लिकेशन्स : आगरा
2. *विकास नियोजन एवं नीतियाँ*: वी. सी सिन्हा: साहित्य भवन पब्लिकेशन्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.) लि. रजिस्टर्ड कार्यालय नई दिल्ली
3. *विकास का अर्थशास्त्र एवं आयोजन*: डा. एस. एल. डिंगल: वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा. लि.

नोट

इकाई–23: निम्न स्तरीय सन्तुलन अवरोध (पाश) (Low-Level Equilibrium Trap)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

23.1 नैल्सन का निम्न स्तरीय सन्तुलन अवरोध का सिद्धान्त (Nelson's Theory of Low-level Equilibrium)

23.2 नैल्सन का मॉडल (Nelson's Model)

23.3 नैल्सन मॉडल की व्याख्या (Explanation of Nelson's Model)

23.4 सारांश (Summary)

23.5 शब्दकोश (Keywords)

23.6 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

23.7 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- निम्न-स्तरीय सन्तुलन अवरोध (पाश) तथा निम्न-स्तरीय सन्तुलन अवरोध में सहायक तत्वों को समझने में।
- नैल्सन के मॉडल को जानने में।
- नैल्सन के मॉडल की व्याख्या करने में।

प्रस्तावना (Introduction)

(Low-level Equilibrium)–यह वह स्थिति है जिसमें बचत विनियोग की दर अत्यन्त ही कम होती है और प्रति व्यक्ति आय न्यूनतम जीवन निर्वाह स्तर पर होती है। यदि प्रति व्यक्ति आय बढ़ती भी है तो इससे जनसंख्या में वृद्धि भी प्रेरित होती है और अर्थव्यवस्था पुनः उसी न्यूनतम जीवन निर्वाह स्तर पर स्थापित हो जाती है।

23.1 नैल्सन का निम्न स्तरीय सन्तुलन अवरोध का सिद्धान्त (Nelson's Theory of Low-Level Equilibrium)

नैल्सन का सिद्धान्त लीबन्स्टीन के सिद्धान्त की ही भाँति माल्थस की इस परिकल्पना पर आधारित है कि एक देश में न्यूनतम जीवनयापन स्तर से प्रति व्यक्ति आय के अधिक हो जाने पर जनसंख्या में वृद्धि होती है जो प्रति व्यक्ति आय को पुनः पीछे ढकेल कर उसे आरम्भिक स्थिर सन्तुलन स्तर पर पहुँचा देती है और इस प्रकार अल्प-विकसित देशों की अर्थव्यवस्थाएँ **निम्न सन्तुलन पाश** के भँवर जाल में फँसकर रह जाती हैं।

नैल्सन ने यह प्रतिपादित किया है कि "इस निम्न सन्तुलन पाश से बाहर निकलने के लिए यह आवश्यक है कि **इतनी अधिक मात्रा में विनियोग किया जाय** कि प्रति व्यक्ति आय की वृद्धि दर जनसंख्या की वृद्धि दर को पीछे छोड़

नोट

दे क्योंकि प्रारम्भ में जब प्रति व्यक्ति आय जीवन निर्वाह स्तर स ऊपर उठती है तो उसके साथ जनसंख्या भी बढ़ती है, पद एक सीमा के बाद प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि होने पर जनसंख्या की वृद्धि दर में गिरावट होने लगती है।

आर. आर. नेल्सन ने अपना निम्न स्तरीय सन्तुलन अवरोध सिद्धान्त 1856 में अमेरिकन एकोनामिक रिब्यू में प्रकाशित अपने एक लेख *'A Theory of the Low-level Equilibrium Trap'* में प्रस्तुत किया। उन्होंने अर्द्ध-विकसित देशों के लिए निम्नस्तरीय सन्तुलन अवरोध सिद्धान्त विकसित किया। **लीबन्स्टीन** के आवश्यक न्यूनतम प्रयत्न सिद्धान्त की भाँति, नैल्सन का सिद्धान्त भी माल्थस की इस मान्यता पर आधारित है।

अर्द्ध-विकसित देशों की समस्याओं पर विचार करते हुए **नैल्सन** ने यह प्रतिपादित किया कि ये देश निम्न प्रति व्यक्ति आय के सन्तुलन पाश या जाल में जकड़े हुए हैं। ये देश अत्यन्त ही अल्प प्रति व्यक्ति आय स्तर पर, जो जीवन निर्वाह की आवश्यकता की पूर्ति के बराबर है या लगभग बराबर है, स्थिर साम्य या गतिहीनता की स्थिति में हैं। **स्थिर साम्य के हमारा अभिप्राय यह है कि यदि किसी प्रयास के कारण ये देश इस निम्न स्तरीय साम्य** (Low-level Equilibrium) से बाहर निकलते हैं तो इसी स्तर पर साम्य के पुनः स्थापित होने की प्रवृत्ति पायी जाती है।

इस निम्न स्तरीय साम्य की स्थिति में बचत तथा विनियोग की दर अत्यन्त ही कम होती है। यदि प्रति व्यक्ति आय को न्यूनतम जीवन निर्वाह स्तर से ऊपर उठाया भी जाता है तो इससे जनसंख्या में वृद्धि प्रेरित होती है। जनसंख्या में इस वृद्धि के कारण प्रति व्यक्ति आय में कमी आयेगी और अर्थव्यवस्था पुनः उसी न्यूनतम जीवन निर्वाह स्तर पर स्थापित हो जायेगी और इस प्रकार अर्थव्यवस्था निरन्तर रूप से निम्न प्रति व्यक्ति आय सन्तुलन जाल में फँसी रहती है।

नैल्सन ने यह प्रतिपादित किया है कि **"इस निम्न सन्तुलन पाश (अवरोध) से बाहर निकलने के लिए यह आवश्यक है कि इतनी अधिक मात्रा में विनियोग किया जाय कि प्रति व्यक्ति आय की वृद्धि दर जनसंख्या की वृद्धि दर को पीछे छोड़ दे क्योंकि प्रारम्भ में जब प्रति व्यक्ति आय जीवन निर्वाह स्तर से ऊपर उठती है तो उसके साथ जनसंख्या भी बढ़ती है, पर एक सीमा के बाद प्रति व्यक्ति आय में और वृद्धि होने पर जनसंख्या की वृद्धि दर में गिरावट होने लगती है।"**

टास्क आपकी राय में निम्न सन्तुलन पाश से बचने के क्या उपाय हो सकते हैं।

नम्न स्तरीय सन्तुलन अवरोध में सहायक तत्व

नैल्सन ने निम्नलिखित सामाजिक प्रौद्योगिक स्थितियों का उल्लेख किया है जो निम्न स्तरीय सन्तुलन अवरोध में सहायक होती हैं–

(*i*) **ऊँचा सह-सम्बन्ध** (High Co-relation)–नैल्सन का मत है कि अर्द्ध-विकसित देशों के पिछड़ेपन का कारण या इसके जाल में फँसे रहने का कारण प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि होने के कारण जनसंख्या में वृद्धि होना है। इस प्रकार इन दोनों में ऊँचा सह-सम्बन्ध होता है।

(*ii*) **विनियोग की नीची प्रवृत्ति** (Low Propensity to Investment)–अर्द्ध-विकसित देशों के पिछड़ेपन का कारण यह भी है कि यहाँ प्रति व्यक्ति आय में तो वृद्धि हो जाती है परन्तु वहाँ के लोग अपने जीवन निर्वाह को पूरा करने में ही समस्त आय को व्यय कर देते हैं। फलतः बचत होती ही नहीं। यदि थोड़ी-बहुत बचत होती भी है तो वहाँ के निवासियों में विनियोग करने की प्रवृत्ति बहुत कम होती है।

(*iii*) **भूमि की कमी** (Lack of Land)–अर्द्ध-विकसित देशों में आय का प्रमुख साधन कृषि ही होता है। इसलिए देश में उपलब्ध समस्त कृषि योग्य भूमि पर खेती कर ली जाती है। फलतः देश का आर्थिक विकास करने के लिए और उत्पादन बढ़ाने के लिए कृषि योग्य भूमि की कमी रहती है।

(*iv*) **उत्पादन के पुराने तरीके** (Old Technical of Production)–अर्द्ध-विकसित देश निम्न सन्तुलन जाल में इसलिए भी फँसे रहते हैं क्योंकि वहाँ उत्पादन की पुरानी तकनीकों का उपयोग किया जाता है जिससे वस्तुओं की उत्पादन लागत अधिक आती है।

नोट

(*v*) **अन्य कारण** (Other Factors) – अर्द्ध-विकसित देश का निम्न सन्तुलन जाल में रहने का कारण आर्थिक एवं सांस्कृतिक निष्क्रियताएँ भी हैं। सांस्कृतिक निष्क्रियता से आर्थिक निष्क्रियता और आर्थिक निष्क्रियता से सांस्कृतिक निष्क्रियता आती है। अर्द्ध-विकसित देशों के आर्थिक विकास के अध्ययन से पता चलता है कि ऊपर बतायी गयी स्थितियों की उपस्थिति के कारण अधिकांश अर्द्ध-विकसित देश निम्नस्तरीय सन्तुलन अवरोध में जकड़े हुए हैं।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

1. निम्नलिखित कथनों में सत्य असत्य की पहचान करें–

1. नैल्सन का निम्न स्तरीय सन्तुलन अवरोध सिद्धान्त (पाश सिद्धान्त) 1956 में अमेरिकन एकोनॉमिक रिब्यू में प्रकाशित हुआ था।
2. नैल्सन ने विकसित देशों के लिए निम्न-स्तरीय सन्तुलन अवरोध सिद्धान्त विकसित किया था।
3. निम्न-स्तरीय साम्य की स्थिति में बचत तथा विनियोग की दर काफी ज्यादा होती है।
4. नैल्सन का सिद्धान्त लोबेन्स्टीन के सिद्धान्त की भाँति माल्थस की परिकल्पना पर आधारित है।

23.2 नैल्सन का मॉडल (Nelson's Model)

नैल्सन मॉडल इस मान्यता पर आधारित है कि जनसंख्या की वृद्धि प्रति व्यक्ति आय तथा राष्ट्रीय आय की वृद्धि परस्पर आश्रित तथा सम्बन्धित हैं।

आय के निम्न स्तर पर किसी अर्थव्यवस्था का निम्न स्तरीय सन्तुलन अवरोध समझाने के लिए नैल्सन के सम्बन्धों के **तीन समुच्चय** (Sets) प्रयोग किये हैं :

1. जनसंख्या वृद्धि समीकरण (Population Growth Equation) – जनसंख्या वृद्धि का समीकरण वह समीकरण है जो स्पष्ट करता है कि नीची प्रति व्यक्ति आय वाले क्षेत्रों में जनसंख्या वृद्धि की दर dP/P में परिवर्तन मृत्यु-दर में परिवर्तनों के कारण होते हैं और मृत्यु-दर में परिवर्तन प्रति व्यक्ति आय के स्तर में परिवर्तनों के कारण होते हैं किन्तु जब प्रति व्यक्ति आय न्यूनतम जीवन निर्वाह स्तर से ऊपर पहुँच जाती है तो प्रति व्यक्ति आय की वृद्धि मृत्यु-दर को प्रभावित नहीं करती।

इस तथ्य को रेखाचित्र 5.1 की सहायता से दर्शाया गया है। चित्र में भाग (A) में :

(1) Y/P प्रति व्यक्ति आय के स्तर से सम्बन्ध रखता है जो कि क्षैतिज अक्ष पर मापी गयी और dP/P जनसंख्या वृद्धि की प्रतिशत दर है जो **अनुलम्ब अक्ष** पर मापी गयी है।

(2) क्षैतिज अक्ष S बिन्दु प्रति व्यक्ति आय का न्यूनतम जीवन निर्वाह-स्तर है जहाँ पर कि जनसंख्या का वृद्धि वक्र (dP/P) प्रति व्यक्ति आय के स्तर के बराबर है। इस स्तर पर जनसंख्या स्थिर है।

(3) S बिन्दु के बायीं ओर जनसंख्या घट रही है। यदि हम जनसंख्या के वृद्धि वक्र के साथ-साथ S से ऊपर की ओर चलें तो

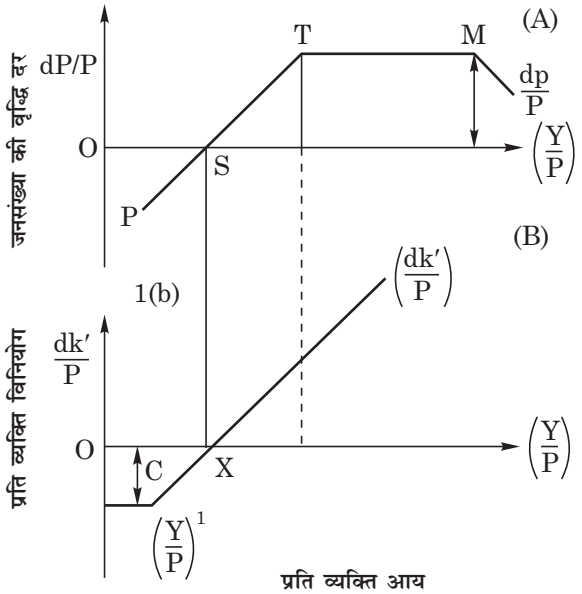

चित्र 23.1

नोट

न्यूनतम निर्वाह-स्तर से ऊपर प्रति व्यक्ति आय बढ़ने पर, जनसंख्या की वृद्धि-दर **"एक उच्च भौतिक सीमा"** T तक बढ़ती चलती है। कुछ समय तक, इस स्तर पर प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि के साथ-साथ जनसंख्या बढ़ेगी और फिर बिन्दु M से गिरना शुरू हो जायेगी अर्थात् उच्च प्रति व्यक्ति आय पर जनसंख्या की वृद्धि दर गिरेगी।

2. पूजी-निर्माण से सम्बन्धित समीकरण (Capital Formation Equation)—अर्थव्यवस्था में **पूँजी निर्माण** अथवा शुद्ध विनियोग (dk) बराबर होता है—

(i) बचत से निर्मित पूँजी (dk') तथा

(ii) कृषि के अन्तर्गत नयी भूमि की मात्रा (dr) अर्थात् $dk = dk' + dr$।

चूँकि जैसे-जैसे जनसंख्या में वृद्धि होती जाती है, नई भूमि जोत में आती है पर एक सीमा के बाद नयी भूमि में वृद्धि दुर्लभ हो जायेगी, इसलिए यह मान लिया गया है कि नयी भूमि पूँजी-निर्माण का स्रोत नहीं है, **पूँजी स्टॉक में वृद्धि बचत द्वारा ही होगी।** यह भी मान लिया गया है कि सभी बचत विनियोजित हो जायेगी। इस प्रकार :

पूँजी निर्माण में वृद्धि = बचत में वृद्धि = औद्योगिक क्षेत्र में विनियोग में वृद्धि।

जब तक आय जीवन निर्वाह स्तर से ऊपर नहीं हो जाती, विनियोग में कोई वृद्धि सम्भव नहीं होगी, इस बिन्दु के बाद विनियोग में वृद्धि प्रति व्यक्ति आय के साथ होती है। नैल्सन ने यह भी माना है कि अविनियोग (Disinvestment) की भी एक निचली सीमा है क्योंकि कोई कितना भी भूखा क्यों न हो, वह रेल या सड़क तोड़कर नहीं खायेगा। इसी तथ्य को चित्र 23.1 के भाग B में दर्शाया गया है। चित्र में :

(1) dK/P बचतों में से विनियोग की प्रति व्यक्ति दर है जो अनुलम्ब अक्ष पर मापी गयी है।

(2) वक्र dK/P विनियोग का वृद्धि वक्र है जो विनियोग की प्रति व्यक्ति दर को प्रति व्यक्ति आय के विभिन्न स्तरों से जोड़ता है। यह वक्र क्षैतिज अक्ष को X बिन्दु पर काटता है जो कि शून्य बचत का स्तर है।

(3) X बिन्दु के बायीं ओर विनियोग ऋणात्मक है। X शून्य बचत वाले आय स्तर को बतलाता है। जैसे-जैसे प्रति व्यक्ति आय बढ़ती है, विनियोग स्तर भी बढ़ता जाता है जिसकी कोई उच्चतम सीमा नहीं है।

नोट्स नैल्सन मॉडल इस मान्यता पर आधारित है कि जनसंख्या की वृद्धि प्रति व्यक्ति आय तथा राष्ट्रीय आय की वृद्धि परस्पर आश्रित तथा सम्बन्धित हैं।

3. आय-निर्धारण समीकरण (Income Determination Equation)—नैल्सन मॉडल का आय-निर्धारण समीकरण उत्पादन फलन की भाँति है जो इस मान्यता पर आधारित है कि आय या उत्पादन साधनों के रूप में आगतों का रैखिक सजातीय फलन है अर्थात् आय (Y) या उत्पादन (O) फलन है—पूँजी (K), श्रम (L) व प्रौद्योगिकी स्तर (T) का।

इस प्रकार : Y or O f (K L T) मॉडल की उपर्युक्त मान्यताओं के आधार पर 'आय-वृद्धि-वक्र' (Income Growth Curve) का निर्माण किया जा सकता है जिसका प्रदर्शन रेखाचित्र 23.2 में dY/Y वक्र के द्वारा किया गया है। S = X रेखाचित्र 23.1 से लिया गया है। इस स्थिति में जनसंख्या स्थिर है, बचत के द्वारा निर्मित प्रति

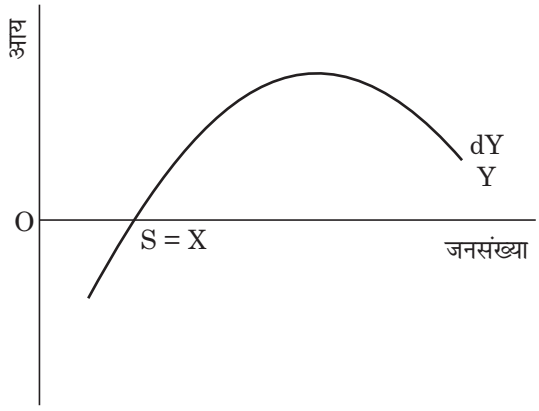

चित्र 23.2

नोट

व्यक्ति पूँजी शून्य है। फलस्वरूप आय की वृद्धि दर शून्य ($dY/Y = O$) है। स्थिर साम्य के स्तर के ऊपर प्रति व्यक्ति आय के वृद्धि के साथ प्रति व्यक्ति पूँजी की उपलब्धता तथा श्रम शक्ति की वृद्धि के कारण आर्थिक विकास की दर में वृद्धि होती है परन्तु प्रौद्योगिकी प्रगति के अभाव में **'परिवर्तनीय अनुपात नियम'** की क्रियाशीलता के कारण आर्थिक विकास की वृद्धि दर में गिरावट आयेगी।

उपर्युक्त तीनों समीकरणों को एक साथ समन्वित करके **नैल्सन** ने अपना मॉडल प्रस्तुत किया है जिसकी व्याख्या रेखाचित्र 23.3 के आधार पर की गयी है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

2. सही विकल्प चुनिए (Choose the Correct Option)–

1. निम्न स्तरीय सन्तुलन अवरोध के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है–
   (क) नैल्सन ने (ख) लीबन्स्टीन ने
   (ग) रोर्डन ने (घ) इनमें से कोई नहीं।
2. नैल्सन मॉडल में आय निर्धारण समीकरण में आय फलन है–
   (क) पूँजी का (ख) श्रम का
   (ग) तकनीकी स्तर का (घ) इनमें से कोई नहीं।
3. नैल्सन के मॉडल में फलनात्मक संबंध होता है–
   (क) प्रतिव्यक्ति आय स्तर व जनसंख्या की वृद्धि दर के बीच
   (ख) जनसंख्या की वृद्धि दर व कुल आय की वृद्धि दर के बीच
   (ग) प्रति व्यक्ति आय स्तर जनसंख्या की वृद्धि दर तथा कुल आय की वृद्धि के बीच
   (घ) इनमें से कोई नहीं।
4. नैल्सन का पूँजी निर्माण समीकरण निर्भर करता है–
   (क) शुद्ध विनियोग बचत से निर्मित पूँजी पर (ख) कृषि की भूमि की मात्रा पर
   (ग) उपयुक्त (*a*) और (*b*) दोनों (घ) इनमें से कोई नहीं।

23.3 नैल्सन मॉडल की व्याख्या (Explanation of Nelson's Model)

उपर्युक्त विवेचन में :

(*i*) जनसंख्या वृद्धि समीकरण बताता है कि उच्च प्रति व्यक्ति आय-स्तर पर जनसंख्या की वृद्धि दर गिरेगी।

(*ii*) **पूँजी-निर्माण** समीकरण बताता है कि शुद्ध विनियोग बचत से निर्मित पूँजी तथा कृषि के अन्तर्गत भूमि की मात्रा पर निर्भर करती है। चूँकि एक सीमा के बाद नयी वृद्धि दुर्लभ हो जाती है अत: **पूँजी स्टॉक** में वृद्धि केवल बचत द्वारा ही होती है।

(*iii*) आय, पूँजी स्टॉक, जनसंख्या परिणाम तथा प्रौघोगिकी स्तर का फलन है।

क्या आप जानते हैं

नैल्सन का सिद्धान्त जन्म दर कम करने के लिए सरकार द्वारा किये जा रहे जनसंख्या नियंत्रण प्रयासों की अवहेलना करता है।

उपर्युक्त तीनों समीकरणों तथा रेखा चित्र 23.1 व 23.2 से प्राप्त तीन वक्रों (अ) जनसंख्या वृद्धि वक्र (dP/P) (ब) प्रति व्यक्ति विनियोग वृद्धि दर (dk/P) तथा (स) आय वृद्धि दर (dY/Y) की सहायता से अपने मॉडल की व्याख्या

नोट

रेखाचित्र 23.3 की सहायता से किया है। चित्र 23.3 में :

(*i*) dY/Y आय वृद्धि दर वक्र है जिसे रेखाचित्र 23.2 से लिया गया है तथा (dP/P) वक्र जनसंख्या वृद्धि दर वक्र है जिसे रेखाचित्र 23.1 (*a*) से लिया गया है।

(*ii*) रेखाचित्र 23.1 (*b*) से X का स्तर लिया गया है जो सुविधा के लिए S के बराबर मान लिया गया है।

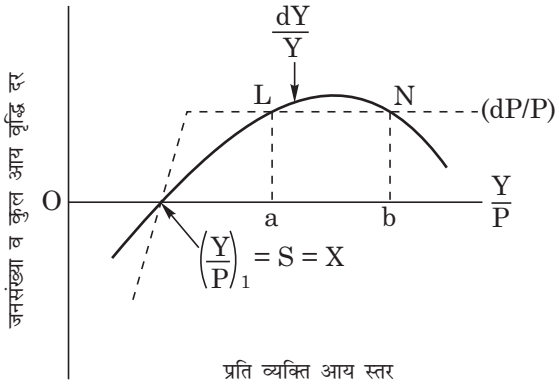

चित्र 23.3

(*iii*) रेखाचित्र 23.3 में S = X एक ऐसा बिन्दु है जिस पर प्रति व्यक्ति आय न्यूनतम जीवन निर्वाह स्तर के बराबर है जिस पर जनसंख्या की वृद्धि दर स्थिर है तथा दूसरी ओर, यह प्रदर्शित करता है कि इस बिन्दु पर प्रति व्यक्ति बचत तथा विनियोग शून्य है।

(*iv*) प्रति व्यक्ति आय के प्रत्येक स्तर पर जो जीवन-निर्वाह स्तर बिन्दु (S = X) तथा O*a* के बीच हो, जनसंख्या की वृद्धि दर आय की वृद्धि दर की अपेक्षा अधिक होगी इसके परिणामस्वरूप प्रति व्यक्ति आय में स्थायी रूप से गिरावट होगी और यह जीवन-निर्वाह स्तर पर पहुँच जायेगी। इस बिन्दु को **'अल्प सन्तुलन पाश बिन्दु'** या **'निम्न स्तरीय सन्तुलन में जकड़ा बिन्दु'** कहते हैं। प्रति व्यक्ति आय का कोई भी स्तर जो O*a* से कम हो, प्रति व्यक्ति आय को आवश्यक रूप से जीवन निर्वाह स्तर पर पहुँचा देगा।

(*v*) आय के वितरण में परिवर्तन लाने के लिए कदम उठाये जाने चाहिए, ताकि विनियोजक धन संचय कर सकें।

(*vi*) एक मापक सरकारी विनियोग कार्यक्रम होना चाहिए।

(*vii*) विदेशों से कोष प्राप्त करके आय तथा पूँजी बढ़ानी चाहिए।

अर्द्ध-विकसित देशों में निम्न स्तरीय सन्तुलन अवरोध से बचने के लिए यह आवश्यक है कि उपर्युक्त वर्णित उपायों को एक साथ अपनाया जाए, ताकि जनसंख्या की वृद्धि दर की तुलना में आय की वृद्धि दर अधिक हो सके। जब किसी निश्चित न्यूनतम प्रति व्यक्ति आय स्तर से ऊपर एक बार यह स्थिति उपलब्ध हो जायेगी तो सरकारी प्रयास के बिना भी तब तक सतत् विकास होता चला जायेगा जब तक कि प्रति व्यक्ति आय का एक नया उच्च स्तर नहीं आ जाता।

आलोचनाएँ (Criticisms)

(1) **समय तत्व की अवहेलना** (Time Element Ignored)—नैल्सन के सिद्धान्त की आलोचना करते हुए प्रो. मिण्ट ने यह आपत्ति उठायी कि प्रति व्यक्ति आय स्तर में थोड़ी-सी वृद्धि, जैसे—S से C, S बिन्दु पर पुनः स्थिर साम्य की स्थिति कायम तभी करेगी जबकि 'समय' को वक्र खींचते समय नहीं लिया गया हो, पर यदि 'समय' को लिया गया तो S से C पर परिवर्तन के साथ पूँजी स्टॉक में स्थायी वृद्धि हो जायेगी, ऐसी स्थिति में अर्थव्यवस्था फिर C से खिसककर S पर नहीं आयेगी।

(2) **फलनात्मक सम्बन्ध नहीं** (No Functional Relations)—प्रति व्यक्ति आय स्तर जनसंख्या की वृद्धि दर तथा कुल आय के वृद्धि दर के बीच नैल्सन ने फलनात्मक सम्बन्ध की बात की, पर मिण्ट के अनुसार इसके बीच इस प्रकार के निश्चित तथा कठोर फलनात्मक सम्बन्ध को खींचा नहीं जा सकता है।

(3) **अन्य आलोचनाएँ** (Other Criticisms)—

(*i*) यह सिद्धान्त जन्म-दर कम करने के लिए सरकार द्वारा किये जा रहे जनसंख्या नियन्त्रण प्रयासों की अवहेलना करता है।

(*ii*) यह सिद्धान्त अर्द्ध-विकसित देशों में बचत और विनियोग के स्तर पर विदेशी पूँजी के प्रभाव का विश्लेषण प्रस्तुत नहीं करता।

नोट

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

3. रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks)–

1. जनसंख्या वृद्धि समीकरण यह बताता है कि उच्च प्रति व्यक्ति आय स्तर पर ..... वृद्धि की दर गिरेगी।
2. S = X बिन्दु पर प्रति व्यक्ति आय ..... स्तर के बराबर होती है जहाँ पर जनसंख्या की वृद्धि दर स्थिर होती है।
3. आय व पूँजी बढ़ती है विदेशों से ..... प्राप्त करने पर।
4. अल्प सन्तुलन पाश बिन्दु को निम्न स्तरीय ..... में जकड़ा बिन्दु कहते हैं।

23.4 सारांश (Summary)

- (Low-level Equilibrium) – यह वह स्थिति है जिसमें बचत विनियोग की दर अत्यन्त ही कम होती है और प्रति व्यक्ति आय न्यूनतम जीवन निर्वाह स्तर पर होती है।
- नैल्सन का सिद्धान्त लीबन्स्टीन के सिद्धान्त की ही भाँति माल्थस की इस परिकल्पना पर आधारित है कि एक देश में न्यूनतम जीवनयापन स्तर से प्रति व्यक्ति आय के अधिक हो जाने पर जनसंख्या में वृद्धि होती है जो प्रति व्यक्ति आय को पुनः पीछे ढकेल कर उसे आरम्भिक स्थिर सन्तुलन स्तर पर पहुँचा देती है और इस प्रकार अल्प-विकसित देशों की अर्थव्यवस्थाएँ **निम्न सन्तुलन पाश** के भँवर जाल में फँसकर रह जाती हैं।
- **नैल्सन** ने यह प्रतिपादित किया है कि "इस निम्न सन्तुलन पाश से बाहर निकलने के लिए यह आवश्यक है कि **इतनी अधिक मात्रा में विनियोग किया जाय** कि प्रति व्यक्ति आय की वृद्धि दर जनसंख्या की वृद्धि दर को पीछे छोड़ दे।
- निम्न स्तरीय साम्य की स्थिति में बचत तथा विनियोग की दर अत्यन्त ही कम होती है। यदि प्रति व्यक्ति आय को न्यूनतम जीवन निर्वाह स्तर से ऊपर उठाया भी जाता है तो इससे जनसंख्या में वृद्धि प्रेरित होती है।
- अर्द्ध-विकसित देशों में आय का प्रमुख साधन कृषि ही होता है। इसलिए देश में उपलब्ध समस्त कृषि योग्य भूमि पर खेती कर ली जाती है।
- अर्द्ध-विकसित देश निम्न सन्तुलन जाल में इसलिए भी फँसे रहते हैं।
- नैल्सन का निम्न स्तरीय सन्तुलन अवरोध सिद्धान्त (पाश सिद्धान्त 1956 में अमेरिकन एकोनॉमिक रिब्यू में प्रकाशित हुआ था।
- आय के निम्न स्तर पर किसी अर्थव्यवस्था का निम्न स्तरीय सन्तुलन अवरोध समझाने के लिए नैल्सन के सम्बन्धों के **तीन समुच्चय** (Sets) प्रयोग किये हैं।
- जनसंख्या वृद्धि का समीकरण वह समीकरण है जो स्पष्ट करता है कि नीची प्रति व्यक्ति आय वाले क्षेत्रों में जनसंख्या वृद्धि की दर dP/P में परिवर्तन मृत्यु-दर में परिवर्तनों के कारण होते हैं और मृत्यु-दर में परिवर्तन प्रति व्यक्ति आय के स्तर में परिवर्तनों के कारण होते हैं।
- जब तक आय जीवन निर्वाह स्तर से ऊपर नहीं हो जाती, विनियोग में कोई वृद्धि सम्भव नहीं होगी, इस बिन्दु के बाद विनियोग में वृद्धि प्रति व्यक्ति आय के साथ होती है।
- स्थिर साम्य के स्तर के ऊपर प्रति व्यक्ति आय के वृद्धि के साथ प्रति व्यक्ति पूँजी की उपलब्धता तथा श्रम शक्ति की वृद्धि के कारण आर्थिक विकास की दर में वृद्धि होती है परन्तु प्रौद्योगिकी प्रगति के अभाव में **'परिवर्तनीय अनुपात नियम'** की क्रियाशीलता के कारण आर्थिक विकास की वृद्धि दर में गिरावट आयेगी।
- अर्द्ध-विकसित देशों में निम्न स्तरीय सन्तुलन अवरोध से बचने के लिए यह आवश्यक है कि उपर्युक्त वर्णित उपायों को एक साथ अपनाया जाए, ताकि जनसंख्या की वृद्धि दर की तुलना में आय की वृद्धि दर अधिक हो सके।

नोट

- यह सिद्धान्त जन्म-दर कम करने के लिए सरकार द्वारा किये जा रहे जनसंख्या नियन्त्रण प्रयासों की अवहेलना करता है।
- यह सिद्धान्त अर्द्ध-विकसित देशों में बचत और विनियोग के स्तर पर विदेशी पूँजी के प्रभाव का विश्लेषण प्रस्तुत नहीं करता।

23.5 शब्दकोश (Keywords)

- **पाश–** वह वस्तु जिसमें कोई वस्तु आदि फँसाई जा सके, बंधन।
- **समुच्चय–** समूह, राशि।

23.6 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. नैल्सन निम्न स्तरीय सन्तुलन अवरोध का सिद्धान्त लिखिए।
2. निम्न स्तरीय सन्तुलन अवरोध से क्या तात्पर्य है? अवरोध में सहायक तत्वों के नाम लिखिए।
3. नैल्सन मॉडल की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए तथा जनसंख्या वृद्धि के समीकरण को स्पष्ट कीजिए।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

1.	1. सत्य	2. असत्य	3. असत्य	4. सत्य
2.	1. (क)	2. (घ)	3. (ग)	4. (क)
3.	1. जनसंख्या	2. जीवन निर्वाह	3. आय	4. सन्तुलन

23.7 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. *संवृद्धि एवं विकास का अर्थशास्त्र*: डॉ. पी. मिश्रा; साहित्य भवन पब्लिकेशन्स : आगरा
2. *विकास नियोजन एवं नीतियाँ*: वी. सी सिन्हा: साहित्य भवन पब्लिकेशन्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.) लि. रजिस्टर्ड कार्यालय नई दिल्ली
3. *विकास का अर्थशास्त्र एवं आयोजन*: डा. एस. एल. डिंगल: वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा. लि.

नोट

इकाई–24: द्वैतवाद एवं निर्भरता का सिद्धान्त (Dualism and Dependency Theory)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

24.1 सामाजिक द्वैतवाद (Social Dualism)

24.2 प्रौद्योगिकीय द्वैतवाद (Technological Dualism)

24.3 निर्भरता का सिद्धांत (Dependency Theory)

24.4 मार्क्सवादी विचारधारा (The Marxian Concept)

24.5 मार्क्स का सिद्धांत तथा अल्पविकसित देश (The Marxian Theory and Under Developed Countries)

24.6 सारांश (Summary)

24.7 शब्दकोश (Keywords)

24.8 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

24.9 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- द्वैतवाद एवं निर्भरता सिद्धांत को समझने में।
- सामाजिक द्वैतवाद और प्रौद्योगिकीय द्वैतवाद को जानने में।
- मार्क्सवादी विचारधारा और अल्पविकसित देशों पर उसके प्रभाव की व्याख्या करने में।

प्रस्तावना (Introduction)

पहली प्रणाली पश्चिमी प्रभाव तथा देखरेख में होती है, जो उन्नत तकनीकों का प्रयोग करती है और जिसमें जीवन का औसत स्तर ऊँचा होता है। दूसरी स्वदेशी होती है जिसमें तकनीकी, आर्थिक तथा सामाजिक कल्याण के स्तर नीचे होते हैं। बूके इसे "सामाजिक द्वैतवाद" कहता है और इसकी परिभाषा यह देता है कि "यह एक आयातित सामाजिक प्रणाली की दूसरी ढंग की स्वदेशी सामाजिक प्रणाली से भिड़न्त है। प्रायः आयातित सामाजिक प्रणाली उच्च पूँजीवाद होती है। पर यह समाजवाद या साम्यवाद भी हो सकती है या फिर दोनों का मिश्रण भी।''

24.1 सामाजिक द्वैतवाद (Social Dualism)

हॉलैण्ड के अर्थशास्त्री **प्रोफेसर जे. एच. बूके** ने एक विशिष्ट सिद्धान्त[1] का प्रतिपादन किया, जो केवल अल्पविकसित देशों पर लागू होता है। उसका **"सामाजिक द्वैतवाद"** का सिद्धान्त अल्पविकसित देशों के आर्थिक तथा सामाजिक

नोट

विकास का सामान्य सिद्धान्त है, जो प्रमुख रूप से उनके इण्डोनेशियाई अर्थव्यवस्था के अध्ययनों पर आधारित है।

अर्थ (Meaning)**–डॉ. बूके** का कहना है कि आर्थिक दृष्टिकोण से किसी समाज की तीन विशिष्टताएँ होती हैं। वे ये हैं : **सामाजिक भावना, संगठनात्मक रूप** तथा उस पर छाई हुई **तकनीक**। इनकी परस्पर निर्भरता तथा परस्पर संबंध को **सामाजिक प्रणाली** या **सामाजिक ढंग** कहते हैं।

बूके ने "द्वैत समाज" शब्द "ऐसे समाजों" के लिए आरक्षित किया है, जो "दो समसामयिक तथा पूर्णत: विकसित सामाजिक प्रणालियों का स्पष्ट भाजन प्रकट करती है: जो (प्रणालियां) सजातीय समाजों के स्वाभाविक, ऐतिहासिक क्रम-विकास में संक्रमणकालीन रूपों द्वारा एक-दूसरी से अलग कर दी जाती हैं जैसाकि, उदाहरण के लिए, शुरू के पूँजीवाद द्वारा पूर्व-पूँजीवाद तथा उच्च पूँजीवाद।" उन्नत आयातित पश्चिमी प्रणाली तथा स्वदेशीय पूर्व-पूँजीवादी कृषि सम्बन्धी प्रणाली का पाया जाना इस प्रकार के द्वैत समाज की विशिष्टता होती है।

द्वैतीय समाज की विशिष्टताएं (Characteristics of Dualistic Society)–दो विरोधी सामाजिक प्रणालियों की आर्थिक अन्त:क्रियाओं के वर्णन तथा स्पष्टीकरण के लिए बूके ने "द्वैतीय समाज" का आर्थिक सिद्धान्त दिया है जिसे वह "द्वैतीय अर्थशास्त्र" या "पूर्वीय अर्थशास्त्र" की संज्ञा देता है। उसका सिद्धान्त अधिकतर इण्डोनेशियाई अनुभव पर आधारित है।

द्वैतीय अर्थव्यवस्था के **पूर्वीय क्षेत्र** की कुछ विशिष्टताएँ हैं, जो उसे पश्चिमी समाज से पृथक करती हैं। पूर्वीय समाज की आवश्यकताएँ सीमित होती हैं। यदि लोगों की तात्कालिक आवश्यकताएँ पूरी हो जाएँ तो वे संतुष्ट हो जाते हैं। "जब नारियल की कीमत अधिक हो जाती है, तो संभावनाएँ ये हैं कि थोड़ी वस्तुएँ विक्रय के लिए आएँगी; जब मजदूरी बढ़ाई जाती है तो संपदा का प्रबंधकर्ता यह जोखिम मोल लेता है कि पहले से थोड़ा काम होगा: यदि किसी कृषक के परिवार की आवश्यकताओं के लिए तीन एकड़ काफी हैं, तो वह छ: की काश्त नहीं करेगा; जब रबड़ की कीमतें गिरती हैं, तो वाटिका का मालिक वृक्षों को अधिक गहनता से उपयोग का निर्णय करता है, जबकि ऊँची कीमतों का मतलब है कि वह उपयोगिता वृक्षों के थोड़े बहुत भाग को बिना उपयोग के छोड़ देता है।" ऐसा इसलिए कि लोग आर्थिक की अपेक्षा सामाजिक आवश्यकताओं द्वारा अधिक प्रभावित होते हैं। वस्तुओं का मूल्यांकन प्रयोग-मूल्य की अपेक्षा प्रतिष्ठा-मूल्य के अनुसार होता है। इसलिए कोई आश्चर्य नहीं कि पीछे की ओर ढालू प्रयत्न तथा जोखिम का **पूर्ति वक्र** पूर्वीय अर्थव्यवस्था की विशिष्टता है।

स्वदेशी उद्योग लगभग संगठनरहित, पूँजीहीन, तकनीक की दृष्टि से विवश और मार्केट से अनभिज्ञ होता है। लोग लगातार लाभ देने वाले उद्योगों की अपेक्षा सट्टा-क्रियाओं में अधिक लगे रहते हैं। वे जोखिम वाले निवेशों में विश्वास नहीं करते। उनमें उस उपक्रम तथा संगठनात्मक कुशलता का अभाव होता है, जोकि द्वैत समाज के पश्चिमी क्षेत्र की विशेषता है। वे भाग्यवादी होते हैं और आधुनिक प्रौद्योगिकी का प्रयोग करने में झिझकते हैं। श्रम "असंगठित, निष्क्रिय, शान्त आकस्मिक" तथा अकुशल होता है। आप्रवासन तथा देश के भीतर एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश में जाना राज्य-हस्तक्षेप के माध्यम से होते हैं। देहाती जीवन की लागत पर शहरी विकास होता है।

पश्चिमी आर्थिक सिद्धान्त की द्वैतीय समाज में अप्रयोज्यता (Inapplicability of Western Economic Theory to Dualistic Society)–पूर्वीय समाज की ये महत्वपूर्ण विशिष्टताएँ पश्चिमी आर्थिक सिद्धान्त को अल्पविकसित देशों के लिए पूर्णतया अव्यवहार्य बना देती हैं। **बूके** के अनुसार, पश्चिमी आर्थिक सिद्धान्त पूँजीवादी समाज की व्याख्या के लिए है, जबकि पूर्वीय समाज पूर्व-पूँजीवादी है पहला, असीमित आवश्यकताओं मौद्रिक अर्थव्यवस्था तथा विभिन्न प्रकार के सहकारी संगठनों पर आधारित है। फिर, अल्पविकसित अर्थव्यवस्था में साधनों की अगतिशीलता के कारण, साधनों के विभाजन अथवा आय के वितरण की व्याख्या के लिए वितरण के सीमान्त उत्पादकता

---

1. J.H. Bocke, *Economics and Economic Policy of Dual Societies.* 1953 : "Three forms of Disintegration in Dual Societies." *Indonesia ,* April 1954 and "Western Infuence on the Growth of Eastern Population," *Economic Internazionale.* May 1954.

नोट

सिद्धान्त को लागू करना गलत है। इसलिए, **प्रोफेसर बूके** ने चेतावनी दी है कि "अच्छा यही है कि हम पश्चिमी सिद्धान्त के कोमल कमजोर, काँच-गृह के पौधों को उष्णदेशीय धरती में प्रतिरोपित करने का प्रयत्न न करें, जहाँ कि शीघ्र मृत्यु उनकी प्रतीक्षा करती है।" इस प्रकार, समस्त अर्थव्यवस्था पर एक ही नीति लागू करना संभव नहीं है क्योंकि जो एक समाज के लिए हितकर है, वह दूसरे के लिए अहितकर हो सकती है।

क्योंकि पूर्वीय अर्थव्यवस्थाओं की प्रकृति द्वैतीय होती है, इसलिए पश्चिमी ढंग से उनकी पूर्व-पूँजीवादी **कृषि के विकास** का प्रयत्न निष्फल ही नहीं होगा बल्कि ह्रास भी ला सकता है। आधुनिक कृषि तकनीकों का प्रचलन करने के लिए लोगों की मानसिक वृत्तियों में परिवर्तन आवश्यक है अन्यथा उनके परिणामस्वरूप होने वाली धन में वृद्धि, जनसंख्या में और वृद्धि लाएगी। फिर, यदि पश्चिमी प्रौद्योगिकी फेल हो जाए तो ऋणग्रस्तता बढ़ जाएगी। इसलिए उनकी वर्तमान कृषि-व्यवस्था को नहीं छेड़ना चाहिए क्योंकि उसमें सुधार कर सकना कठिन है।

औद्योगिक क्षेत्र में, पूर्वीय उत्पादक अपने को प्रौद्योगिकीय, आर्थिक अथवा सामाजिक रूप से अपने पश्चिमी प्रारूप के अनुकूल नहीं ढाल सकता। यदि पूर्वीय उत्पादक पश्चिम की नकल करेगा तो नुकसान उठाएगा। अपने तर्क की पुष्टि में **बूके** ने इण्डोनेशिया का उदाहरण दिया, जहाँ इण्डोनेशियाई अर्थव्यवस्था का औद्योगीकरण करने के लिए पश्चिमी प्रौद्योगिकी के अपनाने से आत्मनिर्भरता की मंजिल को और भी दूर कर दिया है तथा उसके छोटे उद्योगों का नाश किया है।

बूके अल्पविकसित देशों में **पाँच** प्रकार की **बेरोजगारी** की ओर संकेत करता है : "सामयिक (ऋतुकालिक), आकस्मिक, नियमित श्रमिकों की बेरोजगारी, बाबू लोगों की बेरोजगारी, तथा यूरेशियाइयों की बेरोजगारी। वह समझता है कि उन्हें दूर करना सरकार के बस की बात नहीं क्योंकि इससे जो वित्तीय भार पड़ेगा, वह सरकार के साधनों से अधिक होगा।"

अल्पविकसित देशों में सीमित आवश्यकताएँ तथा सीमित क्रय-शक्ति पूरे आर्थिक विकास में रुकावट पैदा करती है। खाद्य-पूर्ति अथवा उद्योग-वस्तुओं की वृद्धि मार्केट में पदार्थों की भरमार कर देगी जिससे बाद में कीमतों में कमी होगी और मंदी आएगी। इसका यह मतलब नहीं कि बूके पूरे के पूरे औद्योगीकरण और कृषि-सुधारों के विरुद्ध है बल्कि यह औद्योगिक तथा छोटे पैमाने पर कृषि-विकास की धीमी प्रक्रिया के पक्ष में है, जोकि पूर्वीय समाज के द्वैतीय ढाँचे के अनुकूल ढाल ली गई हो। विकास की प्रेरणा स्वयं लोगों के भीतर से आए। नए नेता प्रकट हों, जो आर्थिक विकास के लक्ष्य के लिए विश्वास, निष्कपटता और धैर्य से प्रयत्न करें।

टास्क पश्चिमी आर्थिक सिद्धांत की द्वैतीय समाज में अप्रयोज्यता के बारे में प्रो. बूके की चेतावनी का उल्लेख करें।

समीक्षात्मक मूल्यांकन (Critical Appraisal)

प्रोफेसर **बैनजेमिन हिग्गिन्ज** ने निम्नलिखित आधार लेकर **डॉ. बूके** के द्वैतीय विकास के सिद्धान्त की बहुत कड़ी आलोचना की है।

1. आवश्यकताएँ सीमित नहीं होतीं (Needs not limited)–स्वयं इण्डोनेशिया का अनुभव **डॉ. बूके** के इस कथन का समर्थन नहीं करता कि अल्पविकसित देशों में लोगों की आवश्यकताएँ सीमित होती हैं अथवा प्रयत्न तथा जोखिम का पूर्ति वक्र पीछे की ओर ढालू होता है। वहां सीमान्त उपभोग तथा आयात प्रवृत्तियां दोनों ही ऊंची हैं। लोगों की जरूरतें सीमान्त नहीं हैं बल्कि घरेलू तथा आयातित अर्द्ध-विलास वस्तुओं की बहुत माँग है। भारत में यदि अच्छी फसल हो जाए तो रेडियो, ट्रांजिस्टरों और घड़ियों आदि के आर्डरों की बाढ़ जा जाती है।

2. आकस्मिक श्रम असंगठित नहीं (Casual labour not unorganised)–**डॉ. बूके** का पूर्वीय आकस्मिक श्रमिक का असंगठित, निश्चेष्ट, शान्त तथा आकस्मिक बताना "इण्डोनेशिया और भारत में तथा अन्यत्र संगठित श्रम की बढ़ती

नोट

हुई शक्ति से मेल नहीं खाता।" इस प्रकार की अर्थव्यवस्थाओं में आकस्मिक श्रम कृषि में भले ही संगठित न हो परन्तु चाय, कॉफी तथा रबड़ बागान में ट्रेड यूनियन आन्दोलन प्रबलतम होता है।

3. पूर्वीय श्रम अगतिशील नहीं (Eastern labour not immobile)—**बूके** का यह विचार भी स्वीकार नहीं किया जा सकता कि पूर्वीय अर्थव्यवस्थाओं में लोग अपने ग्राम-समुदाय नहीं छोड़ना चाहते। वास्तव में अपने सिनेमा, दुकानों, होटलों, खेल प्रतियोगिताओं आदि के समस्त आकर्षणों से युक्त शहरी जीवन ने हमेशा देहाती क्षेत्रों से स्थानांतरण कराया है। बड़े-बड़े शहरों में जो भीड़भाड़ बेरोजगारी और अनुपयुक्त आधारभूत सुख-सुविधाएं मिलती हैं, वे इसी का परिणाम हैं। इसके अतिरिक्त आय प्रेरणा से भी श्रम एक बागान से दूसरे में और यहां तक कि आकस्मिक श्रम फसल के दिनों में देहाती क्षेत्रों में चले जाते हैं। प्रोफेसर हिग्गिन्ज़ लिखता है, "मुझे इसका कोई प्रमाण दिखाई नहीं देता कि पूर्वीय श्रम आन्तरिक रूप में पश्चिमी श्रम की अपेक्षा अधिक अगतिशील है।"

4. पूर्वीय अर्थव्यवस्थाओं की ही विशेषता नहीं (Not peculiar to eastern economies)—**बूके** अपने सामाजिक द्वैतवाद के सिद्धान्त को केवल पूर्वीय अर्थव्यवस्थाओं से सम्बद्ध करता है, पर स्वयं यह भी मानता है कि अफ्रीका और दक्षिण अमरीका की अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाओं में भी सामाजिक द्वैतवाद विद्यमान है। परन्तु यह अल्पविकसित क्षेत्रों की ही विशेषता नहीं है। इटली, कनाडा, और यहां तक कि संयुक्त राज्य अमरीका में भी यह मौजूद है बल्कि प्रत्येक अर्थव्यवस्था "प्रौद्योगिकीय उन्नति की विभिन्न कोटियों के अनुसार पृथक-पृथक क्षेत्रों में विभक्त की जा सकती है।"

5. पश्चिमी समाजों पर लागू (Applicable to western societies)—पूर्वीय समाज की जिन खास विशिष्टताओं का **डॉ. बूके** ने वर्णन किया है, उनमें से अनेक पश्चिमी समाजों पर भी लागू की जा सकती हैं। पश्चिमी अर्थव्यवस्थाओं में जब कभी दीर्घकालिक स्फीति आती या आने लगती है, तो लोग दीर्घकालीन निवेशों की अपेक्षा सट्टे-संबंधी लाभों को अधिमान देते हैं। **प्रोफेसर हिग्गिन्ज़** के अनुसार, "पश्चिमी अर्थशास्त्रियों ने 'तरलता अधिमान' तथा 'सुरक्षा अधि मान' से सम्बन्धित विश्लेषण के पूरे क्षेत्र का हाल ही में विकास किया है ताकि सारी दुनिया में निवेशकों के जोखिम या अतरलता उठाने की अनैच्छिकता और उनके पूँजी की सुरक्षित तथा सरल रूप में रखने के प्रबल अधिमान का हिसाब लगाया जा सके।"

प्रतिष्ठा-मूल्य (Prestige value)—**बूके** का यह कथन कि पूर्वीय अर्थव्यवस्थाओं में लोग वस्तुओं को उनके प्रयोग-मूल्य की अपेक्षा प्रतिष्ठा-मूल्य के कारण खरीदते हैं, पश्चिमी अर्थव्यवस्थाओं पर भी समान रूप से लागू होता है। यदि ऐसा न होता, तो वैब्लन (Veblen) अमरीकी समाज के लिए "प्रत्यक्ष उपभोग" शब्द न गढ़ता।

पीछे की ओर ढालू प्रयत्न का पूर्ति वक्र (Backward sloping supply curve of effort)—पीछे की ओर ढालू प्रयत्न का पूर्ति वक्र भी पूर्वीय अर्थव्यवस्थाओं की ही विलक्षणता नहीं है। आस्ट्रेलिया ने युद्धोत्तर काल में और संयुक्त राज्य अमरीका ने वर्तमान शताब्दी के पांचवें दशक के वर्षों में इसे अनुभव किया था। **प्रोफेसर हिग्गिन्ज़** का कथन है कि "पीछे की और ढालू यह पूर्ति वक्र किसी भी ऐसे समाज में प्रकट हो सकता है जो इस प्रयोजन से काफी देर के लिए मन्द गति हो जाता है कि उस प्रदर्शनकारी प्रभाव को क्षीण करे जो लोगों के, अतिरिक्त आय अर्जन में, विशिष्टतया उनके अपने अतिरिक्त प्रयत्नों के परिणामस्वरूप, जीवन के एक स्तर से दूसरे पर जाने की देन होता है।"

6. सिद्धान्त नहीं परंतु विवरण (Not a theory but description)—**बूके** अल्पविकसित देशों के लिए विशिष्ट आर्थिक तथा सामाजिक सिद्धान्त देने में विफल रहा है। उसका द्वैतीय सिद्धान्त पूर्वीय समाज का विवरण मात्र है जिसमें वह पूर्वीय समाज के उन विलक्षण तत्त्वों का प्रदर्शन करता है, जिनका पश्चिमी ढंग से विकास नहीं होना चाहिए। **बूके** का कथन है कि पश्चिमी आर्थिक सिद्धान्त पूर्वीय समाजों पर लागू नहीं होता। वह नवक्लासिकी सिद्धान्त पर आध ारित है जिसकी व्यवहार्यता पश्चिमी जगत में भी सीमित है।

7. पश्चिमी आर्थिक सिद्धान्त के औजारों का पूर्वीय समाजों में प्रयोग (Tools of western economic theory used in eastern societies)—मौद्रिक तथा राजकोषीय नीतियों के मूल में निहित पश्चिमी आर्थिक सिद्धान्त के कुछ

1. "The Dualistic Theory of Underdeveloped Areas", *Economic Development and Cultural Change,* January 1956.

नोट

औजार और भुगतान-शेष के असंतुलन को दूर करने वाले साधन थोड़े बहुत परिवर्तन के साथ पूर्वीय समाजों पर भी लागू होते हैं। **प्रोफेसर हिग्गिन्ज़** का विश्वास है कि "उपयुक्त संस्थानिक धारणाओं से परिभाषित मॉडल के भीतर आर्थिक तथा सामाजिक विश्लेषण के परिचित औजारों का व्यवहार करके" अल्पविकसित देशों की समस्या का हल ढूँढ़ा जा सकता है।

8. बेरोजगारी की समस्या का हल नहीं सुझाता (Does not provide solution to the problem of development)–**बूके** का द्वैतवाद आर्थिक की अपेक्षा सामाजिक-सांस्कृतिक पक्षों पर अधिक केन्द्रित है। वह विभिन्न प्रकार की बेरोजगारी को, सरकार के बस की बात नहीं मानता और अल्प-रोजगार की तो बात ही नहीं करता, जो घनी आबादी वाली अर्थव्यवस्थाओं की प्रमुख विशेषता है। बूके के द्वैतवाद में यह एक बड़ी कमी है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

1. रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks)–

1. अल्पविकसित देशों में सीमांत उपभोग तथा आयात प्रवृत्तियाँ दोनों ही ..... हैं।
2. बूके अपने सामाजिक द्वैतवाद के सिद्धांत को केवल ..... अर्थव्यवस्थाओं से सम्बद्ध करता है।
3. अमरीकी समाज के लिए वैब्लन ने ..... शब्द का प्रयोग किया है।
4. बूके के अनुसार, पश्चिमी आर्थिक सिद्धांत ..... सिद्धांत पर आधारित है।
5. बूके का द्वैतवाद आर्थिक की अपेक्षा ..... पक्षों पर अधिक केन्द्रित है।

निष्कर्ष (Conclusion)–वास्तव में द्वैतीय अर्थव्यवस्थाओं की बड़ी समस्या यह है कि वर्तमान तथा संभावित अल्प-विकसित श्रम-शक्ति को उचित रोजगार की सुविधाएँ प्रदान की जाएँ। इसी कारण प्रोफेसर **हिग्गिन्ज़** ने प्रौद्योगिकी द्वैतवाद का सिद्धान्त प्रतिपादित किया है, जो "दो क्षेत्रों में साधन-सम्पन्नताओं तथा उत्पादन फलनों में भेदों को 'प्रौद्योगिकीय द्वैतवाद' का आधार मानता है जिसका कि परिणाम यह हुआ है कि उत्पादन रोजगार के लिए अपर्याप्त संख्या में मार्ग पाए जाते हैं।" यह बूके की अपेक्षा अधिक यथार्थिक द्वैतीय सिद्धान्त है क्योंकि यह सिद्धान्त विकास के आदर्श पर द्वैतीय समाज के प्रभावों का विश्लेषण करता है।

नोट्स वह समाज सजातीय होता है जिसमें केवल एक सामाजिक प्रणाली पाई जाती हो। परन्तु किसी समाज में दो या अधिक प्रणालियाँ एक साथ विद्यमान हो सकती हैं। तब वह द्वैत या बहुसंख्यक समाज होता है।

24.2 प्रौद्योगिकीय द्वैतवाद (Technological Dualism)

बूके के सामाजिक द्वैतवाद के विकल्प के रूप में **प्रोफेसर हिग्गिन्ज़** ने प्रौद्योगिकीय द्वैतवाद का सिद्धान्त प्रतिपादित किया है। प्रौद्योगिकीय द्वैतवाद का अभिप्राय है **एक अल्पविकसित अर्थव्यवस्था के विकसित तथा परंपरागत क्षेत्रों में विभिन्न उत्पादन फलनों का प्रयोग।** इस प्रकार के द्वैतवाद ने औद्योगिक क्षेत्र में संरचनात्मक प्रौद्योगिकीय बेरोजगारी तथा देहाती क्षेत्र में अल्प-रोजगार की समस्या को बढ़ाया है। हिग्गिन्ज़ का प्रौद्योगिकीय द्वैतवाद का सिद्धान्त ऐकॉस (R. S. Eckaus) द्वारा विवेचित **साधन अनुपातों की समस्या** को शामिल करता है और उन सीमित उत्पादकीय रोजगार सुविधाओं से संबंध रखता है, जो मार्किट अपूर्णताओं, विभिन्न साधन-सम्पन्नताओं तथा उत्पादन फलनों के कारण अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाओं के दो क्षेत्रों में पाई जाती हैं।

वास्तव में, अल्पविकसित देशों की एक विशिष्टता **साधन स्तर पर संरचनात्मक असंतुलन** है। साधन स्तर पर असंतुलन या तो इस कारण उत्पन्न होता है कि एक एकल साधन विभिन्न प्रयोगों में विभिन्न प्रतिफल प्राप्त करता है या इसलिए

नोट

कि साधनों के बीच कीमत संबंध साधन प्राप्यताओं से मेल नहीं खाते। **डॉ. ऐकॉस**[1] के अनुसार, ऐसे असंतुलन से अल्पविकसित देशों में दो प्रकार से बेरोजगारी या अल्पबेरोजगारी होती है। **एक** कीमत प्रणाली में अपूर्णताओं या कु-कार्यकरण से। **दो**, वर्तमान प्रौद्योगिकी या माँग की संरचना में रुकावटें, जो अति जनसंख्या वाले पिछड़े हुए देशों में अतिरेक श्रम का कारण बनती हैं। अत: एक अल्पविकसित देश में संरचनात्मक बेरोजगारी का संबंध अतिरेक श्रम से होता है, जो साधनों के कुवितरण, माँग की संरचना और प्रौद्योगिकीय रुकावटों से उत्पन्न होता है।

हिग्गिन्ज़ ने **दो** वस्तुओं, उत्पादन के **दो** साधनों और **दो** क्षेत्रों के गिर्द उनके साधन संपन्नता तथा उत्पादन-फलनों से अपने सिद्धान्त का निर्माण किया है। **दो** क्षेत्रों में से, **औद्योगिक क्षेत्र** बागानों, खानों, तेल-क्षेत्रों, रिफाइनरियों या बड़े पैमाने के उद्योगों में प्रवृत्त रहता है। यह पूँजी-गहन होता है और तकनीकी गुणांक इसे विशिष्टता प्रदान करते हैं। दूसरे शब्दों में, साधनों की तकनीकी स्थानापन्नता नहीं होती और उन्हें स्थिर अनुपातों में मिलाया जाता है। **देहाती क्षेत्र** खाद्य वस्तुओं के उत्पादन, दस्तकारी या बहुत छोटे उद्योगों में प्रवृत्त रहता है। इसके उत्पादन के तकनीकी गुणक परिवर्ती होते हैं ताकि यह तकनीकों के विस्तृत क्षेत्र और श्रम तथा पूँजी (जिसमें सुधारी हुई भूमि भी शमिल है) के वैकल्पिक संयोगों से **एक** ही वस्तु का उत्पादन कर सके।

चित्र 24.1 में औद्योगिक क्षेत्र का उत्पादन-फलन व्यक्त किया गया है। श्रम की इकाइयाँ क्षैतिज अक्ष पर मापी गई हैं और पूँजी इकाइयाँ अनुलम्ब अक्ष पर। वक्र Q_1 सममात्रा वक्र है, जो पूँजी की OK तथा श्रम की OL मात्राओं के संयोगों को प्रकट करता है, जोकि उत्पादन के एक निश्चित स्तर का उत्पादन करते हैं वक्र $Q_2Q_3Q_4$ उत्पादन के अधिक ऊँचे स्तरों को प्रकट करते हैं जो तभी संभव होंगे जब उन्हीं अनुपातों में पूँजी तथा श्रम की इकाइयाँ बढ़ाई जाएँगी।

इस प्रकार, बिन्दु A, B, C, D पूँजी और श्रम के उन स्थिर संयोगों को प्रकट करते हैं जिनका उत्पादन के विभिन्न स्तरों $Q_1Q_2Q_3Q_4$ का उत्पादन करने के लिए प्रयोग होता है। इन बिन्दुओं को मिलाने वाली OE रेखा औद्योगिक क्षेत्र का विस्तार मार्ग है। इसकी ढलान दो साधनों के स्थिर अनुपातों को व्यक्त करती है। K_1L_1 रेखा यह स्पष्ट करती है कि उत्पादन क्रिया पूँजी-गहन दिए हुए उत्पादन को उत्पादित करने के लिए श्रम की सापेक्षता में अधिक पूँजी की जरूरत है। उत्पादन Q_1 के लिए पूँजी की OK इकाइयाँ और श्रम की OL इकाइयाँ प्रयोग होती हैं। पर, यदि वास्तविक साधन सम्पन्नता A की अपेक्षा S पर हो, इसका मतलब होगा कि उसी Q_1 उत्पादन के लिए अधिक श्रम इकाइयाँ (OL_1) उपलब्ध हैं, जबकि उपलब्ध पूँजी की इकाइयाँ उतनी (OK) ही रहती हैं। क्योंकि तकनीकी गुणक स्थिर हैं, इसलिए अतिरिक्त श्रम-पूर्ति का उत्पादन-तकनीकों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा और श्रम की LL_1 इकाइयाँ बेरोजगार रहेंगी। इस अतिरिक्त श्रम-पूर्ति को इस क्षेत्र में खपाना केवल तभी संभव होगा, जब पूँजी-स्टॉक बढ़कर SF हो जायेगा। अन्यथा इसे देहाती क्षेत्र में रोजगार खोजना पड़ेगा।

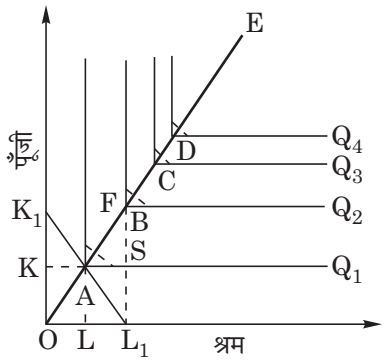

चित्र 24.1

पर वास्तविकता में, तकनीकी गुणक इतनी कठोरता से स्थिर नहीं होते बल्कि कुछ-कुछ लचीले होते हैं। सममात्रा वक्रों की बिन्दुकित वक्रता साधन-अनुपातों में थोड़े लचीलेपन की सम्भावनाओं को प्रकट करती हैं। यह साधन सम्पन्नताओं में बहुत थोड़े परिवर्तनों को प्रकट करती है जिनके लिए उद्यमी उत्पादन की तकनीकों में प्रचण्ड परिवर्तन नहीं करना चाहेंगे। इस प्रकार वे स्थिर तकनीकी गुणांक रखने को ही अधिमान देंगे।

कृषि क्षेत्र के लिए उत्पादन फलन चित्र 24.2 में दर्शाया गया है। सममात्रा वक्र $Q_1Q_2Q_3Q_4$ उत्पादन के परिवर्ती गुणांकों को व्यक्त करते हैं। अधिक उत्पादन करने के लिए पूँजी (सुधारी हुई भूमि) की सापेक्षता में अधिक श्रम लगाया गया है। अन्तत: अच्छी भूमि दुर्लभ हो जाती है तथा समस्त उपलब्ध भूमि अत्यधिक श्रम-गहन तकनीकों द्वारा बिन्दु E पर काश्त की जाती है जहाँ उत्पादन का अधिकतम स्तर Q_n प्राप्त हो जाता है।

1. R.S. Eskaus, "The factor Proportions Problem in Underdeveloped Areas." in Aggarwal and Singh *op. cit*

नोट

दो क्षेत्रों में विभिन्न उत्पादन फलनों के दिए हुए होने पर प्रोफेसर हिग्गिन्ज उस प्रक्रिया का विश्लेषण करता है जिसके परिणामस्वरूप प्रौद्योगिकीय द्वैतवाद ने द्वैतीय अर्थव्यवस्थाओं में बेरोजगारी और अदृश्य बेरोजगारी बढ़ाई है। दो क्षेत्रों में से, औद्योगिक क्षेत्र विदेशी पूँजी की सहायता से विकास तथा विस्तार करता है। इस प्रकार, औद्योगिक क्षेत्र में औद्योगीकरण के परिणामस्वरूप पूँजी-संचय की दर से बहुत अधिक जनसंख्या की वृद्धि हो जाती है। क्योंकि यह क्षेत्र पूँजी-गहन तकनीकों और स्थिर तकनीकी गुणकों का प्रयोग करता है, इसलिए यह उसी दर से रोजगार के अवसर उत्पन्न नहीं कर सकता जिससे जनसंख्या बढ़ती है। बल्कि यह भी हो सकता है कि औद्योगीकरण "उस क्षेत्र में कुल रोजगार के अनुपात में सापेक्ष कमी ला दे।" इस प्रकार, अतिरेक श्रम के पास इसके सिवाय कोई चारा नहीं कि वह देहाती क्षेत्र में रोजगार ढूँढ़ें।

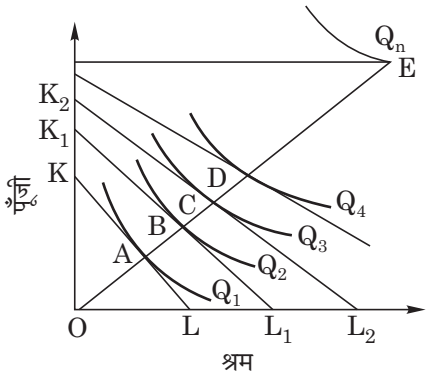

चित्र 24.2

विकास प्रक्रिया के प्रारम्भ होने से पहले, देहाती क्षेत्र में उत्पादन के साधनों की न तो प्रचुरता होती है और न ही दुर्लभता। शुरू में तो यह सम्भव है कि अधिक भूमि को काश्त में लाकर अतिरिक्त श्रम-शक्ति को खपा लिया जाए। इसके परिणामस्वरूप श्रम तथा पूँजी (सुधारी हुई भूमि) के अनुकूलतम संयोग बनते हैं क्योंकि उत्पादन बढ़ता है। उस क्षेत्र में श्रम का उपलब्ध पूँजी से अनुपात धीरे-धीरे बढ़ता जाता है और क्योंकि तकनीक गुणांक उपलब्ध है, इसलिए इस क्षेत्र में तकनीकें उत्तरोत्तर परिवर्ती बनती जाती हैं। उदाहरणार्थ, कई एशियाई देशों में परिवर्ती शुष्क धान खेती के स्थान पर जलयुक्त धान खेती स्थानापन्न कर दी गई है। अन्ततः बहुत ही अधिक श्रम-गहन तकनीकों द्वारा समस्त भूमि काश्त हो जाती है और श्रम की सीमान्त उत्पादकता गिरकर शून्य या शून्य से भी कम हो जाती है। इस प्रकार जनसंख्या की निरंतर वृद्धि होने पर, अदृश्य बेरोजगारी प्रकट होने लगती है। इन परिस्थितियों के अन्तर्गत, कृषकों के लिए कोई प्रेरणा नहीं होती कि वे अधिक पूँजी लगाएँ अथवा श्रम-बचत तकनीकें अपनाएँ। इसके अतिरिक्त न तो प्रति व्यक्ति उत्पादन बढ़ाने की कोई तकनीक उपलब्ध है और न ही श्रम की ओर से अपने आप उत्पादन बढ़ाने का कोई प्रोत्साहन होता है। परिणाम यह होता है कि देहाती क्षेत्र में उत्पादन की तकनीकें, श्रम-घण्टा उत्पादकता तथा सामाजार्थिक कल्याण एक निम्न स्तर पर रहते हैं।

दीर्घकाल में प्रौद्योगिकीय प्रगति अदृश्य बेरोजगारी को दूर करने में सहायक नहीं होती बल्कि उसे बढ़ाती है। प्रोफेसर **हिग्गिन्ज़** का कथन है कि पिछली दो शताब्दियों में देहाती क्षेत्र में बहुत थोड़ी या नहीं के बराबर प्रौद्योगिकीय प्रगति हुई है, जबकि औद्योगिक क्षेत्र में बहुत तीव्र प्रौद्योगिकीय प्रगति हुई है। इससे अदृश्य बेरोजगारों की संख्या बढ़ी है। ट्रेड यूनियन क्रियाओं अथवा सरकार की नीति के परिणामस्वरूप मजदूरी की कृत्रिम ऊँची दरों ने इस स्थिति को और भी गम्भीर बना दिया है। क्योंकि उत्पादकता की सापेक्षता में ऊँची औद्योगिक मजदूरी दरें उद्यमियों को इस बात के लिए प्रेरित करती हैं कि वे श्रम-बचत तकनीकें अपनाएँ, जिसका परिणाम यह होता है कि अतिरेक श्रम को खपा सकने की औद्योगिक क्षेत्र की क्षमता और भी कम हो जाती है। इसलिए ये साधन अल्पविकसित देशों में औद्योगिकीय द्वैतवाद की प्रवृत्ति बनाए रखते हैं।

समीक्षात्मक मूल्यांकन (Critical Appraisal)

प्रोफेसर हिग्गिन्ज़ ने आधुनिक तथा परम्परागत क्षेत्रों का ऐतिहासिक क्रम-विकास प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है जिसके कारण पहले क्षेत्र में धीरे-धीरे बेरोजगारी बढ़ती जाती है। प्रौद्योगिकीय द्वैतवाद बूके के सामाजिक द्वैतवाद से श्रेष्ठ प्रतीत होता है। यह यथार्थिक है क्योंकि यह इस बात पर विचार करता है कि द्वैतीय समाजों के देहाती क्षेत्र में अदृश्य बेरोजगारी धीरे-धीरे कैसे बढ़ती जाती है।

इसकी त्रुटियाँ (Its Defects)–फिर भी, इसमें कुछ त्रुटियाँ पाई जाती हैं।

1. औद्योगिक क्षेत्र में गुणांक स्थिर नहीं (Coefficients not fixed in industrial sector)–जहाँ देहाती क्षेत्र में परिवर्ती तकनीकी गुणांकों से उत्पादन हुआ है, वहाँ यह सन्देहास्पद है कि औद्योगिकीय क्षेत्र में उत्पादन वास्तव में स्थिर

नोट

गुणांकों से होता रहा है। बिना किसी प्रमाण के यह मानना सही नहीं कि औद्योगिक क्षेत्र में स्थिर तकनीकी गुणांक पाए जाते हैं।

2. श्रम खपाने वाली तकनीकों की अवहेलना (Neglects the use of labour absorbing techniques)– हिग्गिन्ज़ का यह कथन, कि औद्योगिक क्षेत्र में प्रायोग के लिए अत्यन्त पूँजी-गहन प्रक्रियाएँ आयात की जाती हैं, श्रम खपाने वाली अन्य तकनीकों के प्रयोग की पूर्णरूप से अवहेलना करता है। सब आयातित तकनीकें श्रम की बचत करने वाली नहीं होतीं। उदाहरणार्थ, जापान का कृषि विकास पूँजी-गहन तकनीकों के कारण नहीं हुआ है। बल्कि अच्छे बीजों, सुधारी हुई खेती के ढंगों, उर्वरकों के अधिक प्रयोग आदि के कारण हुआ है।

3. अदृश्य बेरोजगारी की प्रकृति एवं आकार को स्पष्ट नहीं किया (Nature and size of desguised unemployment not clarified)–हिग्गिन्ज़ देहाती क्षेत्र में अदृश्य बेरोजगारी की तथा औद्योगिक क्षेत्र में अतिरिक्त श्रम-पूर्ति की प्रकृति स्पष्ट नहीं करता और न ही वह प्रौद्योगिक द्वैतवाद से उत्पन्न होने वाली अदृश्य बेरोजगारी की वास्तविक सीमा की बात करती है।

4. साधन कीमतें साधन संपन्नताओं पर निर्भर नहीं करतीं (Factor prices do not depend upon factor endowments)–यह सिद्धान्त इस ओर संकेत करता है कि किस कारण साधन संपन्नताओं एवं विभिन्न उत्पादन फलनों ने देहाती क्षेत्र में अदृश्य बेरोजगारी को जन्म दिया है। यह साधन कीमतों के ढंग से महत्त्वपूर्ण तौर से संबद्ध है परन्तु साधन कीमतें बिल्कुल साधन संपन्नताओं पर ही निर्भर नहीं करतीं।

5. संस्थानिक साधनों की उपेक्षा (Neglect of institutional factors)–फिर, हिग्गिन्ज़ बहुत से संस्थानिक और मनोवैज्ञानिक तत्त्वों की उपेक्षा करता है, जो साधन अनुपातों को भी प्रभावित करते हैं।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

2. सही विकल्प चुनिए (Choose the correct option)–

1. प्रौद्योगिकी द्वैतवाद का सिद्धांत प्रतिपादित किया है–
   (क) डॉ. बूके ने (ख) प्रो. हिग्गिन्ज ने
   (ग) डॉ. एकॉस ने (घ) इनमें से कोई नहीं।
2. "अल्प विकसित देश में संरचनात्मक बेरोजगारी का सम्बंध अतिरेक श्रम से होता है" किसका कथन है–
   (क) डॉ. एकॉस (ख) डॉ. बूके
   (ग) हिग्गिन्ज (घ) मार्क्स।
3. परिवर्ती शुष्क धान खेती के स्थान पर जलयुक्त धान खेती स्थानापन्न कर दी गई–
   (क) अमरीकी देशों में (ख) अफ्रीकी देशों में
   (ग) एशियाई देशों में (घ) यूरोपीय देशों में।
4. जनसंख्या की निरन्तर वृद्धि होने पर बेरोजगारी उत्पन्न होती है–
   (क) प्रछन्न बेरोजगारी (ख) शिक्षित बेरोजगारी
   (ग) अशिक्षित बेरोजगारी (घ) अदृश्य बेरोजगारी।
5. दीर्घकाल में प्रौद्योगिकीय प्रगति अदृश्य बेरोजगारी को–
   (क) कम करती है (ख) बढ़ाती है
   (ग) स्थिर रखती है (घ) समाप्त करती है।

नोट

24.3 निर्भरता का सिद्धांत (Dependency Theory)

निर्भरता को राज्य के आर्थिक विकास के रूप में परिभाषित किया जा सकता है, कुछ बाहरी प्रभावों, राष्ट्रीय विकास नीतियों के आधार पर, जैसे–राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक। निर्भरता है] ..... एक ऐतिहासिक अवस्थिति जो विश्व अर्थव्यवस्था की संरचना को एक निश्चित आकार प्रदान करती है, जो कि अन्य को हानि पहुँचाने के लिए कुछ देशों का समर्थन करती है और अधीनस्थ अर्थव्यवस्थाओं की विकास संभावनाओं को कम करती है। एक ऐसी स्थिति जिसमें कुछ संगठित देशों की आर्थिक व्यवस्था अपने लाभ के लिए अन्य दूसरी अर्थव्यवस्थाओं का विकास एवं विस्तार करती है।

24.4 मार्क्सवादी विचारधारा (The Marxian Concept)

"मार्क्स ने आर्थिक विकास के सिद्धांत में तीन प्रसंगों में योगदान दिया, अर्थात इतिहास की आर्थिक व्याख्या प्रदान करने के विस्तृत प्रसंग में; पूँजीवादी विकास की प्रेरक शक्तियों को विशिष्टता प्रदान करने के संकुचित प्रसंग में; तथा योजनाबद्ध आर्थिक विकास का वैकल्पिक मार्ग सुझाने के अन्तिम प्रसंग में।"

इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या (Materialistic interpretation of history)–इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या यह स्पष्ट करने का प्रयत्न करती है कि समस्त ऐतिहासिक घटनाएँ समाज के भिन्न-भिन्न वर्गों तथा ग्रुपों के बीच लगातार आर्थिक संघर्ष का परिणाम है। इस संघर्ष का प्रमुख कारण है 'उत्पादन की विधि' (Mode of production) तथा 'उत्पादन के सम्बन्धों' (Relations of production) के बीच विरोध। उत्पादन की विधि समाज में उत्पादन के विशिष्ट प्रबन्ध की ओर संकेत करती है, जो जीवन के समस्त सामाजिक, राजनैतिक तथा धार्मिक ढंग को निर्धारित करती है। 'उत्पादन के सम्बन्ध' समाज के वर्ग-ढाँचे से सम्बन्ध रखते हैं। इन्हें निम्नलिखित अंश अद्वितीय विशिष्टता प्रदान करते हैं–(1) विभाजन तथा सहकारिता की स्कीम में श्रम का संगठन, श्रम की कुशलताओं तथा स्वतंत्रता या दासता की कोटियों (Degrees) वेऱ विषय में सामाजिक प्रसंग में श्रम का दर्जा; (2) भौगोलिक स्थिति और साधनों तथा पदार्थों के प्रयोग का ज्ञान; और (3) तकनीकी साधनों और प्रक्रियाओं तथा सामान्य रूप से विज्ञान की स्थिति।

मार्क्स के अनुसार, प्रत्येक समाज का वर्ग-ढाँचा सम्पत्तिवान तथा सम्पत्तिहीन वर्गों से बना होता है। क्योंकि उत्पादन की विधि में परिवर्तन हो सकता है, इसलिए समाज के विकास में एक ऐसी अवस्था आती है, जब उत्पादन की शक्तियाँ समाज के वर्ग-ढाँचे से टकराती हैं। वर्तमान सम्पत्ति सम्बन्ध उत्पादन की शक्तियों के लिए 'बेड़ियाँ बन जाते हैं।' इसके बाद 'सामाजिक क्रान्ति' का काल आता है। इसके परिणामस्वरूप वर्ग-संघर्ष (class struggle) होता है; संघर्ष–धनियों और निर्धनों के बीच–जो अन्त में समस्त सामाजिक प्रणाली को नष्ट-भ्रष्ट कर देता है।

अतिरेक मूल्य (Surplus value)–मार्क्स अपने अतिरेक मूल्य के सिद्धान्त का प्रयोग पूँजीवाद के अन्तर्गत 'वर्ग-संघर्ष' के आर्थिक आधार के रूप में करता है और इससे वह अपने आर्थिक विकास के विश्लेषण के ऊपरी ढाँचे का निर्माण करता है। वर्ग-संघर्ष केवल कुछ पूँजीपतियों के हाथों में अतिरेक मूल्य के संचय का परिणाम है। मार्क्स के अनुसार, पूँजीवाद दो महान प्रतिद्वंद्वियों में विभक्त होता है–श्रमिक, जो अपनी श्रम-शक्ति को बेचते हैं और पूँजीपति, जो 'उत्पादन के साधनों' के स्वामी होते हैं। पूँजीपति श्रमिकों को कच्चे माल, मशीन आदि देता है और वह वस्तुएँ बनाते हैं। जब निर्मित वस्तुएं बेची जाती हैं तो पूँजीपति यह पाता है कि मुद्रा की राशि जो उसको प्राप्त होती है वह खर्च की गई राशि से अधिक है। इसे इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है। एक पूँजीपति मार्किट में कुछ मुद्रा (M) लेकर आता है और उससे कच्चा माल, मशीनें, श्रम शक्ति आदि उत्पादन के साधन खरीदता है। इनसे वस्तु C का निर्माण होता है जिसे वह अधिक मुद्रा M^1 पर बेच देता है। इस प्रकार समीकरण होता है–M-C-M^1 जहाँ M से M^1 अधिक है। अत: M^1 और M का अन्तर अतिरेक मूल्य है। मार्क्स के अनुसार, इस अतिरेक मूल्य का कारण कच्चा माल, मशीनें आदि नहीं क्योंकि वे उत्पादन में जितना योगदान देते हैं उनके मूल्य से अधिक नहीं होता। इसलिए अतिरेक मूल्य केवल श्रमशक्ति से ही उत्पन्न होता है। श्रम-शक्ति किसी भी अन्य वस्तु की भाँति होती है। मजदूर अपने श्रम

नोट

को उतने में बेचता है जितने के बराबर वह श्रम मार्किट में होता है अर्थात् उसके मूल्य के बराबर और किसी भी अन्य वस्तु के मूल्य की भाँति, उसका मूल्य श्रम की वह मात्रा है जितनी श्रम-शक्ति के उत्पादन में लगती है। दूसरे शब्दों में, श्रम-शक्ति का मूल्य मजदूर को बनाए रखने के लिए आवश्यक निर्वाह के साधनों का मूल्य है, जो उसके उत्पादन के लिए आवश्यक घण्टों द्वारा निर्धारित होता है। मार्क्स के अनुसार, श्रम के निर्वाह के लिए आवश्यक वस्तुओं का मूल्य कभी उस श्रम के उत्पादन के मूल्य के बराबर नहीं होता। यदि एक मजदूर दस घण्टे रोज काम करता है, परन्तु उसे अपने निर्वाह के लिए पर्याप्त वस्तुओं के उत्पादन में छः घण्टे का श्रम लगता है तो उसे छः घण्टे के श्रम के बराबर मजदूरी का भुगतान किया जाएगा। चार घण्टे के श्रम के मूल्य का अन्तर शुद्ध लाभों, लगान तथा ब्याज के रूप में पूँजीपति की जेब में चला जाता है। मार्क्स इस बिना मजदूरी के काम को "अतिरेक मूल्य" कहता है। उस अतिरिक्त श्रम को, जो मजदूर करता है, परन्तु जिसके बदले उसे कुछ भुगतान नहीं किया जाता, मार्क्स उसे 'अतिरेक श्रम' कहता है।

क्या आप जानते हैं पूर्वीय समाज में विदेशी व्यापार का प्रमुख लक्ष्य निर्यात है जो पश्चिमी समाज के लक्ष्य से बिल्कुल भिन्न है, जहाँ वह आयात को संभव बनाने वाला साधन मात्र है।

पूँजी-संचय (Capital accumulation)—मार्क्स के अनुसार **अतिरेक श्रम** द्वारा ही पूँजी-संचय होता है। यह अतिरेक श्रम केवल पूँजीपति के लाभों को बढ़ाता है। पूँजीपति का प्रमुख उद्देश्य अतिरेक मूल्य को बढ़ाना होता है जिससे उसके लाभ बढ़ें। वह तीन प्रकार से अपने लाभों को अधिकतम बनाने का प्रयत्न करता है–

(1) अतिरेक श्रम के काम के घण्टों को बढ़ाने के लिए कार्यकारी दिन को लम्बा करके। यदि काम करने के घण्टे दस से बढ़ाकर बारह कर दिए जायें, तो अतिरेक अपने आप चार से बढ़कर छः हो जाएगा।

(2) मजदूर के निर्वाह के उत्पादन के लिए अपेक्षित घण्टों की संख्या घटाकर। यदि उन्हें छः से घटाकर चार कर दिया जाए तो अतिरेक फिर चार से बढ़कर छः हो जाएगा। यह निर्वाह-मजदूरी में कमी करने के भी बराबर है।

(3) 'श्रम के त्वरण' (speeding up of labour) द्वारा अर्थात श्रम की उत्पादकता बढ़ाकर। इसके लिए प्रौद्योगिकीय परिवर्तन या मशीनरी के अधिक प्रयोग की आवश्यकता होती है जो कुछ उत्पादन को बढ़ाने और उत्पादन की लागत घटाने में सहायता देता है। मार्क्स के अनुसार, मशीनरी के प्रयोग से औरतें और बच्चे भी काम पर लगाए जाते हैं जिससे पूँजीपति के लिए अतिरेक मूल्य बढ़ता है।

मार्क्स के अनुसार, संभावना यह है कि पूँजीपति इन तीनों तरीकों में से श्रम की उत्पादकता बढ़ाने का तरीका चुनेगा क्योंकि अन्य दोनों तरीकों की–कार्यकारी घण्टों के बढ़ाने और मजदूरी घटाने की–अपनी सीमाएँ हैं इसलिए श्रम की उत्पादकता में सुधार लाने के लिए पूँजीपति अतिरेक मूल्य की बचत करते हैं और पूँजी का बड़ा स्टॉक प्राप्त करने के लिए उसे पुनः निवेश करते हैं और इस प्रकार पूँजी-संचय करते हैं। मार्क्स के शब्दों में, "Accumulate, accumulate! that is Moses and the Prophets." और "Save, save, *i.e.*, reconvert the greatest possible portion of surplus value or surplus product into capital." पूँजीपति के यही आदर्श हैं।

पूँजी की मात्रा भी लाभों को निर्धारित करती है। जैसाकि मार्क्स का कहना है, "पूँजी वह मृत श्रम है, जो एक मांसखोर जन्तु की भांति जीवित श्रम का खून चूसकर ही जीवित रहती है और वह जितना अधिक श्रम को चूसती है उतना ही अधिक जीवित रहती है।" लाभ की उत्पत्ति को समझाने तथा मजदूरी एवं लाभ के सम्बन्ध का विश्लेषण करने के लिए मार्क्स ने पूँजी को 'स्थिर पूँजी' तथा 'परिवर्ती पूँजी' में विभक्त किया है। स्टॉकों या कच्चे माल या उपकरण में निवेश पूँजी को जो श्रम की उत्पादकता बढ़ाने में प्रत्यक्ष रूप से सहायक होती है, मार्क्स स्थिर पूँजी (c) कहता है। मजदूरी या प्रत्यक्ष निर्वाह के रूप में श्रम-शक्ति को खरीदने में लगी पूँजी को वह परिवर्ती पूँजी (v) कहता है। परिवर्ती पूँजी ही अतिरेक मूल्य का प्रमुख स्रोत है, जबकि मशीनों का मूल्य धीरे-धीरे वस्तु में चला जाता है। अतिरेक

नोट

मूल्य को s द्वारा दिखाया गया है। इस प्रकार वस्तु का कुल मूल्य = स्थिर पूँजी (c) + परिवर्ती पूँजी (v) + अतिरेक मूल्य (s), या $(c + v) + s$, स्थिर पूँजी का परिवर्ती पूँजी से अनुपात c/v 'पूँजी की संगठित संरचना' (organic composition of capital) कहा गया है। अतिरेक मूल्य की दर (शोषण की कोटि) (Degree of exploitation) को s/v के रूप में परिभाषित किया गया है अर्थात अतिरेक मूल्य का परिवर्ती पूँजी से अथवा लाभों का मजदूरी से अनुपात। इसके परिणामस्वरूप मार्क्स ने संकेत किया है कि लाभ की दर एकमात्र अतिरेक मूल्य की दर पर ही निर्भर नहीं है। यदि पूँजी की संगठित संरचना में परिवर्तन हो जाए तो लाभ की दर में परिवर्तन हो सकता है, भले ही अतिरेक मूल्य स्थिर रहे। लाभ की दर और पूँजी की संगठित संरचना का एक-दूसरे के साथ उलटा सम्बन्ध होता है। जब c/v बढ़ती है तो लाभ की दर (r) कम होती है और इसके उलटा तकनीकी प्रगति का प्रभाव सामान्य रूप से स्थिर पूँजी से परिवर्ती पूँजी का अनुपात बढ़ाने की दशा में पूँजी की संगठित संरचना को बदलने के लिए होता है। इसलिए प्रौद्योगिकीय प्रगति की प्रवृत्ति लाभ की दर (r) को घटाने की होती है क्योंकि c/v बढ़ती है, भले ही अतिरेक मूल्य की दर में कोई कमी न हो।

पूँजी-संचय का एक परिणाम यह होता है कि बड़े भारी उद्यमों में पूँजी का केन्द्रीकरण हो जाता है। पूँजीपतियों के बीच प्रतियोगिता उन्हें अपनी वस्तुएँ सस्ती करने पर विवश करती है। यह तब हो सकता है, जब श्रम की बचत करने वाली मशीनें लगाई जायें जिनसे श्रम उत्पादकता बढ़ती है। वे पूँजीपति, जो श्रम के स्थान पर मशीनों को स्थानापन्न नहीं कर पाते, बाहर धकेल दिये जाते हैं और बड़े पूँजीपति उनके उद्यमों को हथिया लेते हैं। पूँजी-संचय तथा संकेन्द्रण (concentration) स्थिर पूँजी में वृद्धि तथा परिवर्ती पूँजी में कमी लाते हैं। परिवर्ती पूँजी की तुलना में स्थिर पूँजी की तीव्र वृद्धि के परिणामस्वरूप श्रम के लिए माँग में सापेक्ष कमी हो जाती है। मशीनों द्वारा श्रम का स्थान हथिया लेने की इस प्रक्रिया से "औद्योगिक रक्षित सेना" (Industrial Reserve Army) उत्पन्न हो जाती है, जो पूँजीवाद के विकास के साथ-साथ बढ़ती जाती है। मार्क्स के अनुसार, "परन्तु सक्रिय श्रम सेना के अनुपात में यह रक्षित सेना जितनी अधिक होगी, उतना ही अधिक इकट्ठा अतिरेक जनसंख्या का समूह होगा जिसकी विपत्ति श्रम की यन्त्रणा के उलट अनुपात में होगी। पूँजीपति संचय का यह निरपेक्ष सामान्य नियम है।" औद्योगिक रक्षित सेना जितनी अधिक बड़ी होती है, रोजगार पर लगे श्रमिकों की स्थिति उतनी अधिक खराब होती है; पूँजीपति असन्तुष्ट तथा झगड़ालू श्रमिकों को हटा सकता है क्योंकि उनके स्थान पर वह रक्षित सेना में से नए श्रमिक लगा सकता है। पूँजीपति मजदूरी को घटाकर भुखमरी के स्तर तक भी ला सकते हैं और अधिकाधिक अतिरेक मूल्य का निवेश कर सकते हैं। यह पूँजीवाद के अन्तर्गत "जनसाधारण की बढ़ती विपत्ति का नियम" है। इसे चित्र 11.1 में दिखाया गया है जहाँ श्रम-शक्ति क्षैतिज अक्ष पर और मजदूरी दर अनुलम्ब अक्ष पर लिए गए हैं। D श्रम का माँग वक्र है तथा S श्रम का पूर्ति वक्र। OW मजदूरी दर पर औद्योगिक रक्षित सेना में RA (= LL_1) के बराबर वृद्धि होती है क्योंकि श्रम की पूर्ति श्रम की मांग से अधिक है। अत: औद्योगिक रक्षित सेना बढ़ती है तो पूँजीपति श्रम-बचतकारी मशीनें लगाना प्रारंभ कर देते हैं तथा मजदूरी दर को कम करके न्यूनतमक निर्वाह स्तर OM पर ले आते हैं ताकि वे अधिक अतिरेक मूल्य प्राप्त कर सकें। परन्तु जब पूँजीपति श्रमिकों के स्थान पर मशीनों को स्थानापन्न करता है तो वह सोने का अण्डा देने वाली मुर्गी का वध करता है। अतिरेक मूल्य लगातार घटता चला जाता है। मार्क्स का विश्वास है कि प्रौद्योगिकीय प्रगति से पूँजी की संगठित संरचना (c/v) बढ़ने लगती है। क्योंकि लाभों की दर का पूँजी की संगठित संरचना के साथ उलट सम्बन्ध है, इसलिए संचय के साथ लाभों की दर घटने लगती है। मार्क्स ने लाभों की घटती दर की इस प्रवृत्ति की व्याख्या निम्नलिखित समीकरण के द्वारा की है–

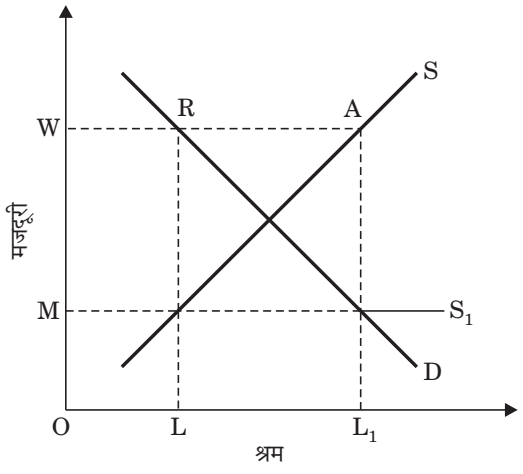

चित्र 24.3

नोट

$$r = \frac{s}{c+v} = \frac{s/v}{c/v+1}$$

लाभों की दर (r) पूँजी की संगठित संरचना (c/v) के साथ विपरीत बदलती है और अतिरेक मूल्य की दर (शोषण की दर s/v) के साथ सीधा बदलती है, इसलिए लाभों की दर (r) अतिरेक मूल्य की दर s/v के साथ बढ़ती और पूँजी की संगठित संरचना c/v के साथ गिरती है। हम मार्क्स के लाभों की घटती दर के नियम की व्याख्या करते हैं। मार्क्स यह मानकर चलता है कि ज्यों-ज्यों उद्यमी अधिक पूँजी लगाते हैं श्रम की पूर्ति को स्थिर रखते हैं। चित्र 24.4 में पूँजी की मात्रा को क्षैतिज अक्ष पर जबकि कुल उत्पादन को अनुलम्ब अक्ष पर दर्शाया गया है। कुल उत्पादन वक्र OP को प्रारंभिक बिन्दु से खींचा गया है जिसकी ढाल यह बताती है कि कुल उत्पादन बिन्दु A तक बढ़ती हुई दर से है और उसके पश्चात उत्पादन घटती हुई दर से बढ़ता है। दूसरे शब्दों में, अधिक पूँजी लगाने से तथा श्रम की पूर्ति स्थिर रख कर, घटता प्रतिफल नियम लागू होने लग जाता है। कुल मजदूरी OT के बराबर स्थिर मानी गई है और इसी कारण रेखा TW क्षैतिज अक्ष के समानान्तर खींची गई है जो कि यह बताती है कि अधिक पूँजी लगाने से श्रम की मात्रा स्थिर रहती है।

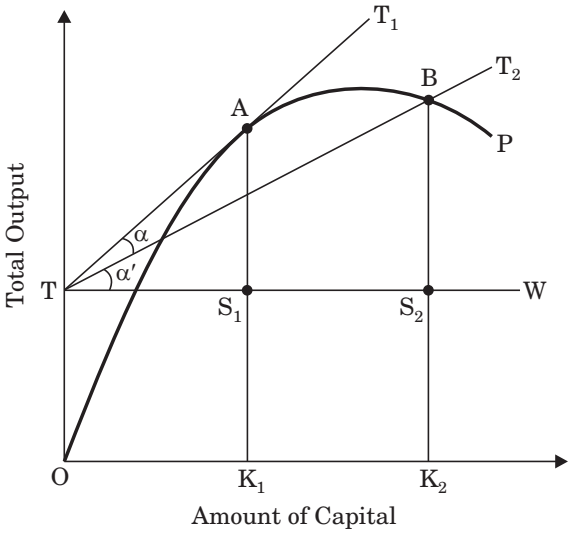

चित्र 24.4

बिन्दु T से एक रेखा TT_1 खींची गई है जो कि कुल उत्पादन वक्र OP को बिन्दु A पर स्पर्श करती है जबकि बिन्दु A से एक लम्ब AK_1 खींचा गया है जो रेखा TW का S_1 पर काटता है। इसी प्रकार, बिन्दु T से एक अन्य रेखा TT_2 खींची गई है जो कुल उत्पादन वक्र को बिन्दु B पर नीचे से काटती है और बिन्दु B से लम्ब BK_2 खींचा गया है जो रेखा TW को S_2 पर काटता है।

जब पूँजी की मात्रा OK_1 मशीनों पर लगाई जाती है तब कुल उत्पादन AK_1 के बराबर होता है और उद्यमियों को कुल लाभ AS_1 के बराबर प्राप्त होता है जबकि लाभ की दर, $\tan\alpha = AS_1/TS_1$ है। यदि उद्यमी लाभ को बढ़ाने की आशा से OK_1 से अधिक मात्रा पूँजी पर व्यय करते हैं तब लाभ की दर कम हो जाती है। स्पष्ट है कि OK_2 पूँजी लगाने से लाभ की दर $\tan\alpha' = BS_2/TS_2$ रह जाती है जो कि पहली लाभ की दर AS_1/TS_1 की अपेक्षा कम है। अत: अधिक पूँजी को मशीनों पर लगाने से लाभ की दर कम हो जाती है।

इस प्रकार, श्रम-शोषण की उतनी ही कोटि के साथ, अतिरेक मूल्य की उतनी ही दर, अपने लाभों को घटती दर में प्रकट करती है क्योंकि "जैसे-जैसे तकनीकी प्रगति सजीव श्रम के स्थान पर एकत्रित श्रम को स्थानापन्न करती जाएगी, वैसे-वैसे अतिरेक मूल्य की दी हुई दर द्वारा प्रदान की गई लाभों की दर जाएगी, अर्थात यदि सजीव श्रम की शोषण दर में तद्नुरूप वृद्धि नहीं होती तो लाभों की दर घटती जाएगी।"

पूँजीवादी संकट (Capitalist crisis)—लाभों की घटती दर की इसी प्रवृत्ति को समाप्त करने के लिए पूँजीपति मजदूरी घटाकर, कार्यकारी दिन को लम्बा करके और "त्वरण" (speed ups) इत्यादि के द्वारा शोषण की कोटि बढ़ाते हैं। परन्तु क्योंकि प्रत्येक पूँजीपति नई श्रम-बचत तथा लागत घटाने की युक्तियों का प्रचलन करने में लगा रहता है, इसलिए कुल उत्पादन से श्रम का (अत: अतिरेक मूल्य का) अनुपात और भी कम हो जाता है। लाभों की दर भी और घट जाती है। तब उत्पादन लाभदायक नहीं रह जाता। ज्यों-ज्यों मनुष्यों का स्थान मशीनें लेती हैं, त्यों-त्यों उपभोग कम होता जाता है और औद्योगिक रक्षित सेना बढ़ जाती है। दिवाले निकलते हैं। प्रत्येक पूँजीपति मार्किट में वस्तुओं के ढेर बेचने का प्रयत्न करता है और इस प्रक्रिया में छोटी फर्में गायब हो जाती हैं। पूँजीवादी संकट प्रारम्भ हो जाता है। मार्क्स

नोट

ने बाताया है कि समस्त आर्थिक संकट का कारण जन-साधारण की दरिद्रता तथा सीमित क्रय शक्ति है। वस्तुओं के अति उत्पादन, मार्किट खोजने में अत्यधिक कठिनाइयों, कीमतों में कमी और उत्पादन की तीव्र कटौती के रूप में आर्थिक संकट प्रकट होते हैं। संकट के समय में बेरोजगारी बहुत बढ़ जाती है, श्रमिकों की मजदूरी और घटा दी जाती है, ऋण की सुविधाएँ समाप्त हो जाती हैं और छोटे पूँजीपति तबाह हो जाते हैं।

ऐसा सदैव नहीं होता रहता। जल्दी ही पुन:प्रवर्तन (revival) प्रारम्भ हो जाता है। कीमतों का निम्न स्तर, मजदूरी में कटौती, सट्टा संकटों की समाप्ति तथा पूँजी की नाश लाभों की दर को बढ़ाने लगते हैं जिसके परिणामस्वरूप नए निवेश होते हैं जैसाकि मार्क्स ने लिखा है, "संकट सदा ही बड़े नए निवेशों का प्रारम्भ बिन्दु होता है। इसलिए समस्त समाज के दृष्टिकोण से संकट, थोड़ा-बहुत, अगले प्रस्थापित चक्र (Turnover cycle) का नया भौतिक आधार है।" परन्तु इसका वही विध्वंसात्मक परिणाम निकलता है: श्रम के लिए प्रतियोगिता; अधिक मजदूरी: श्रम: बचतकारी मशीनें; अतिरेक मूल्य में कमी; लाभ की दरों में कमी; और अधिक प्रतियोगिता तथा पतन। संकट से मन्दी और उसके बाद पुनरुत्थान तथा तेजी और फिर संकट का यह चक्र पूँजीवादी उत्पादन के विकास का साक्षी है।

संकट की प्रत्येक अवधि में अधिक शक्तिशाली पूँजीपति कमजोर पूँजीपतियों का अधिकार छीन लेते हैं और इसके साथ ही मजदूर वर्ग का क्रोध बढ़ता जाता है और तब अन्त में पूँजीवाद का **प्रलय का दिन** आ पहुँचता है जिसे सबसे अच्छे ढंग से मार्क्स के ही शब्दों में व्यक्त किया जा सकता है "रूपान्तरण की इस प्रक्रिया के लाभों को हड़पने और उन पर एकाधिकार जमाने वाले पूँजीपतियों की निरन्तर घटती संख्या के साथ-साथ जनसाधारण की विपत्ति, दमन, दास्ता, अपमान तथा शोषण बढ़ते जाते हैं, परन्तु इसके साथ ही मजदूर वर्ग का विद्रोह भी बढ़ता है, जोकि ऐसा वर्ग है जिसकी संख्या बढ़ती रहती है और जोकि स्वयं पूँजीवादी उत्पादन की प्रक्रिया के ही ढाँचे द्वारा अधिक अनुशासित, संयुक्त तथा संगठित होता है। पूँजी का एकाधिकार उत्पादन की विधि के लिए बन्धन बन जाता है। उत्पादन के साधनों का केन्द्रीकरण तथा श्रम का समाजीकरण अन्त में ऐसे बिन्दु पर पहुँच जाते हैं, जहाँ वे अपने पूँजीवादी आवरण के अनुरूप नहीं रहते। पूँजीवाद का पर्दाफाश हो जाता है। पूँजीवादी निजी सम्पत्ति के नाश के अशुभ सूचक घण्टे बज उठते हैं। अधिकार छीनने वालों के अपने ही अधिकार छिन जाते हैं।" पूँजीवादी संचय की यह ऐतिहासिक प्रवृत्ति है। पूँजीवादी संचय के सामान्य नियम की व्याख्या करने में मार्क्स ने पूँजीवादी से समाजवादी समाज में क्रान्तिकारी रूपान्तरण की आवश्यकता तथा अनिवार्यता की व्याख्या प्रदान की है। पूँजीवाद श्रमजीवी वर्ग (proletariat) ही क्रान्ति लाता है जिससे 'श्रमजीवी वर्ग की तानाशाही' (Dictatorship of the proletariat) स्थापित हो जाती है। दरिद्रता समाप्त हो जाएगी। राज्य 'नष्ट' हो जाएगा और प्रत्येक व्यक्ति अपनी योग्यता के अनुसार योगदान देगा तथा अपनी आवश्यकताओं के अनुसार ग्रहण करेगा। पूँजीवाद के स्थान पर समाजवाद आ जाएगा।

समीक्षात्मक टिप्पणी (Critical Appraisal)

मार्क्स के अनुयायी उसके पूँजीवादी विकास के सिद्धांत को बाइबिल के सत्य के समान मानते हैं, जबकि उसके विरोधियों ने उसके सिद्धांत की कड़ी आलोचना की है।

1. अतिरेक मूल्य अवास्तविक (Surplus value unrealistic)–मार्क्स का समस्त विश्लेषण अतिरेक मूल्य के सिद्धान्त पर निर्मित है। परन्तु वास्तविक जगत में हमारा संबंध मूल्यों से नहीं बल्कि वास्तविक व्यवहार्य कीमतों से रहता है। इस प्रकार मार्क्स ने एक निरपेक्ष अवास्तविक 'मूल्य-जगत' की सृष्टि की है जिसने पूँजीवाद के कार्यकरण को समझना कठिन तथा कष्टकर बना दिया है।

2. मार्क्स–झूठा पैगम्बर (Marx-a false prophet)–मार्क्स झूठा पैगम्बर सिद्ध हुआ है। इसमें सन्देह नहीं कि समाजवादी समाज का जन्म हुआ परन्तु उसका क्रमिक विकास मार्क्स के बताए हुए ढंग पर नहीं हुआ है। मार्क्स की विचारधारा का अनुकरण करने वाले आश्चर्यजनक रूप से वे देश रहे हैं जो पूँजीवादी विकास में बहुत पीछे थे। सब साम्यवादी राज्य द्ररिद्र थे और पूँजीवादी देशों की तुलना में आज भी दरिद्र हैं। मार्क्स का दावा सही नहीं है क्योंकि उन्नत पूँजीवादी समाजों में श्रम की बढ़ती विपत्ति कहीं नहीं है। इसके विपरीत, श्रमिकों की वास्तविक मजदूरी बढ़ती रही है। पूँजीवादी विकास के साथ श्रमिक अपेक्षाकृत अधिक सम्पन्न हुए हैं और मध्यवर्ग समाप्त होने की बजाय एक प्रबल वर्ग के रूप में प्रकट हुआ है। इन देशों में राज्य के 'नष्ट' होने के भी कोई चिन्ह नहीं रहे हैं।

नोट

3. प्रौद्योगिकीय प्रगति रोजगार बढ़ाने में सहायक (Technological progress helpful in increasing employment)—मार्क्स ने बताया था कि बढ़ती हुई प्रौद्योगिकीय प्रगति के साथ औद्योगिक रक्षित सेना बढ़ती है। परन्तु यह मत अतिशयोक्तिपूर्ण है क्योंकि प्रौद्योगिकीय प्रगति का दीर्घकालीन प्रभाव यह होता है कि कुल माँग तथा आय बढ़ाकर रोजगार के अपेक्षाकृत अधिक अवसर उत्पन्न किए जाएँ।

4. लाभों के घटने की प्रवृत्ति की व्याख्या सही नहीं (Falling tendency of profits not correct)—जोन रॉबिन्सन के अनुसार, मार्क्स की "लाभों के घटने की प्रवृत्ति की व्याख्या कुछ भी तो स्पष्ट नहीं करती।" मार्क्स का कहना है कि ज्यों-ज्यों विकास अग्रसर होता है त्यों-त्यों पूँजी की संगठित संरचना में वृद्धि होती है, जो लाभों की दर को घटा देती है। परन्तु मार्क्स यह समझाने में असमर्थ रहा कि प्रौद्योगिकीय नवप्रवर्तन पूँजी की बचत करने वाले भी हो सकते हैं, और पूँजी-उत्पादन अनुपातों में कमी तथा उत्पादकता में वृद्धि होने पर मजदूरी के साथ-साथ लाभ भी बढ़ सकते हैं।

5. मार्क्स पूँजीवाद के लचीलेपन को नहीं समझ सका (Marx could not understand flexibility in capitalism)—फिर मार्क्स यह भी नहीं भाँप सका कि पूँजी के पालक तथा संरक्षक के रूप में राजनैतिक प्रजातंत्रवाद प्रकट हो जाएगा। राजनैतिक व्यवस्था के रूप में प्रजातंत्रवाद ने बदलते हुए समय के अनुकूल अपनी अनुरूपता तथा लचीलापन सिद्ध कर दिया है। सामाजिक सुरक्षा उपायों, एकाधिकार विरोधी नियमों तथा मिश्रित अर्थव्यवस्थाओं के प्रचलन ने मार्क्स की भविष्यवाणी को गलत सिद्ध कर दिया है कि पूँजीवाद के अपने ही भीतर उसके अपने विनाश के बीज निहित हैं।

6. उसका चक्रीय सिद्धांत गलत है (His cyclical theory is wrong)—मार्क्स पहला व्यक्ति था जो 'चक्र' (cycle) को अपने विश्लेषणात्मक ढाँचे का अभिन्न अंग मानता था। उसने इस बात पर बल दिया कि पूँजी-संचय उपभोक्ता वस्तुओं के लिए माँग को घटाता और लाभों में कमी लाता है। परन्तु वह यह समझने में असमर्थ रहा कि आर्थिक विकास होने पर न तो कुल आय में मजदूरी का हिस्सा कम होना जरूरी है और न ही उपभोक्ता वस्तुओं के लिए माँग का।

7. स्थैतिक विश्लेषण (Static analysis)—यद्यपि उसने गत्यात्मक प्रक्रिया की व्याख्या करने का प्रयत्न किया, फिर भी शूम्पीटर के शब्दों में, उसका सिद्धान्त "इसके उपयुक्त नहीं है। इसकी दो प्रमुख प्रस्थापनाएँ ये हैं—(*i*) मूल्य का श्रम सिद्धान्त, और (*ii*) मजदूरी के निर्वाह-सिद्धान्त का परिष्कृत संस्करण। मार्क्स उन साधनों की सहायता से वृद्धि की समस्याओं का विश्लेषण कर रहा था, जो अनिवार्य रूप से स्थैतिक आर्थिक विश्लेषण के लिए उपयुक्त थे।"

सिद्धान्त के गुण (Merits of the Theory)

शूम्पीटर के अनुसार, "मार्क्स की सैद्धान्तिक दुर्वृत्तियों, दोषपूर्ण अथवा यहाँ तक कि अवैज्ञानिक विश्लेषण के बावजूद, वह पहला व्यक्ति था जिसने उस बात को समझा जो आज तक भी भविष्य का आर्थिक सिद्धान्त बना हुआ है, जिसके लिए हम पूरी तरह से और परिश्रम से पत्थर, चूना, सांख्यिकीय तथ्य और फलनात्मक समीकरण संजोने में लगे हुए हैं।" आर्थिक विकास के सिद्धान्त से संबंध रखने वाले कुछ साधन तब से ही आर्थिक वृद्धि के सिद्धान्त के अभिन्न अंग बने हुए हैं। प्रौद्योगिकीय प्रगति तथा नवप्रवर्तन आर्थिक विकास के सिद्धान्त के प्रमुख आधार हैं। इसी प्रकार पूँजी-संचय आर्थिक वृद्धि के पीछे आधारभूत विचार है। लाभों को आज भी पूँजीवादी विकास का प्रमाण चिह्न तथा महान कठिनाई माना जाता है। मार्क्स ने बताया कि आर्थिक विकास समतल मार्ग का अनुसरण नहीं करता बल्कि "रुक-रुक कर" होता है। व्यापार चक्र अनिवार्य है। उसने यह स्पष्ट किया कि अल्प-उपभोग मन्दी का प्रमुख कारण था और कि स्थिर वृद्धि के लिए निवेश तथा उपभोग के बीच संतुलन आवश्यक है। उसने यह भी बताया कि कुल उत्पादन, अनुपात में बहुत कम या बहुत अधिक मजदूरी, निवेश पर प्रतिकूल प्रभाव डाल सकती है और इस प्रकार आर्थिक वृद्धि का गला घोंट सकती है। उसकी प्रणाली में औद्योगिक बेरोजगार भी प्रमुख तत्त्वों में से एक है। इस प्रकार मार्क्स एक तरह से केन्ज का अग्रगामी है।

नोट

24.5 मार्क्स का सिद्धान्त तथा अल्पविकसित देश (The Marxian Theory and Under Developed Countries)

मार्क्स का सिद्धान्त प्रत्यक्ष रूप से अल्पविकसित देशों पर नहीं लागू होता। मार्क्स ने ऐसे देशों की समस्याओं के बारे में सोचा ही नहीं। "पश्चिमी एशिया अथवा भारत जैसे क्षेत्रों में आर्थिक विकास के लिए अपने निर्धारक संकेत के लिए प्रशंसनीय कुछ भ्रान्तियों को छोड़कर, अल्पविकसित देशों में परिवर्तन की समस्याओं की ओर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया जाता।" मार्क्स को प्रमुख रूप से पश्चिमी जगत में पूँजीवाद के विकास से संबद्ध समस्याओं से मतलब था। पूँजीवादी विकास में उपनिवेशों को 'उच्चतम अवस्थाओं' में से एक समझा जाता था। विदेशी शासन को उपनिवेशों के आर्थिक पिछड़ेपन का प्रधान कारण माना जाता था। स्पष्ट रूप से उनकी राजनैतिक स्वतंत्रता ही एकमात्र उपचार था।

जनसंख्या के दबावों के अस्तित्व को पहचानने को मार्क्स की असफलता ने उसके सिद्धान्त की अतिजनसंख्या वाले अल्पविकसित देशों के लिए अव्यवहार्य बना दिया। परन्तु उसके विश्लेषण के कुछ तत्त्व ऐसी अर्थव्यवस्थाओं में निश्चय ही पाये जाते हैं। हाल तक अल्पविकसित देशों में औपनिवेशिक शासन के अन्तर्गत, घरेलू देश के हित के लिए श्रम का शोषण किया जा रहा था। कुछ पूँजीपतियों के हाथों में पूँजी का संकेन्द्रण था। अब भी लगभग सभी अल्पविकसित देशों में, जो राजनैतिक रूप से स्वतंत्र भी हैं, मजदूरी निर्वाह-स्तर के निकट है, जनसाधारण की 'बढ़ती विपत्ति' के दृश्य हैं: चिरकालिक तथा अदृश्य बेरोजगारों की 'रक्षित सेना' मौजूद है, अल्प-उपभोग की समस्या व्यापक है और समाज स्पष्ट रूप से 'दो वर्गों में विभक्त' है और मध्यवर्ग वास्तव में, अस्तित्वहीन है। ऐसी परिस्थितियों में अस्तित्व से 'वर्ग-संघर्ष' छिड़ सकता है और 'श्रमजीवी एकाधिकार' की स्थापना हो सकती है। दक्षिण अमरीकी, अफ्रीकी, मध्य तथा दूर पूर्वी कुछ देशों की हाल की राजनैतिक हलचल ने सिद्ध कर दिया है कि पिछड़े हुए देशों में मार्क्सीय 'परिस्थितियों' का अस्तित्व नर्सरी के समान कार्य करता है, जहाँ साम्यवादी बीज शीघ्र उग जाता है। "पर, व्यंग्यात्मक ढंग से, लगता है कि मार्क्स की छोटी कृतियों में व्यक्त उसका योजनाबद्ध विकास के संबोधन ने रूस और चीन जैसे देशों की वास्तविक आर्थिक विकास पर गहरी छाप छोड़ी है। मार्क्स की योजनाबद्ध विकास विषयक धारणा उन पिछड़े देशों को भी बहुत आकर्षक प्रतीत होती है, जो राष्ट्र के अत्यधिक 'भूखे रह जाने' की जोखिम उठाकर भी औद्योगीकरण करने की जल्दी में हैं।"

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

3. निम्नलिखित कथनों में सत्य/असत्य की पहचान करें-

1. निर्भरता को राज्य के आर्थिक विकास के रूप में परिभाषित किया जा सकता है
2. उत्पादन की विधि समाज में उत्पन के निम्न प्रबंध की ओर संकेत करती है।
3. मार्क्स के अनुसार अतिरेक श्रम द्वारा ही पूँजी संजय होता है।
4. ज्यों-ज्यों मनुष्यों का स्थान मशीने लेती है त्यो-त्यों उपभोग कम हो जाता है।
5. मार्क्स ने एक सापेक्ष अवास्तविक 'मूल्य-जगत' की सृष्टि की है।

24.6 सारांश (Summary)

- बूके ने "द्वैत समाज" शब्द "ऐसे समाजों" के लिए आरक्षित किया है, जो "दो समसामयिक तथा पूर्णत: विकसित सामाजिक प्रणालियों का स्पष्ट भाजन प्रकट करती है।
- दो विरोधी सामाजिक प्रणालियों की आर्थिक अन्त:क्रियाओं के वर्णन तथा स्पष्टीकरण के लिए बूके ने "द्वैतीय समाज" का आर्थिक सिद्धान्त दिया है जिसे वह "द्वैतीय अर्थशास्त्र" या "पूर्वीय अर्थशास्त्र" की संज्ञा देता है।
- **प्रोफेसर बूके** ने चेतावनी दी है कि "अच्छा यही है कि हम पश्चिमी सिद्धान्त के कोमल कमजोर, काँच-गृह

नोट

के पौधों को उष्णदेशीय धरती में प्रतिरोपित करने का प्रयत्न न करें, जहाँ कि शीघ्र मृत्यु उनकी प्रतीक्षा करती है।" इस प्रकार, समस्त अर्थव्यवस्था पर एक ही नीति लागू करना संभव नहीं है क्योंकि जो एक समाज के लिए हितकर है, वह दूसरे के लिए अहितकर हो सकती है।

- प्रौद्योगिकी द्वैतवाद का सिद्धान्त प्रतिपादित किया है, जो "दो क्षेत्रों में साधन-सम्पन्नताओं तथा उत्पादन फलनों में भेदों को 'प्रौद्योगिकीय द्वैतवाद' का आधार मानता है जिसका कि परिणाम यह हुआ है कि उत्पादन रोजगार के लिए अपर्याप्त संख्या में मार्ग पाए जाते हैं।"
- **एक अल्पविकसित अर्थव्यवस्था के विकसित तथा परंपरागत क्षेत्रों में विभिन्न उत्पादन फलनों का प्रयोग।** इस प्रकार के द्वैतवाद ने औद्योगिक क्षेत्र में संरचनात्मक प्रौद्योगिकीय बेरोजगारी तथा देहाती क्षेत्र में अल्प-रोजगार की समस्या को बढ़ाया है।
- दो क्षेत्रों में विभिन्न उत्पादन फलनों के दिए हुए होने पर **प्रोफेसर हिग्गिन्ज** उस प्रक्रिया का विश्लेषण करता है जिसके परिणामस्वरूप प्रौद्योगिकीय द्वैतवाद ने द्वैतीय अर्थव्यवस्थाओं में बेरोजगारी और अदृश्य बेरोजगारी बढ़ाई है।
- निर्भरता को राज्य के आर्थिक विकास के रूप में परिभाषित किया जा सकता है, कुछ बाहरी प्रभावों, राष्ट्रीय विकास नीतियों के आधार पर, जैसे–राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक।
- "मार्क्स ने आर्थिक विकास के सिद्धांत में तीन प्रसंगों में योगदान दिया, अर्थात इतिहास की आर्थिक व्याख्या प्रदान करने के विस्तृत प्रसंग में; पूँजीवादी विकास की प्रेरक शक्तियों को विशिष्टता प्रदान करने के संकुचित प्रसंग में तथा योजनाबद्ध आर्थिक विकास का वैकल्पिक मार्ग सुझाने के अन्तिम प्रसंग में।"
- मार्क्स अपने अतिरेक मूल्य के सिद्धान्त का प्रयोग पूँजीवाद के अन्तर्गत 'वर्ग-संघर्ष' के आर्थिक आधार के रूप में करता है और इससे वह अपने आर्थिक विकास के विश्लेषण के ऊपरी ढाँचे का निर्माण करता है।
- मार्क्स के अनुसार **अतिरेक श्रम** द्वारा ही पूँजी-संचय होता है। यह अतिरेक श्रम केवल पूँजीपति के लाभों को बढ़ाता है। पूँजीपति का प्रमुख उद्देश्य अतिरेक मूल्य को बढ़ाना होता है जिससे उसके लाभ बढ़ें।
- संकट की प्रत्येक अवधि में अधिक शक्तिशाली पूँजीपति कमजोर पूँजीपतियों का अधिकार छीन लेते हैं और इसके साथ ही मजदूर वर्ग का क्रोध बढ़ता जाता है। और तब अन्त में पूँजीवाद का **प्रलय का दिन** आ पहुँचता है जिसे सबसे अच्छे ढंग से मार्क्स के ही शब्दों में व्यक्त किया जा सकता है।

24.7 शब्दकोश (Keywords)

- **अतिरेक–** बढ़ोतरी।
- **दुर्वृत्तियों–** बुरा आचरण।

24.8 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. डॉ. बूके का सामाजिक द्वैतवाद क्या है? विश्लेषणात्मक विवेचन कीजिए।
2. प्रो. हिग्गिन्ज के प्रौद्योगिकीय द्वैतवाद का विवेचन कीजिए।
3. निर्भरता के सिद्धांत से आप क्या समझते हैं? इसके मार्क्सवादी विचारधारा का विवेचन करें।
4. मार्क्स के सिद्धांत का अल्पविकसित देशों के संदर्भ में व्याख्या करें।
5. प्रौद्योगिकीय द्वैतवाद का समीक्षात्मक वर्णन करें।

नोट

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

1.	1. ऊँची	2. अल्पविकसित	3. "प्रत्यक्ष उपभोग"	4. नवक्लासिकी	
	5. सामाजिक-सांस्कृतिक।				
2.	1. (ख)	2. (क)	3. (ग)	4. (घ)	
	5. (ख)				
3.	1. सत्य	2. असत्य	3. सत्य	4. असत्य	
	5. असत्य				

24.9 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. *विकास का अर्थशास्त्र एवं आयोजन*: डॉ. एम. एल. झिंगन: वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा. लि.
2. *संवृद्धि एवं विकास का अर्थशास्त्र*: डॉ जे. पी मिश्रा: साहित्य भवन पब्लिकेशन्स एवं डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.) लि. रजिस्टर्ड कार्यालय नई दिल्ली

नोट

इकाई–25: विकास के सिद्धांत: विकास का क्लासिकी सिद्धान्त (Theories of Development: Classical Theory of Development)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

25.1 अबंध नीति (Laissez Faire Policy)

25.2 समीक्षात्मक टिप्पणी (Critical Appraisal)

25.3 सारांश (Summary)

25.4 शब्दकोश (Keywords)

25.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

25.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- विकास के क्लासिकी सिद्धांत को समझने में।
- विकास के क्लासिकी सिद्धांत के अंतर्गत अबंध नीति को जानने में।

प्रस्तावना (Introduction)

सभी क्लासिकी अर्थशास्त्री पूँजी-संचय की प्रक्रिया के अन्त में स्थिर अवस्था को देखते हैं। उनके अनुसार जब लाभ एक बार घटना प्रारम्भ करते हैं तो यह क्रम लगातार चलता रहता है, जब तक कि अर्थव्यवस्था में लाभ शून्य नहीं हो जाते, जनसंख्या में वृद्धि रुक नहीं जाती, पूँजी-संचय बन्द नहीं हो जाता और मजदूरी दर निर्वाह-स्तर पर पहुँच नहीं जाती। माल्थस ने जनसंख्या वृद्धि तथा खाद्य पूर्ति के बीच एक निराले परस्पर संबंध की स्थापना की। उसके अनुसार यदि जनसंख्या की वृद्धि अनियंत्रित छोड़ दी जाए, तो वह पूँजी की वृद्धि और परिणामस्वरूप निर्वाह के साधनों को पीछे छोड़ जाएगी। रिकार्डो तथा माल्थस दोनों यह मानते थे कि घटते प्रतिफल के नियम के कार्यकरण के माध्यम से बढ़ती जनसंख्या तथा घटती पूँजी-वृद्धि आर्थिक विकास में चरम बाधाएँ हैं। इनसे ही अर्थव्यवस्था में स्थिर अवस्था आती है।

25.1 अबंध नीति (Laissez Faire Policy)

अबंध नीति (Laissez faire policy)-क्लासिकी अर्थशास्त्री मुक्त बाजार पूर्ण प्रतियोगिता तथा अपने-आप चलने वाली अर्थव्यवस्था में विश्वास रखते थे जिसमें किसी प्रकार का सरकारी हस्तक्षेप मान्य नहीं। 'अदृश्य हाथ' ही राष्ट्रीय आय को अधिकतम बनाता है।

नोट

पूँजी-संचय आर्थिक विकास की कुंजी (Capital accumulation the key to progress)-सभी क्लासिकी अर्थशास्त्री पूँजी-संचय को आर्थिक विकास की कुंजी मानते हैं। इसके लिए वे अधिक बचत करने पर जोर देते हैं। वे केवल पूँजीपति तथा भूमिपति को ही बचत करने के योग्य समझते हैं। श्रमिक वर्ग बचत करने में असमर्थ समझा जाता है क्योंकि उसे निर्वाह-स्तर के बराबर ही मजदूरी मिलती है।

लाभ निवेश की प्रेरणा (Profit the incentive to investment)-इन अर्थशास्त्रियों के अनुसार लाभ निवेश को प्रेरित करता है। लाभ जितने अधिक होंगे, पूँजी-संचय तथा निवेश उतना ही अधिक होगा।

क्या आप जानते हैं लाभ जितने अधिक होंगे, पूँजी-संचय तथा निवेश उतना ही अधिक होगा।

लाभ घटने की प्रवृत्ति (Tendency of profit to decline)-लाभ लगातार बढ़ते नहीं रहते बल्कि पूँजीपतियों में जब अधिक पूँजी-संचय के लिए प्रतियोगिता बढ़ती है, तो लाभ घटने प्रारम्भ हो जाते हैं। स्मिथ के अनुसार इसका कारण पूँजीपतियों में प्रतियोगिता से मजदूरी का बढ़ना है, जबकि रिकार्डो के अनुसार अनाज की कीमत बढ़ने से जब मजदूरी तथा लगान बढ़ते हैं, तो लाभों में कमी होती है।

स्थिर अवस्था (Stationary state)-सभी क्लासिकी अर्थशास्त्री पूँजी-संचय की प्रक्रिया के अन्त में स्थिर अवस्था को देखते हैं। उनके अनुसार जब लाभ एक बार घटना प्रारम्भ करते हैं तो यह क्रम लगातार चलता रहता है, जब तक कि अर्थव्यवस्था में लाभ शून्य नहीं हो जाते, जनसंख्या में वृद्धि रुक नहीं जाती, पूँजी-संचय बन्द नहीं हो जाता और मजदूरी दर निर्वाह-स्तर पर पहुँच नहीं जाती। माल्थस ने जनसंख्या वृद्धि तथा खाद्य पूर्ति के बीच एक निराले परस्पर संबंध की स्थापना की। उसके अनुसार यदि जनसंख्या की वृद्धि अनियंत्रित छोड़ दी जाए, तो वह पूँजी की वृद्धि और परिणामस्वरूप निर्वाह के साधनों को पीछे छोड़ जाएगी। रिकार्डो तथा माल्थस दोनों यह मानते थे कि घटते प्रतिफल के नियम के कार्यकरण के माध्यम से बढ़ती जनसंख्या तथा घटती पूँजी-वृद्धि आर्थिक विकास में चरम बाधाएँ हैं। इनसे ही अर्थव्यवस्था में स्थिर अवस्था आती है। यही विचार जे. एस. मिल का था जो यह बताता है कि कृषि में तकनीकी सुधारों के अभाव में, तथा पूँजी संचय की दर से जनसंख्या की वृद्धि दर अधिक होने पर, लाभ की दर कम होनी शुरू हो जाती है तथा अर्थव्यवस्था अन्त में स्थिर अवस्था में पहुँच जाती है। परन्तु वह स्थिर अवस्था का स्वागत करता है क्योंकि इससे आय वितरण में सुधार होता है और श्रमिकों को अधिक मजदूरी प्राप्त होती है। परन्तु ऐसा कार्यकारी जनसंख्या की संख्या में वृद्धि को नियंत्रित करके ही संभव है।

नोट्स जब लाभ एक बार घटना प्रारम्भ क7रते हैं तो यह क्रम लगातार चलता रहता है, जब तक कि अर्थव्यवस्था में लाभ शून्य नहीं हो जाते, जनसंख्या में वृद्धि रुक नहीं जाती, पूँजी-संचय बन्द नहीं हो जाता और मजदूरी दर निर्वाह-स्तर पर पहुँच नहीं जाती।

संक्षेप में, आर्थिक विकास का क्लासिकी मॉडल यूँ व्यक्त किया जा सकता है। मान लीजिए कि लाभों में प्रत्याशित वृद्धि से निवेश में वृद्धि होती है, जो पूँजी के वर्तमान स्टॉक तथा सुधरी हुई तकनीकों के अविचल प्रवाह में वृद्धि करती है। पूँजी-संचय में इस वृद्धि से मजदूरी-कोष बढ़ता है। परिणामस्वरूप मज़दूरी बढ़ती है। अधिक मजदूरी तीव्र जनसंख्या वृद्धि को प्रेरित करती है जिससे अन्न के लिए माँग बढ़ जाती है। अतिरिक्त श्रम तथा पूँजी लगाकर खाद्य-उत्पादन बढ़ाया जाता है। परन्तु भूमि के घटते प्रतिफल से श्रम-लागत बढ़ जाती है। परिणाम यह होता है कि गेहूँ की कीमत बढ़ जाती है जिससे लगान बढ़ जाता है, मजदूरी बढ़ती है और इस प्रकार लाभ कम हो जाते हैं। लाभों में कमी होने का मतलब है कि निवेश घट जाता है प्रौद्योगिकी प्रगति रुक जाती है, मज़दूरी कोष घट जाता है और जनसंख्या वृद्धि तथा पूँजी-संचय धीमे पड़ जाते हैं। "क्लासिकी मॉडल में पूँजीवादी विकास का अन्तिम परिणाम होता है गतिहीनता

नोट

लाभों के घटने की स्वाभाविक प्रवृत्ति और परिणामस्वरूप पूँजी-संचय के रुकने से यह गतिहीनता उत्पन्न होती है।" ऐसा होने पर पूँजी-संचय रुक जाता है, जनसंख्या स्थिर हो जाती है और स्थिर अवस्था शुरू हो जाती है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

1. रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks)–

1. क्लासिकी अर्थशास्त्रियों के अनुसार ..... ही राष्ट्रीय आय को अधिकतम बनाता है।
2. क्लासिकी सिद्धांत के अनुसार श्रमिक वर्ग बचत करने में असमर्थ समझा जाता था क्योंकि उसे ..... के बराबर ही मजदूरी मिलती है।
3. क्लासिकी मॉडल में पूँजीवादी विकास का अंतिम परिणाम ..... होता है।

25.2 समीक्षात्मक टिप्पणी (Critical Appraisal)

विकास का सरल तथा सामान्य क्लासिकी सिद्धान्त आलोचना से मुक्त नहीं है।

1. मध्यवर्ग की उपेक्षा (Ignores middle-class)–समस्त क्लासिकी विश्लेषण ग्रेट ब्रिटेन तथा यूरोप के अन्य भागों में प्रवर्तमान सामाजार्थिक परिस्थितियों पर आधारित था। इसने पूँजीपतियों तथा भूमिपतियों और श्रमिकों के बीच समाज के एक कठोर विभाजन का अस्तित्व मान लिया था। इसने मध्यवर्ग के कृत्य की उपेक्षा की, जो आर्थिक वृद्धि के लिए आवश्यक प्रोत्साहन प्रदान करता है। उन्हें यह सूझा ही नहीं कि उन्नत समाज में सम्पत्ति-स्वामी नहीं बल्कि आय प्राप्तकर्ता बचत के प्रमुख साधन होते हैं।

2. सार्वजनिक क्षेत्र की अवहेलना (Neglect of public sector)-क्लासिकी अर्थशास्त्रियों के लिए, पूर्ण प्रतियोगिता तथा निजी संपत्ति की संस्था आर्थिक विकास के लिए अनिवार्य मान्यताएँ हैं। परन्तु वे उस महत्त्वपूर्ण कृत्य को अनुभव करने में असमर्थ रहे, जो आधुनिक कार्यों में सार्वजनिक क्षेत्र ने पूँजी-संचय का त्वरण करने में धारण किया है।

3. प्रौद्योगिकी को कम महत्त्व (Less importance to technology)–विकास में विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी का कार्य क्लासिकी सिद्धान्त की एक महत्त्वपूर्ण कमी है। अतिरिक्त पूँजी तथा बढ़े हुए श्रम-विभाजन के परिणामस्वरूप उत्पादकता बढ़ी। औद्योगिक क्रान्ति के महान आविष्कार विरले तथा असामान्य समझे जाते थे। आर्थिक विकास में सुधरी हुई प्रौद्योगिकी के महत्त्व को एडम स्मिथ ने अनुभव किया था। उसके अनुसार प्रौद्योगिकी के द्वारा श्रम का विभाजन और मार्किट का विस्तार हुआ। पर रिकार्डो ने यह बताया कि सुधरी हुई प्रौद्योगिकी से श्रम की स्थानापन्नता हुई तथा अन्य प्रतिकूल परिणाम प्रकट हुए। शुरू में तो प्रौद्योगिकीय प्रगति घटते प्रतिफलों की प्रक्रिया का निवारण कर सकती है परन्तु अन्त में जब प्रौद्योगिकी प्रगति का प्रभाव समाप्त हो गया तो घटते प्रतिफल प्रारम्भ होने लगे, और अर्थव्यवस्था स्थिर अवस्था की ओर अग्रसर हुई। विकसित राष्ट्रों के तीव्र आर्थिक विकास पर विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी का जो महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ा है, उसे समझने में क्लासिकी असमर्थ रहे।

4. अवास्तविक नियम (Unrealistic laws)–रिकार्डो तथा माल्थस जैसे क्लासिकी अर्थशास्त्रियों का मत –"कि पूँजीवादी विकास का अन्तिम परिणाम स्थिर अवस्था है"–दो मान्यताओं पर आधारित है: घटते प्रतिफलों का भूमि पर लागू होना, तथा माल्थस का जनसंख्या विषयक सिद्धान्त। उन्नत राष्ट्रों में कृषि उत्पादन की तीव्र वृद्धि ने सिद्ध कर दिया है कि क्लासिकी अर्थशास्त्रियों ने भूमि के संबंध में घटते प्रतिफलों के निवारण में प्रौद्योगिकीय प्रगति की क्षमताओं का कम मूल्यांकन किया। इसी प्रकार पश्चिमी दुनिया में प्रवर्तमान जनसंख्या प्रवत्तियों ने माल्थस के जनसंख्या-सिद्धान्त को गलत सिद्ध कर दिया है। माल्थस सिद्धान्त के नितान्त विपरीत जनसंख्या इतनी नहीं बढ़ी कि खाद्य-पूर्ति से बढ़ जाए। दूसरी ओर, जनसंख्या की वृद्धि की अपेक्षा कृषि-उत्पादकता बहुत तेजी से बढ़ी है।

टास्क आर्थिक जगत में मध्यवर्ग किसे कहा जाता है ?

नोट

5. मजदूरी तथा लाभ की गलत धारणाएँ (Wrong notions about wages and profits)–मजदूरी निर्वाह-स्तर पर ही नहीं रही है। मुद्रा-मजदूरी में निरन्तर वृद्धि होती रही, जबकि लाभ की दरों में तद्नुरूप कमी नहीं आई और परिपक्व अर्थव्यवस्थाएँ स्थिर आर्थिक व्यवस्था को नहीं पहुँची हैं। पश्चिमी दुनिया के आर्थिक विकास के प्रकाश में रिकार्डो और माल्थस दोनों को झूठे पैगम्बर कहकर अपमानित किया गया है।

6. अवास्तविक विकास प्रक्रिया (Unrealistic growth process)–क्लासिकी मॉडल ने ऐसी स्थैतिक अवस्था का रूप धारण कर लिया जिसमें परिवर्तन तो था परन्तु एक संतुलन बिन्दु के गिर्द, जिसमें प्रगति वृक्ष की भाँति नियमित, एकरूप एवं निरन्तर थी। पर आर्थिक वृद्धि की प्रक्रिया की यह व्याख्या सन्तोषजनक नहीं है। क्योंकि, जैसाकि आजकल समझा जाता है, आर्थिक वृद्धि एकरूप तथा निरन्तर नहीं बल्कि रुक-रुक कर (by fits and starts) होती है।[1]

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

2. सही विकल्प चुनिए (Choose the Correct Option)–

1. समस्त क्लासिकी विश्लेषण विश्व के किस भौगोलिक भाग की सामाजार्थिक परिस्थितियों पर आधारित है–
   (क) उत्तरी अमरीका (ख) दक्षिणी अमरीका
   (ग) ब्रिटेन एवं यूरोप (घ) अफ्रीका।
2. क्लासिकी विश्लेषण किस वर्ग की उपेक्षा करता है–
   (क) उच्च वर्ग (ख) मध्यम वर्ग
   (ग) निम्न वर्ग (घ) सामान्य वर्ग।
3. पश्चिमी दुनिया में प्रवर्तमान जनसंख्या प्रवृत्तियों ने किसके जनसंख्या सिद्धांत को गलत सिद्ध कर दिया–
   (क) स्मिथ (ख) रिकार्डो
   (ग) माल्थस (घ) इनमें से कोई नहीं।

25.3 सारांश (Summary)

- क्लासिकी अर्थशास्त्री मुक्त बाजार पूर्ण प्रतियोगिता तथा अपने-आप चलने वाली अर्थव्यवस्था में विश्वास रखते थे।
- सभी क्लासिकी अर्थशास्त्री पूँजी-संचय को आर्थिक विकास की कुंजी मानते हैं। इसके लिए वे अधिक बचत करने पर जोर देते हैं।
- लाभ लगातार बढ़ते नहीं रहते बल्कि पूँजीपतियों में जब अधिक पूँजी-संचय के लिए प्रतियोगिता बढ़ती है, तो लाभ घटने प्रारम्भ हो जाते हैं।
- आर्थिक विकास का क्लासिकी मॉडल यूँ व्यक्त किया जा सकता है। मान लीजिए कि लाभों में प्रत्याशित वृद्धि से निवेश में वृद्धि होती है, जो पूँजी के वर्तमान स्टॉक तथा सुधरी हुई तकनीकों के अविचल प्रवाह में वृद्धि करती है। पूँजी-संचय में इस वृद्धि से मजदूरी-कोष बढ़ता है। परिणामस्वरूप मज़दूरी बढ़ती है। अधिक मजदूरी तीव्र जनसंख्या वृद्धि को प्रेरित करती है जिससे अन्न के लिए माँग बढ़ जाती है।
- विकास में विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी का कार्य क्लासिकी सिद्धान्त की एक महत्त्वपूर्ण कमी है। अतिरिक्त पूँजी तथा बढ़े हुए श्रम-विभाजन के परिणामस्वरूप उत्पादकता बढ़ी। औद्योगिक क्रान्ति के महान आविष्कार विरले तथा असामान्य समझे जाते थे।
- विकसित राष्ट्रों के तीव्र आर्थिक विकास पर विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी का जो महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ा है, उसे समझने में क्लासिकी असमर्थ रहे।

1. अल्पविकसित देशों पर व्यवहार्यता के लिए स्मिथ और रिकार्डो के सिद्धान्त पढ़िए।

नोट

- रिकार्डो तथा माल्थस जैसे क्लासिकी अर्थशास्त्रियों का मत –"कि पूँजीवादी विकास का अन्तिम परिणाम स्थिर अवस्था है"–दो मान्यताओं पर आधारित है : घटते प्रतिफलों का भूमि पर लागू होना, तथा माल्थस का जनसंख्या विषयक सिद्धान्त।

25.4 शब्दकोश (Keywords)

- **प्रतिफल–** परिणाम, पुरस्कार।
- **अविचल–** अचल, स्थिर।

25.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. क्लासिकी सिद्धांत से आप क्या समझते हैं ? व्याख्या कीजिए।
2. क्लासिकी मॉडल में अबंध नीति क्या है ? विवेचन कीजिए।
3. क्लासिकी मॉडल की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।
4. ''विकास में विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी का कार्य क्लासिकी सिद्धांत की एक महत्वपूर्ण कमी है।'' विश्लेषणात्मक व्याख्या करें।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

1. 1. अदृश्य हाथ 2. निर्वाह-स्तर 3. गतिहीनता

2. 1. (ग) 2. (ख) 3. (ग)

25.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. *संवृद्धि एवं विकास का अर्थशास्त्र*: डॉ. पी. मिश्रा; साहित्य भवन पब्लिकेशन्स : आगरा
2. *विकास नियोजन एवं नीतियाँ*: वी. सी सिन्हा: साहित्य भवन पब्लिकेशन्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.) लि. रजिस्टर्ड कार्यालय नई दिल्ली
3. *विकास का अर्थशास्त्र एवं आयोजन*: डा. एस. एल. डिंगल: वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा. लि.

नोट

इकाई–26: शूम्पीटर का संवृद्धि मॉडल (Schumpeter Model of Growth)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

26.1 शूम्पीटर के मॉडल का विश्लेषण (Schumpeter's Model Analysis)

26.2 सिद्धान्त की आलोचना (Criticism of the Theory)

26.3 शूम्पीटर का सिद्धान्त तथा अल्पविकसित देश (Schumpeter's Theory and Underdeveloped Countries)

26.4 सारांश (Summary)

26.5 शब्दकोश (Keywords)

26.6 अभ्यास–प्रश्न (Review Questions)

26.7 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- शूम्पीटर के मॉडल के विश्लेषण को समझने में।
- सिद्धान्त की आलोचना को जानने में।
- शूम्पीटर का सिद्धान्त तथा अल्पविकसित देश की व्याख्या करने में ।

प्रस्तावना (Introduction)

जोसेफ एलोइ शूम्पीटर (Joseph Alois Schumpeter) ने पहली बार 1911 में जर्मन भाषा में प्रकाशित *The Theory of Economic Development* में अपना सिद्धान्त प्रस्तुत किया। इसका अंग्रेजी संस्करण 1934 में प्रकाशित हुआ। बाद में *Business Cycles* (1939) और *Capitalism, Socialism and Democracy* (1942) में इस सिद्धान्त को परिष्कृत एवं परिवर्धित किया गया परन्तु इसके किसी भी महत्त्वपूर्ण प्रकरण में कोई परिवर्तन नहीं हुआ।

26.1 शूम्पीटर के मॉडल का विश्लेषण (Schumpeter's Model Analysis)

आर्थिक विकास का अर्थ (Meaning of Economic Development)–शुरू में, शूम्पीटर एक ऐसी अर्थव्यवस्था की कल्पना करता है जो स्थिर संतुलन में हो। ऐसी स्थिर अवस्था में, पूर्ण प्रतियोगिता संतुलन होता है। कोई लाभ नहीं, कोई ब्याज की दरें नहीं, कोई बचतें नहीं, कोई निवेश नहीं होते और न ही किसी प्रकार की अनैच्छिक बेरोजगारी होती है। इस संतुलन की विशिष्टता शूम्पीटर के शब्दों में **'वृत्तीय प्रवाह'** है, जो प्रति वर्ष एक ही तरह से उसी प्रकार अपनी पुनरावृत्ति (repeat) करता है जिस प्रकार जीवों में रक्त का संचलन होता है। इस वृत्तीय प्रवाह में, प्रत्येक वर्ष उसी ढंग से वही वस्तुएं उत्पादित होती हैं। आर्थिक प्रणाली में कहीं प्रत्येक पूर्ति के लिए समान माँग

नोट

प्रतीक्षा करती है, तथा प्रत्येक माँग के लिए समान पूर्ति। दूसरे शब्दों में, समस्त आर्थिक क्रियाएं एक समय-रहित अर्थव्यवस्था में पुनरावृत्ति करती हैं। शूम्पीटर के लिए, "वृत्तीय प्रवाह एक सरिता है जो कि श्रम-शक्ति और भूमि के निरंतर प्रवाह हो रहे झरनों से भरती है तथा प्रत्येक आर्थिक अवधि में तालाब, जिसे हम आय कहते हैं, में प्रवाहित होती है ताकि उसे आवश्यकताओं की संतुष्टि में रूपान्तरण किया जाए।" उसके अनुसार, विकास, वृत्तीय प्रवाह की दिशाओं में आकस्मिक तथा अनिरंतर परिवर्तन, संतुलन की गड़बड़ है, जो पहले की विद्यमान संतुलन स्थिति को सदा के लिए परिवर्तित तथा विस्थापित कर देती है।"[1] **आर्थिक जीवन में 'आकस्मिक तथा निरंतर' परिवर्तन अर्थव्यवस्था पर बाहर से नहीं थोपे जाते बल्कि उसके अपनी प्रेरणा से उसके ही भीतर उत्पन्न होते हैं और औद्योगिक तथा वाणिज्यिक जीवन के क्षेत्र में प्रकट होते हैं। विकास उन नये संयोगों को कार्यान्वित करने में होना है जिनकी संभावनाएं स्थिर अवस्था में मौजूद** रहती हैं। नये संयोग नवप्रवर्तनों के रूप में प्रकट होते हैं।

नवप्रवर्तन (Innovations)—एक नवप्रवर्तन निम्न प्रकार से हो सकता है—(1) नई वस्तु का प्रचलन; (2) उत्पादन की नई विधि का प्रचलन; (3) नए मार्किट खोजना; (4) कच्चे माल अथवा मध्यवर्ती वस्तुओं के नए पूर्ति-स्रोत खोजना, और (5) एकाधिकार स्थापित करने की तरह किसी उद्योग के नए संगठन को कार्यान्वित करना। शूम्पीटर के अनुसार, एक नई वस्तु का प्रचलन करने तथा वर्तमान वस्तुओं में निरंतर सुधार करने से आर्थिक विकास होता है।

नवप्रवर्तक का कार्य (Role of an Innovator)—शूम्पीटर के अनुसार नवप्रवर्तन का कार्य उद्यमी करता है, पूँजीपति नहीं। उद्यमी साधारण प्रबंधकीय योग्यता का व्यक्ति नहीं होता बल्कि ऐसा व्यक्ति होता है जो एकदम किसी नई चीज का प्रचलन करता है। वित्त नहीं प्रदान करता, पर उसके प्रयोग का निदेशन (direction) करता है। उद्यमी को ये बातें प्रेरित करती है :

(*i*) नए वाणिज्य साम्राज्य की स्थापना की लालसा; (*ii*) विजयी होने तथा अपनी श्रेष्ठता सिद्ध करने की इच्छा; (*iii*) निर्माण की, दूसरों से कार्य कराने की अथवा केवल अपनी शक्ति तथा प्रवीणता के प्रयोग करने की प्रसन्नता। उसकी प्रकृति तथा क्रियाएं उसकी सामाजिक सांस्कृतिक परिस्थिति पर निर्भर करती हैं। अपना आर्थिक कार्य करने के लिए उद्यमी को दो चीजों की जरूरत होती है : **एक**, नई वस्तुओं का उत्पादन करने के लिए तकनीकी ज्ञान होना; **दूसरे**, ऋण के रूप में उत्पादन के साधनों पर नियत्रंण की शक्ति। शूम्पीटर के अनुसार, तकनीकी ज्ञान का ऐसा सरोवर वर्तमान है जिसे अभी तक खोला नहीं गया और जिसका प्रयोग उद्यमी कर सकता है। इसलिए विकास आरम्भ करने के लिए खास (credit) आवश्यक है।

पूँजी, लाभ एवं ब्याज (Capital, Profit and Interest)—शूम्पीटर पूँजी को केवल वह स्तर मानता है जिसके द्वारा उद्यमी जिन भौतिक वस्तुओं को चाहता है, उनको अपने नियंत्रण में रखता है। दूसरे शब्दों में, पूँजी उत्पादन के साधनों को नए प्रयोगों में मोड़ने का या उत्पादन को नया मोड़ देने का साधन है। वह उसे भुगतान के साधनों का जोड़ परिभाषित करता है, जोकि किसी समय उद्यमियों को हस्तांतरित करने के लिए उपलब्ध होता है। लाभों को वह लागतों के ऊपर अधिक्य मानता है जो कि कुल प्राप्तियों और लागतों का अन्तर है। लाभ नवप्रवर्तन का कार्य है। शूम्पीटर के अनुसार, प्रतियोगी संतुलन में प्रत्येक वस्तु की कीमत उसकी उत्पादन की लागत के बराबर होती है तथा लाभ नहीं होते। नवप्रवर्तन से होने वाले गत्यात्मक परिवर्तनों के कारण लाभ उत्पन्न होते हैं। वे उतनी दर तक होते रहते हैं जब तक कि नवप्रवर्तन सामान्य नहीं हो जाते हैं। पूँजी और लाभ की तरह, शूम्पीटर ब्याज को भी विकास की देन मानता है। यह वर्तमान उपभोग का भविष्य के उपभोग पर अधिमान है। परन्तु लाभ की तरह यह विकास का प्रत्यक्ष फल नहीं है अर्थात यह विकास की सफलताओं का इनाम नहीं है इसके विपरीत यह विकास पर रुकावट की तरह है—उद्यमीय लाभ पर एक प्रकार का कर है।

1. Development "is spontaneous and discontinous change in the channels of the *circular* flow, disturbance of equilibrium, which for ever alters and displaces the equilibrium state previously existing." J.A. Schumpeter, *Theory of Economic Development,* p. 64.

नोट

टास्क शूम्पीटर का मत अल्पविकसित देशों के योजनाबद्ध विकास में कहाँ तक लागू होता है।

वृत्तीय प्रवाह को तोड़ना (Breaking the Circular Flow)–शूम्पीटर का मॉडल वृत्तीय प्रवाह को एक नवप्रवर्तन से भंग करने से प्रारंभ होता है जो एक उद्यमी लाभ कमाने के लिए एक नई वस्तु के रूप में करता है। वृत्तीय प्रवाह को तोड़ने के लिए उद्यमियों को बैंक साख-विस्तार से धन प्राप्त होता है। क्योंकि नवप्रवर्तनों में निवेश में जोखिम होती है इसलिए उन्हें ऋण पर ब्याज देना पड़ेगा। जब नवप्रवर्तन एक बार सफल हो जाता है और लाभ देने लगाता है, तो अन्य उद्यमी उस पर 'टिड्डी दल' की भाँति टूट पड़ते हैं। एक क्षेत्र में नवप्रवर्तन संबद्ध क्षेत्रों में अन्य नवप्रवर्तनों को प्रोत्साहन दे सकता है। मोटर-कार उद्योग आरम्भ होने के परिणामस्वरूप राजमार्गों, रबर टायरों तथा पैट्रोल उत्पादन इत्यादि के निर्माण में नए निवेशों की लहर फैल सकती है। परन्तु एक नवप्रवर्तन कभी शत-प्रतिशत नहीं होता है। नवप्रवर्तन का प्रसार चित्र 26.1 में दर्शाया गया है जहाँ एक विशेष नवप्रवर्तन अपना रही फर्मों की प्रतिशतता का अनुलम्ब वक्र पर ली गई है और समय को क्षैतिज अक्ष पर लिया गया है। वक्र OI दर्शाता है कि प्रारंभ में फर्में एक नवप्रवर्तन को धीरे-धीरे अपनाती हैं परन्तु शीघ्र नवप्रवर्तन का अपनाना गति पकड़ता है। परन्तु यह फर्मों के द्वारा 100 प्रतिशत अपनाने तक कभी नहीं पहुँचता।

चक्रीय प्रक्रिया (Cyclical Process)–क्योंकि यह मान लिया गया है कि बैंक साख का निर्माण निवेश के लिए वित्त प्रदान करता है, इसलिए निवेश मौद्रिक आय तथा कीमतों को बढ़ता और अर्थव्यवस्था में संचयी विस्तार की सृष्टि करने में सहायक होता है। उपभोक्ताओं की क्रय शक्ति में वृद्धि होने के साथ, पुराने उद्योगों की वस्तुओं की माँग उनकी पूर्ति के अनुपात में बढ़ जाती है। कीमतें बढ़ती हैं, लाभ बढ़ते हैं और बैंक से ऋण लेकर पुराने उद्योग विस्तार करते हैं। इससे साख-स्फीति की द्वितीयक लहर प्रेरित होती है, जो नवप्रवर्तन की प्राथमिक लहरों पर अध्यारोपित (superimposed) हो जाती हैं। अति-आशावाद तथा सट्टा, तेजी (boom) में और योग देते हैं। कुछ समय बाद नई वस्तुएं मार्किट में आना शुरू हो जाती है, जो पुरानी वस्तुओं को विस्थापित (displace) करती हैं और दिवालियापन, पुनः समायोजन (readjustment) तथा खपत (absorption) की प्रक्रिया होती है। पुरानी वस्तुओं की माँग घट जाती है। उनकी कीमतें गिर जाती हैं। पुरानी फर्में उत्पादन घटा देती हैं और कुछ का तो दिवाला भी निकल जाता है। जब नवप्रवर्तक लाभों में से बैंक के ऋण लौटाना शुरू करते हैं, तो मुद्रा की मात्रा घटा जाती है और कीमतें गिरने लगती हैं। लाभ कम हो जाते हैं। अनिश्चितता तथा जोखिम बढ़ जाती है, नवप्रवर्तन की प्रेरणा घटती है और अन्त में समाप्त हो जाती है। मन्दी आती है

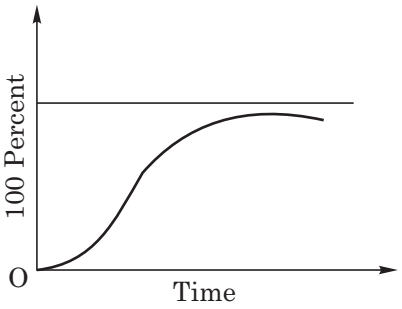

चित्र 26.1

शूम्पीटर आर्थिक प्रक्रिया में **कोंद्रातीफ दीर्घ लहर** के उतार-चढ़ाव के पाए जाने में विश्वास रखता है। प्रत्येक ऊपर जाने वाली दीर्घ लहर एक नई वस्तु के रूप में नवप्रवर्तन लाती जाती है जो नई मार्किट, उत्पादन की तकनीकों, कच्चे माल तथा मध्यवर्ती वस्तुओं की पूर्ति के नए स्रोतों और नए व्यावसायिक संगठनों के रूप में होते हैं। इस प्रकार जनसाधारण के लिए वस्तुओं की प्रचुर मात्रा उपलब्ध होती है। शूम्पीटर के शब्दों में, "बड़े पैमाने पर उत्पादन का अर्थ है जनसाधारण के लिए उत्पादन। जब एक बार तेजी की प्रक्रिया समाप्त होती है तो नीचे की ओर दीर्घ लहर प्रारंभ हो जाती है और 'पुराने संतुलन के आसपास के बिंदु' की ओर पुनः समायोजन की कष्टप्रद प्रक्रिया शुरू हो जाती है। अन्त में समुत्थान (recover) की प्राकृतिक शक्तियाँ पुनरुत्थान (revival) लाती है और संतुलन फिर आ जाता है। फिर कुछ साहसिक उद्यमी नए नवप्रवर्तनों से शुरू करते हैं, अन्य उसका अनुकरण करते हैं और नई तेजी शुरू हो जाती है। शूम्पीटर पूँजीवाद विकास की इस प्रक्रिया को "सृजनात्मक विनाश" (creative destruction) कहता है जिसमें समाज के पुराने आर्थिक ढाँचे निरंतर नाश किए जा रहे हैं और उनके स्थान पर

नोट

नए ढाँचे लगातार निर्मित किए जा रहे हैं। इसको चित्र 26.2 द्वारा दर्शाया गया है जिसमें क्षैतिज अक्ष पर समय तथा अनुलम्ब अक्ष पर राष्ट्रीय उत्पादन लिए गया हैं। YPT वक्र दीर्घकालीन चक्रीय उतार-चढ़ावों को दर्शाता है। जब एक नए नवप्रवर्तन होता है तो Y से अर्थव्यवस्था ऊपर की ओर गति प्रारंभ होती है तथा वस्तुओं का उत्पादन बिन्दु P तक बढ़ता जाता है। कुछ समय पश्चात जब यह नवप्रवर्तन समाप्त होना प्रारंभ होता है तथा नया नवप्रवर्तन इसका स्थान लेना शुरू करता है तो अर्थव्यवस्था में उत्पादन का स्तर P से गिरकर T पर आ जाता है। इस प्रकार "सजृनात्मक विनाश" की प्रक्रिया के कारण अर्थव्यवस्था का नया संतुलन बिन्दु T पूर्व बिन्दु Y से ऊँचा है जो अर्थव्यवस्था के विकास को प्रदर्शित करता है।

शूम्पीटर के आर्थिक विकास की समस्त चक्रीय प्रक्रिया को चित्र 26.3 में दर्शाया गया है जहाँ नवप्रवर्तन की द्वितीयक लहर को प्राथमिक लहर पर अध्यारोपित किया गया है। अतिआशावादिता और सट्टे से समृद्धि की अवस्था में विकास तीव्र गति से होता है। जब सुस्ती (recession) प्रारंभ होती है तो व्यापार चक्र संतुलन से नीचे मंदी की अवस्था में चलता है। अन्ततः एक अन्य नवप्रवर्तन पुनरुत्थान लाता है।

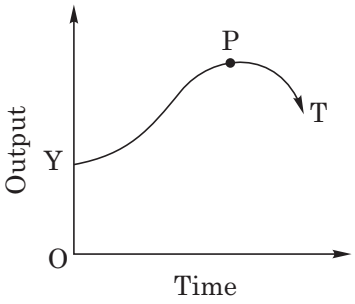

चित्र 26.2

शूम्पीटर के विश्लेषण में उद्यमी ही प्रमुख व्यक्ति हैं। वे आकस्मिक तथा असतत ढंग से आर्थिक विकास करते हैं। "चक्रीय उतार-चढ़ाव पूँजीवाद के अन्तगर्त आर्थिक विकास की कीमत है," जो उसके गत्यात्मक समय मार्ग की स्थायी विशेषता है।

दीर्घकालीन में, निरन्तर प्रौद्योगिकीय प्रगति का परिणाम यह होगा कि कुल तथा प्रति व्यक्ति उत्पादन में असीम वृद्धि हो जाएगी क्योंकि ऐतिहासिकता से प्रौद्योगिकीय प्रगति के घटते प्रतिफल नहीं होते। जब तक प्रौद्योगिकीय प्रगति होती रहेगी, तब तक लाभों की दर धनात्मक रहेगी। इसलिए न तो निवेश योग्य कोषों के स्रोत ही सूख सकते हैं और न ही निवेश के अवसर ही समाप्त हो सकते हैं। इसलिए पूँजीवादी समाज में प्रति व्यक्ति आय के स्तर पर कोई ऊँची सीमा नहीं होती है। फिर भी, पूँजीवादी की आर्थिक सफलता का परिणाम अन्त में उसकी तबाही होगा। पूँजीवाद के भविष्य पर अन्तिम टिप्पणी देते हुए शूम्पीटर ने लिखा था, "क्या पूँजीवाद बच रहेगा? नहीं, मैं समझता हूँ कि वह बच नहीं पाएगा।" उसके अनुसार पूँजीवाद की सफलता ही "इन सामाजिक संस्थाओं की जड़ खोदती है जो उसकी रक्षा करती है और अनिवार्य रूप से ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न करती हैं जिनमें पूँजीवाद नहीं जी सकेगा और प्रबलता से समाजवाद के स्पष्ट वारिस होने का संकेत करती है।"

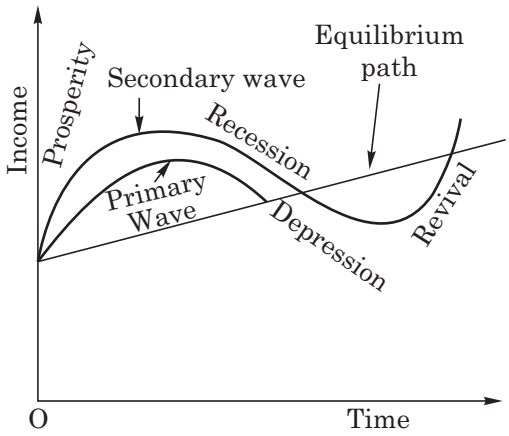

चित्र 26.3

पूँजीवाद के नाश की प्रक्रिया (Process of end of Capitalism)–शूम्पीटर के अनुसार, पूँजीवाद अपने आय को तभी तक बनाए रख सकता है, जब तक उद्यमी शूरवीरों तथा नेताओं की भाँति डटे हुए हैं। परन्तु साहसी नवप्रवर्तकों को स्वयं पूँजीवाद प्रथा ही नष्ट कर रही है, जो कि विचारशील प्रवृत्ति पर स्थित है। यह पूछताछ, शंकाशील तथा तर्कशील प्रवृत्ति समस्त पूँजीवादी समाज में रमी हुई है। परिणामस्वरूप तीन शक्तियाँ प्रत्यक्ष हैं जो पूँजीवाद की रंगती मौत शुरू कर रही हैं। वे ये हैं: (1) उद्यमीय कार्य का ह्रास; (2) बुर्जुआ परिवार का छिन्न-भिन्न होना; और (3) पूँजीवादी समाज के सांस्थानिक ढाँचे का नाश।

पूँजीवाद की प्रारम्भिक अवस्थाओं में, प्रेरक शक्ति उद्यमीयों से प्राप्त हुई थी जिन्होंने नवप्रवर्तन, प्रयोग तथा विस्तार करने का साहस किया था। परन्तु नवप्रवर्तन अब एक नियत परिपाटी बनकर रह गई है। प्रौद्योगिकीय प्रगति प्रशिक्षित विशेषज्ञों के समूह का व्यापार बन चुकी है। प्रबन्धक, अव्यक्तिकृत स्वामी तथा निजी नौकरशाह व्यापार के नए

नोट

मालिक हैं। इसने औद्योगिक बूर्जुआ को मजदूरी-प्राप्तकर्ताओं का वर्ग बनाकर रख दिया है और इस प्रकार यह "युद्ध-कुशल शूरवीर" सदृश उद्यमी के कार्य तथा प्रतिष्ठा की जड़ काट रहा है।

फिर, बूर्जुआ परिवार की तबाही भी है। माता-पिता बच्चों के प्रति अपने व्यवहार में तर्कशील प्रवृत्ति अपनाते हैं। परंपरागत परिवार-विचार दुर्बल पड़ गया है। 'निजी साम्राज्य' की स्थापना की लालसा और 'खानदान' अब कहाँ रह गए हैं? धन संचय करने की आकांक्षा धीरे-धीरे मिट रही है और इसके साथ ही पूँजीवादी समाज का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष भी।

नोट्स आर्थिक विकास आर्थिक जीवन के वृत्तीय प्रवाह की दिशाओं में आकस्मिक तथा असतत् परिवर्तन है जो पहले की विद्यमान संतुलन स्थिति को सदा के लिए परिवर्तित तथा विस्थापित कर देता है।

अन्तिम, शूम्पीटर का कहना है कि उद्यमी भी पूँजीवादी समाज के संस्थानिक ढाँचे को नष्ट करने का प्रयत्न करता है। बड़ी व्यापार-संस्थाओं में सकेंद्रण की प्रवृत्ति निजी सम्पत्ति की जुडवाँ संस्थाओं और ठेके की स्वतंत्रता को दुर्लभ तथा नष्ट कर देती हैं। बड़ी व्यापार-संस्थाओं में छोटे तथा बड़े हिस्सेदार मालिक होते हैं जिन्हें व्यावसायिक वैतनिक प्रबन्धक कार्यहीन कर देते हैं। मालिकों का काम प्रबन्धक करते हैं, जबकि मालिक सक्रिय प्रबंध-कार्य बिल्कुल निकाल दिए जाते हैं। शूम्पीटर के अनुसार, तर्कशीलता ने ही, अतीत में, शाही शक्ति नष्ट किया था। अब फिर घरेलू तथा अन्तर्राष्टीय समस्याओं के प्रति शासक वर्ग की तर्कशील प्रवृत्ति ही पूँजीवाद के लिए विष बन जाएगी। परन्तु पूँजीवाद की मौत का घण्टा बजाने के लिए ये सभी शक्तियाँ काफी नहीं हैं। वस्तुत: बुद्धिजीवियों का सक्रिय विरोध ही उस 'दिन' को निकट ला रहा है। बुद्धिजीवी जनसाधारण के मन में पूँजीवादी व्यवस्था के सामाजिक तथा राजनैतिक ढाँचे के विरुद्ध असंतोष तथा संदेह के बीज बोते हैं। नौकरीपेशा तथा मजदूर वर्गों को भड़काकर, वे पूँजीवाद विरोधी राजनैतिक सुधार करा लेते हैं। परिणामस्वरूप वह संस्थानिक ढाँचा टूटने लगता है जिस पर पूँजीवाद स्थित है और समाजवाद की ओर धीमी गति होती है। अन्त में, पूँजीवाद बिना किसी धमाके या शोर से नष्ट हो जाएगा।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

1. सही विकल्प चुनिए (Choose the Correct option)–

1. शूम्पीटर के अनुसार नवप्रर्वतन का कार्य करता है–
   (क) उद्यमी (ख) पूँजीपति
   (ग) (क) और (ख) (घ) इनमें से कोई नहीं।
2. शूम्पीटर के सिद्धान्त को परिष्कृत तथा परिवर्धित किया गया था–
   (क) 1911 में (ख) 1939 में
   (ग) 1942 में (घ) इनमें से कोई नहीं।
3. अर्थव्यवस्था में नवप्रवर्तन हो सकता है–
   (क) नई वस्तु के प्रचलन से (ख) नए मार्किट की खोज से
   (ग) उत्पादन की नई विधि की प्रचलन से (घ) उपर्युक्त सभी से।
4. शूम्पीटर के अनुसार पूँजीवाद के नाश की प्रक्रिया शुरू होती है–
   (क) उद्यमी कार्य वे ह्रास से (ख) बुर्जुआ परिवार के छिन्न-भिन्न होने से
   (ग) पूंजीवादी समाज के संस्थानिक ढाँचे के नाश से
   (घ) उपयुक्त सभी से।

नोट

26.2 सिद्धान्त की आलोचना (Criticism of the Theory)

मायर तथा बाल्डविन के अनुसार, "शूम्पीटर के सिद्धान्त को एक ऐसा प्रमुख कार्य कहना चाहिए जिसे निश्चय से स्मिथ, रिकार्डो, मिल, मार्क्स, मार्शल तथा केन्ज जैसे अर्थशास्त्रियों के योग्य तथा समकक्ष माना जा सकता है।... यह शानदार तर्क एक बड़े सैद्धान्तिक की अतंर्दृष्टि से आपूरित है।" फिर भी, वे इस सिद्धान्त की कुट आलोचनाएं करते हैं।

1. **नवप्रवर्तन उद्यमी का कार्य नहीं** (Innovation not the Function of Entrepreneur)–शूम्पीटर के सिद्धान्त की समस्त प्रक्रिया उद्यमी व नवप्रर्वतक पर आधारित है जिसे वह एक आदर्श व्यक्ति मानता है। यह 18वीं शताब्दी में सम्भव था, जब नवप्रवर्तन उद्यमी या आविष्कारकों द्वारा किए जाते थे। परन्तु वर्तमान में सभी प्रकार के नवप्रवर्तन कम्पनियों के कार्यक्रम का एक अंग है। इसके लिए किसी विशेष प्रकार के व्यक्ति की आवश्यकता नहीं समझी जाती। यह औद्योगिक संस्थाओं का नित्यकर्म ही समझा जाता है।
2. **आर्थिक विकास के लिए चक्रीय प्रक्रिया आवश्यक नहीं** (Cyclical Process not Essential for Economic Development)–शूम्पीटर के अनुसार नवप्रर्वतनों से आर्थिक विकास चक्रीय प्रक्रिया में होता है परन्तु यह सही नहीं। आर्थिक विकास के लिए मन्दी व तेजी का चक्र आवश्यक नहीं। इसका सम्बन्ध निरंतर परिवर्तनों से होता है, जैसाकि नर्क्से ने कहा है।
3. **चक्रीय परिवर्तन नवप्रवर्तनों के कारण नहीं** (Cyclical Changes not due to Innovations)–फिर, मन्दी व तेजी नवप्रवर्तनों के कारण ही नही होतीं, इसके कई मनोवैज्ञानिक, प्राकृतिक, वित्तीय आदि कारण भी होते हैं।
4. **नवप्रवर्तन ही विकास का मुख्य कारण नहीं** (Innovations not the main Cause of Development)–शूम्पीटर नवप्रवर्तन को ही विकास का मुख्य कारण मानता है परन्तु यह वास्तविकता से दूर है क्योंकि आर्थिक विकास केवल नवप्रवर्तनों पर ही निर्भर नहीं करता बल्कि कई अन्य आर्थिक एवं सामाजिक तत्त्वों पर भी निर्भर करता है।
5. **बैंक साख को अधिक महत्व** (Too much Importance to Bank Credit)–शूम्पीटर पूँजी-निर्माण में बैंक साख को आवश्यकता से अधिक महत्व देता है। बड़े-बड़े औद्योगिक संस्थान अल्पकाल में तो बैंकों से साख-ऋण प्राप्त कर सकते हैं परन्तु दीर्घकालीन नवप्रवर्तनों के लिए, जिनमें अत्याधिक पूँजी की आवश्यकता होती है, बैंक-ऋण अपर्याप्त होते हैं। इसके लिए ऋण-पत्र तथा नए शेयरों को बेचकर ही पूँजी प्राप्त की जा सकती है।
6. **पूँजीवाद से समाजवाद की प्रक्रिया सही नहीं** (The Process from Capitalism to Socialism not Correct)–शूम्पीटर का पूँजीवाद से समाजवादी की ओर जाने का विश्लेषण सही नहीं। वह इस बात का विश्लेषण नहीं करता कि पूँजीवाद समाज समाजवाद की ओर कैसे अग्रसर होता है। वह केवल यह बताता है कि उद्यमी के कार्यों में परिवर्तन होने से पूँजीवादी समाज का संस्थानिक ढांचा परिवर्तित हो रहा है। उसका पूँजीवाद के नाश का विश्लेषण भावुक है, न कि वास्तविक।

अन्त में, मायर तथा बाल्डविन के शब्दों में, "शूम्पीटर ने जो विकास का बृहत् सामाजिक-आर्थिक विश्लेषण किया है उसकी सर्वत्र प्रशंसा की जाती है, परन्तु बहुत कम लोग उसके निष्कर्षों को स्वीकार करने के लिए तैयार हैं। उसका तर्क उत्तेजक है, उसका विश्लेषण उद्दीपक है, पर वह पूर्णरूपेण विश्वसनीय नहीं है। उसका विश्लेषण एकतरफा है तथा उसने कई बातों पर आवश्यकता से अधिक जोर दिया।"

नोट

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

2. रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks)–

1. नवप्रवर्तन ..... का कार्य नहीं है।
2. शूम्पीटर के अनुसार आर्थिक विकास ..... में होता है।
3. ..... बैंक साखा को आवश्यकता से अधिक महत्व देते हैं।
4. आर्थिक विकास केवल नवप्रवर्तनों पर ही नहीं निर्भर करता बल्कि यह अन्य ..... तत्वों पर भी निर्भर करता है।

26.3 शूम्पीटर का सिद्धान्त तथा अल्पविकसित देश (Schumpeter's Theory and Underdeveloped Countries)

अल्पविकसित देशों के साथ भी शूम्पीटर के सिद्धान्त की व्यवहार्यता सीमित है।

1. **भिन्न सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था** (Different Socio-economic Order)–शूम्पीटर का सिद्धान्त उस विशेष सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था के अनुरूप है, जो 18वीं तथा 19वीं शताब्दियों में अमरीका तथा पश्चिमी यूरोप में वर्तमान थी। उस अवधि में वृद्धि की कुछ प्रत्याशाएं पहले विद्यमान थीं। परन्तु अल्पविकसित देशों में सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियां बिल्कुल भिन्न होती हैं और आर्थिक एवं सामाजिक उपरिसुविधाओं के रूप में विकास की प्रत्याशंसाएं नहीं होती। इस प्रकार उद्यमी के लिए प्रेरणा नहीं होती।
2. **उद्यमता का अभाव** (Lack of Entrepreneurship)–शूम्पीटर का विश्लेषण उद्यमी वर्ग के अस्तित्व पर निर्भर करता है। परन्तु अल्पविकसित देशों के आर्थिक विकास की बाधाओं में से एक यह है कि उनमें समुचित उद्यमता का अभाव होता है। ऐसे देशों में तकनीकी ज्ञान और लाभ की संभावनाएं कम होने के कारण नए प्लांट और उपकरण में निवेश की प्रेरणा नहीं पाई जाती है। इसके अतिरिक्त पर्याप्त विद्युत, यातायात, प्रशिक्षित सेविवर्ग की कमी उद्यमीय कार्य को हतोत्साहित करती है।
3. **समाजवादी देशों पर लागू नहीं** (Not Applicable to Socialist Countries)–शूम्पीटर का विश्लेषण अधिकांश अल्पविकसित देशों पर व्यवहार्य नहीं है जिनकी प्रवृत्ति समाजवाद की ओर है। उदाहरण के लिए, सामाजिक सुरक्षा के तरीकों का प्रवर्तन तथा ऊँचे आरोही आयकर उद्यमी वर्ग के विकास के शत्रु हैं क्योंकि वे लाभों को कम करते हैं।
4. **मिश्रित अर्थव्यवस्था पर लागू नहीं** (Not Applicalle to Mixed Economies)–फिर, शूम्पीटर का नवप्रवर्तक निजी उद्यमी है, जो आज की मिश्रित अर्थव्यवस्था के उपयुक्त नहीं है। अल्पविकसित देशों में सरकार सबसे बड़ा उद्यमी होती है। विकास के लिए प्रमुख प्रेरणा सार्वजनिक तथा अर्द्ध-सार्वजनिक क्षेत्रों से मिलती है। इस प्रकार शूम्पीटर का नवप्रवर्तक अल्पविकसित देशों में सीमित कार्य ही कर सकता है।
5. **नवप्रवर्तन नहीं, बल्कि संस्थानिक परिवर्तन चाहिए** (Institution Changes and not Innovations Needed)–विकास-प्रक्रिया को शुरू करने और उसे आत्मनिर्भर बनाने के लिए केवल नवप्रवर्तन ही नहीं बल्कि संगठनात्मक ढाँचा, व्यापार-प्रथाओं, कुशल श्रम तथा उचित मूल्यों, वृत्तियों और जैसे अनेक साध नों का संयोग आवश्यक होता है।

1. Henry C. Wallich, *Some Notes Towards a Theory of Derived Demand* in Aggarwal and Singh (e.d.), *op. cit.,* pp. 193-202.

नोट

क्या आप जानते हैं 21वीं सदी का समाज नवनिर्मित मूल्यों से संचालित है परंपरागत दुनिया एवं सामाजिक जटिलताएं अब धीरे-धीरे हाशिए पर जा रही हैं।

6. **नवप्रवर्तन नहीं, उनका परिपाचन चाहिए** (Assimilation of Innovations and not New Innovations Needed)—हैनरी वालिच (Henry Wallich) के अनुसार, अल्पविकसित देशों में आर्थिक प्रक्रिया नवप्रवर्तन पर नहीं बल्कि वर्तमान की खपत पर आधारित होती है, क्योंकि अल्पविकसित देशों में उद्यमी नवप्रवर्तन करने की स्थिति में नहीं होते बल्कि वे तो उन्नत देशों में होने वाले नवप्रवर्तनों को अपनाते हैं।
7. **उपभोग की अवहेलना** (Neglect of Consumption)—शूम्पीटर की प्रक्रिया उत्पादन की ओर झुकी है, जबकि विकास प्रक्रिया उपभोग की ओर झुकी होती है। यह मूल्यांकन कल्याणकारी राज्य के प्रति वर्तमान समय के रुझान में लागू किया जाता है। जिसमें मांग तथा उपभोग प्रमुख काम करते हैं।[2] इसलिए शूम्पीटर का सिद्धान्त अल्पविकसित देशों पर लागू नहीं होता।
8. **बचतों की अवहेलना** (Neglect of Savings)—शूम्पीटर का बैंक-ऋण पर एकमात्र बल निवेश में वास्तविक बचतों के भाग की अवहेलना कर देता है। यह आर्थिक विकास में घाटे के वित्त-प्रबन्ध, बजट की बचतों, **सार्वजनिक ऋण** तथा अन्य राजकोषीय तरीकों के महत्व को क्षति पहुँचाता है।
9. **बाहरी प्रभावों की अवहेलना करता है** (Neglects External Effects)—शूम्पीटर के अनुसार विकास उन परिवर्तनों का परिणाम है, जो अर्थव्यवस्था के अपने भीतर से उत्पन्न होते हैं। परन्तु अल्पविकसित देशों में परिवर्तन अर्थव्यवस्था के भीतर से नहीं उत्पन्न होते बल्कि वे आयातित विचारों, औद्योगिकी, तथा पूँजी का परिणाम होते हैं। अल्पविकसित देशों में पिछड़ी हुई प्रौद्योगिकी, निम्न बचत संभाव्यता और पुरानी सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक संस्थाएं अर्थव्यवस्था के 'भीतर' से विकास लाने की क्षमता नहीं रखती।
10. **जनसंख्या तथा धन वृद्धि के प्रभावों की अवहेलना** (Neglects the Effects of Growth of Population and Wealth)—फिर, शूम्पीटर किसी देश के आर्थिक विकास पर जनसंख्या तथा धन की वृद्धि के प्रभाव को आँकने में असफल रहा। जनसंख्या वृद्धि की ऊँची दर विकासशील अर्थव्यवस्था की वृद्धि-दर घटा देती है, जबकि प्राकृतिक साधनों के नए स्रोतों की खोज या उनका अधिक अच्छा प्रयोग विकास गति बढ़ा देता है।
11. **स्फीतिकारी शक्तियों का असन्तोषजनक विवेचन** (Unsatisfactory Explanation of Inflationary Forces)—शूम्पीटर की पद्धति में स्फीतिकारी प्रेरणाएं विकास प्रक्रिया का अभिन्न अंग होती हैं, परन्तु दीर्घकालीन स्फीति नहीं होती। दीर्घकालीन कीमत-स्तर स्थित रहता है, पर अल्पविकसित अर्थव्यवस्था में स्फीतिकारी शक्तियां बहुत प्रबल होती हैं। "राजनैतिक तथा श्रम-संघ मार्गों के माध्यम से सामाजिक माँग अर्थव्यवस्था से उतने की अपेक्षा अधिक खींच लेना चाहती है जितना कि घरेलू उत्पादन तथा अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के माध्यम से उससे प्राप्त किया जा सकता है। केवल विकास तथा सम्बन्ध निवेश ही नहीं बल्कि माँग-अनुपस्थित अर्थव्यवस्था का समस्त सामाजिक वातावरण ही स्फीतिकारी प्रवृत्तियों के लिए उत्तरदायी है।"

निष्कर्ष (Conclusion)—फिर भी शूम्पीटर का सिद्धान्त आर्थिक विकास के प्रमुख साधन के रूप में स्फीतिकारी वित्त तथा नवप्रवर्तनों के महत्व को रेखांकित करता है। स्फीतिकारी वित्त-व्यवस्था उन शक्तिशाली ढंगों में से है जिसे प्रत्येक अल्पविकसित देश किसी न किसी समय अवश्य अपनाने का यत्न करता है। नवप्रवर्तनों के परिणामस्वरूप उत्पादकता में दीर्घकालीन वृद्धि तथा लाभदायक रोजगार है अतिरेक श्रम की खपत की दृष्टि से उसका विश्लेषण अल्पविकसित देशों से सम्बन्ध है। यद्यपि यह पाश्चात्य पूँजीवाद की समस्याओं से सम्बंध रखता है, फिर भी, "जब एक बार औद्योगीकरण की प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाए, तो यह निश्चय से उन समस्याओं की ओर संकेत दे सकता है, जो अल्पविकसित देशों में उठती हैं, और यह भी सिखा सकता है कि व्यर्थ तथा अतिरिक्त कठिनाइयों से कैसे बचा जाए, जो अयोजनाबद्ध तथा असमन्वित (uncoordinated) विकास में रहती हैं।"

नोट

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

3. निम्नलिखित कथनों में सत्य/असत्य की पहचान करें–

1. विकास प्रक्रिया को शुरू करने और उसे आत्मनिर्भर बनाने के लिए केवल नवप्रवर्तन आवश्यक है।
2. अल्पविकसित देशों में आर्थिक प्रक्रिया वर्तमान की खपत पर आधारित होती है।
3. शूम्पीटर की पद्धति में स्फीतिकारी प्ररणाएं विकास प्रक्रिया का अभिन्न अंग होती हैं।
4. शूम्पीटर के अनुसार विकास उन परिवर्तनों का परिणाम है, जो अर्थव्यवस्था के बाहर उत्पन्न होती हैं।

26.4 सारांश (Summary)

- जोसेफ एलोइ शूम्पीटर (Joseph Alois Schmupeter) ने पहली बार 1911 में जर्मन भाषा में प्रकाशित *The Theory of Economic Development* में अपना सिद्धान्त प्रस्तुत किया।
- शूम्पीटर एक ऐसी अर्थव्यवस्था की कल्पना करता है जो स्थिर संतुलन में हो। ऐसी स्थिर अवस्था में, पूर्ण प्रतियोगिता संतुलन होता है।
- संतुलन की विशिष्टता शूम्पीटर के शब्दों में '**वृत्तीय प्रवाह**' है, जो प्रति वर्ष एक ही तरह से उसी प्रकार अपनी पुनरावृत्ति (repeat) करता है जिस प्रकार जीवों में रक्त का संचलन होता है।
- शूम्पीटर के लिए, "वृत्तीय प्रवाह एक सरिता है जो कि श्रम-शक्ति और भूमि के निरंतर प्रवाह हो रहे झरनों से भरती है तथा प्रत्येक आर्थिक अवधि में तालाब, जिसे हम आय कहते हैं, में प्रवाहित होती है ताकि उसे आवश्यकताओं की संतुष्टि में रूपान्तरण किया जाए।"
- शूम्पीटर के अनुसार नवप्रवर्तन का कार्य उद्यमी करता है, पूँजीपति नहीं।
- पूँजी उत्पादन के साधनों को नए प्रयोगों में मोड़ने का या उत्पादन को नया मोड़ देने का साधन है।
- शूम्पीटर का मॉडल वृत्तीय प्रवाह को एक नवप्रवर्तन से भंग करने से प्रारंभ होता है जो एक उद्यमी लाभ कमाने के लिए एक नई वस्तु के रूप में करता है।
- बैंक साख का निर्माण निवेश के लिए वित्त प्रदान करता है, इसलिए निवेश मौद्रिक आय तथा कीमतों को बढ़ता और अर्थव्यवस्था में संचयी विस्तार की सृष्टि करने में सहायक होता है।
- शूम्पीटर आर्थिक प्रक्रिया में कोंद्रातीफ दीर्घ लहर के उतार-चढ़ाव के पाए जाने में विश्वास रखता है। प्रत्येक ऊपर जाने वाली दीर्घ लहर एक नई वस्तु के रूप में नवप्रवर्तन लाती जाती है।
- शूम्पीटर के विश्लेषण में उद्यमी ही प्रमुख व्यक्ति हैं। वे आकस्मिक तथा असतत् ढंग से आर्थिक विकास करते हैं। "चक्रीय उतार-चढ़ाव पूँजीवाद के अन्तगर्त आर्थिक विकास की कीमत है," जो उसके गत्यात्मक समय मार्ग की स्थायी विशेषता है।
- पूँजीवाद अपने आय को तभी तक बनाए रख सकता है, जब तक उद्यमी शूरवीरों तथा नेताओं की भाँति डटे हुए हैं।
- पूँजीवाद की प्रारम्भिक अवस्थाओं में, प्रेरक शक्ति उद्यमीयों से प्राप्त हुई थी जिन्होंने नवप्रवर्तन, प्रयोग तथा विस्तार करने का साहस किया था।
- माता-पिता बच्चों के प्रति अपने व्यवहार में तर्कशील प्रवृत्ति अपनाते हैं। परंपरागत परिवार-विचार दुर्बल पड़ गया है। 'निजी साम्राज्य' की स्थापना की लालसा और 'खानदान' अब कहाँ रह गए हैं? धन संचय करने की आकांक्षा धीरे-धीरे मिट रही है।
- "शूम्पीटर ने जो विकास का बृहत् सामाजिक-आर्थिक विश्लेषण किया है उसकी सर्वत्र प्रशंसा की जाती है, परन्तु बहुत कम लोग उसके निष्कर्षों को स्वीकार करने के लिए तैयार हैं।

नोट

- शूम्पीटर का सिद्धान्त उस विशेष सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था के अनुरूप है, जो 18वीं तथा 19वीं शताब्दियों में अमरीका तथा पश्चिमी यूरोप में वर्तमान थी।
- अल्पविकसित देशों में आर्थिक प्रक्रिया नवप्रवर्तन पर नहीं बल्कि वर्तमान की खपत पर आधारित होती है, क्योंकि अल्पविकसित देशों में उद्यमी नवप्रवर्तन करने की स्थिति में नहीं होते बल्कि वे तो उन्नत देशों में होने वाले नवप्रवर्तनों को अपनाते हैं।
- जनसंख्या वृद्धि की ऊँची दर विकासशील अर्थव्यवस्था की वृद्धि-दर घटा देती है, जबकि प्राकृतिक साधनों के नए स्रोतों की खोज या उनका अधिक अच्छा प्रयोग विकास गति बढ़ा देता है।
- स्फीतिकारी वित्त-व्यवस्था उन शक्तिशाली ढंगों में से है जिसे प्रत्येक अल्पविकसित देश किसी न किसी समय अवश्य अपनाने का यत्न करता है।

26.5 शब्दकोश (Keywords)

- **पुनरावृत्ति–** फिर से घूमकर आना, काम का दोहराया जाना।
- **बुर्जुआ–** रूढ़िवादी, अवसरवादी, मध्यम वर्ग।
- **परिवर्द्धित–** बढ़ाया जाना, सम्यक वृद्धि।
- **अध्यारोपित–** एक जगह से दूसरी जगह लगाना।

26.6 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. आर्थिक विकास के संबंध में शूम्पीटर के मत की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।
2. शूम्पीटर के आर्थिक विकास के सिद्धान्त की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए और इसकी सीमाएं बताइए।
3. शूम्पीटर का आर्थिक विकास का सिद्धान्त स्पष्ट कीजिए तथा अल्पविकसित देशों में यह कहाँ तक लागू होता है।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

1.	1. (क)	2. (ग)	3. (घ)	4. (घ)
2.	1. उद्यमी	2. चक्रीय प्रक्रिया	3. शूम्पीडर	4. आर्थिक एवं सामाजिक
3.	1. असत्य	2. सत्य	3. सत्य	4. असत्य।

26.7 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. *संवृद्धि एवं विकास का अर्थशास्त्र*: डॉ. पी. मिश्रा; साहित्य भवन पब्लिकेशन्स : आगरा
2. *विकास नियोजन एवं नीतियाँ*: वी. सी सिन्हा: साहित्य भवन पब्लिकेशन्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.) लि. रजिस्टर्ड कार्यालय नई दिल्ली
3. *विकास का अर्थशास्त्र एवं आयोजन*: डा. एस. एल. डिंगल: वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा. लि.

नोट

इकाई–27: अल्पविकास के सिद्धान्त (Theories of Underdevelopment)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

27.1 निर्धनता का दुष्चक्र (Vicious Circle of Poverty)

27.2 बिग पुश सिद्धान्त (Big Push Theory)

27.3 क्रांतिक न्यूनतम प्रयत्न का सिद्धांत (Critical Minimum Efforts Theory)

27.4 निम्न स्तर संतुलन जाल सिद्धान्त (Low Level Equilibrium Trap)

27.5 सामाजिक द्वैतवाद का सिद्धान्त (Theory of Social Dualism)

27.6 प्रौद्योगिकीय द्वैतवाद का सिद्धान्त (Theory of Industrial Dualism)

27.7 लेविस का मॉडल (Lewis Model)

27.8 रेनिस और फाई मॉडल (Ranis and Fei Model)

27.9 हैरिस–टोडारो मॉडल (Haris–Todaro Model)

27.10 सारांश (Summary)

27.11 शब्दकोश (Keywords)

27.12 अभ्यास–प्रश्न (Review Questions)

27.13 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- निर्धनता दुष्चक्र और बिग पुश सिद्धांत को जानने में।
- सामाजिक द्वैतवाद एवं प्रौद्योगिकी द्वैतवाद को समझने में।
- रेनिस और फी मॉडल एवं लेविस मॉडल की व्याख्या करने में।
- हैरिस–टोडारो मॉडल की विवेचना करने में।

प्रस्तावना (Introduction)

एडम स्मिथ की यादगार कृति 'ऐन इन्क्वायरी इन्टू दी नेचर एण्ड कॉज ऑफ वेल्थ ऑफ नेशन्स' 1776 में प्रकाशित हुई जिसका सम्बन्ध प्राथमिक रूप से विकास के अर्थशास्त्र की समस्या से था। एडम स्मिथ आर्थिक क्रिया–कलापों में नैसर्गिक मत के नियम को मानने वाले थे। उनके अनुसार, व्यक्ति को स्वयं का लाभ अर्जित करने के लिए औरों के हित के विषय में छोड़ देना चाहिए। डेविड रिकार्डो (1817) ने संवृद्धि के स्मिथ मॉडल क्लासिकल को भूमि के ह्रासमान प्रतिफल को शामिल करते हुए संशोधित किया है।

नोट

निर्धनता का दुष्चक्र एक चक्रीय समूह है जो परस्पर परिस्थितियों का समूह है। जो एक-दूसरे को प्रबल करते हैं। बिगपुश सिद्धांत 1943 में रोजेनस्टीन रोडेन द्वारा प्रतिपादित किया गया था।

27.1 निर्धनता का दुष्चक्र (Vicious Circle of Poverty)

निर्धनता का दुष्चक्र एक चक्रीय समूह है जो परस्पर ग्रन्थित संतुलन परिस्थितियों का समूह है जो एक दूसरे को प्रबल करते हैं। तीन प्रकार के दुष्चक्र हैं-पहला अल्पविकसित देशों में पूँजी की आपूर्ति से संबंधित है। पूँजी की कमी से निवेश भी कम हो जाता है तथा परिणाम होता है-आय का निम्न स्तर। दूसरा दुष्चक्र पूँजी के माँग पक्ष पर क्रिया करता है तथा तीसरे दुष्चक्र में अल्पविकसित संसाधन तथा पिछड़े हुए लोग शामिल हैं। अत: दुष्चक्र अर्थव्यवस्था के विस्तार को अवरुद्ध करते हैं तथा इन्हें तोड़ने के लिए संगठित प्रयत्न आवश्यक है।

दुष्चक्रों को तोड़ने के तरीके/विधियाँ

इसके लिए दो प्रकार की विचारधाराएँ हैं। पहली क्रमिक दृष्टिकोण तथा दूसरी आर्थिक विकास का बिग पुश।

क्रमिक दृष्टिकोण–क्रमिक दृष्टिकोण कहता है कि प्रारंभिक चरणों में अर्थव्यवस्था को सामाजिक उपरि पूँजी, कृषि सम्बन्धी सुधारों तथा छोटे पैमाने के उद्योग की स्थापना पर ध्यान केन्द्रित करना चाहिए। विकास के क्रमिक दृष्टिकोण को आधार उद्योग की संवृद्धि को अर्थव्यवस्था के अन्य क्षेत्रों के विस्तार द्वारा प्रोत्साहन प्राप्त होने से मिलता है। इसका अंतिम लक्ष्य विनिर्माण क्रिया स्थापित तथा प्रोन्नत करने का है।

बिग पुश दृष्टिकोण–विकास कार्यक्रमों के सफल होने की पर्याप्त गति पकड़ने पर इसे समस्त देश के तेजी से तथा विस्तारपूर्वक परिचालित होना चाहिए, ऐसा बिग पुश दृष्टिकोण का मानना है। बिग पुश दृष्टिकोण के समर्थन को मुख्यत: दो वर्गों में विभाजित किया जाता है। पहला वर्ग मानता है कि प्रति व्यक्ति आय में थोड़ी वृद्धि, उसके द्वारा प्रोत्साहित जनसंख्या वृद्धि द्वारा निगल ली जाएगी तथा दूसरे वर्ग का मानना है कि क्रयशक्ति तथा बाजार के आकार में वृद्धि करके दुष्चक्र को तोड़ना संभव है।

क्या आप जानते हैं दुष्चक्रों को सफलतापूर्वक तोड़ने के पश्चात ही अल्पविकसित देशों का आर्थिक तथा सामाजिक समाधान संभव है।

27.2 बिग पुश सिद्धांत (Big Push Theory)

यह सिद्धांत रोजेनस्टीन रोडेन द्वारा 1943 में प्रतिपादित किया गया था। उनका मानना है कि छोटी-छोटी तथा अलग-अलग कोशिशें आर्थिक संवृद्धि पर दीर्घकालीन प्रभाव नहीं डालतीं। रोडेन का सिद्धांत चार प्रकार की अविभाज्यताओं पर आधारित है जो कि निम्नलिखित हैं–

(*i*) **उत्पादन फलन की अविभाज्यता**–सामाजिक उपरि पूँजी, जैसे- ऊर्जा, परिवहन तथा संचार इन अविभाज्यताओं का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण रूप है। इसकी मूलभूत विशेषताएँ हैं कि सामाजिक उपरि पूँजी उत्पादनशील गतिविधियों में निवेश से पहले होनी चाहिए, इसका दीर्घ पक्वानावीघ काल होता है, इसका टिकाऊपन न्यूनतम है तथा यह लोक उपयोगिताओं का न्यूनतम उद्योग मिश्रण है।

(*ii*) **माँग की अविभाज्यता**–अल्पविकसित देशों में पूँजी निवेश केवल छोटे बाजार प्रदान करता है जिससे अनिश्चितता का सृजन होता है। वहीं दूसरी ओर बड़े उद्योग की एक साथ स्थापना एक-दूसरे के उत्पाद की माँग का सृजन करती है जिससे निवेशकर्त्ता को निवेश के लिए आवश्यक प्रोत्साहन मिलता है।

(*iii*) **बचतों की आपूर्ति की अविभाज्यता**–आय का स्तर निम्न होने के कारण निवेश की मात्रा कम होती है जिससे बचत भी कम होती है। अतिरिक्त आय तथा अधिक बचत के लिए निवेश की बड़ी राशि की आवश्यकता होती है।

नोट

(*iv*) **मनोवैज्ञानिक अविभाज्यताएँ**–रोडेन के अनुसार, छोटे तथा अलग-अलग संवृद्धि के प्रयत्न यथेष्ट प्रभाव नहीं डालते। अत: बड़ी राशि का निवेश ही इन अविभाज्यताओं के लिए आवश्यक है, क्योंकि इनके द्वारा ही अल्पविकसित देशों का विकास संभव है।

सिद्धांत की आलोचनाएँ–बिग पुश सिद्धांत की आलोचनाएँ निम्नलिखित हैं–

1. मीन्ट के अनुसार यह सिद्धांत अभाव की समस्या की उपेक्षा कर निवेश की बड़ी राशि पर जोर देता है तथा अल्पविकसित देश में पूँजी की कम उपलब्धता के कारण बड़ा दबाव बढ़ता है जिससे समस्याएँ उत्पन्न हो सकती हैं।
2. एच. ई. एलिस के अनुसार, बड़ी राशि का निवेश इच्छित परिणाम देने में असमर्थ होगा, क्योंकि बाजार में अपूर्णता तथा संरचनात्मक बाधाएँ भी होती हैं।
3. स्थानीय उपभोक्ता वस्तुओं तथा अधिकांश सार्वजनिक उपभोक्ताओं के उत्पादन में भी संभाव्य बाह्य मितव्ययिताएँ एक सीमित तरीके से प्राप्त हो सकती हैं। काफी लोचरहित माँग की स्थिति में निवेश उत्पादन बढ़ाने वाले नहीं बल्कि लागत घटाने वाले होते हैं।
4. कृषि तथा उद्योग एक-दूसरे के पूरक हैं, परंतु यह सिद्धांत पूँजीगत वस्तु उद्योग, उपभोक्ता वस्तु उद्योग तथा सामाजिक उपरि पूँजी में निवेश पर बल देता है, कृषि विकास की उपेक्षा करता है।
5. हला मोन्ट के अनुसार, बिग पुश के अंतर्गत प्रारंभ की गई विभिन्न जटिल विकास योजनाओं का समन्वय कठिन है। सरकार को कई बार इन विकास योजनाओं को बनाने तथा विभिन्न विकास प्रोजेक्टों को कार्यान्वित करने में कठिनाइयाँ झेलनी पड़ सकती हैं।
6. जेकोब वाइनर का कथन है कि लागत कम करने का परिणाम होता है–अविभाज्यताएँ या बाहरी मितव्ययिताएँ इससे उत्पादन का विस्तार नहीं होता तथा लागत की कमी के साथ-साथ उत्पादन का विस्तार भी बहुत महत्त्वपूर्ण है।
7. इस सिद्धांत द्वारा छोटे निवेशों की उपेक्षा जे.ए. एडलर को इस सिद्धांत का आलोचक बनाता है। उनका सांख्यिकीय विश्लेषण कहता है कि निवेश का तुलनात्मक रूप से निम्न स्तर, अतिरिक्त निवेश के रूप में अच्छा बदला चुकाता है।

परंतु विकास की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए बिग पुश बहुत आवश्यक है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

1. रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks)–

1. एच. ई. एलिस के अनुसार बड़ी राशि का निवेश इच्छित परिणाम देने में असमर्थ होगा, क्योंकि बाजार ..... बाधाएँ भी होती हैं।
2. मीन्ट के अनुसार, बिग पुश सिद्धांत अभाव की समस्या की उपेक्षा कर ..... की बड़ी राशि पर जोर देता है।
3. कृषि तथा उद्योग एक-दूसरे के पूरक हैं परन्तु बिग पुश सिद्धांत ..... की उपेक्षा करता है।
4. हला मोंट के अनुसार, बिग पुश के अन्तर्गत प्रारम्भ की गईं विभिन्न जटिल विकास योजनाओं का ..... कठिन है।
5. बिग पुश सिद्धांत द्वारा छोटे निवेशों की उपेक्षा ..... को इस सिद्धांत का आलोचक बनाता है।

27.3 क्रांतिक न्यूनतम प्रयत्न का सिद्धांत (Critial Minimum Efforts Theory)

यह सिद्धांत तीन कारकों-प्रति व्यक्ति आय, जनसंख्या वृद्धि तथा निवेश के मध्य संबंध पर आधारित है तथा हार्वे लीबेनस्टीन के नाम से जुड़ा है। आय सृजनकारी कारक के आय मन्दन कारक से ज्यादा शक्तिशाली होने पर ही

नोट

अर्थव्यवस्था में वृद्धि संभव है। प्रारंभिक प्रयत्न की प्रारंभिक शृंखला एक न्यूनतम आकार से अधिक होनी चाहिए। लीबेनस्टीन का यह भी मानना है कि एककस्ट्रोक में क्रांतिक न्यूनतम कोशिश आवश्यक नहीं है तथा 'क्रांतिक' शब्द इस तथ्य का सूचक है कि निवेश को कम-से-कम इतने स्तर का होना चाहिए कि दीर्घीकृत संवृद्धि प्राप्त करने के लिए प्रति व्यक्ति आय को बढ़ाया जा सके।

क्रांतिक न्यूनतम चेष्टा के लिए–निम्नलिखित कारकों द्वारा क्रांतिक न्यूनतम प्रयत्न आवश्यक हो जाता है–

1. उत्पादन के कुछ कारक अविभाज्य होते हैं।
2. बाहरी मितव्ययिता कई उद्योगों के बीच एक प्रकार की पारस्परिकता तथा अंतनिर्भरता विकसित होने पर उत्पन्न होती है।
3. कुछ न्यूनतम निवेश की आवश्यकता दीर्घीकृत संवृद्धि आरंभ करने के लिए होती है।
4. संवृद्धि के कुछ महत्त्वपूर्ण दृष्टिकोणों को विकसित करना आवश्यक होता है; जैसे-लाभ का शक्तिशाली प्रोत्साहन, वैज्ञानिक तथा तकनीकी प्रक्रिया को प्रोन्नत करने की तथा उद्यमशीलता के जोखिम को स्वीकार करने की तत्परता।

उपर्युक्त कारकों से पता लगता है कि अर्थव्यवस्था में कुछ न्यूनतम स्तर का निवेश आवश्यक है।

सिद्धांत की आलोचनाएँ–क्रांतिक न्यूनतम प्रयत्न को छोटे प्रयत्नों में खंडित करना सरल है इसलिए यह सिद्धांत 'बिग पुश' सिद्धांत की तुलना में अधिक वास्तविक है। परंतु निम्नलिखित कारणों के आधार पर इस सिद्धांत की आलोचना की जा सकती है–

1. आय में वृद्धि का जनसंख्या में वृद्धि पर सीधे प्रभाव पड़ता है। परंतु एक विशेष स्तर की आय के बाद जनसंख्या में कमी आती है।
2. मीन्ट का कथन है कि प्रति व्यक्ति आय तथा आय संवृद्धि दर के बीच फलनात्मक संबंध की दो अवस्थाएँ हैं। पहली प्रति व्यक्ति आय का स्तर बचत तथा निवेश की दर को प्रभावित करता है तथा दूसरी वित्तीय अवस्था में निवेश तथा फलीभूत उत्पादन के बीच सम्बन्ध देश के आर्थिक तथा सामाजिक व्यवस्था पर निर्भर करता है।
3. अल्पविकसित देशों में विकास के लिए बाहरी शक्तियाँ, जैसे-विदेशी पूँजी, विदेशी व्यापार, अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक संबंध आदि बहुत महत्त्वपूर्ण हैं।

उपर्युक्त कमियों के पश्चात भी दीर्घीकृत संवृद्धि ही विकास की रणनीति का अंतिम उद्देश्य है।

27.4 निम्न स्तर संतुलन जाल सिद्धांत (Low Level Equilibrium Trap)

निम्न स्तर संतुलन जाल सिद्धांत को माल्थसवादी जाल भी कहा जाता है तथा इसे आर. आर. नेल्सन द्वारा विकसित किया गया। प्रति व्यक्ति आय के क्रांतिक स्तर से नीचे रहने पर जनसंख्या की वृद्धि दर जो आय वृद्धि दर से बढ़ जाती है, अर्थव्यवस्था को हमेशा 'निम्न स्तर संतुलन जाल' तक वापस ले आती है। नेल्सन के अनुसार, जाल को उत्पन्न करने वाली चार सामाजिक तथा प्रौद्योगिकीय स्थितियाँ निम्नलिखित हैं–

1. जनसंख्या वृद्धि दर तथा प्रतिव्यक्ति आय के बीच उच्च सहसंबंध।
2. खेती के अयोग्य कृषि भूमि की कमी
3. उत्पादन के अकुशल तरीके
4. अतिरिक्त प्रति व्यक्ति आय को प्रति व्यक्ति वर्द्धमान तक निदेशित करने की निम्न प्रवणता।

दो अन्य कारक, सांस्कृतिक अकर्मण्यता तथा आर्थिक अकर्मण्यता हैं। नेल्सन के निम्न स्तर जाल से बचने के कुछ महत्त्वपूर्ण तरीके निम्नलिखित हैं–

1. देश में अनुकूल सामाजिक-आर्थिक वातावरण का होना।
2. सर्वत्र व्याप्त सरकारी निवेश कार्यक्रम का होना।

नोट

3. आय के वितरण को बदलने तथा निवेशकर्ताओं द्वारा संपदा के संचय को आसान बनाना।
4. परिवार के आकार को सीमित कर बृहदतर उत्पादन प्राप्त करना।
5. प्रदत्त आगतों से आय में वृद्धि के लिए आय तथा पूँजी का कुशल उपयोग।

जाल से बाहर आने के लिए आय की वृद्धि दर को जनसंख्या में वृद्धि की दर से उच्च स्तर तक बढ़ाने की आवश्यकता होती है।

सिद्धांत की आलोचनाएँ–

1. सिद्धांत का मत है कि प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि से, मृत्यु दर में गिरावट होती है तथा जनसंख्या की दर में वृद्धि होती है, परंतु अल्पविकसित देशों में मृत्यु की दर में कमी प्रति व्यक्ति आय स्तर में वृद्धि के कारण नहीं बल्कि चिकित्सा सुविधा में सुधार के कारण होती है।
2. प्रति व्यक्ति आय के स्तर तथा कुल आय वृद्धि की दर के बीच फलनात्मक संबंध सरल नहीं है।
3. विकसित देशों की अल्पकालिक आर्थिक गतिविधियाँ तथा अल्पविकसित देशों की दीर्घकालिक गतिविधियों के बीच कोई भी अंतर करना शाश्वत दृष्टिकोण द्वारा संभव नहीं।
4. यह सिद्धांत जनसंख्या वृद्धि को नियंत्रित करने में राज्य की भूमिका की उपेक्षा करता है।

निम्न संतुलन जाल से बचने का एकमात्र तरीका है–जनसंख्या को नियंत्रित कर राष्ट्रीय आय को बढ़ाना।

27.5 सामाजिक द्वैतवाद का सिद्धांत (Theory of Social Dualism)

यह सिद्धांत जे. एच. बोयके द्वारा विकसित किया गया। आर्थिक अर्थ में समाज की तीन विशेषताएँ हैं–सामाजिक भावना, संगठनात्मक रूप तथा उस पर प्रभावी तकनीक। द्वैत या अनेक समाज व्यवस्था का अर्थ है-समाज में एक साथ दो या अधिक सामाजिक व्यवस्थाओं का प्रचलन। द्वैतवाद पूर्वी समाज की कुछ विशेषताएँ इन्हें पश्चिमी समाज से अलग करती हैं, जो निम्नलिखित हैं–

1. आर्थिक वस्तुओं की जगह सामाजिक वस्तुओं से प्रभावित हो जाने के कारण पूर्वी समाज की संतुष्टि आराम से हो जाती है।
2. पूर्वी अर्थव्यवस्था की चेष्टा तथा जोखिम लेने की पश्चान-प्रवण वक्र होती है।
3. देशी उद्योग का कोई व्यावहारिक संगठन नहीं है।
4. पूर्वी समाज में पहल करने का तथा संचालन कौशल का अभाव होता है परंतु पश्चिमी समाज की यह विशेषता है।
5. लोग ग्रामीण समुदाय छोड़ने के इच्छुक नहीं होते।
6. पूर्वी समाज का निर्यात में मुख्य उद्देश्य विदेशी व्यापार है परंतु पश्चिमी समाज में निर्यात केवल आयात को संभव बनाते हैं।

बोयके के अनुसार, द्वैतवादी अर्थव्यवस्था में तेजी प्रति उत्पादनशील सिद्ध हो सकती है।

सिद्धांत की आलोचनाएँ

1. सीमित आवश्यकताओं की मान्यता मानवीय स्वभाव के प्रतिकूल है तथा आर्थिक संदर्भ में अप्रासंगिक।
2. यह श्रम संघ की भूमिका की उपेक्षा करता है।
3. बोयके के अनुसार, ग्रामीण श्रमिकों का गतिहीन होना तथा शहरी प्रवास का इच्छुक न होना अमानवीय है।
4. सामाजिक द्वैतवाद अल्पविकसित देशों की विशिष्टता के साथ-साथ विकसित देशों में भी प्राप्य है।

हिगिन्स का प्रौद्योगिकी द्वैतवाद का सिद्धांत बोयके के सिद्धांत का संशोधित संस्करण है, जिससे बेरोजगारी तथा पूँजी के अभाव जैसी समस्याओं का समाधान किया गया है।

नोट

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

2. सही विकल्प चुनिए (Choose the correct option)–

1. सामाजिक द्वैतवाद सिद्धांत के अनुसार, पूर्वी समाज की संतुष्टि होती है–
   (क) आर्थिक वस्तुओं से (ख) राजनीतिक वस्तुओं से
   (ग) सामाजिक वस्तुओं से (घ) वैज्ञानिक वस्तुओं से।
2. प्रवण वक्र जोखिम लेने की पहचान होती है–
   (क) पूर्वी अर्थव्यवस्था की (ख) अफ्रीकी अर्थव्यवस्था की
   (ग) पश्चिमी अर्थव्यवस्था की (घ) आस्ट्रेलियाई अर्थव्यवस्था की।
3. पहल करने एवं संचालन कौशल का अभाव होता है–
   (क) पूर्वी समाज में (ख) पश्चिमी समाज में
   (ग) अफ्रीकन समाज में (घ) इनमें से कोई नहीं।
4. पश्चिमी समाज की विशेषता है–
   (क) पहल करना (ख) संचालन कौशल
   (ग) जोखिम लेना (घ) a और b दोनों।
5. पूर्वी समाज में निर्यात का मुख्य उद्देश्य विदेशी है परन्तु पश्चिमी समाज में निर्यात आसान बनाते हैं–
   (क) आयात को (ख) निर्यात को
   (ग) आयात-निर्यात दोनों को (घ) इनमें से कोई नहीं।

27.6 प्रौद्योगिकीय द्वैतवाद का सिद्धांत (Theory of Industrial Dualism)

यह सिद्धांत बेन्जामिन हिगिन्स द्वारा विकसित किया गया। प्रौद्योगिकी द्वैतवाद का सिद्धांत दो वस्तुओं, दो उत्पादन कारकों, उत्पादन बंदोबस्त, उत्पादन फलन औद्योगिक क्षेत्र तथा ग्रामीण क्षेत्र के आस-पास प्रतिपादित किया गया है। औद्योगिक क्षेत्र में स्थिर कारक अनुपात तथा ग्रामीण क्षेत्र में बढ़ती हुई जनसंख्या की वजह से प्रौद्योगिकीय द्वैतवाद समस्या को गंभीर बनाता है।

नोट्स अल्पविकसित अर्थव्यवस्था के उन्नत क्षेत्र तथा पारंपरिक क्षेत्र में भिन्न उत्पादनों के फलन का उपयोग प्रौद्योगिकीय द्वैतवाद कहलाता है।

सिद्धांत की आलोचनाएँ–सिद्धांत की सीमितताएँ निम्नलिखित हैं–

1. औद्योगिक क्षेत्र में स्थिर तकनीकी गुणांकों की कल्पना बिना आनुभविक सत्यापन के उचित नहीं है।
2. उपादान कीमतों को उपादान बंदोबस्त के अलावा अन्य कारक भी प्रभावित करते हैं।
3. उपादान अनुपातों को प्रभावित करने वाले अन्य सांस्थानिक तथा मनोवैज्ञानिक कारकों की सिद्धांत में उपेक्षा की गई है।
4. श्रम अवशोषित उत्पादन तकनीकों के उपयोग की भी इस सिद्धांत में उपेक्षा की गई है।
5. इस सिद्धांत में हिगिन्स ग्रामीण क्षेत्र में छद्म बेरोजगारी की प्रकृति तथा औद्योगिक क्षेत्र में श्रम आपूर्ति की अधिकता को स्पष्ट नहीं कर पाता है।

नोट

27.7 लेविस का मॉडल (Lewis Model)

यह सिद्धांत प्राथमिक जीवन निर्वाह स्तर की अर्थव्यवस्था के संरचनात्मक रूपांतर पर फोकस करते हुए पचास के दशक में डब्लू. ऑर्थर द्वारा प्रतिपादित किया गया। यह मॉडल निम्नलिखित तरीके से कार्य करता है–

1. अल्पविकसित देशों में श्रम जीवन निर्वाह स्तर के बराबर मजदूरी पर असीमित मात्रा में उपलब्ध होता है।
2. लेविस के अनुसार, कौशलयुक्त श्रम एक अस्थायी बाधा है तथा कौशल-अयुक्त श्रमिकों को प्रशिक्षण सुविधाएँ प्रदान कर इन्हें दूर किया जा सकता है।
3. उद्यमकर्ताओं को अतिरेक उपलब्ध होता है, क्योंकि पूँजीवादी क्षेत्रक में श्रम की सीमांत उत्पादकता बाजार मजदूरी दर से ऊँची होती है।
4. बैंक ऋण तथा लाभों द्वारा पूँजी का सृजन होता है, जिससे उत्पादन तथा रोजगार को विस्तार मिलता है।
5. संवृद्धि की प्रक्रिया अनिश्चित नहीं होती तथा निम्नलिखित कारकों में से किसी के भी द्वारा प्रभावित हो जाती है।
   (*i*) पूँजी निर्माण की सतत प्रक्रिया द्वारा कोई अतिरेक श्रम बाकी न छोड़ने पर।
   (*ii*) पूँजीवादी क्षेत्रक में तेजी से विस्तार होने पर जीवन क्षेत्रक में जनसंख्या में कमी हो जाने पर तथा अन्य क्षेत्र में श्रम की औसत उत्पादकता में वृद्धि हो जाने पर।
   (*iii*) पूँजीवादी क्षेत्र का तेजी से विस्तार, कच्चे माल तथा खाद्य कीमतों में वृद्धि उसे जीवन निर्वाह क्षेत्र के विरुद्ध कर दें तो पूँजीपतियों को श्रमिकों को मजदूरी अधिक देनी पड़ती है।
   (*iv*) जीवन निर्वाह क्षेत्र के उत्पादन की सुधरी हुई तकनीकें अपनाने से पूँजीवादी क्षेत्र में मजदूरी बढ़ जाएगी।
   (*v*) यदि पूँजीवादी क्षेत्र में मजदूर अधिक मजदूरी के लिए विद्रोह करके जीत जाते हैं तो पूँजीपति अतिरेक तथा पूँजी निर्माण की दर गिर जाती है। अत: अतिरेक श्रम के पूर्णत: समाप्त हो जाने पर तथा मजदूरों के जीवन निर्वाह स्तर के ऊपर उठने पर संवृद्धि की प्रक्रिया रुक जाती है।

मॉडल की आलोचनाएँ–

1. यह मॉडल पूँजी संचय तथा नौकरियों के सृजन के बीच आनुपातिक संबंध, ग्रामीण अतिरेक श्रम तथा प्रतियोगी आधुनिक क्षेत्र श्रम बाजार की विद्यमानता जैसी अवास्तविक मान्यताओं पर आधारित है।
2. इस मॉडल के कुछ रिसाव अल्पविकसित देशों में गुणांक के परिचालन को प्रतिबद्ध कर विस्तार प्रक्रिया विकास गतिविधि आरंभ नहीं कर पाते।
3. जीवन निर्वाह क्षेत्रक से पूँजीपति क्षेत्रक को श्रम का प्रवास देशांतरण कठिन है।
4. वास्तविक मजदूरी का स्तर जीवन निर्वाह स्तर पर स्थिर नहीं रह सकता है।
5. यह आय के असमान वितरण को स्थायी बनाता है।

संक्षेप में इस मॉडल को समकालीन विकासशील राष्ट्रों की वास्तविकता के उपयुक्त बनाने के लिए काफी संशोधन की जरूरत है।

27.8 रेनिस और फाई मॉडल (Ranis and Fei Model)

इस मॉडल की मान्यताएँ हैं–द्वैतवाद की विद्यमानता, हर श्रम का गैर-कृषि क्षेत्र में हस्तांरण, कृषि क्षेत्र में अतिरेक श्रम की सीमांत उत्पादकता का शून्य होना, औद्योगिक क्षेत्र के विकास संवृद्धि को वित्त देने के लिए कृषि क्षेत्र का अतिरेक सृजन करना तथा औद्योगिक क्षेत्र के विस्तार से कृषि श्रमिकों की अधिकतम संख्या को अवशोषित कर लेना। अत: कृषि से गैर-कृषि क्षेत्र को श्रम की गतिशीलता रूपांतर तथा कृषि का विकास इस मॉडल की अनिवार्य शर्त है।

नोट

मॉडल की आलोचना

1. खेतिहर श्रमिकों का ग्रामीण से शहरी क्षेत्रों को प्रवास आसान प्रक्रिया नहीं यह, विभिन्न सामाजिक-आर्थिक कारकों द्वारा विरोधित होती है।
2. श्रमिकों की सीमांत उत्पादकता को शून्य माना गया है।
3. मॉडल के अनुसार, श्रम के देशांतरण से, कृषि क्षेत्र औद्योगिक क्षेत्र का वित्त देने के लिए अतिरेक सृजन कर पाएगा, परंतु यह नहीं पता कि किसके द्वारा।
4. इस मॉडल की मान्यता का आधार बंद अर्थव्यवस्था है।

टास्क रेनिस और फी मॉडल में क्या कमी है?

27.9 हैरिस-टोडारो मॉडल (Haris-Todaro Model)

हैरिस-टोडारो मॉडल बढ़ते हुए शहरी रोजगार के संदर्भ में त्वरित ग्रामीण नगरीय प्रवास के मुख्य विरोधाभासी संबंध को स्पष्ट करता है। इसका प्रतिपादन जॉन आर. हैरिस तथा माइकल पी. टोडारो द्वारा किया गया। इसके चार मूलभूत तत्त्व हैं–

(*i*) शहरी क्षेत्र में रोजगार पाने की संभाविता सीधे शहरी रोजगार दर से संबंधित है।

(*ii*) प्रवास का निर्णय वास्तविक की बजाय अपेक्षित शहरी ग्रामीण वास्तविक मजदूरी विभेद पर निर्भर है।

(*iii*) शहरी अवसर संवृद्धि दरों से अधिक प्रवास दरें संभव तथा तर्कसंगत दोनों हैं।

(*iv*) ग्रामीण नगरीय प्रवास तुलनात्मक लाभ तथा लागत, वित्तीय तथा मनोवैज्ञानिक द्वारा प्रेरित होते हैं।

मॉडल के निहितार्थ–इस मॉडल की रणनीति के मुख्य तत्त्व निम्नलिखित हैं–

1. **उपयुक्त ग्रामीण-शहरी आर्थिक संतुलन उत्पन्न करना**–इस तत्त्व पर आधारित रणनीति एक ओर शहरी तथा दूसरी ओर ग्रामीण बेरोजगारी की समस्या को हल करती है तथा साथ-ही-साथ प्रवास को हतोत्साहित भी करती है।
2. **श्रम-गहन उद्योग**–ग्रामीण शहरी प्रवास को धीमा करने तथा ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के अवसर के सृजन के लिए, श्रम-गहन उद्योगों पर जोर देना आवश्यक है।
3. **उत्पादन की श्रम-गहन प्रौद्योगिकियाँ**–विकासशील देशों को विकास के लिए प्रारंभिक चरणों में श्रम प्रौद्योगिकी पर पूर्णत: निर्भर रहना चाहिए।
4. **उपादान कीमत विकृतियाँ नष्ट करना**–रोजगार के अवसर के सृजन तथा दुर्लभ पूँजी के बेहतर उपयोग के लिए उपादान कीमत के निरूपण को समाप्त करना आवश्यक है।
5. **शिक्षा और रोजगार के बीच आबद्ध**–मानवीय जीवन की गुणवत्ता बढ़ने, संतोषजनक तथा फलदायी जीवन जीने और आर्थिक व सामाजिक प्रगति सुनिश्चित करने की योग्यता में शिक्षा मूलभूत है तथा शिक्षा के इन लाभों को रोजगार सृजन के औजार के रूप में देखना चाहिए।
6. **जनसंख्या संवृद्धि में कमी**–रोजगार सृजनकारी नीति को, निर्धनता तथा असमानता में कमी, परिवार नियोजन तथा ग्रामीण स्वास्थ्य सेवाओं की विस्तारित व्यवस्था के द्वारा जनसंख्या संवृद्धि को कम करना चाहिए।
7. **स्थानीय स्वायत्त सरकारों की भूमिका**–स्थानीय अधिकारियों को लोगों के निष्पादन एवं सेवा के लिए उत्तरदायी बनाए जाने पर वे प्रमुख भूमिका अदा करते हैं। सरकार के संगठन में विकेंद्रीकरण मुख्य अंतर्राष्ट्रीय प्रवृत्ति रही है।

नोट

मॉडल की प्रासंगिकता–मजदूरी के सांस्थानिक रूप से निर्धारित न होने पर भी इस मॉडल की विकासशील देशों में प्रासंगिकता है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

3. निम्नलिखित कथनों में सत्य/असत्य की पहचान करें–

1. बैंक ऋण तथा लाभों द्वारा पूँजी का सृजन होता है।
2. वास्तविक महदूरी का स्तर जीवन निर्वाह स्तर पर स्थिर रह सकता है।
3. ग्रामीण नगरीय प्रवास तुलनात्मक लाभ तथ लागत, वित्तिय तथा मनोवैज्ञानिक द्वारा प्रेरित होते हैं।
4. सरकार के संगठन में मुख्य अंतर्राष्ट्रीय प्रवृत्ति रही है।

27.10 सारांश (Summary)

- निर्धनता का दुष्चक्र एक चक्रीय समूह है जो परस्पर ग्रन्थित संतुलन परिस्थितियों का समूह है जो एक दूसरे को प्रबल करते हैं। तीन प्रकार के दुष्चक्र हैं-पहला अल्पविकसित देशों में पूँजी की आपूर्ति से संबंधित है। पूँजी की कमी से निवेश भी कम हो जाता है तथा परिणाम होता है-आय का निम्न स्तर। दूसरा दुष्चक्र पूँजी के माँग पक्ष पर क्रिया करता है तथा तीसरे दुष्चक्र में अल्पविकसित संसाधन तथा पिछड़े हुए लोग शामिल हैं।
- बिग पुश दृष्टिकोण के समर्थन को मुख्यत: दो वर्गों में विभाजित किया जाता है। पहला वर्ग मानता है कि प्रति व्यक्ति आय में थोड़ी वृद्धि, उसके द्वारा प्रोत्साहित जनसंख्या वृद्धि द्वारा निगल ली जाएगी तथा दूसरे वर्ग का मानना है कि क्रयशक्ति तथा बाजार के आकार में वृद्धि करके दुष्चक्र को तोड़ना संभव है।
- अल्पविकसित देशों में पूँजी निवेश केवल छोटे बाजार प्रदान करता है जिससे अनिश्चितता का सृजन होता है। वहीं दूसरी ओर बड़े उद्योग की एक साथ स्थापना एक-दूसरे के उत्पाद की माँग का सृजन करती है जिससे निवेशकर्त्ता को निवेश के लिए आवश्यक प्रोत्साहन मिलता है।
- रोडेन के अनुसार, छोटे तथा अलग-अलग संवृद्धि के प्रयत्न यथेष्ट प्रभाव नहीं डालते। अत: बड़ी राशि का निवेश ही इन अविभाज्यताओं के लिए आवश्यक है, क्योंकि इनके द्वारा ही अल्पविकसित देशों का विकास संभव है।
- निम्न स्तर संतुलन जाल सिद्धांत को माल्थसवादी जाल भी कहा जाता है तथा इसे आर. आर. नेल्सन द्वारा विकसित किया गया। प्रति व्यक्ति आय के क्रांतिक स्तर से नीचे रहने पर जनसंख्या की वृद्धि दर जो आय वृद्धि दर से बढ़ जाती है, अर्थव्यवस्था को हमेशा 'निम्न स्तर संतुलन जाल' तक वापस ले आती है।
- आर्थिक अर्थ में समाज की तीन विशेषताएँ हैं–सामाजिक भावना, संगठनात्मक रूप तथा उस पर प्रभावी तकनीक। द्वैत या अनेक समाज व्यवस्था का अर्थ है-समाज में एक साथ दो या अधिक सामाजिक व्यवस्थाओं का प्रचलन।
- हैरिस-टोडारो मॉडल बढ़ते हुए शहरी रोजगार के संदर्भ में त्वरित ग्रामीण नगरीय प्रवास के मुख्य विरोधाभासी संबंध को स्पष्ट करता है। इसका प्रतिपादन जॉन आर. हैरिस तथा माइकल पी. टोडारो द्वारा किया गया।

27.11 शब्दकोश (Keywords)

- **आबद्ध–** जकड़ा हुआ, बँधा हुआ।
- **संवृद्धि–** वृद्धि, बढ़ोतरी।

नोट

27.12 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. निर्धनता दुष्चक्र क्या है? यह किस प्रकार लोगों को प्रभावित करता है। विवेचन कीजिए।
2. बिगपुश सिद्धांत से आप क्या समझते हैं? आलोचनात्मक विश्लेषण कीजिए।
3. सामाजिक द्वैतवाद एवं प्रौद्योगिकीय द्वैतवाद में अन्तर स्पष्ट कीजिए।
4. लेविस मॉडल को समझाइए।
5. रेनिस और फी मॉडल का विश्लेषण कीजिए।
6. हैरिस-टोडारो मॉडल का वर्णन कीजिए।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

1. 1. अपूर्णता तथा संरचनात्मक 2. निवेश 3. कृषि विकास
4. समन्वय 5. जे.ए. एडलर

2. 1. (ख) 2. (क) 2. (क) 4. (घ)
5. (क)

3. 1. सत्य 2. असत्य 3. सत्य 4. सत्य

27.13 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. *विकास का अर्थशास्त्र एवं आयोजन*: डॉ. एम. एल. झिंगन: वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा. लि.
2. *संवृद्धि एवं विकास का अर्थशास्त्र*: डॉ जे. पी मिश्रा: साहित्य भवन पब्लिकेशन्स एवं डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.) लि. रजिस्टर्ड कार्यालय नई दिल्ली

इकाई-28: विकास कूटनीतिः संसाधनों का आबंटन (Development Strategies : Allocation of Resources)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objective)

प्रस्तावना (Introduction)

28.1 विकास कूटनीति (Development Strategies)

28.2 सार्वजनिक व निजी क्षेत्रों में संसाधनों का आबंटन (Allocation of Resources in Public and Private Sectors)

28.3 अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में संसाधनों का आबंटन (Allocation of Resources in Different Sectors of Economy)

28.4 सारांश (Summary)

28.5 शब्दकोश (Keywards)

28.6 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

28.7 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objective)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- विकास की कूटनीति एवं सार्वजनिक तथा नीजि क्षेत्रों में संसाधनों के आबंटन को समझने में।
- अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में संसाधनों को आबंटन की व्याख्या करने में।

प्रस्तावना (Introduction)

भारत एक विकसित देश है जहाँ नियोजित ढंग से आर्थिक विकास करने के प्रयत्न किए जा रहे हैं। हमारे पास आवश्यकता की तुलना में साधन सीमित हैं। अतः उसके आबंटन की समस्या बनी रहती है।

28.1 विकास कूटनीति (Development of Strategies)

Development Strategies– व्यूह रचना या 'कूटनीति' या 'विकास विधि' से सामान्यतः अभिप्राय किसी विषय अथवा क्षेत्र-विशेष से संबंधित नीतियों, पद्धतियों, सिद्धान्तों व कार्य प्रणालियों का वह आदर्श सामंजस्य है, जिसके द्वारा समस्या का सर्वोपयुक्त समाधान ढूँढने का प्रयास किया जाता है।

आर्थिक नियोजन के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए योजना में जो नीति अपनाई जाती है उसे योजना की व्यूह रचना कहते हैं। इसे विकास युक्ति या विकास कूटनीति भी कहा जाता है। इस प्रकार विकास युक्ति का आशय उन उपायों, नीतियों एवं प्राथमिकताओं से है जिन्हें योजना के लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए अपनाया जाता है। मोटे तौर पर हमारे नियोजन की व्यूह रचना अर्थव्यवस्था के सन्तुलित विकास पर आधारित रही है किन्तु यह

नोट

उल्लेखनीय है कि आर्थिक दशाओं के बदले परिवेश में विविध क्षेत्रों से सन्तुलन बनाये रखने के लिए प्रत्येक योजना में कुछ क्षेत्रों को ऊँची प्राथमिकता देकर असन्तुलित विकास की कूटनीति का अनुसरण किया गया हो। इसकी पुष्टि विभिन्न योजनाओं के अध्ययन से भी होती है।

नियोजित विकास के लिए जो व्यूह-रचना अपनायी गयी है, उसे अथव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में साधनों के आबंटन या विनियोग के रूप में व्यक्त किया जा सकता है। एक योजना की तुलना में दूसरी योजना में विनियोग के प्रारूप में अन्तर परिलक्षित होता है।

भारत एक विकसित देश है जहाँ नियोजित ढंग से आर्थिक विकास करने के प्रयत्न किये जा रहे हैं। हमारे पास आवश्यकता की तुलना में साधन सीमित हैं। अत: उनके उपयुक्त आबंटन की समस्या बनी रहती है।

संसाधनों के आबंटन की समस्या का अध्ययन हम निम्नलिखित दो शीर्षकों के अंतर्गत कर सकते हैं:

1. सार्वजनिक क्षेत्र व निजी क्षेत्र में संसाधनों का आबंटन या विनियोग,
2. अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में संसाधनों का आबंटन।

28.2 सार्वजनिक क्षेत्र व निजी क्षेत्र में संसाधनों का आबंटन (Allocation of Resources in Public and Private Sectors)

प्रत्येक योजना में योजना आयोग आर्थिक विकास के लिए कुल परिव्यय (Outlay) निर्धारित करता है जिसका एक भाग निजी क्षेत्र द्वारा जुटाया जाता है और दूसरा भाग सार्वजनिक क्षेत्र द्वारा। सारणी 1 में विभिन्न योजनाओं में प्रस्तावित परिव्यय, निजी और सार्वजनिक क्षेत्र का भाग और सार्वजनिक क्षेत्र का वास्तविक परिव्यय दर्शाया गया है।

सारणी-1 विभिन्न योजनाओं में निजी व सार्वजनिक क्षेत्र में योजना परिव्यय

कालावधि		कुल प्रस्ताविक योजना परिव्यय	कुल निजी क्षेत्र परिव्यय	कुल प्रस्तावित सार्वजनिक क्षेत्र परिव्यय	वास्तविक सार्वजनिक क्षेत्र परिव्यय
पहली योजना	(1951.56)	3,870 (100.0)	1,800 (46.5)	2,070 (53.5)	1,960
दूसरी योजना	(1956.61)	7,900 (100.0)	3,100 (39.2)	4,800 (60.8)	4,672
तीसरी योजना	(1961.66)	11,600 (100.0)	4,100 (35.3)	7,500 (64.7)	8,577
चौथी योजना	(1969.74)	24,880 (100.0)	8,980 (36.1)	15,900 (63.9)	15,779
पाँचवीं योजना	(1974.79)	53,410 (100.0)	16,160 (30.3)	37,250 (69.7)	39,426
छठी योजना	(1980.85)	1,58,710 (100.0)	61,210 (38.6)	97,500 (61.4)	1,09,292
सातवीं योजना	(1985.90)	3,48,150 (100.0)	1,68,150 (48.3)	1,80,000 (51.7)	2,18,730
आठवीं योजना	(1992.97)	8,71,000 (100.0)	4,37,000 (50.2)	4,34,100 (49.8)	4,34,100
नौवीं योजना	(1997.2002)	22,05,000	13,45,800 (61.0)	8,59,200 (39.0)	8,59,200

नोट–ब्रैकिट में दिये गये आँकड़े कुल योजना परिव्यय का प्रतिशत है।

टास्क परिवाहन, संचार एवं मानवीय संसाधन के विकास पर किये गये सार्वजनिक व्यय बताइए।

नोट

उपरोक्त सारणी के अंकों से स्पष्ट है कि :

1. निरपेक्ष रूप से सार्वजनिक व निजी क्षेत्र के निवेश व्यय में निरन्तर वृद्धि हुई है।
2. जहाँ तक कुल विनियोग व्यय में सार्वजनिक व निजी क्षेत्र के प्रतिशत योगदान का प्रश्न है, सार्वजनिक क्षेत्र का भाग जो पहली योजना में 54 प्रतिशत था, बढ़कर पाँचवीं योजना में 70 प्रतिशत हो गया। इसके पश्चात् इसमें निरन्तर गिरावट आयी है जो यह परिलक्षित करता है कि भारत सरकार द्वारा अपनायी गयी नई आर्थिक नीति के अंतर्गत सार्वजनिक क्षेत्र का प्रभुत्व धीरे-धीरे गिर रहा है और इसका प्रतिस्थापन निजी क्षेत्र द्वारा किया जा रहा है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें– (Fill in the blanks)

1. नियोजन की व्यूह-रचना ..... के सन्तुलित विकास पर आधारित रही है।
2. निरपेक्ष रूप से सार्वजनिक व निजी क्षेत्र के ..... में निरन्तर वृद्धि हुई है।
3. विकास युक्ति का आशय उन उपायों, नीतियों एवं प्राथमिकताओं से है जिन्हें ..... के लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए अपनाया जाता है।
4. योजना आयोग ही योजना के लिए कुल ..... निर्धारित करता है।

28.3 अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में संसाधनों का आबंटन (Allocation of Resources in Different Sectors of Economy)

सार्वजनिक क्षेत्र में व्यय अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में किया गया है, जैसे–कृषि और सिंचाई, शक्ति, उद्योग, परिवहन और संचार तथा सार्वजनिक सेवाएँ आदि। विभिन्न योजनाओं में सार्वजनिक क्षेत्र में व्यय का क्षेत्रवार विवरण आगे सारणी में दिया गया है।

सारणी-2 के अंकों की सहायता से हम विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में विनियोग के प्रारूप का अध्ययन करेंगे।

नोट

तालिका 2– विभिन्न पंचवर्षीय योजनओं में वास्तविक परिव्यय का ढाँचा

विकास शीर्ष	पहली योजना (1951-56)	दूसरी योजना (1956-61)	तीसरी योजना (1961-66)	चौथी योजना (1969-74)	पाँचवीं योजना (1974-79)	छठी योजना (1980-85)	सातवीं योजना (1985-90)	आठवीं योजना (1992-97)	नौवीं योजना (1997-2002)
1. कृषि एवं संबद्ध क्षेत्र	290	549	1,089	220	4,865	15,201	31,507	63,643	1,14,634
	(14.8)	(11.7)	(12.7)	(14.7)	(12.3)	(13.9)	(14.4)	(14.7)	(13.3)
2. सिंचाई एवं बाढ नियंत्रण	434	430	665	1,354	3,877	10,930	16,590	32,525	55,598
	(22.2)	(9.2)	(7.8)	(8.6)	(9.8)	(10.0)	(7.6)	(7.5)	(6.5)
3. ऊर्जा	149	452	1,252	2,932	7,400	30,751	61,689	1,15,561	2,15,545
	(7.6)	(9.7)	(14.6)	(18.8)	(18.8)	(28.1)	(28.2)	(26.6)	(25.1)
4. ग्रामोद्योग तथा लघु उद्योग	42	187	241	243	592	1,945	3,249	6,334	–
	(2.1)	(4.0)	(2.8)	(1.5)	(1.5)	(1.8)	(1.5)	(1.5)	–
5. उद्योग और खनिज	55	938	1,726	2,864	8,989	15,002	25,971	46,922	69,972
	(2.8)	(20.1)	(20.1)	(18.2)	(22.8)	(13.7)	(11.9)	(10.8)	(8.1)
6. परिवहन तथा संचार	518	1,261	2,112	3,080	6,870	17,678	37,974	81,036	1,68,940
	(26.4)	(27.0)	(24.6)	(19.5)	(17.4)	(16.2)	(17.4)	(18.7)	(19.6)
7. सामाजिक संवाएँ सामान्य आर्थिक संवाएँ व अन्य	472	855	1,492	2,986	6,710	17,790	41,747	88,079	2,34,512
	(24.1)	(18.3)	(17.4)	(18.9)	(17.4)	(16.3)	(19.0)	(20.3)	(27.3)
योग	1,960	4,672	8,577	15,779	39,426	1,09,292	2,18,730	4,34,100	8,59,200
	(100.0)	(100.0)	(100.0)	(100.0)	(100.0)	(100.0)	(100.0)	(100.0)	(100.0)

1. प्रस्तावित

नोट– कोष्ठकों में सार्वजनिक परिव्यय के योग का प्रतिशत भाग दिया गया है।

नोट

उपर्युक्त सारणी के आधार पर विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों, यथा–कृषि, उद्योग, ऊर्जा आदि में सार्वजनिक क्षेत्र में किये गये परिव्यय का हम विश्लेषण करेंगे।

(i) कृषि एवं सिंचाई (Agriculture and Irrigation)– प्रथम योजना को छोड़कर जब कृषि एवं सिंचाई को कुल परिव्यय का 37% आबंटित किया गया अन्य सभी योजनाओं में कृषि एवं सिंचाई को कुल योजना परिव्यय का 20 से 24% दिया गया। कृषि क्षेत्र को अपेक्षाकृत निम्न आबंटित राशि की गाँधीवादी अर्थशास्त्रियों ने कटु आलोचना की। उनका मत है कि भारतवर्ष एक कृषि-प्रधान देश है ओर इसकी समृद्धि कृषि के विकास पर ही आधारित है अत: कृषि क्षेत्र को योजनाओं में सापेक्षिक रूप से अधिक राशि आबंटित की जानी चाहिए।

(ii) उद्योग व खनिज (Industry and Minerals)– प्रथम योजना में सार्वजनिक क्षेत्र के प्रोग्राम में कृषि तथा सिंचाई को उच्च प्राथमिकता उद्योगों को निम्न प्राथमिकता की कीमत पर दी गयी। पूँजी संसाधनों की कमी के कारण बड़े पैमाने पर चलाए जा रहे उपभोक्ता वस्तु उद्योगों का विकास पूर्णतया निजी क्षेत्र पर ही छोड़ दिया गया परन्तु दूसरी योजना से उद्योग एवं खनिज का कुल योजना परिव्यय में भाग जो पहली योजना में केवल 6% था, बढ़ाकर दूसरी योजना में 2% कर दिया गया। पाँचवीं योजना तक उद्योगों को आबंटन की मात्रा 18 से 23% के बीच रही। इसके बाद प्रतिशत में कमी आई है। यह सत्य है कि द्वितीय योजना काल से उद्योगों के विकास और उसमें विशेष रूप से प्रमुख एवं भारी उद्योगों के विकास को प्राथमिकता प्रदान की गई क्योंकि देश के आर्थिक विकास को प्रोत्साहित करने में यदि सबसे बड़ा कोई कारक हो सकता है तो वह आधुनिक तकनीक का प्रयोग है और आधुनिक तकनीक के प्रयोग के लिए बड़े-पैमाने पर उत्पादन तथा बड़ी आर्थिक क्रियाओं में साधनों का आबंटन जरूरी है।

क्या आप जानते हैं भारतीय योजनाओं में, प्रथम चार योजनाओं में सार्वजनिक क्षेत्र में ऊर्जा को निम्न प्राथमिकता दी गई है।

यहाँ उल्लेखनीय है कि सार्वजनिक क्षेत्र का उद्योगों पर परिव्यय का भाग ग्रामीण व लघु उद्योगों के लिए अत्यन्त कम रखा गया था। इस कारण गाँधीवादी अर्थशास्त्रियों की एक लम्बे समय से यह शिकायत रही है कि लघु एवं कुटीर उद्योगों के प्रति तो केवल दिखावटी सहानुभूति ही प्रकट की गई और यह कहा गया कि वे रोजगार, आय के विकेन्द्रीकरण और उत्पादन एवं कीमत-स्तर पर अनुकूल प्रभाव डालते हैं परन्तु वावस्तव में लघु और विशेषकर छोटे क्षेत्र (Tiny Sector) के लिए कुछ ठोस कार्यक्रम नहीं बनाये गये।

(iii) ऊर्जा (Energy)– औद्योगिक विकास के कार्यक्रमों को सफल बनाने के लिए ऊर्जा के साधनों का विकास भी जरूरी है। जैसे ही उद्योगों का विकास होता है, अर्थव्यवस्था में ऊर्जा के साधनों की माँग बढ़ती है, इसी प्रकार अर्थव्यवस्था के सामान्य आर्थिक विकास के साथ विभिन्न क्षेत्रों में ऊर्जा की माँग में वृद्धि होती है परन्तु भारत में प्रथम चार योजनाओं में ऊर्जा-विकास पर दुर्भाग्यवश आबंटन नीचा था। कुल परिव्यय का 10 से 15 प्रतिशत। उस समय पावर को दी गयी निम्न प्राथमिकता (Low Priority) को छोड़कर उचित ठहराया गया कि अभी उद्योगों का विकास तेजी से नहीं हो रहा है और ग्रामीण बिजलीकरण (Rural Electrification) और रेल परिवहन प्रणाली के लिए बिजली अपर्याप्त है और इसलिए इस पर अधिक विनियोग करने की जरूरत नहीं है। आयोजकों का यह निर्णय गलत सिद्ध हुआ। तीव्र औद्योगीकरण और ग्राम तथा शहरी क्षेत्रों में पावर की माँग में भारी विस्तार के परिणामस्वरूप देश में पावर का भारी अभाव अनुभव किय गया और इसका देश के उत्पादन पर गम्भीर दुष्प्रभाव पड़ा परन्तु छठी व सातवीं योजनाओं पर आबंटन को तेजी से बढ़ाकर 28 प्रतिशत कर दिया गया।

इस क्षेत्र की सबसे बड़ी समस्या यह है कि हमारी अर्थव्यवस्था में अन्य देशों की तुलना में ऊर्जा के निर्माण एवं उपभोग की मात्रा बहुत कम है, जबकि इसकी माँग तथा आवश्यकता बहुत अधिक है। इसके कारण ऊर्जा की

नोट

स्वल्पता उत्पन्न होती है तथा कई उद्यमों को तो अपना उत्पादन कम या बन्द करना पड़ता है। इसके परिणामस्वरूप उत्पादन क्षमता का पूर्ण उपयोग नहीं हो पाता। इसीलिए विभिन्न योजनाओं में ऊर्जा के उत्पादन की सम्भावनाओं का पूर्ण उपयोग करने का प्रयास किया जा रहा है।

(पअ) परिवहन एवं संचार (ज्तंदेचवतज ंदक ब्वउउनदपबंजपवद)ख्र प्रथम दो योजनाओं में परिवहन एवं संचार पर आबंटन 26 से 27 प्रतिशत था। परिवहन एवं संचार के साधन अर्थव्यवस्था के कृषि एवं औद्योगिक क्षेत्र के विकास के लिए आधारभूत ढाँचा प्रस्तुत करते हैं लेकिन उत्तरोत्तर योजनाओं में इस क्षेत्र पर होने वाला प्रतिशत व्यय कम होता जा रहा है। निम्न आबंटन का यह अर्थ नहीं कि परिवहन क्षेत्र का पूर्ण विकास हो चुका है और इस कारण अन्य क्षेत्रों को साधन उपलब्ध कराये जाने चाहिए। वास्तव में, देश में नियमित रूप से परिवहन संबंधी अड़चनें बनी रही हैं और उत्पादन एवं आय की मन्द गति को प्रभावित करने वाले कारणों में यह भी एक कारण था। इसीलिए आठवीं योजना में इस पर परिव्यय को तीव्र रूप में बढ़ाकर 23 प्रतिशत कर दिया गया।

सामाजिक एवं अन्य सेवाएँ (Social and Other Savings)– इन मदों में ऐसी महत्त्वपूर्ण सेवाएँ, जैसे–शिक्षा, स्वास्थ्य और परिवार नियोजन (Family Planning), आवास, श्रम कल्याण और पिछड़े वर्गों का कल्याण आदि शामिल की जाती हैं और योजनाओं में इन सेवाओं को उपलब्ध कराने के लिए दुर्लभ संसाधनों का काफी बड़ा भाग आबंटित किया जाता है। ये सेवाएँ गरीब और आर्थिक दृष्टि से पिछड़े वर्गों के लिए महत्त्वपूण्र हैं जिनका जीवन-स्तर इनकी सहायता से ऊपर उठाया जा सकता है।

नोट्स

योजना के निर्धारित लक्ष्यों के अनुसार यह आवश्यक है कि अर्थव्यवस्था में ऊर्जा की बढ़ती हुई माँग की पूर्ति के लिए इन साधनों का समुचित विकास किया जाये अन्यथा सभी योजनाबद्ध कार्यक्रम धीमे पड़ जायेंगे।

विभिन्न योजनाओं में साधन आबंटन का सबसे दु:खद पक्ष यह रहा है कि सामाजिक सेवाओं पर किये जाने वाले प्रतिशत व्यय में निरन्तर कमी की गई है। प्रथम योजनाकाल में सामाजिक सेवाओं के विकास के लिए कुल योजना व्यय का 24.1 प्रतिशत भाग आबंटित किया गया था, जबकि द्वितीय योजना में यह 18.3 प्रतिशत, तीसरी योजना में 17.4, वार्षिक योजनाओं में 14.7 प्रतिशत, चौथी योजना में 18.9 प्रतिशत, पाँचवीं योजना में 17.4 प्रतिशत तथा छठी योजना में 16.3 प्रतिशत रखा गया। नौवीं योजना में यह बढ़कर 27.3 प्रतिशत हो गया।

मानवीय संसाधन विकास (Human Resource Development) के समर्थकों का यह सुनिश्चित मत है कि जब तक समाज इन सामाजिक सेवाओं पर अधिक व्यय नहीं करता, तीव्र एवं आत्मपोषित विकास सम्भव नहीं है।

समीक्षा (Evaluation)– पंचवर्षीय योजनाओं में विनियोग के प्रारूप का विश्लेषण करने से निम्नलिखित बिन्दुओं पर प्रकाश पड़ता है।

(i) नियोजन की प्राथमिकताएँ समय-समय पर परिवर्तित होती रही हैं तथा विकास की व्यूह-रचना जो प्रारम्भ में अपनायी गयी थी, वह बाद में आकर संशोधित व विवर्तित हो गयी। नयी व परिवर्तित परिस्थितियों का सामना करने के लिए ऐसा करना आवश्यक भी है।

(ii) प्रथम योजना में कृषि पर, द्वितीय योजना में आधारभूत व भारी पूँजीगत उद्योगों पर सर्वाधिक महत्त्व दिया गया।

(iii) तीसरी और चौथी योजना में भी उद्योग, खनिज, परिवहन व संचार को महत्त्व दिया गया।

(iv) चौथी योजना मे ऐसा महसूस किया गया कि नियोजन के लाभ गरीब वर्ग तक नहीं पहुँच पा रहे हैं अत: पाँचवीं योजना से ग्रामीण विकास पर विशेष बल दिया जा रहा है। यही कारण है कि कृषि एवं सम्बद्ध क्रियाओं के भाग में वृद्धि हो गयी।

(v) प्रारम्भ की योजनाओं में ऊर्जा का भाग अपेक्षाकृत छोटा था परन्तु तीसरी योजना के बाद इसमें तेजी से वृद्धि हुई तथा छठी योजना में यह ऊँचे स्थान पर पहुँच गया। सातवीं और आठवीं व नौवीं योजना में भी ऊर्जा के विकास को उच्च प्राथमिकता दी गयी।

नोट

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

2. सही विकल्प चुनिए– (Check the Correct Option)

1. प्रथम पंचवर्षीय योजना व आठवीं पंचवर्षीय योना में कुल विनियोग में सार्वजनिक क्षेत्र का प्रतिशत था क्रमशः
   (क) 53.5 व 49.8 (ख) 46.5 व 50.2 (ग) 64.7 व 51.7 (घ) इनमें से कोई नहीं
2. नवीं पंचवर्षीय योजना में सार्वजनिक क्षेत्र में कुल वास्तविक व्यय थाः
   (क) 12.5% (ख) 14.7% (ग) 13.3% (घ) इनमें से कोई नहीं
3. परिवहन एवं संचार पर सार्वजनिक क्षेत्र में आठवीं योजना में वास्तविक परिव्यय थाः
   (क) 18.7% (ख) 19.6% (ग) 27.3% (घ) इनमें से कोई नहीं
4. निम्नलिखित में से कौन-सा कथन सत्य नहीं हैः
   (क) नियोजन की प्राथमिकताएँ समय-समय पर बदलती रही हैं।
   (ख) प्रथम योजना में उद्योग का और द्वितीय योजना में कृषि व सिंचाई पर सर्वाधिक महत्त्व दिया गया।
   (ग) आठवीं व नवीं योजना में ऊर्जा के विकास को उच्च प्राथमिकता दी गयी।
   (घ) 1991 के बाद सार्वजनिक क्षेत्र का प्रभुत्व कम हो रहा है।

28.4 सारांश (Summary)

1. व्यूह रचना या 'कूटनीति' या 'विकास विधि' से सामान्यतः अभिप्राय किसी विषय अथवा क्षेत्र-विशेष से संबंधित नीतियों, पद्धतियों, सिद्धान्तों व कार्य प्रणालियों का वह आदर्श सामंजस्य है, जिसके द्वारा समस्या का सर्वोपयुक्त समाधान ढूँढने का प्रयास किया जाता है।
2. नियोजित विकास के लिए जो व्यूह-रचना अपनायी गयी है, उसे अथव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में साधनों के आबंटन या विनियोग के रूप में व्यक्त किया जा सकता है।
3. भारत एक विकसित देश है जहाँ नियोजित ढंग से आर्थिक विकास करने के प्रयत्न किये जा रहे हैं। हमारे पास आवश्यकता की तुलना में साधन सीमित हैं।
4. प्रत्येक योजना में योजना आयोग आर्थिक विकास के लिए कुल परिव्यय (Outlay) निर्धारित करता है जिसका एक भाग निजी क्षेत्र द्वारा जुटाया जाता है और दूसरा भाग सार्वजनिक क्षेत्र द्वारा।
5. सार्वजनिक क्षेत्र में व्यय अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में किया गया है, जैसे–कृषि और सिंचाई, शक्ति, उद्योग, परिवहन और संचार तथा सार्वजनिक सेवाएँ आदि।
6. सार्वजनिक क्षेत्र का उद्योगों पर परिव्यय का भाग ग्रामीण व लघु उद्योगों के लिए अत्यन्त कम रखा गया था।
7. भारत में प्रथम चार योजनाओं में ऊर्जा-विकास पर दुर्भाग्यवश आबंटन नीचा था। कुल परिव्यय का 10 से 15 प्रतिशत।
8. प्रथम दो योजनाओं में परिवहन एवं संचार पर आबंटन 26 से 27 प्रतिशत था। परिवहन एवं संचार के साधन अर्थव्यवस्था के कृषि एवं औद्योगिक क्षेत्र के विकास के लिए आधारभूत ढाँचा प्रस्तुत करते हैं
9. विभिन्न योजनाओं में साधन आबंटन का सबसे दुःखद पक्ष यह रहा है कि सामाजिक सेवाओं पर किये जाने वाले प्रतिशत व्यय में निरन्तर कमी की गई है।
10. नियोजन की प्राथमिकताएँ समय-समय पर परिवर्तित होती रही हैं तथा विकास की व्यूह-रचना जो प्रारम्भ में अपनायी गयी थी, वह बाद में आकर संशोधित व विवर्तित हो गयी।

नोट

28.5 शब्दकोश (Keywords)

- **व्यूह-रचना–** समूह का निर्माण, चक्रव्यूह
- **आबंटन–** बाँटना, वितरण करना

28.6 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. भारत की पंचवर्षीय योजना में सार्वजनिक क्षेत्र में संसाधनों के आबंट का विश्लेषण कीजिए।
2. पंचवर्षीय योजनाओं में सार्वजनिक क्षेत्र व निजी क्षेत्र में संसाधनों का आबंटन लीखिए।
3. विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में सार्वजनिक क्षेत्र में जो परिव्यय किये गये हैं उन पर निबंध लिखिए।
4. विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में कृषि, सिंचाई, उद्योग तथा खनिज पर सार्वजनिक क्षेत्र में वास्तविक परिव्यय क्या था।

उत्तरः स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

1. 1. अर्थव्यवस्था 2. निवेश 3. योजना 4. परिव्यय

2. 1. (क) 2. (ग) 3. (क) 4. (ख)

28.7 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. *संवृद्धि एवं विकास का अर्थशास्त्र*: डॉ. पी. मिश्रा; साहित्य भवन पब्लिकेशन्स : आगरा
2. *विकास नियोजन एवं नीतियाँ*: वी. सी सिन्हा: साहित्य भवन पब्लिकेशन्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.) लि. रजिस्टर्ड कार्यालय नई दिल्ली
3. *विकास का अर्थशास्त्र एवं आयोजन*: डा. एस. एल. डिंगल: वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा. लि.

नोट

इकाई–29: लागत-लाभ विश्लेषण (Cost - Benefit Analysis)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

29.1 लागत-लाभ विश्लेषण की कसौटियाँ (Criteria of Cost-Benefit Analysis)

29.2 लाभों के आधार पर मूल्यांकन (Evaluation on the Basis of Benefits)

29.3 लागतों के आधार पर मूल्यांकन (Evaluation on the Basis of Costs)

29.4 मूल्यांकन में आँकड़ों का महत्व (Importance of Data for Evaluation)

29.5 लागत-लाभ विश्लेषण की सीमाएँ (Limitations of Cost-Benefit Analysis)

29.6 लागत-लाभ विश्लेषण का महत्व (Importance of Cost-Benefit Analysis)

29.7 लागत-लाभ विश्लेषण का भारत में प्रयोग (Use of Cost-Benefit in India)

29.8 सारांश (Summary)

29.9 शब्दकोश (Keywords)

29.10 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

29.11 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस अध्याय के इकाई के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- लागत-लाभ विश्लेषण को समझने में।
- लागत-लाभ के आधार पर मूल्यांकन करने में।
- लागत-लाभ विश्लेषण के प्रयोग एवं महत्त्व को जानने में।

प्रस्तावना (Introduction)

सामाजिक दृष्टिकोण से परियोजनाओं के मूल्यांकन के लिए लागत-लाभ सबसे उपयुक्त तथा सर्वमान्य तरीका है। यह विश्लेषण परियोजना मूल्यांकन के लिए सर्वाधिक वैज्ञानिक तथा उपयोगी कसौटी भी है। यह योजना प्राधिकरण के लिए इस बात में सहायक है कि वह परियोजना के लाभों और लागतों के वर्तमान मूल्यों के बीच के अन्तर को अधिकतम करके अनुकूलतम साधन आवंटन (allocation) उपलब्ध करने के लिए सही निवेश निर्णय कर सके। इसमें लाभों तथा लागतों के परिगणन, तुलना और मूल्यांकन शामिल हैं। इसका अभिप्राय यह है कि परियोजना में शामिल होने वाली लागतों के मुकाबले प्रतिफलों का मूल्यांकन करना। वास्तव में, लागत-लाभ विश्लेषण का अर्थ किसी एक नीति के **सामाजिक** लाभों तथा अलाभों को एक सामान्य मुद्रा इकाई में परिमाणित तथा वर्णित करना

नोट

है। इसका उद्देश्य फलन **शुद्ध सामाजिक लाभों** (net social benefits) को स्थापित करना है। यह उद्देश्य फलन इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है–NSB = Benefits–Costs, जहाँ लाभों और लागतों को किसी सामान्य मुद्रा इकाई में वास्तविक, मार्केट कीमतों की बजाय आगतों और निर्गतों की छाया अथवा लेखांकन कीमतों में मापा जाता है।

29.1 लागत-लाभ विश्लेषण की कसौटियाँ (Criteria for Cost-Benefit Analysis)

U.S. Sub-committee on Benefits and Costs[1] ने लागत–लाभ की चार कसौटियों का विवेचन किया है। वे हैं–B – C, B – C/I, $\Delta B/\Delta C$ और B/C, जहाँ B एवं C क्रमशः लाभों और लागतों को व्यक्त करते हैं, I प्रत्यक्ष निवेशो को तथा Δ सीमान्त को व्यक्त करता है।

इनमें से, B – C/I फार्मूला अर्थव्यवस्था के एक विशेष निवेश पर कुल वार्षिक प्रतिफलों को निर्धारित करने के लिए होता है, बिना यह विचार किए कि ये किसको प्राप्त होते हैं। यहाँ I में निजी निवेश शामिल नहीं होता जो परियोजना से लाभ प्राप्त करने वालों को खर्च करना पड़ता है, जैसे कि एक सिंचाई परियोजना से कृषकों को। अतः यह कसौटी सन्तोषजनक परिणाम नहीं देगी। $\Delta B/\Delta C = 1$ की कसौटी ऐसी परियोजना के आकार को निर्धारित करने के लिए होती है जो पहले से ही चुन ली गई है न कि परियोजना को चुनने के लिए। जबकि B – C वाली कसौटी अपनाने से सदैव बड़ी परियोजना को लाभ होता है तथा यह छोटी एवं मध्यम आकार की परियोजनाओं के लिए कम लाभदायक है। अतः यह कसौटी B तथा C के अधिकतम अन्तर के आधार पर परियोजना के पैमाने को निर्धारित करने में सहायक हो सकती है।

परन्तु परियोजना मूल्यांकन की सबसे बढ़िया और विश्वसनीय कसौटी B/C है। यदि $B/C = 1$ हो तो परियोजना सीमान्त होती है। केवल अपनी लागतों को ही पूरा कर रही होती है। यदि $B/C > 1$ हो तो लाभ लागतों से अधिक है और परियोजना को चालू करना लाभदायक होता है। यदि $B/C < 1$ हो तो लाभ लागतों से कम है तथा परियोजना को कार्यान्वित नहीं किया जा सकता। जितना लाभ–लागत अनुपात अधिक होगा उतनी ही ऊँची प्राथमिकता परियोजना को दी जाएगी। इसलिए $B/C > 1$ वाली परियोजना में निवेश करना लाभदायक होगा।

परन्तु B/C फार्मूला परियोजना के 'काल क्षितिज' (time horizon) को नहीं लेता। वास्तव में, **भविष्य** के लाभ एवं लागतें **वर्तमान** के लाभ और लागतों के बराबर नहीं लिए जा सकते। इसलिए परियोजना मूल्यांकन के नियमों के अनुसार भविष्य के लाभों एवं लागतों का बट्टा काटना (discounting) आवश्यक समझा जाता है क्योंकि समाज वर्तमान को भविष्य से अधिमान देता है। इसके लिए अर्थशास्त्रियों ने कई 'निर्णय नियम' या कसौटियाँ प्रकल्पित की हैं। उनका अध्ययन अगले अध्याय में किया जाएगा।

टास्क लागत–लाभ विश्लेषण की सार्थकता पर प्रकाश डालिए।

29.2 लाभों के आधार पर मूल्यांकन (Evaluation on the Basis of Benefits)

परियोजना का मूल्यांकन उससे प्राप्त होने वाले लाभों के आधार पर किया जाता है। यह उस सीमा तक लाभदायक होता है जिस सीमा तक कि लोगों की आय में वृद्धि करता है, तथा आय में वृद्धि उत्पादन तथा उपभोग में वास्तविक वृद्धि द्वारा मापी जाती है। लाभ **वास्तविक** या **नाममात्र** और **प्रत्यक्ष** या **अप्रत्यक्ष** हो सकते हैं।

1. अमरीकी अर्थशास्त्री लाभ–लागत कहते हैं जबकि ब्रिटिश अर्थशास्त्री लागत–लाभ कहते हैं।

नोट

वास्तविक लाभ (Real benefits)–लागत-लाभ विश्लेषण में, परियोजना से प्राप्त होने वाले नाममात्र लाभों की बजाय वास्तविक लाभ से हमारा सम्बन्ध रहता है। नदी-घाटी परियोजना कृषकों के लिए सिंचाई सुविधाएँ बढ़ाती है, परन्तु यदि साथ ही राज्य भारी सुधार उगाही लगा दे, तो लाभ नाममात्र होगा। क्योंकि परियोजना से जो भी लाभ प्राप्त होता है, वह खजाने में चला जाता है। परन्तु यदि वही परियोजना, सिंचाई सुविधाओं में वृद्धि करने के अतिरिक्त, प्रति एकड़ भूमि की उत्पादकता बढ़ाती है और अनेक अन्य बाह्य मितव्ययिताएँ उत्पन्न करती है जिससे कृषकों की वास्तविक आय बढ़ती है, तो कहते हैं कि वह वास्तविक लाभ देती है।

प्रत्यक्ष लाभ (Direct Benefits)–प्रत्यक्ष लाभ वे हैं जो परियोजना से तुरन्त प्रत्यक्षतौर से प्राप्त होते हैं। जैसे एक बहुमुखी नदी घाटी परियोजना से बाढ़ नियंत्रण, सिंचाई, विद्युत, नौका-वाहन, मछली पालन, आदि प्रत्यक्ष लाभ प्राप्त होते हैं।

किसी परियोजना के प्रत्यक्ष लाभों के मूल्य को बाजार कीमतों तथा/अथवा विकल्प लागतों में आगणित किया जाता है। यदि वस्तु विक्रेय हो तथा प्रतियोगी बाजार की शर्तों को पूरा करती है तो परियोजना से प्राप्त लाभ वस्तु के बेचने से प्राप्त आय के बराबर समझे जाते हैं। यदि वस्तु विक्रेय योग्य न हो परन्तु उनका बाजार मूल्य निश्चित किया जा सकता हो जैसे कि सिंचाई, बाढ़ नियन्त्रण के लाभ आदि तो **इक्स्टीन** का सुझाव है कि ऐसे लाभों का बाजार कीमतों के अनुसार मूल्यांकन करना चाहिए।

फिर भी लाभ निर्धारण में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है क्योंकि नई परियोजना में भावी कीमत, माँग और उसके उत्पादन की पूर्ति के सही आगणन के सम्बन्ध में अनिश्चितता का तत्व वर्तमान रहता है। लाभों के माप में दूसरी कठिनाई है बाह्य मितव्ययिताओं को निर्धारित करने की। यदि बाह्य मितव्ययिताओं के कारण उत्पादन का विक्रय औसत लागतों के बजाय सीमान्त लागतों पर होता है, तो घाटा होगा। उपभोक्ता से उगाही अथवा सरकारी बजट के माध्यम से इस घाटे को पूरा करने के प्रयत्न लाभ-निर्धारण को अधिक अस्पष्ट बना देंगे। इस प्रकार, **प्रो. लुइस** के अनुसार, "निवेश के सही शुद्ध सामाजिक लाभ का हिसाब लगाने के लिए सन्देह तथा कुशलता की जरूरत होती है। सरकारों को दिए जाने वाले अंकों में लगभग हमेशा ही अतिशयोक्तिपूर्ण आशावाद तथा दुगुनी गणना सम्मिलित रहती है। यदि लागतों का हिसाब लगाते समय, हम श्रम के मूल्यन में निम्न-छाया मजदूरी का प्रयोग करते हैं, तो लाभों का हिसाब लगाते समय हमें परियोजना को अतिरिक्त श्रेय नहीं देना चाहिए क्योंकि यह बेकारी को घटाएगी। छाया कीमत निर्धारण लागतों पर अथवा लाभों पर लागू किया जा सकता है परन्तु एक ही मद दोनों में नहीं आनी चाहिए। पुनः वार्षिक मूल्यों और पूँजी मूल्यों को इकट्ठे नहीं जोड़ना चाहिए।" परन्तु परियोजना के लाभों से उत्पन्न होने वाली छाया कीमतों में परिवर्तनों के संबंध में पूर्वकथन करना कठिन है। छाया-कीमतों का व्यवहार शीघ्र-प्रतिफल, श्रम-गहन, हल्की पूँजी तथा आयात परियोजनाओं के अनुकूल हो सकता है जिससे दीर्घकालीन विकास परियोजनाओं की स्थापना को हानि पहुँच सकती है।

अप्रत्यक्ष लाभ (Indirect Benefits)–परियोजना की वस्तु या सेवा से प्राप्त प्रत्यक्ष लाभों के अतिरिक्त, वस्तु या सेवा को न-प्रयोग करने वालों को बहुत से अप्रत्यक्ष लाभ प्राप्त होते हैं जो परियोजना के सामाजिक लाभों का मूल्यांकन करते समय ध्यान में रखने होते हैं। उदाहरणार्थ, भाखड़ा-नाँगल परियोजना के निर्माण से हजारों लोगों को रोजगार प्राप्त हुआ। भाखड़ा बाँध तथा नंगल नहर को सारे देश से जोड़ने वाली रेलवे लाइन का निर्माण हुआ। इसी प्रकार नई सड़कों का निर्माण हुआ। नंगल नामक एक नया नगर भी बनाया गया जहाँ एक खाद फैक्टरी तथा भारी पानी प्लांट की स्थापना हुई। इसके अतिरिक्त शिक्षा-संस्थाओं, अस्पताल आदि सेवाओं द्वारा उस नगर तथा उसके इर्द-गिर्द गाँवों को इनके लाभ प्राप्त हो रहे हैं।

बाह्य मितव्ययिताओं में जहाँ परियोजना के निर्माण के समय उस क्षेत्र तथा उसके आस-पास के इलाके में अर्द्ध एवं खुली बेरोजगारी में कमी होती है वहाँ लोगों में दक्षता-निर्माण होती है क्योंकि अनेक व्यक्ति रोजगार के साथ-साथ नए काम-धंधे सीखते हैं।

नोट

फिर, एक नदी-घाटी परियोजना से बाढ़ नियंत्रण एवं सिंचाई सुविधाएँ प्राप्त होने से कृषकों में जो जोखिम एवं अनिश्चितता की भावना समाप्त होती है वह भी परियोजना का अप्रत्यक्ष लाभ है।

परियोजना से प्राप्त होने वाली अभौतिक लाभ भी अप्रत्यक्ष लाभों में सम्मिलित होते हैं जैसे भाखड़ा-नंगल का दृश्यात्मक सौन्दर्य, उसका पर्यटन स्थान बनना तथा उसका मनोरंजनात्मक मूल्य।

जैसाकि **प्रो. ब्रूटन** ने लक्ष्य किया है, "परियोजना मूल्यांकन को चाहिए कि निवेश की दर, जनसंख्या की वृद्धि-दर लोगों द्वारा कुशलता प्रबंधात्मक क्षमता की उपलब्धि पर परियोजना के प्रभावों का विचार करे।" ये सब ऐसे अप्रत्यक्ष लाभ अथवा पार्श्व-प्रभाव हैं जो प्रत्यक्ष लाभों से न्यूनतम से अधिक आकस्मिक रूप से प्राप्त होते हैं।

भौतिक अथवा अभौतिक लाभ (Tangible and Intangible Benefits)—परियोजना से भौतिक अथवा अभौतिक लाभ भी उत्पन्न हो सकते हैं। भौतिक लाभ वे होते हैं, जिनका मुद्रा में संगणना तथा माप किया जा सके, जबकि अभौतिक लाभों को मुद्रा में नहीं मापा जा सकता। उदाहरण के लिए, भागड़ा-नंगल परियोजना से प्राप्त होने वाले लाभ भौतिक हैं और उन्हें मापा जा सकता है। अभौतिक लाभ व्यक्तिगत मूल्यन में शामिल हो जाते हैं, परन्तु जिनका न तो बाजार होता है और न ही कीमत। वे धनात्मक भी हो सकते हैं और ऋणात्मक भी। अभौतिक के अन्तर्गत भाखड़ा-नंगल का दृश्यात्मक सौन्दर्य तथा मनोरंजनात्मक मूल्य है, जबकि बाँध के परिणामस्वरूप लोगों को बिजली, पानी आदि की प्राप्ति भौतिक लाभ बताती है।

29.3 लागतों के आधार पर मूल्यांकन (Evaluation on the Basis of Costs)

परियोजना मूल्यांकन में लागतों को भी आधार माना जाता है। जैसे लाभों के विविध रूप हैं, ठीक वैसे ही लागतें भी विविध प्रकार की हैं।

परियोजना लागतें (Project Costs)—ये परियोजना के निर्माण, रख-रखाव तथा चलाने के लिए प्रयोग किए गए साधनों के मूल्य होते हैं। यह श्रम, पूँजी, मध्यवर्ती वस्तुओं, प्राकृतिक साधनों, विदेशी विनिमय आदि की लागतों से सम्बद्ध होती हैं।

सम्बद्ध लागतें (Associated Costs)—ये ऐसी वस्तुओं और सेवाओं के मूल्य होते हैं जिनकी आवश्यकता परियोजना की तत्काल वस्तुओं एवं सेवाओं के निर्माण के लिए पड़ती है। ये लागतें परियोजना लागतों के अलावा होती हैं। जैसे, किसान द्वारा उत्पादित की गई सिंचित फसल की लागत, जो उसके पानी पर किए गए खर्च से भिन्न होगी। यही फसल उत्पादित करने की उसकी सम्बद्ध लागत होगी।

वास्तविक और नकद लागतें (Real and Nominal Costs)—लागतें वास्तविक या नकद भी हो सकती हैं। यदि ब्लॉक समिति नहर खोदने के लिए क्षेत्र के लोगों से उधार लेती है, तो यह नकद लागत का उदाहरण है। क्योंकि लोगों से मुद्रा ब्लॉक समिति को हस्तान्तरित कर दी जाती है, इसलिए लोगों को कोई वास्तविक त्याग नहीं करना पड़ता। परन्तु यदि ब्लॉक के लोगों को स्वयं नहर खोदने के लिए कहा जाय तो उनके लिए वास्तविक लागत होगी।

प्राथमिक या प्रत्यक्ष लागतें (Primary or Direct Costs)—लागत-लाभ विश्लेषण में हमारा सम्बन्ध प्राथमिक लागतों से अधिक रहता है। ये वे लागतें हैं जो परियोजना के निर्माण, रख-रखाव और कार्यकरण में उचित रूप से उठाई जाती हैं तथा परियोजना की तत्काल वस्तुओं को प्रयोग में लाने या बेचने के लिए उपलब्ध करवाने पर व्यय की जाती हैं।

द्वितीयक या परोक्ष लागतें (Secondary or Indirect Costs)—अप्रत्यक्ष लागतें वे होती हैं जो परोक्ष रूप से परियोजना पर व्यय की जाती हैं जैसे परियोजना-स्थल पर कार्य करने वाले लोगों के लिए बनाए गए मकान, स्कूल, अस्पताल आदि। इनके अतिरिक्त कुछ अन्य लागतें अप्रत्यक्ष लागतों में सम्मिलित की जाती हैं परन्तु जिनको परिमाणात्मक रूप में प्रत्यक्षतया मापा नहीं जा सकता। वे परियोजना के निर्माण तथा कार्यकरण से उत्पन्न होने वाली असुविधाएँ तथा अन्य बुरे प्रभाव हो सकते हैं। ये बाह्य अमितव्ययिताएँ कही जाती हैं जो परियोजना की

नोट

सामाजिक लागतें होती हैं। जब परियोजना द्वारा उत्पन्न असुविधाओं को दूर करने के लिए लोग व्यय करते हैं ताकि वे पहली वाली अवस्था में आ सकें तो ये व्यय अप्रत्यक्ष लागतों में ही गिने जाते हैं।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

1. सही विकल्प चुनिए (Choose the Correct Option)–

1. लागत-लाभ विश्लेषण की कसौटियाँ हैं–
   (क) 4 (ख) 3
   (ग) 6 (घ) 5
2. सामाजिक दृष्टिकोण से परियोजनाओं के मूल्यांकन के लिए उपयुक्त एवं सर्वमान्य तरीका है–
   (क) साधन आबंटन (ख) लागत-लाभ
   (ग) परियोजना-लागत (घ) कुशलता प्रबंधात्मक।
3. किसी परियोजना के प्रत्यक्ष लाभों के मूल्य को अगणित किया जाता है–
   (क) बाजार कीमतों तथा विकल्प लागतों में (ख) वार्षिक मूल्य और पूँजी मूल्यों में
   (ग) वास्तविक आय एवं लाभ में (घ) अभौतिक लाभों में।
4. परियोजना का मूल्यांकन किया जाता है–
   (क) लाभों के आधार पर (ख) निवेश की दर पर
   (ग) जनसंख्या की वृद्धि स्तर पर (घ) वस्तुओं एवं सेवाओं के मूल्य पर।
5. अप्रत्यक्ष लगतें होती हैं–
   (क) जो परियोजना पर व्यय होती है (ख) वस्तुओं पर व्यय होती हैं
   (ग) भौतिक अभौतिक सुविधाओं पर व्यय होती हैं (घ) सामाजिक लाभों पर व्यय की जाती है।

29.4 मूल्यांकन में आँकड़ों का महत्व (Importance of Data for Evaluation)

परियोजना के मूल्यांकन में एक लम्बी अवधि के विस्तृत आँकड़ों की आवश्यकता होती है जिन्हें "निवेश अथवा पक्वनावधि" और "प्रचालन अथवा उत्पादन अवधि" में विभक्त किया जा सकता है। पहली अवधि में परियोजना पूर्ण की जाती है और दूसरी अवधि में उनका प्रयोग होता है जबकि उत्पादन शुरू हो जाता है। आँकड़ों, श्रमिकों तथा अन्य आवश्यक सेवीवर्ग की संख्या, आवश्यक कच्चे माल तथा वस्तुओं के प्रत्याशित उत्पादन की मात्रा इत्यादि का वितरण देते हैं। लागतों और लाभों की दृष्टि से इन आँकड़ों की अन्यत्र मिलती-जुलती परियोजनाओं से तुलना की जाती है। राष्ट्रीय उत्पाद, श्रम के रोजगार और श्रमिकों के स्वास्थ्य में परियोजना के योगदान का हिसाब लगाने के लिए भी इन आँकड़ों का प्रयोग किया जाता है।

निष्कर्ष (Conclusion)

इस प्रकार, परियोजना का मूल्यांकन करते समय हमें कुल प्रत्यक्ष लाभों और कुल प्रत्यक्ष लागतों की संगणना तथा तुलना करनी होती है। यदि हम देखें कि लागतों की अपेक्षा लाभों के अधिक होने की आशा है तो परियोजना शुरू करना लाभदायक होगा, अन्यथा नहीं। कुल प्रत्यक्ष लागतें तथा लाभ निकालने के लिए, **पहले** तो उत्पादित वस्तुओं तथा सेवाओं की भौतिक मात्राओं के, **दूसरे,** उपभोग की गई वस्तुओं तथा सेवाओं की भौतिक मात्राओं के आँकड़े

1. J.Tinbergen, "The Design of Development," Chenery and Kretchemer, "Rsources Allocation for Economic Development," *Econometrica*, October, 1966.

नोट

इकट्ठे किये जाते हैं और उनका हिसाब लगाया जाता है। **तीसरे,** स्फीतिकारी तथा अप-स्फीतिकारी स्थितियों को महत्व देते हुए विभिन्न मार्केटों में वर्तमान कीमत सूचकों के आधार पर, इन वस्तुओं तथा सेवाओं का मुद्रा-मूल्य संगणित किया जाता है। **अन्तिम,** वार्षिक लागतों का हिसाब लगाते समय, पूँजी परिसम्पत्तियों के टिकाऊपन तथा उनके मूल्यह्रास पर उचित ध्यान देना होता है। कुल लागतों को पूँजी परिसम्पत्तियों की प्रत्याशित जीवन अवधि से विभक्त करके वार्षिक लागतों का हिसाब लगाया जाता है। इसी प्रकार, परियोजनाओं से प्राप्त होने वाले प्रत्यक्ष लाभों के मुद्रा-मूल्य की संगणना करके और उसमें से परियोजना की सम्बद्ध लागतें घटा कर वार्षिक लाभों का हिसाब लगाया जाता है।

29.5 लागत-लाभ विश्लेषण की सीमाएँ (Limitations of Cost-Benefit Analysis)

1. लागत-निर्धारण में कठिनाइयाँ (Difficulties in Cost-assessment)—तकनीकों के चुनाव, परियोजना की स्थिति और प्रयोग की गई साधन-सेवाओं की कीमतों के आधार पर लागत अनुमान किए जाते हैं। परन्तु अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाओं में, मार्केट कीमतें, विशिष्ट रूप से उत्पादन के साधनों की मार्केट कीमतें, संसाधन आवंटन की अपूर्ण पथ-प्रदर्शक होती हैं, क्योंकि वहाँ आधारभूत असंतुलन पाये जाते हैं जो मजदूरी के वर्तमान स्तर पर व्यापक अल्प-रोजगार, चालू ब्याज-दरों की निधियों की कमी और मुद्रा की चालू दरों पर विदेशी मुद्रा की कमी में झलकते हैं। मार्केट मजदूरी की अपेक्षा मजदूरी-दरों का संतुलन स्तर बहुत नीचा होगा, जबकि संतुलन ब्याज-दरें संभवत: मार्केट-दरों की अपेक्षा अधिक ऊँची होंगी। इन कठिनाइयों को दूर करने के लिए, **जे. टिनबर्गन, एच. बी. चेनरी** तथा **के. एस. क्रेचमर**[1] ने सुझाया है कि "छाया" अथवा "लेखांकन" कीमतें काम में लाई जाएँ। ये "छाया कीमतें" उत्पादन के साधनों के वास्तविक मूल्यों को प्रकट करती हैं। छाया कीमत की भाँति, "छाया लागतों" का सिद्धान्त चालू हुआ है जिससे कि विशिष्ट परियोजना की समाज पर पड़ने वाली वास्तविक लागत का हिसाब लगाया जा सके। आजकल परियोजनाओं का मूल्यांकन करने के लिए और यह निर्धारित करने के लिए कि कौन शुरू की जाने योग्य है और कौन नहीं, अर्थशास्त्री छाया-कीमतों तथा लागतों का प्रयोग करते हैं।

2. लाभ निर्धारण में कठिनाइयाँ (Difficulties in Benefit Assessment)—लाभों का निर्धारण और भी अधिक कठिन है क्योंकि नई परियोजना में, भावी कीमत, माँग और उसके उत्पादन की पूर्ति के सही आगणन के सम्बन्ध में अनिश्चितता का तत्त्व वर्तमान रहता है। लाभों की माप में दूसरी कठिनाई है बाह्य मितव्ययिताओं को निर्धारित करने की। यदि बाह्य मितव्ययिताओं के कारण उत्पादन का विक्रय औसत लागतों के बजाय सीमान्त लागतों पर होता है, तो घाटा होगा। उपभोक्ता से उगाही अथवा सरकारी बजट के माध्यम से इस घाटे को पूरा करने के प्रयत्न लाभ निर्धारण को अधिक अस्पष्ट बना देंगे। इस प्रकार, **प्रो. लुइस** के अनुसार, "निवेश के सही शुद्ध सामाजिक लाभ का हिसाब लगाने के लिए सन्देह तथा कुशलता की जरूरत होती है। सरकारों को दिए जाने वाले अंकों में लगभग हमेशा ही अतिशयोक्तिपूर्ण आशावाद तथा दुगनी गणना अन्तर्ग्रस्त रहती है। यदि लागतों का हिसाब लगाते समय, हम श्रम के मूल्यन में निम्न-छाया मजदूरी का प्रयोग करते हैं, तो लाभों का हिसाब लगाते समय हमें परियोजना को अतिरिक्त श्रेय नहीं देना चाहिए क्योंकि यह बेकारी को घटाएगी। छाया-कीमत निर्धारण लागतों पर अथवा लाभों पर लागू किया जा सकता है परन्तु एक ही मद दोनों में नहीं आनी चाहिए। पुन: वार्षिक मूल्यों और पूँजी मूल्यों को इकट्ठे नहीं जोड़ना चाहिए।[1] परन्तु परियोजनाओं के लाभों से उत्पन्न होने वाली छाया-कीमतों में परिवर्तनों के संबंध में पूर्वकथन करना कठिन है। छाया-कीमतों का व्यवहार शीघ्र-प्रतिफल, श्रम-गहन, हल्की पूँजी तथा आयात परियोजनाओं के अनुकूल हो सकता है जिससे दीर्घकालीन विकास परियोजनाओं की स्थापना को हानि पहुँच सकती है।

1. *Development Planning,* p. 258.

नोट

क्या आप जानते हैं परियोजना से प्राप्त होने वाले वर्तमान तथा भावी लाभों और इन लाभों को प्राप्त करने में उठाई जाने वाली लागतों को मापने से लागत-लाभ विश्लेषणों में सीमाएँ उत्पन्न हो जाती हैं।

3. मनमानी बट्टा दर (Arbitrary Discount Rate)–किसी भी परियोजना के लिए पूर्वकल्पित सामाजिक बट्टा दर मनमानी हो सकती है। यदि लाभों के शुद्ध वर्तमान मूल्य को आगणित करने के लिए मनमानी ऊँची दर लागू की जाती है तो परियोजना के दीर्घकालीन प्रभावों को सही तौर से आगणित नहीं किया जा सकता। यह तर्क परियोजना के प्रतिफल की आन्तरिक दर पर भी लागू होता है।

4. संयुक्त लाभों तथा लागतों की उपेक्षा (Neglects Joints Benefits and Costs)–लागत-लाभ का विश्लेषण परियोजना में उत्पन्न होने वाली संयुक्त लाभों तथा संयुक्त लागतों की समस्याओं की उपेक्षा करता है। जैसे कि हमने ऊपर अध्ययन किया एक नदी घाटी परियोजना से अनेक प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष लाभ प्राप्त होते हैं जिनका अलग-अलग आगणन और मूल्यांकन करना कठिन होता है। इसी प्रकार ऐसी परियोजना में संयुक्त लागतें पाई जाती हैं जिसको अलग नहीं किया जा सकता और न ही उनकी गणना की जा सकती है।

5. विकल्प लागत की उपेक्षा (Ignores Opportunity Cost)–लागत-लाभ विश्लेषण विकल्प लागत की समस्या की भी उपेक्षा करता है। **ग्रिफिन** और **एनोस** ने इस समस्या का यह हल सुझाया है कि यदि सभी कीमतें विकल्प लागतों को व्यक्त करें तो सभी परियोजनाएँ जिनमें $B/C > 1$ हो, चुनी जाएँगी।

6. जोखिम तथा अनिश्चितता की समस्याएँ (Problems of Risk and Uncertainty)–प्रत्येक परियोजना में कई जोखिम और अनिश्चितताएँ पाई जाती हैं जिनका अनुमान लगाना एक कठिन समस्या होती है।

7. बाह्यताएँ (Externalities)–इसी प्रकार बड़ी परियोजनाओं के बाह्य प्रभाव होते हैं जिनकी गणना करना एक कठिन काम होता है। एक नदी घाटी परियोजना की तकनीकी और धन-संबंधी बाह्यताएं हो सकती हैं जैसे आस-पास के अन्य स्थानों की भूमि की उत्पादकता पर बाढ़ नियंत्रण उपायों अथवा डैम के प्रभाव। एक परियोजना के ऐसे बाह्य प्रभावों का आगणन करना कठिन है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

2. रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks)–

1. परियोजना के मूल्यांकन में एक लंबी अवधि के विस्तृत ..... की आवश्यकता होती है।
2. परियोजना का मूल्यांकन करते समय कुल प्रत्यक्ष लाभों तथा प्रत्यक्ष ..... की संगणना तथा तुलना करनी होती है।
3. लाभों के माप की दूसरी कठिनाई बाह्य ..... को निर्धारित करने की है।
4. ..... के अनुसार, "निवेश के सही शुद्ध सामाजिक लाभ का हिसाब लगाने के लिए संदेह एवं कुशलता की जरूरत होती है।"
5. किसी भी परियोजना के लिए पूर्वकल्पित सामाजिक ..... मनमानी हो सकती है।

29.6 लागत-लाभ विश्लेषण का महत्व (Importance of Cost-Benefit Analysis)

सिंचाई तथा परिवहन परियोजनाओं में निवेश के मूल्यांकन के लिए लागत-लाभ विश्लेषण का विकास यू. एस. ए. में किया गया। अल्पविकसित देशों में, परियोजनाएं अक्सर तदर्थ (adhoc) आधार पर चुनी जाती हैं तथा लागतों

नोट

और लाभों के रूप में उनके मूल्यांकन पर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया जाता है। क्योंकि सभी परियोजनाएं विकास के उद्देश्य से संबद्ध होती हैं, इसलिए उनका उद्देश्य सामाजिक कल्याण का अधिकतम करना है।

गुण (Merits)–लागत-लाभ विश्लेषण के निम्नलिखित गुण पाए जाते हैं।

1. यह विश्लेषण कृषि उत्पादन बढ़ाने हेतु सिंचाई और अन्य साधनों के बीच, जैसे उद्देश्यों को पूरा करने के लिए, वैकल्पिक उपायों की सीमांत प्रभावशीलता में भेदों को कम करने में सहायता करता है।
2. यह एक उद्देश्य को पूरा करने की लागतों को त्याग किए गए लाभों के साथ दूसरे लाभों के रूप में मूल्यांकन करने में सहायता करता है।
3. इसका राजनैतिक लाभ भी है कि किसी एक विशेष ग्रुप के लिए अपने स्वार्थों हेतु परियोजना अथवा योजनाओं को विकृत करना कठिन होगा, यदि विशिष्ट परियोजनाओं का आयोजन करने से पूर्व मापदण्ड निश्चित करते समय इसकी समाज के अन्य ग्रुपों के साथ स्वीकृति प्राप्त कर ली गई थी।
4. लागत-लाभ विश्लेषण के प्रयोग का एक अन्य लाभ यह है कि वह विकेन्द्रीकृत निर्णय करने का अवसर देता है। यदि सार्वजनिक क्षेत्र छोटा भी हो तो भी कोई एकल प्राधिकरण अनेक विशिष्ट परियोजनाओं के बारे में निर्णय लेने के लिए तकनीकी सूचना के विशाल समूह के संचालन की आशा नहीं रख सकता है। प्रत्येक परियोजना की लागतों और लाभों की गणना करने के लिए, हर एक के लिए अलग प्राधिकरण की आवश्यकता होती है। इसलिए विकेन्द्रीकृत निर्णय करने की जरूरत है।
5. लागत-लाभ विश्लेषण परियोजनाओं की वांछनीयता का मूल्यांकन करने का एक व्यावहारिक ढंग है जहाँ भविष्य में तथा निकटतम भविष्य में अप्रत्यक्ष प्रभावों की ओर देखने के अर्थ में दीर्घ दृष्टिकोण लेना, और जहाँ कई प्रकार के पार्श्व प्रभावों को बहुत व्यक्तियों, उद्योगों, क्षेत्रों आदि के लिए स्वीकार्य करने के अर्थ में एक व्यापक दृष्टिकोण लेना महत्वपूर्ण होता है। अत: विकासशील देशों में परियोजना मूल्यांकन के लिए लागत-लाभ विश्लेषण का एक बहुत लाभदायक औजार है।

कठिनाइयाँ (Difficulties)–इन गुणों के बावजूद, लागत-लाभ विश्लेषण का प्रयोग अल्पविकसित देशों में अनेक कठिनाइयों से ग्रस्त है। इसका निम्न विवेचन किया जा रहा है–

1. विकसित अर्थव्यवस्था की दशाओं पर आधारित (Based on the Conditions of Developed Countries)–यह तकनीक इस आधारभूत धारणा पर आधारित है कि प्रमुख रूप से पूँजीवादी प्रतियोगितामूलक अर्थव्यवस्था में आर्थिक स्थिरता और सतत् वृद्धि के ढाँचे में निवेश होता है, जहाँ कीमतें स्थिर रहती हैं, मजदूरी लोचात्मक होती है और साधन पूर्ण रूप से गतिशील और पूर्णतया नियुक्त होते हैं। इस प्रकार, राज्य-कार्य की आवश्यकता समाप्त हो जाती है। इन धारणाओं के अन्तर्गत, मार्केट कीमतों पर मूल्यांकित, परियोजना के प्रत्यक्ष लाभ इसके सामाजिक लाभों को प्रकट करते हैं। परन्तु ये धारणाएँ, परियोजना मूल्यांकन की विधि के रूप में लागत-लाभ विश्लेषण के अल्पविकसित देशों पर व्यवहार को अवास्तविक बना देती हैं। ऐसी अर्थव्यवस्थाओं में कीमतों की स्थिरता, पूर्ण रोजगार के अस्तित्व, साधनों की पूर्ण गतिशीलता तथा मजदूरी की लोच की धारणाएँ गलत हैं। सार्वजनिक निवेश का लक्ष्य ही यह होता है कि बेकारी और अल्प-रोजगार कम किए जाएँ और साधन गतिशीलता बढ़ाई जाए, ताकि अर्थव्यवस्था का संरचनात्मक असंतुलन ठीक किया जा सके। यद्यपि परियोजना से प्राप्त होने वाले अप्रत्यक्ष लाभों को शामिल करके और छाया कीमतों के रूप में लाभों तथा लागतों की गणना करके इस विश्लेषण में सुधार करने का प्रयत्न किया गया है, फिर भी, विविध अप्रत्यक्ष लाभों के चुनाव में स्वेच्छा रहती है। इसलिए, परियोजनाओं के मूल्यांकन के लिए इक्स्टीन तथा मैक्कीन, लागत-लाभ तकनीक के बजाय समष्टिगत आर्थिक आयोजन विधियों के प्रयोग के पक्ष में है। परन्तु सांख्यिकीय आँकड़ों के अभाव के कारण इन विधियों को अल्पविकसित देशों पर नहीं लागू किया जा सकता।

नोट

2. आँकड़े प्राप्त करने की कठिनाई (Difficulties of Obtaining Data)–ऐसे देशों में आँकड़े प्राप्त करने का काम सबसे बड़ी बाधाओं में से एक है। इसलिए परियोजना से अथवा परियोजना के बिना लोगों को प्राप्त होने वाले लाभों में भेद करना संभव नहीं है। जैसा कि हम ऊपर देख चुके हैं, अनिश्चितता का तत्व और बाह्य मितव्ययिताओं के निर्धारण की कठिनाइयाँ भी परियोजना से प्राप्त होने वाले लाभों के सही मूल्यांकन के मार्ग में पाई जाती हैं। कुछ अवस्थाओं में भौतिक तथा अभौतिक दोनों ही लाभों का मूल्यांकन कठिन होता है। उदाहरणार्थ, इसका सही-सही माप नहीं किया जा सकता कि पीने के जल की परियोजना से पीने के जल की पूर्ति अथवा बाढ़ रोकने के लिए बाँध निर्माण नगरवासियों को किस सीमा तक लाभ पहुँचाएगा।

3. लागत-निर्धारण में कठिनाई (Defficulties in Cost-assessment)–परियोजना की लागत का निर्धारण भी कोई आसान काम नहीं है। लागतों के प्रारम्भिक आगणन तैयार किए जाते हैं, परन्तु वे या तो अति-आगणित होते हैं या फिर अल्प-आगणित। कीमतों में वृद्धि, कच्चे माल की कमी और विदेशी मुद्रा की कठिनाइयाँ प्रायः सही लागत निर्धारण के मार्ग में स्थित रहती हैं। कुछ परियोजनाओं के सम्बन्ध में जहाँ श्रम-दान से काम लिया जाता है, श्रम-लागत की माप करना और भी कठिन बन जाता है। भारत में शीघ्रता से इतनी अधिक परियोजनाएँ शुरू कर दी गई हैं कि उनकी जीवन क्षमता निर्धारित करना संभव नहीं है। **प्रो. लुइस** के अनुसार, "नए औद्योगिक उद्यमों की लागतों तथा लाभों का निर्धारण एक अत्यन्त विशेषीकृत कार्य है जिसे अनुभवी परामर्शदाताओं पर छोड़ देना श्रेष्ठतम है। इस प्रकार के विशेषीकृत ज्ञान के बिना परियोजना-विश्लेषण निश्चित से गलत होगा।" इस प्रकार की परियोजनाओं के मूल्यांकन के लिए भारत जैसे देशों में ऐसी विशिष्ट एजेन्सियों का विकास करने की जरूरत है।

29.7 लागत-लाभ विश्लेषण का भारत में प्रयोग (Use of Cost-Benefit Analysis in India)

लागत-लाभ विश्लेषण का भारत में प्रथम नियमित प्रयास **प्रो. डी.आर. गाडगिल** ने महाराष्ट्र में गोदावरी और प्रवरा नहर व्यवस्थाओं के लिए किया। इसके पश्चात **प्रोफेसर सोबानी** तथा **नीलकण्ठ रथ** ने हीराकुंड बाँध परियोजना की लागतों और लाभों का मूल्यांकन किया। 1958 में **प्रो. गाडगिल** के अधीन योजना आयोग की रिसर्च प्रोग्राम कमेटी ने छः सिंचाई परियोजनाओं के लाभ-लागत अनुपातों का अध्ययन किया। वे हैं–(*i*) उत्तर प्रदेश में शारदा नहर; (*ii*) बिहार में त्रिवानी नहर; (*iii*) पश्चिम बंगाल में दामोदर नहर; (*iv*) राजस्थान में गंग नहर; (*v*) तमिलनाडु में कावेरी-मैटुर परियोजना; तथा (*vi*) आन्ध्र प्रदेश में निजाम सागर परियोजना। इसी प्रकार विश्लेषण कई अन्य अर्थशास्त्रियों ने भी किए हैं जैसे **प्रो. बलजीतसिंह** एवं **मिश्रा** द्वारा उत्तर प्रदेश में शारदा नहर परियोजना, **प्रोफेसर के. एन. राज** द्वारा पंजाब में भाखड़ा नंगल परियोजना, **डा. ए. एस. चरण** द्वारा राजस्थान में पश्चिमी बानस परियोजना तथा **डा. रामनारायण** द्वारा हरियाणा में जुई लिफ्ट सिंचाई परियोजना।

परन्तु इन अध्ययनों में लागत-लाभ तकनीक के प्रयोग के बारे में कोई समानता नहीं पाई जाती। ये अध्ययन या तो 'पूर्व और पश्चात्' (before and after) तकनीक या 'साथ और बिना' (with and without) तकनीक के आधार पर किये गये हैं। 'पूर्व और पश्चात्' तकनीक परियोजना के प्रारम्भ करने से पहले के लाभों तथा लागतों को समक्ष रखती है और परियोजना के प्रारम्भ करने के बाद के लाभों तथा आगतों से उनकी तुलना करती है। 'साथ और बिना' तकनीक उसी क्षेत्र को सिंचाई सुविधाओं से होने वाले लाभों और लागतों को ऐसी सुविधाओं के बिना तुलनात्मक अध्ययन करती है।

कुछ सुझाव (Some Suggestions)

परियोजनाओं के अपेक्षाकृत श्रेष्ठ मूल्यांकन के लिए लागत-लाभ विश्लेषण की सीमाओं को पार करने के कुछ सुझाव दिए गए हैं। कहा गया है कि

नोट

प्रयुक्त दुर्लभ साधनों को ऋणात्मक लाभ गिनना चाहिए, परियोजना में निवेश द्वारा प्रेरित धनात्मक लाभ राष्ट्रीय उत्पादन में वृद्धि करें। प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष दोनों लाभों को **शामिल** किया जाए। यदि मार्केट कीमतें, संतुलन कीमतों को न प्रकट करें तो राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था पर परियोजना के प्रभाव का मूल्यांकन करने के लिए **छाया** कीमतें काम में लाई जाएँ। "अल्पविकसित देश में अकुशल श्रम की मार्केट-मजदूरी...प्रायः श्रम की विकल्प-लागतों से अधिक ऊँची होती है। दूसरी ओर, पूँजी और विदेशी विनिमय के यथार्थ मूल्य उनके अनुरूप मार्केट कीमतों से अधिक होते हैं। मार्केट मजदूरी से कम लेखा मजदूरी और मार्केट कीमतों से ऊंचा लेखांकन ब्याज और लेखांकन विदेशी विनिमय दर का प्रयोग किया जाए।" लागतों में, परियोजना में प्रयुक्त दुर्लभ साधनों का लेखांकन कीमतों पर आगणित मूल्य, शामिल किया जाए। राष्ट्रीय उत्पादन पर निवेश परियोजना के प्रभाव का माप केवल एक वर्ष में नहीं बल्कि रोजगार, भुगतान-शेष, प्रादेशिक आय वितरण आदि पर उसके प्रभाव के साथ-साथ काल-पर्यन्त में किया जाय। इन विविध पक्षों को एक कोण माप में परिवर्तित करने के लिए इनमें से प्रत्येक तत्व को महत्व दिया जाए।

नोट्स परियोजनाएँ भले ही विभिन्न प्रकृति की हों परन्तु उनका मूल्यांकन व्यक्तिगत रूप से करने की बजाय इकट्ठा करना चाहिए। लाभों को उनके धनात्मक तथा ऋणात्मक दोनों पक्षों में मापना चाहिए।

संयुक्त राष्ट्र का एक अध्ययन[1] निम्नलिखित साधनों को मूल्यांकन विधि में शामिल करने का उल्लेख करता है।

1. **समयोपरि उत्पादन में परिवर्तन** (Variation in output over-time)—यह साधन उन परियोजनाओं के सम्बन्ध में विशेष महत्व रखता है जिनके फलीभूत होने की अवधि लम्बी हो, जैसे कि नदी-घाटी परियोजनाएँ। क्योंकि ऐसी परियोजनाएँ फलीभूत होने में दीर्घकाल लेती हैं, इसलिए मूल्यांकन के मतलब के लिए भावी लागतों तथा कीमतों में बट्टा (discount) करना आवश्यक है।
2. **उत्पादित वस्तुओं के सीमा-विस्तार में परिवर्तन** (Variation in the range of commodities produced)—उत्पादन की विभिन्न तकनीकें निर्गत की विभिन्न श्रेणियों का उत्पादन करती हैं। बड़े पैमाने पर उत्पादन की तकनीकों की अपेक्षा छोटे पैमाने की उत्पादन तकनीकें सामान्य रूप से अधिक लोचात्मक होती हैं। यह साधन परियोजना मूल्यांकन को कुछ कठिन बना देता है।
3. **माप तथा स्थिति प्रभाव** (Scale and location effects)—एक विशिष्ट परियोजना के लिए उत्पादन का अनुकूलतम माप चुनने के लिए माँग में समयोपरि वृद्धि का आगणन करना होता है। फिर, कुछ बाह्य अमितव्ययिताएँ हो सकती हैं, जो कुछ केन्द्रों में परियोजना के अति संकेन्द्रण, परिवहन लागतों में वृद्धि और बड़े पैमाने के प्लांटों के प्रचालन की कठिनाइयों से उत्पन्न होती हैं। इनमें से कुछ प्रभावों का ही मात्रात्मक मूल्यांकन हो सकता है।
4. **परियोजना से परियोजना तक उत्पादन के मार्केटेतर प्रभाव भिन्न-भिन्न होते हैं** (Non-market effects of production differ from project to project)—उन्नत प्रौद्योगिकी का प्रयोग दीर्घकाल में, श्रम के प्रशिक्षण तथा औद्योगीकरण के प्रबन्ध में सहायक होता है, भले ही यह तथ्य लेखांकन कीमतों के हिसाब में प्रकट नहीं होता। अन्य सामाजिक लाभों तथा लागतों पर भी विचार करना चाहिए जोकि, उदाहरणार्थ, अवांछित अपव्यय को घटाने में सहायक हों।

1. UN, *Formulating Industrial Development Programmes,* ECAFE, 1961.

नोट

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

3. निम्नलिखित कथनों में सत्य असत्य की पहचान करें–

1. सिंचाई तथा परिवहन योजनाओं में निवेश के मूल्यांकन के लिए लाभ लागत विश्लेषण का विकास यू.एस. ए. में किया गया।
2. लागत-लाभ विश्लेषण परियोजनाओं की वांछनीयता का मूल्यांकन करने का व्यावहारिक ढंग नहीं माना जाता।
3. लागत-लाभ विश्लेषण का भारत में प्रथम नियमित प्रयास प्रो.डी.आर. गाडगिल ने किया था।
4. उत्पादन की विभिन्न तकनीकें निर्गत की विभिन्न श्रेणियों का उत्पादन करती हैं।

29.8 सारांश (Summary)

1. सामाजिक दृष्टिकोण से परियोजनाओं के मूल्यांकन के लिए लागत-लाभ सबसे उपयुक्त तथा सर्वमान्य तरीका है। यह विश्लेषण परियोजनाओं के लिए सर्वाधिक वैज्ञानिक तथा उपयोगी कसौटी भी है।
2. लागत-लाभ विश्लेषण का अर्थ किसी एक नीति के **सामाजिक** लाभों तथा अलाभों को एक सामान्य मुद्रा इकाई में परिमाणित तथा वर्णित करना है। इसका उद्देश्य फलन **शुद्ध सामाजिक लाभों** (net social benefits) को स्थापित करना है।
3. U.S. Sub-committee on Benefits and Costs[1] ने लागत-लाभ की चार कसौटियों का विवेचन किया है। वे हैं–$B - C$, $B - C/I$, $\Delta B/\Delta C$ और B/C, जहाँ B एवं C क्रमशः लाभों और लागतों को व्यक्त करते हैं, I प्रत्यक्ष निवेशों को तथा Δ सीमान्त को व्यक्त करता है।
4. परियोजना मूल्यांकन की सबसे बढ़िया और विश्वसनीय कसौटी B/C है। यदि $B/C = 1$ हो तो परियोजना सीमान्त होती है।
5. परियोजना मूल्यांकन के नियमों के अनुसार भविष्य के लाभों एवं लागतों का बट्टा काटना (discounting) आवश्यक समझा जाता है क्योंकि समाज वर्तमान को भविष्य से अधिमान देता है।
6. परियोजना का मूल्यांकन उससे प्राप्त होने वाले लाभों के आधार पर किया जाता है। यह उस सीमा तक लाभदायक होता है जिस सीमा तक कि लोगों की आय में वृद्धि करता है, तथा आय में वृद्धि उत्पादन तथा उपभोग में वास्तविक वृद्धि द्वारा मापी जाती है।
7. प्रत्यक्ष लाभ वे हैं जो परियोजना से तुरन्त प्रत्यक्षतौर से प्राप्त होते हैं। जैसे एक बहुमुखी नदी घाटी परियोजना से बाढ़ नियंत्रण, सिंचाई, विद्युत, नौका-वाहन, मछली पालन, आदि प्रत्यक्ष लाभ प्राप्त होते हैं।
8. लाभ निर्धारण में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है क्योंकि नई परियोजना में भावी कीमत, माँग और उसके उत्पादन की पूर्ति के सही आगणन के सम्बन्ध में अनिश्चितता का तत्व विद्यमान रहता है।
9. परियोजना की वस्तु या सेवा से प्राप्त प्रत्यक्ष लाभों के अतिरिक्त, वस्तु या सेवा को न-प्रयोग करने वालों को बहुत से अप्रत्यक्ष लाभ प्राप्त होते हैं जो परियोजना के सामाजिक लाभों का मूल्यांकन करते समय ध्यान में रखने होते हैं।
10. भौतिक अथवा अभौतिक लाभ (Tangible and Intangible Benefits)–परियोजना से भौतिक अथवा अभौतिक लाभ भी उत्पन्न हो सकते हैं।
11. परियोजना मूल्यांकन में लागतों को भी आधार माना जाता है। जैसे लाभों के विविध रूप हैं, ठीक वैसे ही लागतें भी विविध प्रकार की हैं।

नोट

12. परियोजना के मूल्यांकन में एक लम्बी अवधि के विस्तृत आँकड़ों की आवश्यकता होती है जिन्हें "निवेश अथवा पक्वनावधि" और "प्रचालन अथवा उत्पादन अवधि" में विभक्त किया जा सकता है।
13. राष्ट्रीय उत्पाद, श्रम के रोजगार और श्रमिकों के स्वास्थ्य में परियोजना के योगदान का हिसाब लगाने के लिए भी इन आँकड़ों का प्रयोग किया जाता है।
14. परियोजना का मूल्यांकन करते समय हमें कुल प्रत्यक्ष लाभों और कुल प्रत्यक्ष लागतों की संगणना तथा तुलना करनी होती है।
15. आजकल परियोजनाओं का मूल्यांकन करने के लिए और यह निर्धारित करने के लिए कि कौन शुरू की जाने योग्य है और कौन नहीं, अर्थशास्त्री छाया-कीमतों तथा लागतों का प्रयोग करते हैं।
16. प्रो. लुइस के अनुसार, "निवेश के सही शुद्ध सामाजिक लाभ का हिसाब लगाने के लिए सन्देह तथा कुशलता की जरूरत होती है। सरकारों को दिए जाने वाले अंकों में लगभग हमेशा ही अतिशयोक्तिपूर्ण आशावाद तथा दुगनी गणना अन्तर्ग्रस्त रहती है।
17. बड़ी परियोजनाओं के बाह्य प्रभाव होते हैं जिनकी गणना करना एक कठिन काम होता है। एक नदी घाटी परियोजना की तकनीकी और धन-संबंधी बाह्यताएं हो सकती हैं जैसे आस-पास के अन्य स्थानों की भूमि की उत्पादकता पर बाढ़ नियंत्रण उपायों अथवा डैम के प्रभाव।
18. सिंचाई तथा परिवहन परियोजनाओं में निवेश के मूल्यांकन के लिए लागत-लाभ विश्लेषण का विकास यू. एस. ए. में किया गया। अल्पविकसित देशों में, परियोजनाएं अक्सर तदर्थ (adhoc) आधार पर चुनी जाती हैं तथा लागतों और लाभों के रूप में उनके मूल्यांकन पर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया जाता है।
19. परियोजनाओं के मूल्यांकन के लिए इक्स्टीन तथा मैक्कीन, लागत-लाभ तकनीक के बजाय समष्टिगत आर्थिक आयोजन विधियों के प्रयोग के पक्ष में है। परन्तु सांख्यिकीय आँकड़ों के अभाव के कारण इन विधियों को अल्पविकसित देशों पर नहीं लागू किया जा सकता।
20. लागत-लाभ विश्लेषण का भारत में प्रथम नियमित प्रयास प्रो. डी.आर. गाडगिल ने महाराष्ट्र में गोदावरी और प्रवरा नहर व्यवस्थाओं के लिए किया। इसके पश्चात प्रोफेसर सोबानी तथा नीलकण्ठ रथ ने हीराकुंड बाँध परियोजना की लागतों और लाभों का मूल्यांकन किया।
21. एक विशिष्ट परियोजना के लिए उत्पादन का अनुकूलतम माप चुनने के लिए माँग में समयोपरि वृद्धि का आगणन करना होता है। फिर, कुछ बाह्य अमितव्ययिताएँ हो सकती हैं।

29.9 शब्दकोश (Keywords)

- **पार्श्व–** प्रभाव।
- **डैम–** बाँध।

29.10 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. लागत-लाभ विश्लेषण पर एक विस्तृत टिप्पणी लिखिए–
2. लागत-लाभ विश्लेषण क्या है? इसके महत्त्व एवं सीमाओं की विवेचना कीजिए।
3. लागत-लाभ विश्लेषण की कसौटियाँ बताइए तथा लाभों के आधार पर इसका मूल्यांकन कीजिए।
4. लागत-लाभ विश्लेषण के मूल्यांकन में आँकड़ों का क्या महत्त्व है?
5. लागत-लाभ विश्लेषण का भारत में किस प्रकार प्रयोग होता है। समझाइए–

नोट

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

1.	1. (क)	2. (ख)	3. (क)	4. (क)
	5. (क)			
2.	1. आँकड़ों	2. लागतों	3. मितव्ययिताओं	4. प्रो. लुइस
	5. बट्टा दर			
3.	1. सत्य	2. असत्य	3. सत्य	4. सत्य
	5. सत्य			

29.11 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. *संवृद्धि एवं विकास का अर्थशास्त्र*: डॉ. पी. मिश्रा; साहित्य भवन पब्लिकेशन्स : आगरा
2. *विकास नियोजन एवं नीतियाँ*: वी. सी सिन्हा: साहित्य भवन पब्लिकेशन्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.) लि. रजिस्टर्ड कार्यालय नई दिल्ली
3. *विकास का अर्थशास्त्र एवं आयोजन*: डा. एस. एल. डिंगल: वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा. लि.

नोट

इकाई–30: भारत में नियोजन की भूमिका (Role of Planning)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

30.1 महत्त्वपूर्ण अवधारणाएँ (Important Concepts)

30.2 भारत में आर्थिक नियोजन (Economic Planning in India)

30.3 भारतीय नियोजन के उद्देश्यों की कमियाँ (Shortcomings in Objectives of Indian Planning)

30.4 भारत में नियोजन की व्यूह रचना (Strategy of Planning in India)

30.5 पंचवर्षीय योजनाओं में विनियोग का प्रारूप (Pattern of Investment Under the Five Year Plans)

30.6 योजना की वित्तीय व्यवस्था का प्रतिरूप (Pattern of Financing Plan Outlays)

30.7 भारतीय नियोजन की उपलब्धियाँ एवं असफलताएँ (Achievements and Failures of Indian Planning)

30.8 योजनाओं को सफल बनाने के लिए सुझाव (Suggestions for Success of Plans)

30.9 सारांश (Summary)

30.10 शब्दकोश (Keyword)

30.11 अभ्यास–प्रश्न (Review Questions)

30.12 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- नियोजन के महत्वपूर्ण अवधारणाओं को समझने में।
- भारत में आर्थिक नियोजन एवं भारतीय नियोजन की कमियों तथा उद्देश्यों को जानने में।
- पंचवर्षीय योजनाओं में विनियोग के प्रारूप की व्याख्या करने में।
- योजना की वित्तीय व्यवस्था के प्रतिरूप एवं भारतीय नियोजन की उपलब्धियों तथा असफलताओं की विवेचना करने में।

प्रस्तावना (Introduction)

आर्थिक शब्द के संबंध में अर्थशास्त्रियों में कोई एकमत नहीं है। अर्थशास्त्र विषयक साहित्य में इस शब्द का बहुत सिथिल रूप में प्रयाग हुआ है। इसे प्राय: भ्रान्ति से साम्यवाद, सामाजवाद या आर्थिक विकास समझ लिया जाता है। राज्य की ओर से आर्थिक मामलों में किसी भी प्रकार के हस्तक्षेप को भी आयोजन मान लिया गया। परन्तु राज्य तो कोई योजना बनाए बिना भी कर सकता है। फिर नियोजन क्या है? नियोजन एक तकनीक, एक साध्य प्राप्ति का साधन और वह

नोट

साध्य है, जो केन्द्रीय योजना प्राधिकरण द्वारा निर्धारित किन्हीं पूर्वनिश्चित तथा सुस्पष्ट लक्ष्यों तथा उद्देश्यों को प्राप्त करता है। यह साध्य आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक तथा सैनिक उद्देश्यों को प्राप्त करना हो सकता है। इसलिए प्रश्न यह नहीं है कि योजना बनाई जाए अथवा नहीं बल्कि यह है कि विभिन्न प्रकार की योजनाओं में से किसे अपनाया जाय।"

आर्थिक नियोजन का मतलब, समय की एक निश्चित अवधि के भीतर निश्चित लक्ष्यों तथा उद्देश्यों की प्राप्ति के उद्देश्य से केन्द्रिय प्राधिकरण द्वारा अर्थव्यवस्था का नियोजन नियंत्रण तथा निदेशन।

30.1 महत्त्वपूर्ण अवधारणाएँ (Important Concepts)

(1) **आर्थिक नियोजन** (Economic Planning)–आर्थिक नियोजन से आशय उस पद्धति से है जिसमें आर्थिक क्रियाओं से सम्बद्ध सभी निर्णय सरकार द्वारा किये जाते हैं, ताकि उपलब्ध संसाधनों का सर्वोत्तम उपयोग हो सके।

(2) **बाजार अर्थव्यवस्था** (Market Economy)–बाजार अर्थव्यवस्था से आशय उस अर्थव्यवस्था से है जिसमें उत्पत्ति के साधनों पर **निजी स्वामित्व** पाया जाता है।

(3) **सार्वजनिक वस्तु** (Public Goods)–सार्वजनिक वस्तु वे हैं जो सभी व्यक्तियों को समान रूप से उपलब्ध होती हैं, भले ही उसने उस वस्तु की कीमत चुकायी हो या नहीं, जैसे–सड़कें।

(4) **नियोजन की व्यूह-रचना** (Strategy of Planning)–नियोजन की व्यूह-रचना से आशय उन उपायों, नीतियों एवं प्राथमिकताओं के क्रम से है जिन्हें योजना के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए अपनाया जाता है।

(5) **विनियोग प्रारूप** (Investment Pattern)–पंचवर्षीय योजनाओं में अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में जो ध नराशि आवंटित की जाती है उसे विनियोग का प्रारूप कहते हैं।

(6) **वृद्धिमान पूँजी उत्पादन अनुपात** (Incremental Capital Output Ratio-ICOR)–अर्थव्यवस्था में उत्पादन की एक अतिरिक्त इकाई प्राप्त करने के लिए पूँजी की जितनी अतिरिक्त इकाइयों की आवश्यकता होती है, उसे वृद्धिमान पूँजी उत्पाद अनुपात (ICOR) कहते हैं।

(7) **घरेलू साधन या स्त्रोत** (Domestic Resources)–इसके अन्तर्गत बजट, अतिरेक, सार्वजनिक उपक्रमों का योगदान, बाजार ऋण और बचतों आदि को सम्मिलित करते हैं।

(8) **बाह्य साधन या स्त्रोत** (External or Foreign Resources)–इसमें विदेशी सहायता या ऋण को सम्मिलित किया जाता है।

(9) **चालू राजस्व से बचत** (Balance from Current Revenue)–चालू राजस्व से आशय योजना के प्रारम्भिक वर्ष के करों की दरों के आधार पर योजना अवधि में सरकार को प्राप्त आय तथा सरकार द्वारा किये जाने वाले चालू गैर-योजना व्यय के अन्तर से होता है।

(10) **अतिरिक्त संसाधन संग्रह** (Additional Resources Mobilisation)-योजनाओं के वित्त प्रबन्ध के लिए प्रत्येक योजना में करों की दरों में परिवर्तन करके तथा नया कर लगाकर व अनुदानों को कम करके अतिरिक्त आय एकत्रित की जाती है जिसे अतिरिक्त संसाधन संग्रह कहते हैं।

(11) **सार्वजनिक उपक्रमों से बचत** (Surpluses from Public Enterprises)–सार्वजनिक उपक्रमों के बचत में इन उपक्रमों द्वारा लाभांश वितरण के बाद रोके गये लाभ, मूल्य ह्रास कोष तथा सम्भावित मूल्य वृद्धि द्वारा अतिरिक्त आय की प्राप्ति को सम्मिलित किया जाता है।

(12) **घाटे की वित्त व्यवस्था** (Deficit Financing)–इसके अन्तर्गत सरकार अतिरिक्त करेन्सी नोट छापकर वित्तीय संसाधन जुटाती है जिससे देश में मुद्रा की आपूर्ति बढ़ जाती है।

नोट

30.2. भारत में आर्थिक नियोजन (Economic Planning in India)

भारत में आर्थिक नियोजन की प्रक्रिया **प्रथम पंचवर्षीय योजना** के साथ 1 अप्रैल, 1951 को प्रारम्भ हुई। वैसे उससे पहले ही देश में योजना के मार्ग को अपनाने की बातें विभिन्न व्यक्तियों तथा संस्थाओं द्वारा सोची जा रही थीं। सबसे पहले **श्री एम. विश्वेश्वररैया** ने सन् 1934 में **'प्लांड इकोनॉमी फॉर इण्डिया'** (Planned Economy for India) नामक पुस्तक में योजना की प्रथम रूपरेखा रखी थी। बाद में सन् 1938 में श्री जवाहर लाल नेहरू की अध्यक्षता में **नेशनल प्लानिंग कमेटी** की नियुक्ति की गयी जिसमें देश के आर्थिक विकास के लिए योजना का एक मसौदा प्रकाशित किया गया। इसके उपरान्त देश के समक्ष एक-एक करके तीन विकास योजनाएँ रखी गयीं–

(*i*) **बम्बई योजना** (Bombay Plan)–1943 के अन्त में बम्बई के आठ प्रमुख उद्योगपतियों ने भारत के आर्थिक विकास की योजना प्रस्तुत की। यह योजना **बम्बई योजना** के नाम से प्रसिद्ध है। योजना के 15 वर्षों का कुल व्यय 10,000 करोड़ रुपये निश्चित किया गया।

(*ii*) **गाँधीवादी योजना** (Gandhian Plan)–1944 में **आचार्य श्रीमन्नारायण अग्रवाल** द्वारा देश के आर्थिक विकास के लिए गाँधीवादी योजना प्रस्तुत की गयी। यह योजना आदर्शवादी थी जिसमें व्यय कार्यक्रमों व लक्ष्यों पर ध्यान केन्द्रित न करके योजनावधि पर अधिक ध्यान दिया था।

(*iii*) **जन योजना** (Peoples Plan)–अप्रैल 1945 से इण्डियन फेडरेशन ऑफ लेबर की ओर से **एम. एन. राय** ने जन योजना प्रकाशित की। यह योजना 10 वर्ष की अवधि के लिए बनायी गयी थी तथा इसके अन्तर्गत कुल व्यय 1,500 करोड़ रुपये करना था।

उपर्युक्त किसी भी योजना को व्यावहारिक रूप देना सम्भव नहीं हो पाया क्योंकि देश गुलाम था तथा विदेशी शासक देश के आर्थिक विकास के किसी भी कार्यक्रम में रुचि नहीं लेते थे।

स्वतन्त्रता-प्राप्ति के समय देश में गरीबी, खाद्यान्न का अभाव, बेरोजगारी, आवासों की कमी, अशिक्षा, शोषण-प्रवृत्ति, औद्योगिक अशान्ति, कृषि का पिछड़ापन आदि अविकसित अर्थव्यवस्था की सभी समस्याएँ विद्यमान थीं। इन विभिन्न समस्याओं से निपटने के लिए यह आवश्यक था कि आर्थिक नियोजन का सहारा लिया जाये।

स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद 1950 में **पण्डित जवाहर लाल नेहरू** की अध्यक्षता में देश के भौतिक, पूँजीगत एवं मानवीय साधनों को आँकने तथा इनके आधार पर आर्थिक विकास के लिए योजना बनाने के लिए **योजना आयोग** (Planning Commission) की स्थापना की गयी। आयोग ने अपनी स्थापना के पन्द्रह महीनों के पश्चात् जुलाई सन् 1951 में प्रथम पंचवर्षीय योजना की रूपरेखा सरकार के आगे प्रस्तुत कर दी। पण्डित नेहरू ने 8 दिसम्बर, 1952 को लोकसभा के आगे प्रथम पंचवर्षीय योजना का अन्तिम प्रारूप (Final Draft) पेश किया था।

योजना आयोग द्वारा क्रियान्वित विभिन्न योजनाओं की समयावधि व अन्य वितरण विकास मॉडल, प्राथमिकताएँ, विकास दर का लक्ष्य व वास्तविक विकास दर नीचे सारणी में प्रस्तुत किया गया है।

टास्क भारत जैसी एक विकासोन्मुख अर्थव्यवस्था में नियोजन का क्या महत्त्व है?

नोट

सारणी 1–भारत की विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में प्रयुक्त विकास मॉडल, प्राथमिकताएँ, विकास दर का लक्ष्य एवं वास्तविक विकास दर प्रतिशत में

क्र.	पंचवर्षीय योजनाएँ	प्रयुक्त विकास मॉडल	प्राथमिकताएँ	विकास दर का लक्ष्य	वास्तविक विकास दर (1980-81 के मूल्यों के आधार पर)
1.	प्रथम पंचवर्षीय योजना (1951–56)	हैरड डोमर मॉडल	कृषि विकास व असन्तुलन दूर करना	2%	3.6%
2.	द्वितीय पंचवर्षीय योजना (1956–61)	महालनोबिस मॉडल	उद्योग व खनिज का विकास	4.5%	3.9%
3.	तृतीय पंचवर्षीय योजना (1961–66)	जॉन सैण्डी एवं एस. चक्रवर्ती मॉडल	कृषि, सिंचाई, उद्योग, खनिज का विकास	4.6%	2.3%
4.	चतुर्थ पंचवर्षीय योजना (1969–74)	सामंजस्यता मॉडल ऐलन मान्ने व अशोक रुद्र मॉडल	स्थिरता के साथ विकास, औद्योगीकरण, ऊर्जा का विकास	5.7%	3.3%
5.	पंचम पंचवर्षीय योजना (1974–78)	योजना आयोग के दृष्ट योजना विभाग द्वारा निर्मित प्रारूप	गरीबी उन्मूलन, आत्मनिर्भरता प्राप्त करना	5.5% प्रस्तावित संशो. 4.4%	4.9%
6.	छठी पंचवर्षीय योजना (1980–85)	संरचनात्मक परिवर्तन एवं वृद्धि पर बल देने की युक्ति पर आधारित	ऊर्जा, परिवहन, संचार, कृषि व उद्योग, सिंचाई	5.2%	5.4%
7.	सप्तम पंचवर्षीय योजना (1985–90)	दीर्घकालिक विकास युक्ति व उदारीकरण पर जोर देने पर आधारित मॉडल	गरीबी दूर करना, उत्पादकता, रोजगार में वृद्धि	5%	5.8%
8.	अष्टम पंचवर्षीय योजना (1992–97)	उदारीकृत अर्थव्यवस्था के रूप में परिणत जॉन डब्ल्यू, मिलर मॉडल	मानव संसाधन का विकास अर्थात् जनसंख्या, शिक्षा, रोजगार आदि में	5.6%	6.8%
9.	नौवीं पंचवर्षीय योजना (1997–2002)	योजना आयोग के अध्यक्ष मधु दण्डवते प्रारूप पर आधारित	न्यायपूर्ण वितरण व समानता के साथ विकास	7%,	6.5%
10.	दसवीं पंचवर्षीय योजना (2002–07)	सोम–समिति द्वारा निर्धारित प्रारूप	मानव विकास, प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि, सामाजिक–आर्थिक उन्नति।	8%	–

नोट

भारतीय आर्थिक नियोजन के उद्देश्य (Objectives of Indian Economic Planning)

उपर्युक्त सारणी से स्पष्ट है कि वर्तमान में भारत में दसवीं पंचवर्षीय योजना चल रही है। यद्यपि सभी योजनाओं के सामान्य उद्देश्य अधिकतम रोजगार, आर्थिक समानता और सामाजिक न्याय की प्राप्ति रहे हैं लेकिन विभिन्न योजनाओं में परिस्थितियों और आवश्यकताओं के अनुसार उद्देश्यों को परिभाषित और निर्धारित किया जाता है जिनका योजनावार विवरण निम्न प्रकार है–

पहली पंचवर्षीय योजना (First Five Year Plan)

(1) **अवधि** (Period)–1 अप्रैल, 1951 से 31 मार्च, 1956 तक।

(2) **सैद्धान्तिक मॉडल** (Theoretical Model)–**हैरड-डोमर** मॉडल के परिवर्द्धित मॉडल पर आधारित

(3) **प्रमुख उद्देश्य** (Main Objectives)–**कृषि क्षेत्र का विकास करना।**

(4) **अन्य उद्देश्य** (Other Objectives)–(*i*) शरणार्थियों का पुनर्वास करना। (*ii*) द्वितीय विश्वयुद्ध और विभाजन से क्षतिग्रस्त अर्थव्यवस्था का पुनरुत्थान करना। (*iii*) खाद्य समस्याओं का समाधान करना। (*iv*) मुद्रा-स्फीति पर नियन्त्रण करना। (*v*) लघु व कुटीर उद्योगों का पुनरुद्धार और औद्योगीकरण की पृष्ठभूमि तैयार करना।

दूसरी पंचवर्षीय योजना (Second Five Year Plan)

(1) **अवधि** (Period)–1 अप्रैल, 1956 से 31 मार्च, 1961 तक।

(2) **सैद्धान्तिक मॉडल** (Theoretical Model)–**पी. सी. महालनोबिस** के असन्तुलित विकास के मॉडल पर आधारित (आगत-निर्गत विकास मॉडल)।

(3) **प्रमुख उद्देश्य** (Main Objective)–**तीव्र औद्योगीकरण करना।**

(4) **अन्य उद्देश्य** (Other Objectives)–(*i*) राष्ट्रीय आय में पर्याप्त वृद्धि करना। (*ii*) तीव्र औद्योगीकरण जिसमें आधारभूत व भारी उद्योगों पर विशेष बल देना। (*iii*) आय व सम्पत्ति की असमानता को कम करना। (*iv*) आर्थिक विकास का समान वितरण करना। (*v*) रोजगार के अवसरों में वृद्धि करना।

तीसरी पंचवर्षीय योजना (Third Five Year Plan)

(1) **अवधि** (Period)–1 अप्रैल, 1961 से 31 मार्च, 1966 तक।

(2) **सैद्धान्तिक मॉडल** (Theoretical Model)–**जॉन सैण्डी एस. चक्रवर्ती** के मॉडल पर आधारित।

(3) **प्रमुख उद्देश्य** (Main Objective)–**अर्थव्यवस्था को स्वावलम्बी स्वस्फूर्त बनाना।**

(4) **अन्य उद्देश्य** (Other Objectives)–(*i*) कृषि क्षेत्र का विकास करना। (*ii*) खाद्यान्नों के क्षेत्र में आत्म-निर्भरता प्राप्त करना। (*iii*) कृषि व उद्योगों का समन्वित विकास करना। (*iv*) द्रुत औद्योगीकरण के लिए आधारभूत उद्योगों का तीव्र गति से विकास करना। (*v*) अवसर की समानता सुनिश्चित करना। (*vi*) आय व सम्पत्ति की असमानता में कमी करना। (*vii*) रोजगार के अवसरों में वृद्धि करना।

तीन वार्षिक योजनाएँ (Three Annual Plans)

(1) **अवधि** (Period)–1 अप्रैल, 1966 से 31 मार्च, 1969 तक।

(2) **उद्देश्य** (Objectives)–(*i*) युद्ध से उत्पन्न स्थितियों का निराकरण करना। (*ii*) खाद्यान्न संकट का समाधान करना। (*iii*) मुद्रा-स्फीति पर नियन्त्रण करना। (*iv*) चौथी योजना के लिए आधार तैयार करना।

चौथी पंचवर्षीय योजना (Fourth Five Year Plan)

(1) **अवधि** (Period)–1 अप्रैल, 1969 से 31 मार्च, 1974 तक।

(2) **सैद्धान्तिक मॉडल** (Theoretical Model)–**एलन एस. मान्ने और अशोक रुद्र मॉडल।**

(3) **प्रमुख उद्देश्य** (Main Objective)–**स्थिरता के साथ आर्थिक विकास और आत्म-निर्भरता की प्राप्ति करना।**

नोट

(4) **अन्य उद्देश्य** (Other Objectives)–(*i*) कृषि और उद्योग के क्षेत्र में उत्तरोत्तर आत्म-निर्भरता प्राप्त करना। (*ii*) न्यायपूर्ण विकास करना। (*iii*) अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों का सन्तुलित विकास करना। (*iv*) द्रुत गति से औद्योगिक विकास जिसमें आधारभूत और भारी उद्योगों पर विशेष बल देना। (*v*) आय व सम्पत्ति की असमानता में कमी करना। (*vi*) रोजगार के अवसरों में वृद्धि करना। (*vii*) राष्ट्रीय आय में तीव्र वृद्धि करना।

पाँचवीं पंचवर्षीय योजना (Fifth Five Year Plan)

(1) **अवधि** (Period)–1 अप्रैल, 1974 से 31 मार्च, 1978 तक।

पाँचवीं पंचवर्षीय योजना को जनता पार्टी की सरकार द्वारा अपने निर्धारित समय से एक वर्ष पूर्व ही समाप्त घोषित करके छठी योजना (1978-83) लागू की गयी जिसे अनवरत योजना (Rolling Plan) का नाम दिया गया था।

(2) **सैद्धान्तिक मॉडल** (Theoretical Method)–**योजना आयोग के दृष्टि योजना विभाग द्वारा तैयार प्रारूप पर आधारित जिसमें तीन मॉडलों को शामिल किया गया था–**

(अ) समविष्ट भावी मॉडल,

(ब) आगत-निर्गत मॉडल,

(स) उपयोग के मॉडल।

(3) **प्रमुख उद्देश्य** (Main Objectives)–**गरीबी निवारण व आत्म-निर्भरता प्राप्त करना।**

(4) **अन्य उद्देश्य** (Other Objectives)–(*i*) रोजगार के अवसरों में वृद्धि करना। (*ii*) न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम को क्रियान्वित करना। (*iii*) कृषि, आधारभूत एवं मूल उद्योगों पर विशेष बल देना। (*iv*) उपभोक्ता वस्तुओं के उत्पादन पर बल देना। (*v*) आर्थिक, सामाजिक तथा क्षेत्रीय असमानता को कम करना। (*vi*) आयात प्रतिस्थापन और निर्यात प्रोत्साहन की नीति अपनाना। (*vii*) खाद्यान्नों का भण्डारण तथा सार्वजनिक वितरण प्रणाली का विस्तार।

छठी पंचवर्षीय योजना (Sixth Five Year Plan)

(1) **अवधि** (Period)–1 अप्रैल, 1980 से 31 मार्च 1985 तक।

(2) **सैद्धान्तिक मॉडल** (Theoretical Method)–**कई विकास युक्तियों को ध्यान में रखते हुए संरचनात्मक परिवर्तन एवं संवृद्धि पर बल।**

(3) **प्रमुख उद्देश्य** (Main Objectives Theoretical Model)–**रोजगार सृजन।**

(4) **अन्य उद्देश्य** (Other Objectives)–(*i*) आर्थिक संवृद्धि-दर में पर्याप्त वृद्धि करना। (*ii*) आर्थिक व तकनीकी आत्म-निर्भरता के उद्देश्य से आधुनिकीकरण पर बल दिया गया। (*iii*) गरीबी और बेरोजगारी में कमी करना। (*iv*) ऊर्जा क्षेत्र में तीव्र विकास जिसमें घरेलू संसाधनों के उपयोग पर बल दिया गया। (*v*) न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम के विस्तार द्वारा सामान्य जीवन-स्तर में सुधार करना। (*vi*) आय व सम्पत्ति की असमानता में कमी करना। (*vii*) पर्यावरण संरक्षण करना। (*viii*) क्षेत्रीय असमानता में क्रमिक कमी करना। (*ix*) संचार व संस्थागत नीतियाँ।

सातवीं पंचवर्षीय योजना (Seventh Five Year Plan)

(1) **अवधि** (Period)–1 अप्रैल, 1985 से 31 मार्च, 1990 तक।

(2) **सैद्धान्तिक मॉडल** (Theoretical Model)–**'दीर्घकालीन विकास युक्तियों' पर जोर देते हुए उदारीकरण की ओर अग्रसर।**

(3) **प्रमुख उद्देश्य** (Main Objective)–**अर्थव्यवस्था का आधुनिकीकरण करना।**

(4) **अन्य उद्देश्य** (Other Objectives)–(*i*) समानता और सामाजिक न्याय पर आधारित व्यवस्था की स्थापना करना। (*ii*) खाद्यान्न के उत्पादन और उत्पादकता में वृद्धि करना। (*iii*) मुद्रा-स्फीति की दर में नियन्त्रण रखते

नोट

हुए रोजगार के अवसरों में वृद्धि करना। (*iv*) आधारभूत उद्योग क्षेत्र में वृद्धि और स्थापित क्षमता का पूर्ण प्रयोग करना। (*v*) कृषि और उद्योग के क्षेत्र में घरेलू तकनीकी का विकास करना। (*vi*) मानव संसाधन का विकास करना। (*vii*) ऊर्जा संरक्षण और गैर-परम्परागत ऊर्जा स्त्रोतों का विकास करना। (*viii*) पर्यावरण और परिवेश की रक्षा करना। (*ix*) जनसंख्या वृद्धि-दर में कमी करना। (*x*) सामाजिक उपभोग (शिक्षा, स्वास्थ्य, पोषण, आवास आदि) का ऊँचा स्तर प्राप्त करना। (*xi*) गरीबी और बेरोजगारी उन्मूलन के कार्यक्रमों पर विशेष बल देना।

आठवीं पंचवर्षीय योजना (Eight Five Year Plan)

(1) **अवधि** (Period)–1 अप्रैल, 1992 से 31 मार्च, 1997 तक।

(2) **सैद्धान्तिक मॉडल** (Theoretical Model)–**उदारीकृत अर्थव्यवस्था के रूप में परिणित 'जॉन डब्ल्यू. मिलर मॉडल' पर आधारित।**

(3) **प्रमुख उद्देश्य** (Main Objective)–मानव संसाधन विकास करना।

(4) **अन्य उद्देश्य** (Other Objectives)–(*i*) रोजगार के पर्याप्त अवसरों का सृजन करके शताब्दी के अन्त तक पूर्ण रोजगार का लक्ष्य प्राप्त करना। (*ii*) समस्त जनसंख्या के लिए सुरक्षित पेय जल, पर्याप्त स्वास्थ्य सेवाएँ तथा सिर पर मैला ढोने की प्रथा का अन्त करना। (*iii*) जनता के सक्रिय सहयोग से जनसंख्या वृद्धि पर नियन्त्रण करना। (*iv*) प्राथमिक शिक्षा का सर्वव्यापीकरण तथा 15-35 आयु वर्ग में पूर्ण साक्षरता प्राप्त करना। (*v*) कृषि क्षेत्र में संवृद्धि और विविधीकरण जिससे खाद्यान्न में आत्म-निर्भरता के साथ ही निर्यात के लिए अतिरेक प्राप्त हो सके।

नौवीं पंचवर्षीय योजना (Ninth Five Year Plan)

(1) **अवधि** (Period)–1 अप्रैल, 1997 से 31 मार्च, 2002 तक।

(2) **सैद्धान्तिक मॉडल** (Theoretical Model)–**"हैरड डोमर"** मॉडल।

(3) **प्रमुख उद्देश्य** (Main Objective)–**न्यायपूर्ण वितरण और असमानता के साथ विकास।**

(4) **अन्य उद्देश्य** (Other Objectives)–

(*i*) **कृषि तथा ग्रामीण विकास को प्राथमिकता** (Priority to Agriculture and Rural Development)–नौवीं योजना का मुख्य उद्देश्य रोजगार उत्पन्न करने तथा निर्धनता को दूर करने के लिए कृषि तथा ग्रामीण विकास को प्राथमिकता देना है।

(*ii*) **मूल्यों में स्थिरता के साथ विकास** (Growth with Stabilities in Price)–नौवीं योजना का उद्देश्य मूल्यों में स्थिरता बनाये रखना है। इसके साथ-साथ अर्थव्यवस्था की वृद्धि-दर तेज करना है।

(*iii*) **भोजन एवं पोषण सुरक्षा** (Food & Nutritional Security)–सभी के लिए विशेषकर समाज के कमजोर वर्गों के लिए भोजन तथा पोषण सुरक्षा निश्चित करना है।

(*iv*) **आधारभूत न्यूनतम सेवाएँ** (Minimum Basic Services)–आधारभूत न्यूनतम सेवाओं, जैसे–सुरक्षित पीने का पानी, प्राथमिक स्वास्थ्य देखरेख सुविधा, निर्धारित समय में सभी को प्राथमिक शिक्षा, आवास की व्यवस्था करना है।

(*v*) **जनता के सहयोग को प्रोत्साहन** (Encouragement to People's Co-operation)–देश के आर्थिक विकास में योगदान देने के लिए पंचायती राज संस्थाओं, सहकारी तथा स्वयंसेवी संस्थाओं का विकास करना।

(*vi*) **आत्म-निर्भरता** (Self-reliance)–नौवीं योजना का उद्देश्य आत्म-निर्भरता के लक्ष्य को प्राप्त करना है।

(*vii*) **पर्यावरणीय सुरक्षा** (Environmental Reforms)–नौवीं योजना का उद्देश्य जनता के सहयोग से विकास प्रक्रिया की पर्यावरण क्षमता को निश्चित करना है।

नोट

(*viii*) जनसंख्या वृद्धि-दर को कम करना।

(*ix*) महिलाओं, कमजोर वर्ग व अल्पसंख्यकों की स्थिति को सुदृढ़ करना।

अब तक के 50 वर्षों के नियोजन के **प्रमुख उद्देश्यों** का निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत अध्ययन किया जा सकता है–

(1) **आर्थिक विकास की दर में वृद्धि** (Increase in Rate of Economic Development)–भारतीय योजनाओं का सर्वप्रमुख उद्देश्य राष्ट्रीय आय में वृद्धि करना है। इस उद्देश्य को मात्रात्मक रूप देने के लिए इसे राष्ट्रीय आय की वार्षिक वृद्धि-दर के रूप में परिभाषित किया गया है। राष्ट्रीय आय में वृद्धि की वार्षिक लक्ष्य-दर 5 प्रतिशत के आस-पास तथा अन्य योजनाओं में निर्धारित वार्षिक वृद्धि-दर 4.5 प्रतिशत और 5.7 प्रतिशत के बीच थी। नौवीं योजना में वृद्धि की लक्ष्य-दर 6.5 प्रतिशत निर्धारित की गयी है।

(2) **स्थिरता** (Stability)–आर्थिक नियोजन का एक अन्य प्रमुख उद्देश्य अर्थव्यवस्था में स्थिरता लाना और उसे बनाये रखना है। आर्थिक स्थिरता से हमारा आशय अर्थव्यवस्था में कीमतों में होने वाले उतार-चढ़ावों को समाप्त करना है, ताकि अर्थव्यवस्था सुचारु रूप से प्रगति कर सके।

(3) **रोजगार अवसरों में वृद्धि** (Increase in Employment Opportunities)–रोजगार के अवसरों में वृद्धि लाकर बेरोजगारों को रोजगार उपलब्ध कराना तथा अर्द्ध और अदृश्य बेरोजगारी को दूर करना हमारी योजनाओं का एक प्रमुख उद्देश्य रहा है। सातवीं योजना में तो रोजगार वृद्धि को प्रमुखतम उद्देश्य ठहराया गया।

(4) **आत्म-निर्भरता** (Self-sufficiency)–विदेशी सहायता लेने की आवश्यकता के बावजूद योजनाकारों ने नियोजन का उद्देश्य आत्म-निर्भरता भी रखा है। 'आत्म-निर्भरता' शब्द का अर्थ आर्थिक लगान नहीं है बल्कि इसका अर्थ है विदेशी सहायता से मुक्ति।

(5) **विनियोग आय के अनुपात में वृद्धि** (Increase in Investment Income Ratio)–नियोजन का एक उद्देश्य यह भी है कि राष्ट्रीय आय में विनियोग का अनुपात बढ़े। राष्ट्रीय आय में विनियोग का अनुपात जितना ही अधिक होगा, देश की उत्पादन क्षमता में उतनी ही अधिक वृद्धि होगी। विकसित देशों में यह अनुपात 25% से भी अधिक है।

(6) **सामाजिक न्याय को बढ़ाना** (Encouragement to Social Justice)–इस उद्देश्य के दो प्रमुख आयाम हैं–**प्रथम,** निर्धनता रेखा के नीचे गुजर करने वाले लोगों, जैसे–छोटे किसान, खेतिहर मजदूर, ग्रामीण दस्तकार और पिछड़े वर्ग के लोगों के जीवन-स्तर में सुधार लाना और **द्वितीय,** आर्थिक असमानताओं को कम करना। इस उद्देश्य में अन्तर्क्षेत्रीय विषमताओं को कम करना भी शामिल है। इसके लिए अपेक्षाकृत पिछड़े क्षेत्रों या राज्यों का आर्थिक विकास करके उन्हें ऊँची आय वाले क्षेत्रों या राज्यों की आय के समकक्ष लाना है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

1. सही विकल्प चुनिए

1. योजना आयोग की स्थापना किस वर्ष की गयी–

   (क) 15 मार्च 1950 में (ख) 15 मार्च 1951 में

   (ग) 15 मार्च 1952 में (घ) इनमें से कोई नहीं।

2. द्वितीय योजना में विशेष ध्यान दिया गया था–

   (क) कृषि पर (ख) शिक्षा पर

   (ग) उद्योग पर (घ) इनमें से कोई नहीं।

3. दूसरी योजना और बाद में विकास की जो प्रणाली अपनायी गई उसके अनुसार विकास-क्रम में प्राथमिकता दी गई–

   (क) भारी पूँजीगत उद्योगों का विकास (ख) लघु उद्योगों का विकास

   (ग) उपभोक्ता उद्योगों का विकास (घ) उपरोक्त सभी।

नोट

4. पाँचवीं पंचवर्षीय योजना काल की प्राथमिकताएँ थी–
   (क) गरीबी उन्मूलन (ख) आत्म-निर्भरता प्राप्त करना
   (ग) उपरोक्त दोनों (घ) इनमें से कोई नहीं।
5. सातवीं योजना में कुल विनियोजन किया गया–
   (क) 3, 24, 366 करोड़ रु. (ख) 3, 30, 270 करोड़ रु.
   (ग) 3, 56, 337 करोड़ रु. (घ) 3, 28, 366 करोड़ रु.।
6. इसरी योजना में विकास की जो प्रणाली तैयार की गयी, उसका मॉडल तैयार करने का श्रेय दिया जाता है–
   (क) प्रो. मनमोहन सिंह को (ख) प्रो. ए. के. सेन को
   (ग) प्रो. पी.सी. महालनोबिस को (घ) प्रो. एस चक्रवती को।

30.3 भारतीय नियोजन के उद्देश्य की कमियाँ (Shortcomings in Objectives of Indian Planning

भारत में नियोजन के जिन उद्देश्यों का उल्लेख किया गया है, वे बहुत व्यापक हैं परन्तु इनमें निम्नलिखित कमियाँ है:

(1) ये उद्देश्य अत्यन्त महत्वाकांक्षी हैं क्योंकि योजना में तो निर्धारित उद्देश्य प्राप्त नहीं किये जा सकते हैं।

(2) उद्देश्यों की संख्या बहुत अधिक है। छठी योजना में तो निर्धारित उद्देश्यों की संख्या 10 तक पहुँच चुकी थी। अनेक उद्देश्य होने से अधिक क्रियान्वयन में कठिनाई आती है।

(3) नियोजन के उद्देश्यों में कुशलता या उत्पादकता की अपेक्षा सामाजिक कल्याण पर अधिक बल दिया गया है।

(4) नियोजन के उद्दश्यों में रोजगार के अवसर बढ़ाने पर ध्यान नहीं दिया गया है।

(5) बहुत कम उद्देश्य ऐसे हैं जिनको परिणात्मक रूप में व्यक्त किया जा सकता है और इनके साथ समय की सीमा जुड़ी रहती है। केवल राष्ट्रीय आय एवं हाल ही के वर्षों में रोजगार के उद्देश्य ऐसे हैं जिन पर ये सीमाएँ लागू नहीं होतीं।

(6) विभिन्न योजनाओं के उद्देश्यों में परस्पर-सामंजस्य के बारे में कोई विचार नहीं किया जाता।

(7) जिन उद्देश्यों का चयन किया जाता है, उनकी सार्थकता और संगतता के बारे में कोई विचार नहीं किया जाता। ऐसा इसलिए कि अधिकांश उद्देश्यों को परिमाणात्मक रूप में व्यक्त करना सम्भव नहीं होता।

30.4 भारत में नियोजन की व्यूह-रचना (Strategy of Planning in India)

व्यूह-रचना का अर्थ (Meaning of Strategy)–व्यूह-रचना या **'कूटनीति'** या **'विकास विधि'** से सामान्यत: अभिप्राय किसी विषय अथवा क्षेत्र-विशेष से सम्बन्धित नीतियों, पद्धतियों, सिद्धान्तों व कार्य-प्रणालियों का वह आदर्श सामंजस्य है जिसके द्वारा समस्या का सर्वोपयुक्त समाधान ढूँढ़ने का प्रयास किया जाता है।

नोट्स आर्थिक नियोजन के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए योजना में जो नीति अपनायी जाती है, उसे योजना की व्यूह-रचना कहा जाता है। इसे विकास युक्ति (Development Strategy) या विकास कूटनीति भी कहा जाता है।

नोट

इस प्रकार **व्यूह-रचना का आशय उन उपायों, नीतियों एवं प्राथमिकताओं के क्रम से है जिन्हें योजना के लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए अपनाया जाता है।**

विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में व्यूह रचना (Strategy in Different Five Year Plans)–मोटे तौर पर हमारे नियोजन की व्यूह-रचना अर्थव्यवस्था के सन्तुलित विकास पर आधारित रही है किन्तु यह उल्लेखनीय है कि आर्थिक दशाओं के बदले परिवेश में विविध क्षेत्रों में सन्तुलन बनाये रखने के लिए प्रत्येक योजना में कुछ क्षेत्रों को ऊँची प्राथमिकता देकर असन्तुलित विकास की कूटनीति का अनुसरण किया गया हो। इसकी पुष्टि विभिन्न योजनाओं के अध्ययन से भी होती है।

प्रथम पंचवर्षीय योजना (First Five Year Plan)–इस योजना के प्रारम्भ होने के समय देश की अर्थव्यवस्था अस्त-व्यस्त थी। द्वितीय विश्वयुद्ध तथा देश के विभाजन के कारण अर्थव्यवस्था को गहरा आघात लगा था। प्रथम योजना का उद्देश्य अर्थव्यवस्था में उत्पन्न हुए इस असन्तुलन को दूर करना था।

प्रथम पंचवर्षीय योजना में 1,960 करोड़ रुपये व्यय किये गये। इस योजना में कृषि को सर्वोच्च प्राथमिकता प्रदान की गयी। योजना व्यय का 44 प्रतिशत भाग कृषि, सिंचाई व शक्ति पर व परिवहन एवं संचार पर 27 प्रतिशत भाग व्यय किया गया।

मूल्यांकन (Evaluation)–यह योजना सन्तुलित विकास की व्यूह-रचना पर आधारित एक योजना थी यद्यपि भौतिक लक्ष्यों की प्राप्ति की दृष्टि से यह सफल रही परन्तु इस योजना में उद्योगों तथा खनिजों के विकास पर बिल्कुल ही ध्यान नहीं दिया गया।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना (Second Five Year Plan)–इस योजना की व्यूह-रचना महालनोबिस मॉडल पर आधारित थी। इस योजना में कृषि के स्थान पर उद्योगों को, श्रम-प्रधान परियोजनाओं के आधार पर पूँजी-प्रधान परियोजनाओं को, सन्तुलित विकास के आधार पर असन्तुलित विकास को, उपभोग के स्थान पर उत्पादन व रोजगार को मान्यता दी गयी।

द्वितीय योजना में सार्वजनिक क्षेत्र में 4,672 करोड़ रुपये व्यय हुए जिसका 27 प्रतिशत परिवहन एवं संचार साधनों, 24.1 प्रतिशत उद्योग व खनिज तथा 18.9 प्रतिशत सिंचाई एवं ऊर्जा पर व्यय किया गया।

मूल्यांकन (Evaluation)–यह योजना असन्तुलित विकास की व्यूह-रचना पर आधारित थी और भारी उद्योगों की स्थापना करने में सफल रही परन्तु निम्न कृषि निष्पादिता व लघु उद्योगों की असफलता के कारण योजनाकाल में कीमतों में 30 प्रतिशत की वृद्धि हुई जिसके कारण अर्थव्यवस्था स्फीतिक दबावों से त्रस्त हो गयी।

तीसरी पंचवर्षीय योजना (Third Five Year Plan)–इस योजना का प्रमुख उद्देश्य आत्म-स्फूर्ति की अवस्था को प्राप्त करना था। इस योजना में कृषि एवं सिंचाई के विकास को महत्व प्रदान करते हुए कहा गया कि विस्तारशील अर्थव्यवस्था को खाद्य व कच्चे माल की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु कृषि उत्पादन में वृद्धि लाने की अत्यधिक आवश्यकता है।

तृतीय योजना में सार्वजनिक क्षेत्र के कुल परिव्यय 8,577 करोड़ रुपये में से कृषि एवं सिंचाई में 20.4 प्रतिशत, परिवहन एवं संचार पर 24.7 प्रतिशत तथा संगठित उद्योग एवं खनिज पर 20.1 प्रतिशत भाग व्यय किया गया।

मूल्यांकन (Evaluation)–इस योजना में कृषि के साथ-साथ शक्ति, परिवहन और उद्योग को भी महत्व देकर विकास की सन्तुलित रणनीति अपनायी गयी परन्तु योजनाकाल में चीन व पाकिस्तान द्वारा अकस्मात् आक्रमण करने पर योजना का समस्त ढाँचा अस्त-व्यय हो गया।

चतुर्थ पंचवर्षीय योजना (Fourth Five Year Plan)–इस योजना में 'स्थिरता के साथ विकास' (Growth with Stability) का नारा दिया गया। यद्यपि चौथी योजना का आधारभूत ढाँचा महालनोबिस व्यूह-रचना पर ही आधारित था परन्तु उसमें कुछ महत्वपूर्ण परिवर्तन भी किये गये। योजना के लक्ष्यों में खण्डीय असन्तुलन (Sectoral Balance) का महत्व स्वीकारा गया, पिछड़े क्षेत्रों के विकास पर बल दिया गया तथा भारत के विदेशी व्यापार क्षेत्र को अत्यधिक महत्वपूर्ण माना गया।

नोट

इस योजना के वास्तविक परिव्यय 15,779 करोड़ रुपये में से कृषि तथा सिंचाई के लिए 23.3 प्रतिशत, शक्ति के लिए 18.6 प्रतिशत, परिवहन एवं संचार के लिए 19.5 प्रतिशत भाग व्यय किया गया।

पाँचवीं पंचवर्षीय योजना (Fifth Five Year Plan)–इस योजना की व्यूह-रचना अपने दोहरे उद्देश्यों–(*i*) गरीबी को दूर करना, (*ii*) आर्थिक निर्भरता को प्राप्त करना पर आधारित थी। यद्यपि पाँचवीं योजना में गरीबी निवारण कार्यक्रमों को प्राथमिकता दी गयी लेकिन गरीबी कम करने के लिए घरेलू उत्पाद में वृद्धि की दर को ऊँचा उठाने पर जोर दिया गया। इस दृष्टि से–(*i*) चालू विकास परियोजना को शीघ्र पूरा करने, (*ii*) पूर्व स्थापित क्षमताओं का पूर्ण प्रयोग करने, (*iii*) मुख्य क्षेत्र (Core Sector) में आवश्यक न्यूनतम लक्ष्यों को प्राप्त करने और (*iv*) समाज के कमजोर वर्गों के लिए विकास का न्यूनतम स्तर प्राप्त करने पर बल दिया गया।

पाँचवीं योजना का कुल परिव्यय 39,246 करोड़ रुपये का था जिसका सर्वाधिक 24.3 प्रतिशत उद्योग एवं खनिज, 18.8 प्रतिशत शक्ति तथा 17.4 एवं 17.3 प्रतिशत भाग क्रमशः परिवहन एवं सामाजिक सेवाओं में व्यय किया गया।

छठी पंचवर्षीय योजना (Sixth Five Year Plan)–इस योजना की व्यूह रचना इस प्रकार की गयी थी जिससे कृषि और उद्योग दोनों क्षेत्रों की संरचना सुदृढ़ हो, ताकि पूँजी निवेश, उत्पादन और निर्यात बढ़ाने के लिए उपयुक्त वातावरण तैयार हो सके और इस उद्देश्य से तैयार किये गये विशेष कार्यक्रमों के द्वारा ग्रामीण और असंगठित क्षेत्रों में रोजगार के अवसरों में वृद्धि हो जिससे लोगों की बुनियादी जरूरतें पूरी हो सकें।

इस योजना का वास्तविक परिव्यय 1,09,292 करोड़ रुपये का था जिसमें से सर्वाधिक 28.1 प्रतिशत ऊर्जा, 14.6 प्रतिशत सामाजिक सेवाओं तथा 13 प्रतिशत परिवहन पर व्यय किया गया, जबकि उद्योग व खनिज में 15.5 प्रतिशत भाग व्यय किया गया।

सातवीं पंचवर्षीय योजना (Seventh Five Year Plan)–इस योजना में प्राथमिकता–(*i*) गरीबी कम करने, (*ii*) उत्पादकता बढ़ाने व (*iii*) रोजगार अवसर बढ़ाने को दी गयी। इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए जो रीति-नीति अपनायी गयी, उसमें गरीबी की समस्या पर सीधा प्रहार किया गया तथा बेकारी व क्षेत्रीय असमानताओं को दूर करने का प्रयास किया गया। सभी क्षेत्रों में कुशलता से योजनाओं को लागू किया गया, विशेष रूप से सिंचाई, शक्ति परिवहन व उद्योग क्षेत्र में वृद्धि करना। इस योजना में कुल 2,18,730 करोड़ रुपये सार्वजनिक क्षेत्र में व्यय किये गये थे और प्राथमिकता क्रम में ऊर्जा, कृषि और सिंचाई, परिवहन व संचार तथा उद्योग व खनिज पर क्रमशः 28.2%, 22.0%, 17.4% व 11.9% व्यय किया गया।

आठवीं पंचवर्षीय योजना (Eighth Five Year Plan)–आठवीं योजना का शुभारम्भ 1 अप्रैल, 1992 से हुआ। इस योजना में मुख्य ध्यान मानव संसाधन विकास पर दिया गया। इसी आधारभूत उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए रोजगार सृजन, जनसंख्या नियन्त्रण, अशिक्षा, स्वास्थ्य शिक्षा, पेयजल और पर्याप्त अन्न एवं बुनियादी ढाँचे के प्रावधानों की योजना की प्राथमिकताओं के रूप में माना गया।

आठवीं योजना की **व्यूह रचना की कुछ प्रमुख विशेषताएँ** निम्न प्रकार थीं–

(*i*) यह योजना एक दिशापरक योजना थी जिसका उद्देश्य एक भावी दीर्घकालीन कार्यनीति का निर्माण करना था।

(*ii*) मानव विकास तथा आर्थिक संरचना को सर्वोपरि महत्व दिया गया।

(*iii*) इस योजना में विकास प्रयासों का एकीकरण किया गया, ताकि विनियोग से अच्छे परिणाम प्राप्त हो सकें।

(*iv*) इस योजना में **नीचे से नियोजन** (Planning from Below) के सिद्धान्त को अपनाया गया।

(*v*) ग्रामीण रोजगार पर विशेष बल दिया गया।

(*vi*) इस योजना में निष्पादन सुधार, गुणवत्ता, चेतना और स्वस्थ प्रतिस्पर्द्धा पर जोर दिया गया।

आठवीं योजना में सार्वजनिक क्षेत्र में कुल 4,34,100 करोड़ रुपये व्यय किये गये। कुल व्यय का सबसे अधिक भाग 26.6 प्रतिशत ऊर्जा पर व्यय किया गया। प्राथमिकता में द्वितीय स्थान कृषि और सिंचाई को दिया गया जिस पर कुल परिव्यय का 22.2 प्रतिशत व्यय किया गया।

नौंवीं पंचवर्षीय योजना (Ninth Five Year Plan)–नौवीं योजना की विकास-रणनीति का उद्देश्य, एक तरफ

नोट

'भौतिक अध:संरचना' (Physical Infra-structure) का निर्माण करके उत्पादन सम्बन्धी रुकावटें तोड़ना है तो दूसरी तरफ **'सामाजिक अध:संरचना'** (Social Infra-structure) के रूप में मानव-संसाधन विकास को प्रोन्नत करके **'सामाजिक न्याय सहित विकास'** (Growth with Social Justice) के लक्ष्य को प्राप्त करना है।

अत: नौवीं योजना की विकास रणनीति में निम्नलिखित क्षेत्रों पर बल दिया गया–

(*i*) जनसंख्या को शिक्षा, स्वास्थ्य व पेयजल की सुविधा उपलब्ध कराने पर।

(*ii*) अधिक आधार संरचना, जैसे–पावर, सड़कें, बन्दरगाहों, रेलवे, टेली, संचार, नगर पालिका सेवाएँ आदि उपलब्ध कराने पर।

(*iii*) आधार संरचना, सिंचाई, ग्रामीण सड़कों, संगठित बाजारों का निर्माण और अनुसन्धान को बढ़ावा दिया जाये।

(*iv*) कृषि उत्पादों के लिए निर्यात बाजारों को खोलना।

(*v*) सरकार का राजकोषीय घाटा (केंद्र एवं राज्य) दोनों स्तरों को एक उचित स्तर पर लाना।

उपरोक्त रणनीति (Strategy) को साकार रूप देने के लिए, सिंचाई सहित कृषि व ग्रामीण विकास पर कुल परिव्यय का 20 प्रतिशत व्यय तथा ऊर्जा (Energy) जो आर्थिक विकास का इंजन है, इसलिए इस क्षेत्र को कुल परिव्यय का लगभग 25 प्रतिशत भाग आवंटित किया गया है। सामाजिक विकास के बिना आर्थिक विकास अधूरा है, इस कारण सामाजिक सेवाओं को 21 प्रतिशत भाग आवंटित किया गया है। विकास को गति एवं चिकनाहट देते हुए परिवहन व संचार को 19.6 प्रतिशत साधन दिये गये हैं। चूँकि औद्योगिक क्षेत्र के द्वार निजी-निवेशकर्ताओं के लिए खोल दिये गये हैं इसलिए उद्योग एवं खनिज पर आवंटन मात्र 8.1 प्रतिशत रखा गया है।

उदारवादी विकास युक्ति (Liberalised Development Strategy)

भारत की आर्थिक विकास युक्ति में दीर्घकाल तक नियमन, नियन्त्रण और संरक्षण के तत्वों को प्रधानता दी जाती रही। इस विकास युक्ति के परिणामस्वरूप उपभोक्ता वस्तु उद्योगों के साथ माध्यमिक और पूँजीगत उद्योगों का विकास हुआ परन्तु इस विकास युक्ति के परिणामस्वरूप अर्थव्यवस्था विश्व स्तर पर स्पर्द्धात्मक नहीं हो सकी। दूसरी ओर, कई विकासशील अर्थव्यवस्थाओं के उदारीकरण के अनुभव सकारात्मक रहे। इन तथ्यों के परिप्रेक्ष्य में भारत में 1991 से उदारीकरण की प्रक्रिया अपनायी गयी। नियमन और नियन्त्रण की युक्ति के स्थान पर उदारीकरण पर जोर दिया गया। अत: अप्रैल, 1992 में आठवीं पंचवर्षीय योजना एक परिवर्तित परिवेश में आरम्भ की गयी। आठवीं योजना के प्रारूप में कहा गया कि बाजार तन्त्र (Market Mechanism) की बढ़ती भूमिका के कारण अब नियोजन की अपेक्षाकृत अधिक मार्गदर्शी भूमिका होगी।

अब सरकार की व्यूह-रचना पर पुन: विचार करके निम्नलिखित बिन्दुओं की ओर विशेष ध्यान देना होगा–

1. सरकार को अपनी आर्थिक गतिविधियों को सीमित रखना चाहिए। जहाँ तक सम्भव हो, सरकारी हस्तक्षेप शिक्षा, स्वास्थ्य सेवाओं आदि की आपूर्ति तक ही सीमित रहना चाहिए।
2. निजी पूँजी और उपक्रम प्रोत्साहन किये जाने चाहिए तथा उच्च आधुनिक तकनीक वाले क्षेत्रों में इनके प्रवेश को उत्साहित किया जाना चाहिए।
3. उपरी ढाँचे के विकास और विस्तार को प्राथमिकता दी जानी चाहिए।
4. सार्वजनिक क्षेत्र का और अधिक विस्तार न किया जाये बल्कि इस क्षेत्र का पुनर्गठन किया जाये।

30.5 पंचवर्षीय योजनाओं में विनियोग का प्रारूप (Pattern of Investment Under the Five Year Plans)

नियोजित विकास के लिए जो व्यूह रचना अपनायी गयी है, उसे अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में साधनों के आवंटन या विनियोग के रूप में व्यक्त किया जा सकता है। एक योजना की तुलना में दूसरी योजना में विनियोग के प्रारूप में अन्तर परिलक्षित होता है।

नोट

तालिका 30.2–विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में वास्तविक परिव्यय का ढाँचा

	विकास शीर्ष	पहली योजना (1951-56)	दूसरी योजना (1956-61)	तीसरी योजना (1961-66)	चौथी योजना (1969-74)	पांचवीं योजना (1974-79)	छठी योजना (1980-85)	सातवीं योजना (1985-90)	आठवीं योजना (1992-97)	नौंवी योजना (1997-2002)
1.	कृषि एवं सम्बद्ध क्षेत्र	290	549	1,089	2,320	4,865	15,201	31,507	63,643	1,14,634
		(14.8)	(11.7)	(12.7)	(14.7)	(12.3)	(13.9)	(14.4)	(14.7)	(13.3)
2.	सिंचाई एवं बाढ़ नियन्त्रण	434	430	665	1,354	3,877	10,930	16,590	32,525	55,598
		(22.2)	(9.2)	(7.8)	(8.6)	(9.8)	(10.0)	(7.6)	(7.5)	(6.5)
3.	ऊर्जा	149	452	1,252	2,932	7,400	30,751	61,689	1,15,561	2,15,545
		(7.6)	(9.7)	(14.6)	(18.8)	(18.8)	(28.1)	(28.2)	(26.6)	(25.1)
4.	ग्रामोद्योग तथा लघु उद्योग	42	187	241	243	592	1,945	3,249	6,334	–
		(2.1)	(4.0)	(2.8)	(1.5)	(1.5)	(1.8)	(1.5)	(1.5)	–
5.	उद्योग और खनिज	55	938	1,726	2,864	8,989	15,002	25,971	46,922	69,972
		(2.8)	(20.1)	(20.1)	(18.2)	(22.8)	(13.7)	(11.9)	(10.8)	(8.1)
6.	परिवहन तथा संचार	518	1,261	2,112	3,080	6,870	17,768	37,974	81,036	1,68,940
		(26.4)	(27.0)	(24.6)	(19.5)	(17.4)	(16.2)	(17.4)	(18.7)	(19.6)
7.	सामाजिक सेवाएँ, सामान्य आर्थिक सेवाऐं व अन्य	472	855	1,492	2,986	6,710	17,790	41,747	88,079	2,34,512
		(24.1)	(18.3)	(17.4)	(18.9)	(17.4)	(16.3)	(19.0)	(203)	(27.3)
	योग	1,960	4,672	8,577	15,779	39,426	1,09,292	2,18,730	4,34,100	8,59,200
		(100.0)	(100.0)	(100.0)	(100.0)	(100.0)	(100.0)	(100.0)	(100.0)	(100.0)

1. प्रस्तावित

नोट–कोष्ठकों में सार्वजनिक परिव्यय के योग का प्रतिशत भाग दिया गया है।

नोट

भारत एक विकसित देश है जहाँ नियोजित ढंग से अधिक विकास करने के प्रयत्न किये जा रहे हैं। हमारे पास आवश्यकता की तुलना में साधन सीमित हैं। अत: उनके उपयुक्त आवंटन की समस्या बनी रहती है।

हमारी योजनाओं का आकार निरन्तर बढ़ता रहा है। प्रथम पंचवर्षीय योजना अपेक्षाकृत बहुत छोटी थी जिसमें केवल 1,960 करोड़ रु. के कुल व्यय का प्रावधान था। यह राशि आठवीं पंचवर्षीय योजना में बढ़कर 4,34,100 करोड़ रु. नौवीं योजना में 8,59,200 करोड़ रुपये निर्धारित की गयी। नौवीं योजना में पहली योजना की तुलना में 438 गुना से अधिक व्यय होने का प्रबन्ध किया गया।

सार्वजनिक क्षेत्र में व्यय अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में किया गया है, जैसे–कृषि और सिंचाई, शक्ति, उद्योग, परिवहन और संचार तथा सामाजिक सेवाएँ आदि। विभिन्न योजनाओं में सार्वजनिक क्षेत्र में व्यय का क्षेत्रवार विवरण आगे सारणी में दिया गया है।

सारणी 30.2 से निम्न बातों पर प्रकाश पड़ता है–

(*i*) **प्रथम योजना** के कुल व्यय का लगभग एक-तिहाई भाग कृषि पर व्यय किया गया था। यह इस बात को स्पष्ट करता है कि भारतीय अर्थव्यवस्था कृषि-प्रधान अर्थव्यवस्था है।

(*ii*) **द्वितीय योजना** में विकास की प्राथमिकताओं में परिवर्तन कर दिया गया। कृषि के स्थान पर देश में उद्योगों के विकास पर बल दिया गया। ऐसा योजनाओं में अपनाई गई व्यूह-रचना के अनुरूप ही किया गया।

(*iii*) **द्वितीय और तृतीय योजना** के अनुभव कोई विशेष उत्साहवर्द्धक नहीं थे, अत: **चतुर्थ योजना** में पुन: कृषि को प्राथमिकता प्रदान की गयी।

(*iv*) **पाँचवी योजना** में देश के औद्योगिक विकास पर विशेष बल दिया गया, फलत: इस क्षेत्र में अत्यधिक राशि व्यय करने का प्रावधान रखा गया।

(*v*) **छठी योजना में**

(अ) तेल की कीमतों में सबसे अधिक वृद्धि हो जाने के कारण ऊर्जा को उच्च प्राथमिकता दी गयी और इस मद पर कुल परिव्यय का 28.1 प्रतिशत व्यय किया गया।

(ब) द्वितीय स्थान पर परिवहन व संचार को महत्व मिला व उन पर कुल व्यय का 16.2 प्रतिशत व्यय किया गया। इसी प्रकार कृषि व सिंचाई, उद्योग व खनिज पर कुल व्यय का क्रमश: 24 प्रतिशत व 13.7 प्रतिशत व्यय किया गया।

(*vi*) **सातवीं योजना में भी**

(अ) सबसे अधिक प्राथमिकता ऊर्जा क्षेत्र को दी गयी और इस मद पर कुल परिव्यय का 28.2 प्रतिशत भाग व्यय किया गया।

(ब) कृषि का भाग इस योजना में बढ़ गया और सिंचाई को मिलाकर इस योजना में कुल परिव्यय का 22 प्रतिशत भाग व्यय किया गया।

(स) परिवहन व संचार को इस योजना में तीसरा स्थान मिला और इस पर 17.4 प्रतिशत व्यय किया गया।

(द) उद्योग व खनिज पर व्यय किया जाने वाला भाग इस योजना में कम हो गया और सार्वजनिक क्षेत्र के कुल व्यय का 11.9 प्रतिशत भाग ही व्यय हुआ।

(*vii*) **आठवीं योजना में प्राथमिकता** के क्रम में निम्न प्रकार व्यय किया गया–

(अ) **ऊर्जा** को इस योजना में सबसे ऊँची प्राथमिकता दी गयी और इस पर कुल परिव्यय का 26.6 प्रतिशत व्यय किया गया।

(ब) द्वितीय स्थान कृषि और सिंचाई को दिया गया और इस पर 22.2 प्रतिशत भाग व्यय किया गया।

(स) इस योजना में परिवहन एवं संचार पर 18.7 प्रतिशत व्यय किये जाने का प्रस्ताव था।

नोट

(द) **नवीं योजना में**–सिंचाई सहित कृषि व ग्रामीण विकास पर कुल परिव्यय का 20 प्रतिशत व्यय तथा **ऊर्जा** (Energy) जो आर्थिक विकास का इंजन है, इसलिए इस क्षेत्र को कुल परिव्यय का लगभग 25 प्रतिशत भाग आवंटित किया गया है। सामाजिक विकास के बिना आर्थिक विकास अधूरा है, इस कारण सामाजिक सेवाओं को 21 प्रतिशत भाग आवंटित किया गया है। विकास को गति एवं चिकनाहट देते हुए परिवहन व संचार को 19.6 प्रतिशत साधन दिये गये हैं। चूँकि औद्योगिक क्षेत्र के द्वार निजी-निवेशकर्ताओं के लिए खोल दिये गये हैं इसलिए उद्योग एवं खनिज पर आवंटन मात्र 8.1 प्रतिशत रखा गया है।

(*viii*) **विभिन्न योजनाओं में साधन आवंटन** का सबसे दु:खद पक्ष यह रहा है कि सार्वजनिक सेवाओं पर किये जाने वाले प्रतिशत व्यय में निरन्तर कमी आई है। प्रथम योजनावधि में सामाजिक सेवाओं के विकास के लिए योजना का 24.1 प्रतिशत भाग आवंटित किया गया था, जबकि द्वितीय योजना में यह 18.3 प्रतिशत, तृतीय योजना में 17.3 प्रतिशत, वार्षिक योजनाओं में 14.7 प्रतिशत, चौथी योजना में 18.9 प्रतिशत, पाँचवीं योजना में 17 प्रतिशत तथा छठी योजना में 16.1 प्रतिशत रखा गया जबकि सातवीं योजना में इसे बढ़ाकर 19.0 प्रतिशत किया गया। आठवीं योजना में इस पर किये जाने वाले व्यय का प्रतिशत बढ़ाकर 25.7 प्रतिशत कर दिया गया है। नौवीं पंचवर्षीय योजना में 21 प्रतिशत रखा गया है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

2. रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks)–

1. नियोजन के उद्देश्यों में कुशलता या उत्पादकता की अपेक्षा ..... पर अधिक बल दिया गया है।
2. आर्थिक नियोजन के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए योजना की जो नीति अपनाई जाती है उसे योजना की ..... कहा जाता है।
3. द्वितीय पंचवर्षीय योजना की व्यूह रचना ..... के मॉडल पर आधारित थी।
4. प्रथम योजना में कुल व्यय का लगभग ..... भाग कृषि पर व्यय किया गया था।
5. प्रथम योजनावधि में सामाजिक सेवाओं के विकास के लिए योजना का ..... प्रतिशत भाग आबंटित किया गया था।

30.6 योजना की वित्तीय व्यवस्था का प्रतिरूप (Pattern of Financing Plan Outlays)

सार्वजनिक क्षेत्र में नियोजित विकास कार्यक्रमों के लिए वित्तीय साधनों के स्त्रोतों को हम दो भागों में वर्गीकृत कर सकते हैं–

(1) घरेलू साधन (Domestic Resources)–घरेलू साधनों को भी दो भागों में विभाजित किया जा सकता है–(क) सार्वजनिक क्षेत्र के अपने साधन, जिनमें निम्नलिखित साधन सम्मिलित होते हैं–(*i*) सरकारी बचतें तथा (*ii*) सार्वजनिक उद्यमों में अतिरेक। (ख) घरेलू ऋण, जिनमें निम्न को सम्मिलित किया जाता है–(*i*) बाजार से ऋण, (*ii*) छोटी बचतें, (*iii*) राज्य भविष्य निधियाँ तथा (*iv*) सार्वजनिक वित्तीय संस्थाओं में सावधि ऋण।

(2) बाह्य साधन (External Resources)–जब देश की घरेलू वस्तुओं से वित्तीय आवश्यकता की पूर्ति नहीं हो पाती तो बाह्य साधनों का सहारा लेना पड़ता है। बाह्य साधनों में विदेशी सहायता व ऋण आदि को सम्मिलित किया जाता है।

भारत की योजनाओं के वित्तीय प्रबन्धन से सबसे महत्वपूर्ण वित्तीय साधन **घरेलू** ही रहे हैं। जैसा कि नीचे की सारणी के अंकों से स्पष्ट है कि **विकास वित्त** का औसतन 80 प्रतिशत इस स्त्रोत द्वारा ही जुटाया गया है। **दूसरी** व **तीसरी योजना** में यह साधन यद्यपि अधिक प्रभावी नहीं रहा है परन्तु पाँचवीं योजना (सातवीं योजना को छोड़कर) से इस स्त्रोत का योगदान निरन्तर बढ़ता गया है जो अर्थव्यवस्था की अच्छी निष्पादिता का संकेतक है।

नोट

पंचवर्षीय योजनाओं का वित्तीयन नीचे सारणी में दर्शाया गया है–

सारणी 30.3–पंचवर्षीय योजनाओं का वित्तयन नीचे सारणी में दर्शाया गया है–

योजना	देशीय बजट के साधन %	हीनार्थ प्रबन्ध %	विदेशी सहायता %	कुल योग %	कुल स्रोत (करोड़ रु.)
प्रथम योजना	74.0	17.0	9.0	100	1,960
द्वितीय योजना	57.1	20.4	22.5	100	4,672
तृतीय योजना	58.5	13.2	28.3	100	8,577
चतुर्थ योजना	74.3	12.8	12.9	100	15,779
पाँचवीं योजना	78.4	8.8	12.8	100	39,426
छठी योजना	78.1	14.2	7.7	100	1,09,292
सातवीं योजना	52.8	15.0	8.6	100	2,21,435
आठवीं योजना	88.9	6.5	4.6	100	4,34,100
नौवीं योजना	93.0	–	7.0	100	8,59,200

उपरोक्त सारणी से स्पष्ट है कि–

1. योजना काल के आरम्भिक चरणों में विकास की गति तेज करने के उद्देश्य से विदेशी सहायता तथा हीनार्थ प्रबन्धन का भरपूर प्रयोग किया गया। द्वितीय, तृतीय तथा चतुर्थ योजनाओं में लगभग 40 प्रतिशत साधन इन स्रोतों से प्राप्त हुए किन्तु इन स्रोतों पर अत्यधिक निर्भरता के परिणाम सन्तोषजनक नहीं रहे। विदेशी सहायता पर निर्भरता के परिणामस्वरूप योजना में अस्थिरता आ गई। हीनार्थ प्रबन्धन के परिणामस्वरूप सामान्य कीमत-स्तर तेज गति से बढ़ता गया।
2. पंचम् योजना से आत्म-निर्भरता की प्राप्ति पर अधिक बल दिया गया। पंचम् योजना में विदेशी सहायता का योगदान 12.8 प्रतिशत था। षष्टम्, सप्तम और अष्टम् योजनाओं में विदेशी सहायता का यह अनुपात क्रमशः 7.8, 8.6 तथा 4.6 प्रतिशत रहा। नौवीं योजना में भी आत्म-निर्भरता की ओर बढ़ने का प्रयास किया गया।
3. चतुर्थ योजना के उपरान्त हीनार्थ प्रबन्धन पर भी निर्भरता कम करने के लिए प्रयास किया गया। उदाहरण के लिए, चतुर्थ योजना में कुल वित्तीय संसाधन में हीनार्थ प्रबन्धन का योगदान 12.8 प्रतिशत था जो अष्टम् योजना में घटकर 6.5 प्रतिशत हो गया।
4. नौवीं योजना में इस बात पर विशेष ध्यान दिया गया कि समस्त घरेलू साधनों का आदर्शात्मक उपयोग किया जाये।

क्या आप जानते हैं 1948 के अंत में बम्बई के आठ उद्योगपतियों ने भारत के आर्थिक विकास की योजना प्रस्तुत की थी। तथा यह योजना बम्बई योजना के नाम से प्रसिद्ध है।

नौवीं योजना (1997-2002) **वास्तविक प्राप्त विकास दर–**आर्थिक सर्वेक्षण 2001-2002 के अनुसार नौवीं योजनावधि (1997-2002) के दौरान क्षेत्रवार प्रगति निम्नवत् रही–

नोट

तालिका 4

क्षेत्र	1997–2002 **वास्तविक प्राप्त औसत वार्षिक दर** %
1. **कृषि**	2.1
2. **उद्योग**	4.5
(*i*) खनन उत्खनन	3.9
(*ii*) विनिर्माण,	3.7
(*iii*) बिजली, गैस, जलापूर्ति	6.5
(*iv*) निर्माण	6.8
3. **सेवाएँ**	7.8
(*i*) व्यापार होटल, परिवहन, संचार	6.9
(*ii*) वित्तीय, स्थावर सम्पदा तथा व्यापार सेवाएँ	8.0
(*iii*) सामुदायिक, सामाजिक एवं वैयक्तिक सेवाएँ	9.1
कुल GDP	5.4

30.7 भारतीय नियोजन की उपलब्धियाँ एवं असफलताएँ (Achievements and Failures of Indian Planning)

भारत में आर्थिक नियोजन को 1 अप्रैल, 1951 से प्रारम्भ किया गया, तब से अब तक नियोजन को 50 वर्ष पूरे हो चुके हैं। नि:सन्देह इन 50 वर्षों में देश ने काफी प्रगति की है जिसका अध्ययन हम निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत कर सकते हैं–

(1) प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि, (2) कृषि का विकास, (3) औद्योगिक विकास, (4) बचत व विनियोग दरों में वृद्धि, (5) विदेशी व्यापार का विकास, (6) आत्म-निर्भरता, (7) आधुनिकीकरण, (8) परिवहन एवं संचार साधनों के क्षेत्र में प्रगति, (9) शिक्षा का प्रसार, (10) स्वास्थ्य एवं जीवन प्रत्याशा में वृद्धि, (11) बैंकिंग क्षेत्र में प्रगति, (12) पर्यावरण सुरक्षा एवं (13) सामाजिक व्यय।

1. **प्रति व्यक्ति आय एवं राष्ट्रीय आय में वृद्धि** (Increase in Per Capita Income and National Income)–भारत में **प्रति व्यक्ति आय** और **राष्ट्रीय आय** में भी निरन्तर वृद्धि हो रही है। प्रति व्यक्ति वार्षिक आय जो 1950–51 में (1993–94 की कीमतों के आधार पर) 3,687.1 रुपये थी, वह 2000–2001 में बढ़कर, 10,254 रुपये हो गयी अर्थात् 28 गुना बढ़ गयी।

   इसी प्रकार भारत की **सकल राष्ट्रीय आय** जो 1950–51 में (1993–94 की कीमतों के आधार पर) केवल 1,40,466 करोड़ रुपये थी, वह 2000–2001 में बढ़कर 11,93,922 करोड़ रुपये हो गयी अर्थात् 8 गुनी बढ़ गयी।

   बढ़ती हुई जनसंख्या के कारण ही प्रति व्यक्ति आय में राष्ट्रीय आय की अपेक्षा कम दर से वृद्धि हुई है।

2. **कृषि का विकास** (Development of Agriculture)–विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में कृषि एवं सम्बद्ध क्षेत्रों में विकास को अत्यधिक महत्व दिया गया। प्रथम पंचवर्षीय योजनाओं में कृषि सम्बद्ध क्षेत्रों पर 724 करोड़ रुपये व्यय किये गये थे जो आठवीं पंचवर्षीय योजना में बढ़कर 96,168 करोड़ रुपये हो गये। **नौवीं पंचवर्षीय योजना** में इस क्षेत्र पर 1,70,232 करोड़ रुपये व्यय किये जाने हैं। योजना काल में कृषि के क्षेत्र में उपलब्धियों का अध्ययन हम निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत कर सकते हैं–

नोट

(*i*) **कृषि विकास दर** (Agriculture Growth Rate)–1950–51 तक कृषि उत्पादन में वृद्धि-दर लगभग 3.5 प्रतिशत वार्षिक थी परन्तु आर्थिक सुधार की आठवर्षीय अवधि में (1992–93 से 1999–2000) में कम होकर क्रमशः 2.2 प्रतिशत और 2 प्रतिशत रह गया। कृषि विकास दर 2000–2001 में (–) 0.2% थी जो 2001–2002 में बढ़कर 5.7% हो गयी है।

(*ii*) **प्रमुख फसलों का उत्पादन** (Production of Main Crops)–योजना काल में खाद्य और गैर-खाद्य दोनों प्रकार की फसलों में काफी वृद्धि हुई है। 1950–51 की तुलना में 2001–2002 में खाद्यान्नों में 262.5 प्रतिशत, चावल में 285.8 प्रतिशत, गेहूँ में 993.8 प्रतिशत, गन्ना में 426.3 प्रतिशत तथा तिलहन में 272.0 प्रतिशत की वृद्धि हुई। भारत में खाद्यान्न का उत्पादन 1950–51 में 54.9 मिलियन टन था जो 2001–2002 में बढ़कर 209 मिलियन टन हो गया।

(*iii*) **सिंचाई क्षमता का विकास** (Development of Irrigation Capacity)–वर्ष 1950 में 22.6 मिलियन हेक्टेयर सिंचाई क्षमता से वर्ष 2001–2002 तक देश की सृजित सिंचाई सम्भाव्यता लगभग 100 लाख हेक्टेयर तक पहुँच जाने का अनुमान है।

(*iv*) **रासायनिक उर्वरक** (Chemical Fertilizer)–रासायनिक उर्वरक के उत्पादन एवं उपभोग दोनों में वृद्धि हुई है, पोषाहार के रूप में 1980–81 में उर्वरक खपत 5.5 मिलियन टन से बढ़कर 2001–2002 में 19.306 मिलियन टन हो गयी।

(*v*) **उत्पादकता में वृद्धि** (Increase in Productivity)–1951 के बाद की अवधि में भारत में खाद्य और गैर-खाद्य फसलों की उत्पादकता में काफी वृद्धि हुई है। उदाहरण के लिए, गेहूँ, चावल, गन्ना का प्रति हेक्टेयर उत्पादन जो 1950–51 में क्रमशः 663, 668 और 3,342 किग्रा. प्रति हेक्टेयर था, वह 2001–2002 में बढ़कर क्रमशः 2,743, 1,913 व 6,900 हो गया।

(*vi*) **कृषि उत्पाद निर्यात** (Export of Agricultural Product)–यह एक अभिनन्दनीय बात है कि भारत कृषि पदार्थों का निर्यातक देश बन गया है। देश के कुल निर्यातों में कृषि उत्पादों का प्रतिशत लगभग 15 है।

(*vii*) **कृषि क्षेत्र में अन्य उपलब्धियाँ** (Other Achievements in Agricultural Sector)–योजना काल में कृषि क्षेत्र की कुछ अन्य उपलब्धियाँ इस प्रकार हैं–(1) उन्नत बीजों का उपयोग बढ़ा है। (2) बहुफसल कार्यक्रमों को प्रोत्साहित किया गया है। (3) कृषि यन्त्रों का उपयोग बढ़ा है। (4) कृषि वित्त की यथोचित व्यवस्था की गयी है। (5) खाद्यान्नों का समर्थन मूल्य घोषित किया गया है। (6) राष्ट्रीय कृषि बीमा योजना लागू की गयी है। (7) कृषि विपणन में सुधार हेतु अनेक महत्वपूर्ण प्रयास किये गये हैं। (8) राष्ट्रीय कृषि नीति लागू की गयी है।

3. **औद्योगिक विकास** (Industrial Development)–योजना अवधि में सबसे अधिक प्रगति औद्योगिक क्षेत्र में हुई है। इन वर्षों में औद्योगिक क्षेत्र का न सिर्फ आधार ही मजबूत हुआ है बल्कि उद्योगों का विविधीकरण भी हुआ है। कई नये-नये उद्योग स्थापित हुए हैं। उद्योगों के विकास के कारण पूँजीगत सामग्रियों के लिए अब भारत दूसरे देशों पर निर्भर नहीं है बल्कि भारत से पूँजीगत सामान का निर्यात होने लगा है जिससे मुद्रा अर्जन में सहायता मिल रही है।

योजना काल में औद्योगिक विकास की प्रमुख उपलब्धियों का अध्ययन हम निम्न शीर्षकों कर सकते हैं–

(*i*) **औद्योगिक विकास दर** (Industrial Growth Rate)–योजनाकाल में भारत का औद्योगिक विकास समान रूप से नहीं हुआ है फिर भी औसत औद्योगिक विकास की वार्षिक दर 5 व 7 प्रतिशत के बीच रही है।

(*ii*) **सकल घरेलू उत्पादन में औद्योगिक क्षेत्र के भाग में वृद्धि** (Increase in Contribution of Industrial Sector in GDP)–नियोजन काल के दौरान भारत के सकल घरेलू उत्पादन (GDP) में

नोट

औद्योगिक क्षेत्र के हिस्से में पर्याप्त वृद्धि हुई। औद्योगिक क्षेत्र का GDP में हिस्सा जो 1950–51 में 15.1 प्रतिशत था, 1980–81 में बढ़कर 24.3 प्रतिशत, 1991–92 में (1980–81 की कीमतों के आधार पर) 27 प्रतिशत तथा 2000–2001 में 31 प्रतिशत हो गया।

(*iii*) **सार्वजनिक क्षेत्र का विस्तार** (Expansion of Public Sector)—नियोजन काल की सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धि सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों का विकास एवं विस्तार है। 1951 में केन्द्र सरकार के सार्वजनिक क्षेत्र में कुल 5 उद्योग थे और इनमें 29 करोड़ की पूँजी विनियोजित थी लेकिन आज इस प्रकार की उद्योगों की संख्या 235 है जिनमें 3,03,400 बिलियन करोड़ रुपये की पूँजी विनियोजित है।

(*iv*) **औद्योगिक वस्तुओं के निर्यात में वृद्धि** (Increase in Export of Industrial Goods)—भारत में औद्योगिक वस्तुओं के निर्यात में काफी वृद्धि हुई है, विशेषकर सूचना प्रौद्योगिकी तथा इलेक्ट्रॉनिक्स वस्तुओं में।

(*v*) **विदेशी सहायता से स्थापित उपक्रमों में वृद्धि** (Increase in Foreign Collaborated Enterprises)—1957 में भारत में केवल 51 विदेशी उपक्रम थे जिनकी संख्या बढ़कर 6,000 से भी अधिक हो गयी है।

(*vi*) **लघु और कुटीर उद्योगों का विकास** (Development of Small & Cottage Industries)—लघु और कुटीर उद्योगों की भी तेजी से प्रगति हुई है। लघु औद्योगिक विकास संगठन (SIDO) द्वारा पंजीकृत लघु औद्योगिक इकाइयों की संख्या 1972 में 2.58 लाख से बढ़कर 2000–2001 में 33.7 लाख हो गयी जिनके अन्तर्गत लगभग 185.6 लाख व्यक्तियों को रोजगार मिला हुआ था। कुल निर्यातों में लघु इकाइयों का हिस्सा 1999–2000 में 34 प्रतिशत था, जबकि विनिर्माण क्षेत्र के सकल उत्पादन में इनका हिस्सा 40 प्रतिशत था।

4. **बचत व विनियोग दरों में वृद्धि** (Increase in Saving and Investment Rates)—योजना अवधि में बचत एवं विनियोग की दर में भी उतार-चढ़ाव आते रहे हैं। चालू मूल्य के आधार पर GDP से सकल बचत का अनुपात जो 1950–51 में 10.4 प्रतिशत था, वह 2001–2001 में बढ़कर 23.4 प्रतिशत हो गया। इसी प्रकार सकल घरेलू पूँजी निर्माण की दर जो 1950–51 में 10.2 प्रतिशत थी, वह 2000–2001 में बढ़कर 24.0 प्रतिशत हो गयी।

5. **विदेशी व्यापार का विकास** (Development of Foreign Trade)—नियोजन काल में विदेशी व्यापार में अत्यधिक प्रगति हुई है जिसका अध्ययन हम निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत कर सकते हैं—

(*i*) **निर्यात व आयात में वृद्धि** (Increase in Export and Import)—आर्थिक नियोजन में भारत के निर्यात व आयात में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। 1950–51 में भारत का निर्यात और आयात क्रमशः 606 करोड़ व 608 करोड़ रु. थे जो 2000–2001 में बढ़कर क्रमशः 2,05,287 करोड़ रु. व 2,70,663 करोड़ रु. हो गये।

(*ii*) **विदेशी व्यापार की संरचना में परिवर्तन** (Change in Composition of Foreign Trade)—देश के विदेशी व्यापार में भी महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं। अब भारत निर्मित वस्तुओं का निर्यात करता है तथा कच्चे माल तथा अर्द्धनिर्मित वस्तुओं का आयात करता है। भारत में बना सामान तकनीकी दृष्टि से विकसित अनेक देशों में हाथों-हाथ बिक जाता है। अनेक विकासशील देशों में भारत में निर्मित कच्चे माल को उच्च प्राथमिकता दी जाती है।

(*iii*) **विदेशी व्यापार की दिशा में परिवर्तन** (Change in Direction of Foreign Trade)—विदेशी व्यापार की दिशा से आशय यह है कि भारत का आयात व निर्यात किन-किन देशों से होता है। आधुनिक समय में भारत का निर्यात व आयात क्षेत्र विस्तृत हो चुका है। वर्तमान में, विश्व के अधिकांश देशों में भारतीय वस्तुएँ निर्यात की जाती हैं और भारत विश्व के अधिकांश महाद्वीपों से वस्तुओं का आयात भी करता है।

नोट

6. **आत्म-निर्भरता** (Self-sufficiency)–सबसे अभिनन्दनीय बात यह है कि भारत आत्म-निर्भर और स्वावलम्बी होता जा रहा है। योजनाओं में प्रयुक्त वित्तीय साधनों का लगभग 90 प्रतिशत भाग घरेलू साधनों से ही जुटाया जाता है। केवल 10 प्रतिशत साधनों के लिए विदेशी सहायता का आश्रय लिया जाता है। इसी प्रकार खाद्यान्नों के सम्बन्ध में हम आत्म-निर्भर हो गये हैं। हम अनेक पूँजीगत और उपभोक्ता वस्तुओं के उत्पादन में भी आत्म-निर्भरता प्राप्त करने में सफल हुए हैं। तकनीक कुशलता में भी हमने काफी प्रगति की है।

7. **आधुनिकीकरण** (Modernisation)–योजनाओं की अवधि में अर्थव्यवस्था में कुछ **संरचनात्मक** तथा **संस्थागत** परिवर्तन हुए हैं। वे इस बात के प्रतीक हैं कि अर्थव्यवस्था का आधुनिकीकरण हुआ है। **संरचनात्मक परिवर्तनों** में राष्ट्रीय आय की बनावट में उद्योगों का योगदान बढ़ा है। आधुनिक तकनीकी प्रयोग करने वाले उद्योगों की संख्या में वृद्धि, कृषि क्षेत्र में नई तकनीकों का प्रयोग, योजनाओं की अवधि में होने वाले **संस्थागत परिवर्तनों** का भी बहुत अधिक महत्व है। संस्थागत परिवर्तनों (Institutional Changes) में सार्वजनिक क्षेत्र का विकास, लघु तथा मध्यम क्षेत्र के लिए नियन्त्रण तथा समर्थन प्रणाली का विकास, एकाधिकारी व्यवहार पर प्रतिबन्ध तथा मानवीय पूँजी का निर्माण आदि शामिल हैं।

8. **परिवहन एवं संचार साधनों के क्षेत्र में प्रगति** (Progress in Means of Transport and Communication)–योजना काल में परिवहन एवं संचार के क्षेत्र में उल्लेखनीय प्रगति हुई है। नियोजन के 50 वर्षों में रेल, सड़क, वायु व जल परिवहन सभी का विकास हुआ है। रेलमार्गों की लम्बाई जो वर्ष 1951 में 53.6 हजार किमी. थी, वह 2001-2002 में बढ़कर 63.03 हजार कीमी. हो गयी है। इसी प्रकार 1950-51 में राष्ट्रीय राजमार्गों की लम्बाई जो 4 लाख किमी. थी, वह 2000-2001 तक कुल सड़क मार्गों की लम्बाई 58.112 हजार किमी. हो गयी है।

   भारतीय जहाजरानी का विश्व में 17वाँ तथा एशिया में दूसरा स्थान है। वर्तमान में भारतीय जहाजरानी की क्षमता विश्व जहाजरानी में केवल 1.7 प्रतिशत है। आज भारतीय जहाज विश्व के सभी समुद्री मार्गों पर चलते हैं। देश में 31 मार्च, 2000 को 83 जहाजरानी कम्पनियाँ शिपिंग कार्य कर रही थीं।

   संचार के क्षेत्र में सन् 1950-51 में भारत में कुल 36,000 डाकखाने थे लेकिन आज इनकी संख्या बढ़कर 1.50 लाख है।

   भारत का **दूर संचार नेटवर्क** (BSNL तथा MTNL) एशिया का सबसे बड़ा दूर संचार नेटवर्क है जिसमें 31 अक्टूबर, 2000 को 28,936 टेलीफोन एक्सचेंजों में 3.50 करोड़ लाइनें एवं 2.84 करोड़ कार्यरत कनैक्शन सम्मिलित थे।

9. **शिक्षा का प्रसार** (Expansion of Education)–मानवीय पूँजी निर्माण में शिक्षा का महत्वपूर्ण स्थान है। देश ने इस दिशा में काफी प्रगति की है। शिक्षा के क्षेत्र में साक्षरता की दर जो 1950-51 में 18.3% थी, वह 2001 में बढ़कर 65.4% हो गयी।

10. **स्वास्थ्य एवं जीवन प्रत्याशा में वृद्धि** (Increase in Health Facilities and Life Expectancy)–योजना काल में स्वास्थ्य सेवाओं के क्षेत्र में अभिनन्दनीय वृद्धि हुई है जिसके कारण मृत्यु-दर 27.4 प्रति हजार से घटकर 8.7 प्रति हजार हो गयी है। लोगों का प्रत्याशी जीवन काल 1950-51 में 32 वर्ष था जो वर्तमान में बढ़कर 61.1 वर्ष हो गया है।

11. **बैंकिग क्षेत्र में प्रगति** (Progress in Banking Sector)–देश में बैंकिग सेवा का काफी विस्तार किया गया है। दिसम्बर 1951 में वाणिज्यिक बैंकों की शाखाओं की संख्या 2,647 थी, वह 30 जून, 2001 को बढ़कर 65,931 हो गयी जिनमें से 50 प्रतिशत शाखाएँ ग्रामीण क्षेत्रों में कार्यरत थीं।

12. **पर्यावरण सुरक्षा** (Environment Protection)–विगत कुछ वर्षों में पर्यावरण प्रदूषण को दूर करने तथा पर्यावरण सन्तुलन एवं स्वस्थ वातावरण बनाये रखने के लिए अनेक कार्यक्रम अपनाये गये हैं। गंगा प्रदूषण निवारण की एक अत्यधिक महत्वाकांक्षी योजना अपनायी गयी है। पर्यावरण सुधार के व्यापक कार्यक्रम विविध क्षेत्रों में अपनाये गये हैं।

नोट

13. **सामाजिक न्याय** (Social Justice)—भारत की पंचवर्षीय योजनाओं में सामाजिक न्याय की दृष्टि से दो पहलुओं पर विशेष ध्यान दिया गया है—समाज के निर्धनतम वर्गों के जीवन-स्तर में सुधार किये जायें तथा सम्पत्ति के वितरण की असमानताओं में कमी लायी जाय। इस दृष्टि से विभिन्न प्रेरणात्मक एवं वैधानिक उपाय किये गये और उनसे निर्धन वर्ग के पक्ष में कुछ सुधार अवश्य हुआ है लेकिन उनकी गति आशातीत नहीं रही है।

विफलताएँ (Failures)

लगभग 50 वर्षों में जो कुछ प्रगति हुई है, वह अपर्याप्त है क्योंकि योजना में सम्बन्धित क्षेत्र के लिए विकास के जो लक्ष्य निर्धारित किये गये हैं, उनकी सापेक्षिक रूप से प्रगति की रफ्तार धीमी है। इन योजनाओं की असफलताएँ निम्न प्रकार हैं–

1. **प्रति व्यक्ति आय व राष्ट्रीय आय में धीमी गति** (Slow Progress in Per Capita Income and National Income)—आर्थिक नियोजन का प्रमुख उद्देश्य राष्ट्रीय आय में प्रति व्यक्ति आय को तीव्र गति से बढ़ाना रहा है। यद्यपि योजना काल में राष्ट्रीय आय और प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि हुई है परन्तु वृद्धि की दर बहुत धीमी रही है। हमारी आय पहले ही निम्न स्तर की है और उस पर यदि धीमी गति से ही वृद्धि हो तो सामान्य स्थिति में किसी प्रकार की सुरक्षा की अपेक्षा नहीं की जानी चाहिए।
2. **रोजगार** (Employment)—आर्थिक नियोजन का दूसरा प्रमुख उद्देश्य देश की बढ़ती श्रम-शक्ति को लाभप्रद रोजगार के अवसर उपलब्ध कराना है किन्तु नियोजन के 50 वर्षों में रोजगार के अवसरों में आशातीत वृद्धि नहीं हुई है।
3. **आर्थिक विषमता में वृद्धि** (Increase in Economic Disparities)—भारत में आर्थिक नियोजन का तीसरा प्रमुख उद्देश्य आर्थिक विषमता को कम करना था परन्तु हमारी विकास योजनाओं में आर्थिक शक्ति के केन्द्रीकरण तथा विषमताओं में वृद्धि हुई है। एकाधिकारी जाँच आयोग, डॉ. आर. के. हजारी रिपोर्ट तथा अनुसन्धानों से यह स्पष्ट होता है कि भारत में धन एवं सम्पत्ति विकेन्द्रीकरण बड़े औद्योगिक घरानों के हाथों में बढ़ा है व क्षेत्रीय विषमताओं में भी वृद्धि हुई है। तुलनात्मक रूप से निर्धन अधिक निर्धन हुआ है तथा धनी अधिक धनी। अन्य शब्दों में, विभिन्न योजनाओं में अपनाये गये विभिन्न विकास कार्यक्रमों के परिणामस्वरूप अर्थव्यवस्था में आय की मात्रा में वृद्धि तो हुई किन्तु इसका समान बँटवारा नहीं हुआ। अतः देश में गरीबी का विस्तार हुआ है।
4. **आर्थिक अस्थिरता** (Economic Instability)—आर्थिक नियोजन का एक अन्य उद्देश्य स्थिरता के साथ-साथ विकास करना था किन्तु कीमतों को निर्धारित करने में हम असमर्थ रहे हैं।
5. **कृषि क्षेत्र में असफलता** (Failure in Agricultural Sector)—यद्यपि नियोजन काल में कृषि क्षेत्र में काफी प्रगति हुई है लेकिन इन समस्याओं का निदान-नहीं किया गया है, जैसे—(*i*) कृषि पर जनसंख्या के दबाव की अधिकता। (*ii*) कृषि का मानसून पर निर्भर रहना। (*iii*) अदृश्य बेरोजगार की पर्याप्तता। (*iv*) कृषि के यन्त्रीकरण का पिछड़ापन। (*v*) सिंचाई की अपर्याप्त व्यवस्था। (*vi*) रासायनिक खाद एवं नवीन पद्धति का अभाव आदि।
6. **औद्योगिक क्षेत्र में विषमता** (Failure in Industrial Sector)—औद्योगिक प्रोग्राम की उपलब्धियों का अल्पानुमान किये बिना यह कहा जा सकता है कि औद्योगिक उन्नति का अधिकतम भाग मिथ्या है। इसके पक्ष में निम्नलिखित तर्क दिये जा सकते हैं–
   (*i*) औद्योगीकरण की क्रिया के परिणामस्वरूप बड़े पैमाने के क्षेत्र में तीव्र विस्तार हुआ है और इसकी तुलना में छोटे तथा मध्यम क्षेत्र की उपेक्षा हुई है।
   (*ii*) औद्योगीकरण की क्रिया के फलस्वरूप बेरोजगारी की समस्या के समाधान में विशेष सहायता नहीं मिली है।

नोट

(*iii*) बड़े औद्योगिक घरानों द्वारा सरकार की लाइसेन्स नीति को अपने देश में इस तरह मोड़ा गया है कि वे लाइसेन्स सामर्थ्य का पूर्वाधिकार प्राप्त कर लेते हैं।

(*iv*) नियोजन में उपभोक्ता वस्तुओं की अपेक्षा विलासिता की वस्तुओं पर अधिक ध्यान दिया गया है।

(*v*) उत्पादित औद्योगिक वस्तुओं की लागत पर नियन्त्रण पाने में असफलता मिली है।

(*vi*) देश के अधिकांश सार्वजनिक उपक्रम घाटे में चल रहे हैं।

7. **साधन संग्रह के क्षेत्र में विषमताएँ** (Failure in Resource Mobilisation)–योजनाओं में साधन संग्रह के निर्धारित लक्ष्यों की वास्तविक प्राप्तियों में काफी अन्तर पाया गया जिससे प्रकट होता है कि इस दिशा में नियोजन में काफी सुधार करने की आवश्यकता नहीं है। कहीं तो वास्तविक प्राप्तियाँ लक्ष्यों से बहुत कम रही हैं और कहीं बहुत अधिक। अत: नियोजन की वित्तीय व्यवस्था काफी त्रुटिपूर्ण रही है। विकास व उत्पादन के लक्ष्यों व उपलब्धियों के बीच भी अन्तर पाया गया है। इसके लिए दो कारण हो सकते हैं–एक तो लक्ष्य का ठीक से निर्धारण न होना और दूसरा, योजना के कार्यान्वयन में कमियों का रह जाना।

8. **विदेशी सहायता पर निर्भर** (Dependence on Foreign Aid)–भारतीय आर्थिक नियोजन की विभिन्नता का एक कारण विदेशी सहायता पर अत्यधिक निर्भरता ही है। पहली पंचवर्षीय योजना से 1998-99 के अन्त में 93,531 मिलियन डॉलर की विदेशी सहायता का उपभोग भारत ने किया है जिससे ऋण एवं ब्याज के भुगतान का भार बहुत बढ़ गया है। समय-समय पर विदेशी सहायता रोक लिये जाने से देश के आर्थिक नियोजन में गतिरोध पैदा हो गया था जिसके फलस्वरूप योजनाओं को स्थगित करना पड़ा।

9. **दोषपूर्ण नियन्त्रण नीति** (Defective Regulatary Policy)–योजना काल में सरकारी नियन्त्रण की नीति दोषपूर्ण रही है। विभिन्न क्षेत्रों में समय-समय पर लगाये गये नियन्त्रण परस्पर असम्बद्ध रहे हैं जिसके फलस्वरूप नियन्त्रण का भले ही एक क्षेत्र को लाभ हुआ परन्तु अन्य क्षेत्रों को उससे हानि हुई है।

निष्कर्ष (Conclusion)–नियोजन की उपलब्धियों के मूल्यांकन से निम्नलिखित दो बातें स्पष्ट होती हैं–

1. भारत ने कृषि, उद्योग, विदेशी व्यापार, मानवीय पूँजी निर्माण आदि क्षेत्रों में महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ प्राप्त की हैं।
2. यद्यपि हमारी उपलब्धियाँ महत्वपूर्ण और उत्साहजनक रही हैं फिर भी इन्हें पर्याप्त नहीं माना जा सकता क्योंकि नियोजन के 48 वर्षों के उपरान्त भी आज देश में आर्थिक व सामाजिक असमानता, दरिद्रता व बेरोजगारी का बोलबाला है। अत: निष्कर्ष के रूप में हम कह सकते हैं कि भारत में आर्थिक नियोजन के दौरान केवल सीमित सफलताएँ प्राप्त हुई हैं परन्तु सही मूल्यांकन के लिए यह आवश्यक है कि हम उन कारणों की समीक्षा करें जिनके फलस्वरूप आर्थिक नियोजन के दौरान अर्थव्यवस्था को केवल सीमित सफलताएँ प्राप्त हुई हैं।

30.8 योजनाओं को सफल बनाने के लिए सुझाव (Suggestions for the Success of Plans)

योजनाओं को अधिकाधिक सफल बनाने के लिए निम्नलिखित सुझाव दिये जा सकते हैं–

1. **व्यापक जन-सहयोग** (Wide Spread Mass Participation)–योजनाओं को सफल बनाने के लिए जनता का पूर्ण सहयोग प्राप्त करना अत्यन्त आवश्यक है। जनता का सहयोग तभी प्राप्त किया जा सकता है, जबकि योजनाओं के प्रति उदासीनता की प्रवृत्ति का अन्त किया जाये और योजनाओं की पूर्ण जानकारी देकर उसके लाभों से अवगत कराया जाये।
2. **मूल्यों पर नियन्त्रण रखा जाये** (Control on Prices)–नियोजन का उद्देश्य स्थायित्व के साथ विकास करना होता है अत: मूल्यों पर प्रभावपूर्ण नियन्त्रण रखा जाये।

नोट

3. **सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्र में समन्वय** (Coordination between Public and Private Sector)—योजनाओं की सफलता का एक कारण सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्र में समन्वय का अभाव है। ये दोनों क्षेत्र एक-दूसरे के प्रतियोगी न होकर पूरक एवं सहयोगी होने चाहिए। योजनाओं की सफलता के लिए सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्र के उद्योगों में उचित समन्वय एवं सहयोग स्थापित किया जाना चाहिए।
4. **दीर्घकालिक एवं अल्पकालिक कार्यक्रमों में सन्तुलन** (Integration between Long-term and Short-term Programmes)—ऐसे कार्यक्रम जो देर में फल देने वाले हैं उनमें तथा अल्पकालिक कार्यक्रमों में सन्तुलन करना आवश्यक है। कार्यक्रमों को निर्धारित समय में ही समाप्त करने के प्रयास किये जाने चाहिए।
5. **भौतिक उपलब्धियाँ सफलता का आधार हों** (Physical Achievements be Based for Success)—हमारे देश में लक्ष्य की प्राप्ति का अनुमान व्यय की राशि के अनुसार लगाया जाता है परन्तु लक्ष्यों का सम्बन्ध भौतिक उपलब्धियों से होना चाहिए। अत: कार्यक्रमों को बनायी गयी समय-सूची के अनुसार सम्पन्न करना चाहिए।
6. **केन्द्र व राज्य में अच्छे सम्बन्ध** (Good Relation between Central and State)—योजना की सफलता सदैव केन्द्र एवं राज्यों में अच्छे सम्बन्धों पर निर्भर करती है। अत: ऐसे कार्यक्रम जो केन्द्र के निर्देश पर चलाये जा रहे हों, उनमें राज्यों को भी ध्यान देना चाहिए।
7. **बचत एवं विनियोग को प्रोत्साहन** (Encouragement of Saving and Investment)—देश में पूँजी-निर्माण की दर को गति देने के लिए यह आवश्यक है कि बचत एवं विनियोगों को प्रोत्साहित किया जाये। इसके लिए व्ययों में छूट दी जानी चाहिए।
8. **कार्य-प्रधान शिक्षा प्रणाली** (Job-oriented Education System)—देश में बेरोजगारी की समस्या का समाधान करने के लिए शिक्षा प्रणाली सैद्धान्तिक के स्थान पर व्यावहारिक एवं कार्य-प्रधान बनायी जानी चाहिए।
9. **जनसंख्या वृद्धि पर अंकुश** (Control on Population Growth)—योजनाओं को सफल बनाने के लिए बढ़ती हुई जनसंख्या को नियन्त्रित करना आवश्यक है। बढ़ती हुई जनसंख्या योजना के लाभों को निगल जाती है। जन-साधारण को जिस अनुपात में लाभ मिलने चाहिए, उनसे वे वंचित रह जाते हैं। अत: जनसंख्या को नियन्त्रित करने के लिए कारगर उपाय किये जाने चाहिए।
10. **लागत तथा प्रतिफल का सम्बन्ध** (Relationship between Cost and Benefit)—प्रत्येक कार्यक्रम को बनाते समय उसकी आर्थिक जाँच भली-भाँति की जानी चाहिए। उसकी लागत तथा प्रतिफल की ओर ध्यान दिया जाना चाहिए।
11. **आर्थिक नियोजन रोजगार-प्रधान हो** (Job-oriented Economic Planning)—देश में प्रत्येक योजना काल में बेकारी में वृद्धि हुई है। अत: ऐसे कार्यक्रम अपनाने की आवश्यकता है जिससे रोजगार को स्वयं बढ़ावा मिले। शिक्षित बेकारों को स्वयं रोजगार प्रारम्भ करने के लिए तकनीकी व वित्तीय सहायता तथा उपकरण व यन्त्र सस्ते भाड़े पर दिये जाने चाहिए।
12. **आयोजन व्यष्टिमूलक हो** (Micro Planning)—भारत में अभी तक जन-साधारण नियोजन के प्रति तटस्थ बना हुआ है क्योंकि भारतीय आयोजन केन्द्रीय नियोजन है। यह ऊपर से लादा जा रहा है। अत: स्थानीय आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर नीचे से अयोजन होना चाहिए। क्षेत्रीय विकास के लिए स्वयं वहाँ के लोग तथा जनता के प्रतिनिधि अपने-अपने क्षेत्र के लिए योजनाएँ बनाने में स्वतन्त्र होने चाहिए, तभी वे नियोजन के प्रति रुचि रख सकते हैं।
13. **पूँजी-प्रधान एवं उपभोग-प्रधान उद्योगों में समन्वय** (Co-ordination between Capital-incentives and Consumption-incentives Industries)—योजनाओं की सफलता के लिए पूँजी-प्रधान एवं उपभोग-प्रध ान उद्योगों में समन्वय होना चाहिए जिससे कि राष्ट्र निर्भर हो सके तथा जनता की उपभोग सम्बन्धी कठिनाइयाँ दूर हो सकें।

नोट

14. **मानव-शक्ति का उपयोग** (Utilisation of Human Power)–योजनाएँ इस प्रकार की होनी चाहिए कि उन योजनाओं में उपलब्ध मानव-शक्ति अधिकाधिक लगायी जा सके। इससे बेरोजगारी की समस्या को हल करने में सुविधा रहेगी।
15. **प्रशासन का शुद्धीकरण** (Cleanliness of Administration)–योजनाओं का संचालन एवं कार्यान्वयन प्रशासन के हाथ में होता है। अत: योजनाओं के लाभों को जन-साधारण तक पहुँचाने के लिए भ्रष्ट प्रशासन को समाप्त करना आवश्यक है।

आज सबसे बड़ी आवश्यकता देश की समस्या की वास्तविकता को पहचानकर इसके सही समाधान की है। कोरी सैद्धान्तिकता नाकामयाब रही है, यह अनुभवसिद्ध है। देश के दरिद्रतम लोगों तक विकास का लाभ पहुँचाने के लिए, दरिद्रतम के सामर्थ्य और उस तक पहुँचने के समग्र मार्ग का परीक्षण करना होगा तभी सैद्धान्तिकता और व्यावहारिकता की खाई पाटी जा सकती है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

3. निम्नलिखित कथनों में सत्य/असत्य की पहचान करें–

1. पंचम् योजना में आत्मनिर्भरता की प्राप्ति पर अधिक बल दिया गया है।
2. भारत में आर्थिक नियोजन को 5 अप्रैल 1952 से प्रारम्भ किया गया था।
3. योजना अवधि में सबसे अधिक प्रगति कृषि क्षेत्र में हुई है।
4. आर्थिक नियोजन का प्रमुख उद्देश्य राष्ट्रीय आय तथा प्रति व्यक्ति आय को बढ़ाना रहा है।
5. विदेशी सहायता पर अत्यधिक निर्भरता के कारण ही भारतीय आर्थिक नियोजन में विभिन्नता रही है।

30.9 सारांश (Summary)

- आर्थिक नियोजन से आशय उस पद्धति से है जिसमें आर्थिक क्रियाओं से सम्बद्ध सभी निर्णय सरकार द्वारा किये जाते हैं, ताकि उपलब्ध संसाधनों का सर्वोत्तम उपयोग हो सके।
- भारत में आर्थिक नियोजन की प्रक्रिया प्रथम पंचवर्षीय योजना के साथ 1 अप्रैल, 1951 को प्रारम्भ हुई। वैसे उससे पहले ही देश में योजना के मार्ग को अपनाने की बातें विभिन्न व्यक्तियों तथा संस्थाओं द्वारा सोची जा रही थीं। सबसे पहले श्री एम. विश्वेश्वररैया ने सन् 1934 में 'प्लांड इकोनॉमी फॉर इण्डिया' (Planned Economy for India) नामक पुस्तक में योजना की प्रथम रूपरेखा रखी थी।
- स्वतन्त्रता-प्राप्ति के समय देश में गरीबी, खाद्यान्न का अभाव, बेरोजगारी, आवासों की कमी, अशिक्षा, शोषण-प्रवृत्ति, औद्योगिक अशान्ति, कृषि का पिछड़ापन आदि अविकसित अर्थव्यवस्था की सभी समस्याएँ विद्यमान थीं। इन विभिन्न समस्याओं से निपटने के लिए यह आवश्यक था कि आर्थिक नियोजन का सहारा लिया जाये।
- स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद 1950 में पण्डित जवाहर लाल नेहरू की अध्यक्षता में देश के भौतिक, पूँजीगत एवं मानवीय साधनों को आँकने तथा इनके आधार पर आर्थिक विकास के लिए योजना बनाने के लिए **योजना आयोग** (Planning Commission) की स्थापना की गयी। आयोग ने अपनी स्थापना के पन्द्रह महीनों के पश्चात् जुलाई सन् 1951 में प्रथम पंचवर्षीय योजना की रूपरेखा सरकार के आगे प्रस्तुत कर दी। पण्डित नेहरू ने 8 दिसम्बर, 1952 को लोकसभा के आगे प्रथम पंचवर्षीय योजना का अन्तिम प्रारूप (Final Draft) पेश किया था।
- भारतीय योजनाओं का सर्वप्रमुख उद्देश्य राष्ट्रीय आय में वृद्धि करना है। इस उद्देश्य को मात्रात्मक रूप देने के लिए इसे राष्ट्रीय आय की वार्षिक वृद्धि-दर के रूप में परिभाषित किया गया है।

नोट

- नियोजन के उद्देश्यों में कुशलता या उत्पादकता की अपेक्षा सामाजिक कल्याण पर अधिक बल दिया गया है।
- व्यूह-रचना या 'कूटनीति' या 'विकास विधि' से सामान्यत: अभिप्राय किसी विषय अथवा क्षेत्र-विशेष से सम्बन्धित नीतियों, पद्धतियों, सिद्धान्तों व कार्य-प्रणालियों का वह आदर्श सामंजस्य है जिसके द्वारा समस्या का सर्वोपयुक्त समाधान ढूँढ़ने का प्रयास किया जाता है।
- हमारे नियोजन की व्यूह-रचना अर्थव्यवस्था के सन्तुलित विकास पर आधारित रही है किन्तु यह उल्लेखनीय है कि आर्थिक दशाओं के बदले परिवेश में विविध क्षेत्रों में सन्तुलन बनाये रखने के लिए प्रत्येक योजना में कुछ क्षेत्रों को ऊँची प्राथमिकता देकर असन्तुलित विकास की कूटनीति का अनुसरण किया गया हो।
- आठवीं योजना का शुभारम्भ 1 अप्रैल, 1992 से हुआ। इस योजना में मुख्य ध्यान मानव संसाधन विकास पर दिया गया।
- सामाजिक विकास के बिना आर्थिक विकास अधूरा है, इस कारण सामाजिक सेवाओं को 21 प्रतिशत भाग आवंटित किया गया है।
- भारत की आर्थिक विकास युक्ति में दीर्घकाल तक नियमन, नियन्त्रण और संरक्षण के तत्वों को प्रधानता दी जाती रही।
- योजना के प्रारूप में कहा गया कि बाजार तन्त्र (Market Mechanism) की बढ़ती भूमिका के कारण अब नियोजन की अपेक्षाकृत अधिक मार्गदर्शी भूमिका होगी।
- नियोजित विकास के लिए जो व्यूह रचना अपनायी गयी है, उसे अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में साधनों के आवंटन या विनियोग के रूप में व्यक्त किया जा सकता है।
- भारत एक विकसित देश है जहाँ नियोजित ढंग से अधिक विकास करने के प्रयत्न किये जा रहे हैं। हमारे पास आवश्यकता की तुलना में साधन सीमित हैं। अत: उनके उपयुक्त आवंटन की समस्या बनी रहती है।
- सार्वजनिक क्षेत्र में व्यय अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में किया गया है, जैसे–कृषि और सिंचाई, शक्ति, उद्योग, परिवहन और संचार तथा सामाजिक सेवाएँ आदि।
- प्रथम योजना के कुल व्यय का लगभग एक-तिहाई भाग कृषि पर व्यय किया गया था। यह इस बात को स्पष्ट करता है कि भारतीय अर्थव्यवस्था कृषि-प्रधान अर्थव्यवस्था है।
- विभिन्न योजनाओं में साधन आवंटन का सबसे दु:खद पक्ष यह रहा है कि सार्वजनिक सेवाओं पर किये जाने वाले प्रतिशत व्यय में निरन्तर कमी आई है।
- घरेलू साधनों को भी दो भागों में विभाजित किया जा सकता है–(क) सार्वजनिक क्षेत्र के अपने साधन, जिनमें निम्नलिखित साधन सम्मिलित होते हैं–(*i*) सरकारी बचतें तथा (*ii*) सार्वजनिक उद्यमों में अतिरेक। (ख) घरेलू ऋण, जिनमें निम्न को सम्मिलित किया जाता है–(*i*) बाजार से ऋण, (*ii*) छोटी बचतें, (*iii*) राज्य भविष्य निधियाँ तथा (*iv*) सार्वजनिक वित्तीय संस्थाओं में सावधि ऋण।
- योजना काल के आरम्भिक चरणों में विकास की गति तेज करने के उद्देश्य से विदेशी सहायता तथा हीनार्थ प्रबन्धन का भरपूर प्रयोग किया गया।
- पंचम् योजना से आत्म-निर्भरता की प्राप्ति पर अधिक बल दिया गया। पंचम् योजना में विदेशी सहायता का योगदान 12.8 प्रतिशत था।
- भारत में आर्थिक नियोजन को 1 अप्रैल, 1951 से प्रारम्भ किया गया, तब से अब तक नियोजन को 50 वर्ष पूरे हो चुके हैं।
- भारत में प्रति व्यक्ति आय और राष्ट्रीय आय में भी निरन्तर वृद्धि हो रही है। प्रति व्यक्ति वार्षिक आय जो 1950-51 में (1993-94 की कीमतों के आधार पर) 3,687.1 रुपये थी, वह 2000-2001 में बढ़कर, 10,254 रुपये हो गयी अर्थात् 28 गुना बढ़ गयी।

नोट

- विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में कृषि एवं सम्बद्ध क्षेत्रों में विकास को अत्यधिक महत्व दिया गया।
- 1950–51 तक कृषि उत्पादन में वृद्धि–दर लगभग 3.5 प्रतिशत वार्षिक थी परन्तु आर्थिक सुधार की आठवर्षीय अवधि में (1992–93 से 1999–2000) में कम होकर क्रमशः 2.2 प्रतिशत और 2 प्रतिशत रह गया।
- योजना अवधि में सबसे अधिक प्रगति औद्योगिक क्षेत्र में हुई है। इन वर्षों में औद्योगिक क्षेत्र का न सिर्फ आधार ही मजबूत हुआ है बल्कि उद्योगों का विविधीकरण भी हुआ है।
- योजना अवधि में बचत एवं विनियोग की दर में भी उतार–चढ़ाव आते रहे हैं। चालू मूल्य के आधार पर GDP से सकल बचत का अनुपात जो 1950–51 में 10.4 प्रतिशत था, वह 2001–2001 में बढ़कर 23.4 प्रतिशत हो गया।
- देश के विदेशी व्यापार में भी महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं। अब भारत निर्मित वस्तुओं का निर्यात करता है तथा कच्चे माल तथा अर्द्धनिर्मित वस्तुओं का आयात करता है।
- विदेशी व्यापार की दिशा से आशय यह है कि भारत का आयात व निर्यात किन–किन देशों से होता है। आधुनिक समय में भारत का निर्यात व आयात क्षेत्र विस्तृत हो चुका है।
- सबसे अभिनन्दनीय बात यह है कि भारत आत्म–निर्भर और स्वावलम्बी होता जा रहा है। योजनाओं में प्रयुक्त वित्तीय साधनों का लगभग 90 प्रतिशत भाग घरेलू साधनों से ही जुटाया जाता है।
- योजनाओं की अवधि में अर्थव्यवस्था में कुछ **संरचनात्मक** तथा **संस्थागत** परिवर्तन हुए हैं। वे इस बात के प्रतीक हैं कि अर्थव्यवस्था का आधुनिकीकरण हुआ है।
- लगभग 50 वर्षों में जो कुछ प्रगति हुई है, वह अपर्याप्त है क्योंकि योजना में सम्बन्धित क्षेत्र के लिए विकास के जो लक्ष्य निर्धारित किये गये हैं, उनकी सापेक्षिक रूप से प्रगति की रफ्तार धीमी है।
- आर्थिक नियोजन का प्रमुख उद्देश्य राष्ट्रीय आय में प्रति व्यक्ति आय को तीव्र गति से बढ़ाना रहा है। यद्यपि योजना काल में राष्ट्रीय आय और प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि हुई है परन्तु वृद्धि की दर बहुत धीमी रही है।
- भारत में आर्थिक नियोजन का तीसरा प्रमुख उद्देश्य आर्थिक विषमता को कम करना था परन्तु हमारी विकास योजनाओं में आर्थिक शक्ति के केन्द्रीकरण तथा विषमताओं में वृद्धि हुई है।
- औद्योगिक प्रोग्राम की उपलब्धियों का अल्पानुमान किये बिना यह कहा जा सकता है कि औद्योगिक उन्नति का अधिकतम भाग मिथ्या है।
- भारत ने कृषि, उद्योग, विदेशी व्यापार, मानवीय पूँजी निर्माण आदि क्षेत्रों में महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ प्राप्त की हैं।
- हमारी उपलब्धियाँ महत्वपूर्ण और उत्साहजनक रही हैं फिर भी इन्हें पर्याप्त नहीं माना जा सकता क्योंकि नियोजन के 48 वर्षों के उपरान्त भी आज देश में आर्थिक व सामाजिक असमानता, दरिद्रता व बेरोजगारी का बोलबाला है।
- भारत में आर्थिक नियोजन के दौरान केवल सीमित सफलताएँ प्राप्त हुई हैं परन्तु सही मूल्यांकन के लिए यह आवश्यक है कि हम उन कारणों की समीक्षा करें जिनके फलस्वरूप आर्थिक नियोजन के दौरान अर्थव्यवस्था को केवल सीमित सफलताएँ प्राप्त हुई हैं।
- योजनाओं को सफल बनाने के लिए जनता का पूर्ण सहयोग प्राप्त करना अत्यन्त आवश्यक है। जनता का सहयोग तभी प्राप्त किया जा सकता है, जबकि योजनाओं के प्रति उदासीनता की प्रवृत्ति का अन्त किया जाये और योजनाओं की पूर्ण जानकारी देकर उसके लाभों से अवगत कराया जाये।
- हमारे देश में लक्ष्य की प्राप्ति का अनुमान व्यय की राशि के अनुसार लगाया जाता है परन्तु लक्ष्यों का सम्बन्ध भौतिक उपलब्धियों से होना चाहिए।
- योजनाओं को सफल बनाने के लिए बढ़ती हुई जनसंख्या को नियन्त्रित करना आवश्यक है। बढ़ती हुई जनसंख्या योजना के लाभों को निगल जाती है।

नोट

- योजनाओं की सफलता के लिए पूँजी-प्रधान एवं उपभोग-प्रधान उद्योगों में समन्वय होना चाहिए जिससे कि राष्ट्र निर्भर हो सके तथा जनता की उपभोग सम्बन्धी कठिनाइयाँ दूर हो सकें।
- आज सबसे बड़ी आवश्यकता देश की समस्या की वास्तविकता को पहचानकर इसके सही समाधान की है। कोरी सैद्धान्तिकता नाकामयाब रही है, यह अनुभवसिद्ध है।

30.10 शब्दकोश (Keywords)

- **मिथ्या–** निराधार, बनावटी, कृत्रिम।
- **आशातीत–** आशा से अधिक।
- **विकेन्द्रीकरण–** केन्द्र से हटाना, फैलाया हुआ।

30.11 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. भारत में आर्थिक नियोजन के प्रमुख उद्देश्यों का वर्णन कीजिए। उन्हें कहां तक प्राप्त किया जा सकता है?
2. आर्थिक नियोजन के अर्थ एवं महत्त्व का विवेचन कीजिए तथा भारत में सातवीं योजना की उपलब्धियों की संक्षेप में समीक्षा कीजिए।
3. भारत में आर्थिक नियोजन की उपलब्धियों एवं असफलताओं का संक्षेप में वर्णन कीजिए।
4. पंचवर्षीय योजनाओं में घाटे की वित्त व्यवस्था पर टिप्पणी लिखिए।
5. भारत की विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में सार्वजनिक क्षेत्र में जो व्यय हुआ। उसे लिखिए।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

1.	1. (क)	2. (ग)	3. (क)	4. (क)
	5. (ग)	6. (ग)		
2.	1. सामाजिक कल्याण	2. व्यूह रचना	3. महालनोबिस	4. एक-तिहाई
	5. 21.4 प्रतिशत।			
3.	1. सत्य	2. असत्य	3. सत्य	4. सत्य
	5. सत्य			

30.12 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. *संवृद्धि एवं विकास का अर्थशास्त्र*: डॉ. पी. मिश्रा; साहित्य भवन पब्लिकेशन्स : आगरा
2. *विकास नियोजन एवं नीतियाँ*: वी. सी सिन्हा: साहित्य भवन पब्लिकेशन्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.) लि. रजिस्टर्ड कार्यालय नई दिल्ली
3. *विकास का अर्थशास्त्र एवं आयोजन*: डा. एस. एल. डिंगल: वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा. लि.

LOVELY PROFESSIONAL UNIVERSITY
Jalandhar-Delhi G.T. Road (NH-1)
Phagwara, Punjab (India)-144411
For Enquiry: +91-1824-300360
Fax.: +91-1824-506111
Email: odl@lpu.co.in